Reg. No. : N-1316/2014-15

ISSN 2394-2207
May-October 2019
Vol. V, No. II
IIJ Impact Factor : 2.011

उन्मेष

Unmesh

An International Half Yearly
Peer Reviwed Refeered Research Journal
(Art & Humanities)

सम्पादकद्वय
डॉ० राधेश्याम मौर्य
शिवेन्द्र कुमार मौर्य

प्रकाशक
जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़, उ०प्र०

Reg. No. : N-1316/2014-15

IIJ Impact Factor : 2.011
ISSN : 2394-2207

उन्मेष

Unmesh

An International Half Yearly Peer Reviwed Refereed Research Journal (Art & Humanities)

Vol. : V **No. II** **May-October 2019**

सम्पादकद्वय
डॉ० राधेश्याम मौर्य
शिवेन्द्र कुमार मौर्य

सह-सम्पादक
डॉ० मनोहर लाल
डॉ० अखिलेश कुमार

प्रकाशक
जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़-२३०००१ (उ०प्र०)

lj{kd&eaMYk

M,0 pEik dqekjh flag] प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
Mk0 ch0,u0 flag] पूर्व निदेशक, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उ0प्र0
M,0 gjh'kpUæ tk;lokYk] पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इविंग क्रिश्चियन महाविद्यालय, इलाहाबाद वि0वि0, उ0प्र0

lEikndh

M,0 jk/k';ke ek;] (राष्ट्रपति सम्मान प्राप्त) प्रवक्ता, जी0वी0आई0सी0, देल्हूपुर, प्रतापगढ़, उ0प्र0
f'koUnz dqekj ek;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

lg&lEikndh

Mk0 eukgj yky] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
Mk0 vf[kys'k dqekj] असि0 प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, के0एस0 साकेत पी0जी0 कॉलेज, अयोध्या

lEikndh&e.MYk

Mk0 d".k dqekj dkf'kd % प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
Mk0 fgjks'kh llkdh % एसो0 प्रोफेसर, डिपार्टमेंट ऑफ सोशल एजूकेशन, हिरोशिमा विश्वविद्यालय, जापान
Mk0 vfuy dqekj ek;] % असि0 प्रोफेसर, विधि संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0
Mk0 lehj dqekj ikBd % असि0 प्रोफेसर, डी0ए0वी0 पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी, उ0प्र0
Mk0 jes'kdj d'okgk % असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
lUr"k dqekj % विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, जक्खिनी, वाराणसी, उ0प्र0
fHk{kq Ýklkelkd o..klu] विहाराधिपति, वॉट थाई बुद्ध विहार, बैंकाक, थाईलैंड

ijke'k&e.My

Mk0 izdk'k pUnz frokjh] विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विभाग, कमला नेहरू इंस्टीट्यूट ऑफ फिजिक्स एण्ड सोशल साइंस, सुल्तानपुर उ0प्र0
Mk0 jtuh ckyk] एसो0 प्राफेसर, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू कश्मीर
Mk0 lqnhi oek] असि0 प्रोफेसर, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
Mk0 eukt dqekj ek;] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, सूर्यमणि नगर, अगरतला
';keUnu] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार
Mk0 iPkrl] असि0 प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, यूइंग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
Mk0 vfer dqekj flag d'okgk] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राजस्थान

eY;kdu lfefr

ikQ~lj ¼Mk0½ lq/;kjkuh 'kkD;] क्षेत्रीय उच्च शिक्षा अधिकारी एवं प्राचार्या राजकीय महाविद्यालय, समथर, झाँसी, उ0प्र0
Mk0 inek"k jFk] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, उड़ीसा।
Mk0 vfe"k oek] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल
Mk0 ';ek flag] असि0 प्रोफेसर, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, झूँसी, इलाहाबाद
Mk0 /kuath iqlkn] असि0 प्रोफेसर, भाषा विज्ञान एवं भाषा प्रोद्यौगिकी, महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
Mk0 bnzthr feJ] असि0 प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, डी0ए0वी0पी0जी0 कॉलेज, बी0एच0यू0, वाराणसी
Mk0 jkt'k flag d'okgk] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग, डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद
Mk0 jke jru ikloku] असि0 प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।
Mk0 lqd'k ykgkj] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कल्याणी विश्वविद्यालय, कल्याणी, नदिया, पश्चिम बंगाल
unh iVkfn;k] असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, डॉ0 हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश
Mk0 ih;"kdkUr 'kek] एसो0 प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, एम0डी0पी0जी0 कॉलेज, प्रतापगढ़, उ0प्र0
Mk0 Kkukck f=cd <x] विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, कर्मवीर काका साहेब बाघ आट्र्स, साइंस एण्ड कॉमर्स कॉलेज, पीपल गाँव (बी) नासिक, महाराष्ट्र
Mk0 vfu'k dqekj oek] असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, मड़ियाहूँ पी0जी0 कॉलेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर
Mk0 izdr flag] असि0 प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, बांदा, उ0प्र0

jke fl|g] असि0 प्रोफेसर, भूगोल विभाग, जवाहरलाल नेहरू पी0जी0 कॉलेज, एटा, आगरा, उ0प्र0

{k=h; lEikn

f'kojke ek;;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, डॉ0 हरि सिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश
l|'khy d|ekj] शोध छात्र, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद
i|epUn| ek;;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, केरल

i|cU/k&lEikn

Mk0 lhrk jke fl|g] एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, गणपत सहाय पी0जी0 कॉलेज, सुलतानपुर, उ0प्र0
vt; d|ekj ek;;] शोध छात्र, तुलनात्मक धर्म दर्शन विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
je|'k d|ekj ek;;] प्रबन्धक, काशी ज्ञान इंस्टीट्यूट, लंका, वाराणसी

vu|okn lgk;d

gfj'pUn| d|'kokgk] पूर्व अतिथि प्रवक्ता, डी0ए0वी0पी0जी0 कॉलेज, बी0एच0यू0, वाराणसी
l|euyrk d|ekjh] शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

fof/k&ijke'k

Kku Ádk'k e©;| : पूर्व राज्य सूचनायुक्त, उ0प्र0
Mk0 vkn'k d|ekj : असि0 प्रोफेसर, विधि संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

lEikndh; lEid|

tu l|ok ,o| 'k¨/k f'k{kk l|LFkku

सी–23, आवास विकास कालोनी, प्रतापगढ़–230001 (उ0प्र0) भारत

मो0– 08004802456, 09415627372

ई–मेल : unmesh0110@gmail.com, shivendrakr.maurya@gmail.com

i|dk'kd %

tu l|ok ,o| 'kk/k f'k{kk l|LFkku

सी–23, आवास विकास कालोनी, प्रतापगढ़–230001, (उ0प्र0), भारत

e|æd %

jkt xkfQDl

बी0एच0यू0 रोड, लंका, वाराणसी

ek0 % 09415842611

u¨V % सम्पादन, संचालन–पूर्णतः अवैतनिक/अव्यावसायिक/अनियतकालीन। उन्मेष में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। लेखों एवं उद्धरणों से सम्बन्धित किसी भी वाद–विवाद के लिए लेखक की जिम्मेदारी स्वयं की होगी। सम्पादक, प्रकाशक एवं उन्मेष परिवार के किसी भी सदस्य की जिम्मेदारी नहीं होगी। किसी भी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र इलाहाबाद उच्च न्यायालय होगा।

lEikndh;

शिक्षा के व्यावसायीकरण पर लोगों की बहसें लगातार सुनने को मिलती रहती हैं। मेरी समझ से यह व्यावसायीकरण दो प्रकार का होता है। एक से हमारा तात्पर्य शिक्षा को व्यवसायपरक बनाने से होता है जिसका उद्देश्य व्यावसायिक पाठ्यक्रम बनाकर लोगों को रोजगार दिलाना होता है। जबकि इसके विपरीत दूसरा तात्पर्य शिक्षा को व्यवसाय बनाकर उससे धनोपार्जन करने से होता है। जहाँ तक सरकार द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की बात है वह तो इसकी व्यवस्था से धनोपार्जन नहीं कर रही है, वह तो इसकी व्यवस्था में सरकारी धन लगा रही है। शिक्षा के व्यावसायीकरण (धनोपार्जन) का कार्य तो हमारे देश में निजी संस्थाएँ कर रही हैं।

इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि प्राचीनकाल में सभी प्रकार की शिक्षा व्यवस्था निजी व्यक्ति और निजी संस्थाओं द्वारा ही की जाती थी, परन्तु यह व्यवस्था आर्थिक लाभ के लिए नहीं, बल्कि समाज सेवा के भाव से ही जाती थी। तब शिक्षा ने व्यवसाय का रूप नहीं लिया था। हमारे देश में सर्वप्रथम अंग्रेजी शासनकाल में सरकार ने प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा व्यवस्था करना शुरू किया। साथ में निजी संस्थाएँ भी शिक्षा व्यवस्था करती रहीं। स्वतंत्र भारत में सभी स्तरों की शिक्षा का विस्तार तेजी से हुआ। प्राथमिक शिक्षा के विस्तार से माध्यमिक शिक्षा की माँग बढ़ी और माध्यमिक शिक्षा के विस्तार से उच्च शिक्षा की माँग बढ़ी। इन बढ़ी शिक्षा की मांगों ने व्यावसायीकरण का रुख किया। जब देश में शिक्षा की माँग तेजी से बढ़ी तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में संशोधित राष्ट्रीय नीति की कार्य योजना 1992 में उच्च शिक्षा को धीर–धीरे स्ववित्तपोषित कर दिया गया।

अंग्रेजों ने 1772 में कलकत्ता मदरसा, 1791 में बनारस संस्कृत कॉलेज और 1800 में कलकत्ता फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। इस प्रकार अंग्रेजों ने भारत में शिक्षा का प्रसार जारी रखा और 1947 तक भारत में उच्च शिक्षा के 22 विश्वविद्यालय स्थापित हो चुके थे जिनकी पूर्ण व्यवस्था सरकार स्वयं करती थी, किन्तु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में उच्च शिक्षा के निजीकरण ने शिक्षा के व्यावसायीकरण को बल दिया। इसी कारण आज शिक्षा का व्यवसायीकरण अपने चरम पर दिखता है।

अन्तर्विषयी शोध–पत्रिका होने के कारण 'उन्मेष' में विविध विषयों के शोध–पत्र शामिले किये गये हैं। इस अंक के साथ 'उन्मेष' पत्रिका ने अपने पाँच वर्ष पूर्ण कर लिए। इस उपलब्धि के लिए समस्त उन्मेष परिवार का हृदय से आभारी हूँ, साथ ही शोधकर्ताओं का भी आधार प्रकट करता हूँ, क्योंकि उनके अन्वेक्षणात्मक शोध–पत्रों के बिना इस पत्रिका का अपना कोई स्वरूप ही न होता। प्रत्येक अंक की तरह इस अंक में भी लगभग सभी शोध–पत्र प्रशंसनीय हैं। शोध के विविध विषय क्षेत्रों से परिपूर्ण 'उन्मेष' का यह अंक आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत है। 'उन्मेष' पत्रिका पाँच वर्ष पूर्ण करने के पश्चात् भी अपने उत्तरदायित्व का आगे ऐसे ही निर्वहन करती रहेगी। इसी आकांक्षा के साथ इस अंक के सफल प्रकाशन में सबके अपेक्षित सहयोग के लिए पुनः आभार प्रकट करता हूँ।

दिनांक : 30 अक्टूबर, 2019

lEikd};

Mk0 jk/k';ke ek;

f'koUn dekj ek;

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019

vuØef.kdk

- fgUnh Hkk"kk % ,frgkfld nf"V — 1&4
  डॉ0 शिखा सिंह
- ekuorkoknh pruk dh fpr:i dfo % dqoj ukjk;.k — 5&8
  धर्मेन्द्र कुमार सिंह
- jkek;.kdkj okYehfd dh 'oipRo dk fujkdj.k — 9&13
  डॉ0 सपना सिंह
- Hkkjrh; ifjokj&lajpuk dh Hkhrj dldr L=h&Lolu % nD[ke&lD[ke! — 14&16
  दिव्या यादव
- firlÙkkRed 0;oLFkk dh fo#) clrh dk thou&la?k"k — 17&20
  श्याम बहादुर
- ykd&ukV; ijijk ,oa gchc ruohj dk jax&ykd — 21&23
  अलका
- MhO Dykl dk fu"dklu — 24&26
  शैलेन्द्र सिंह
- dchj dh dk0; esa ukjh — 27&34
  डॉ0 बिपिन कुमार
- ykdlkfgR; dk fopkj&rÙo o ykdxhr — 35&39
  दिवाकर राय
- ledkyhu fgUnh dfork esa L=h&vfLerk dh vuxat — 40&45
  ऋचा
- xkeh.k laLdfr vkj lkonuk dh okgd % jkeujk'k f=ikBh — 46&50
  संजीव कुमार पाण्डेय
- lQh iEek[;kud dk0;ksa esa ykdkRlo — 51&53
  डॉ0 ज्ञान प्रकाश मंगलम्
- Hkkjrh; jk"Vªh; vkUnksyu esa efgykvksa dh fLFkfr ¼fo'k"k lanHk % efgyk lxBu vkj mudh miyfC/k;k½ — 54&58
  जगमोहन कुमार
- ehjk dk thou la?k"k vkj dk0; — 59&61
  उदय सिंह यादव
- fgUnh lkfgR; esa lkekftd ;FkkFkksa vkj ckck ukxktqZu — 62&64
  रेशू सिंह
- HkfDrdk0; dh lkekftd mikns;rk — 65&71
  डॉ0 प्रियंवदा शर्मा
- dey'oj dh mlkU;klksa esa lkfgfR;d ikfjof'kd pruk — 72&74
  डॉ0 सुशील कुमार सिंह
- ;FkkFkokn dh nf"V ls Hkou'oj feJ dh miU;klksa dk of'k"V; — 75&77
  राजेश कुमार चन्देल

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019

■ ifjokj e L=h % LFkkfir vFkok foLFkkfir ¼Hkkjr d ifji{; e½ 78&82
रेनू यादव
■ miU;kl e ^mil gkj* % feFkd l ;FkkFk thou dh ;k=k 83&87
कु0 साधना यादव
■ ledkyhu fgUnh miU;kl e fpf=r o)k d thou dh =klnh 88&93
संजय कुमार
■ in foHkkx % ik'pkR; vkj Hkkjrh; ijEijkvk dk fo'y"k.k rFkk mfpr ekx dk fun'k 94&99
डॉ0 कुमारी सुषमा
■ ;'kiky vkj ekDl okknh vkykpuk 100&105
डॉ0 मनोज कुमार मौर्य
■ Hkkjr dh fon'k uhfr e fujUrjrk vkj cnyko 106&109
डॉ0 यशवन्त प्रसाद पटेल
■ fgUnh fluek e xk/kh 110&115
पटेल सत्यम कुमार गोविंदभाई
■ ck) /ke n'ku ,o ekuookknh i ofÝk 116&119
डॉ0 राजेन्द्र कुमार वर्मा व प्रिया मलिक
■ Ekkd.M; d miU;kl e xk/kh okn dk i Hkko 120&123
संतोष कुमार
■ dkx l vkj jk"V'okn 124&127
डॉ0 अरविन्द कुमार
■ fcgkj iFkDdj.k vkUnkyu 128&130
डॉ0 विघ्नेश चन्द्र झा
■ egkRek xk/kh d fopkjk e lkekftd 'kkfUr dh vo/kkj.kk 131&132
बादशाह अहमद
■ xko&tokj dk l Lej.k % ^uxkrykbi dk xko* 133&136
भरत सिंह
■ thouefä % ljy ,o okLrfod efä 137&139
डुमरेन्द्र राजन
■ Hkkjrh; vk[;ku dh fo'k"krk, vkj ^gfj;k gjD;yht dh gjkuh* 140&143
पवन कुमार ईश्वर
■ t o fofo/krk d lUnHk e c) d fopkjk dh çklfxdrk 144&147
राजपाल
■ HkfDr vkUnkyu dh ik lfxdrk 148&151
राजेश कुमार विश्वकर्मा
■ Tkur= dh gdhdr % ukVd tkjh g 152&158
घनश्याम पाण्डेय
■ ^cgr Çgnh dk'k* dh fuek.k&çfØ;k % leh{kkRed vè;;u 159&161
विक्रम गुप्ता
■ bfrgkl y [ku % mnHko] fodkl ,o i ofÙk;k 162&166
डॉ0 अरविन्द

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019

■ orteku ifjis{; e L=h efä dh vo/kkj.kk 167&168
संजू मौर्या
■ L=h thou vkj ufrdrk dk ç'u 169&172
डॉ0 शिल्पी गुप्ता
■ fgUnh dfork vkj i;koj.kh; tkx:drk 173&176
डॉ0 डी0 उमादेवी
■ Lkthou d miU;kl lkfgR; e ukjh thou 177&180
नागेन्द्र प्रसाद यादव
■ Hkkjrh;ok³e; lkUn;L;ko/kkj.kk 181&184
डॉ0 गीता झा
■ Hkkjr dk xkeh.k fodkl % vko';drk vkj fu;ktu 185&189
डॉ0 रेखा उपाध्याय
■ nkEiR; thou e ukjh dk ;kxnku 190&192
डॉ0 बेबी कुमारी
■ dkfynkl ok³e; e ie dk vkè;kfRed Lo:i 193&195
डॉ० आशा कुमारी
■ dk0 lkUn;foe'kk 196&198
कुमकुम कुमारी
■ jl lEcUèkh fopkj 199&201
डॉ0 पवन कुमार राउत
■ Hkkjro"k dh lkfgR; lEink d vuqlkj ifruk;d dk y{k.k ,o Lo:i 202&203
डॉ0 विश्वजीत
■ cky Je dk jkdu e ikFkfed f'k{kk dh Hkfedk 204&208
ज्योति कुमारी
■ ekd.M; ijk.kL; of'k"V;e 209&211
विश्वनाथन
■ fMftVyhdj.k vkj ljdkjh i;kl % ,d fo'y"k.k 212&214
डॉ0 नीरज कुमार राय
■ Hkkt ijh {k= dh /kkfed Hkkouk 215&217
उत्तम पटेल व डॉ0 विजय कुमार
■ dey'oj d dgkuh e vkfFkd leL;k, 218&221
संतोष कुमार

■■■

Index

- **Medical Negligence and Rights of Patient as a Consumer** **1-5**
  Sushil Kumar
- **Evaluation of Food and Nutrition Security Awareness and Eating Behavoiur of Low Socio - Economic Women: A study of Kishanpur Panchayat, District of Katihar, Bihar** **6-7**
  Shruti Kumari
- **Women in Communal Violence- Other Side of the Story: Indian Perspective** **8-14**
  Chandra Vikas Maurya
- **Development Vis-A-Vis Environment Protection** **15-23**
  Sachin Verma & Swaraj Shukla
- **R.K. Narayan {The Making of the Novelist}** **24-27**
  Dr. Rajesh Kumar Mishra
- **Cinematic Adaption of Satyajit Ray's Satranj Ke Khiladi: A Critical Analysis** **28-33**
  Triloki Nath
- **Dimensions of Online Education** **34-35**
  Dr. Smita Singh

■■■

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 1-4

fgUnh Hkk"kk % ,frgkfld nf"V

MkO f'k[kk fl|g*

आज भाषा के प्रति हम विशेष रूप से जागरूक हो गए हैं। प्रत्येक भाषायी क्षेत्र अपनी भाषा और बोली के प्रति विशेष रूप से सजग होता जा रहा है। बदले हुए इस परिवेश में एक बार पुनः आवश्यक हो गया है कि हम हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी के वास्तविक अर्थ का विश्लेषण करें। सर्वप्रथम इस तथ्य पर विचार करना होगा कि हिन्दी भाषा से हमारा तात्पर्य क्या है? भाषा के सन्दर्भ में जब हिन्दी का नाम लिया जाता है तो उससे तात्पर्य क्या होता है? इधर 'हिन्दी' शब्द पर बहुत विचार–विनिमय हुआ है लेकिन सम्भवतः भ्रामक दृष्टिकोण एवं अवैज्ञानिक प्रणाली के कारण उसका अर्थ और भी उलझ गया है। भाषावैज्ञानिक इसे एक अर्थ में प्रयोग में लाते हैं, साहित्यकार दूसरे अर्थ में तथा राजनीतिक नेता इसे भिन्न अर्थ प्रदान करते देखे जाते हैं।

हिन्दी शब्द पर विचार करते समय यहाँ कुछ ऐतिहासिक तथ्यों पर दृष्टि डाल लेना अनुचित न होगा, जिसे प्रायः अनदेखा कर दिया जाता है।

1. आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति के कुछ समय बाद ही भारत पर विदेशी आक्रमण हुए। इन विदेशी आक्रमणकर्त्ताओं की अपनी सभ्यता, संस्कृति और भाषा थी। उन्होंने न केवल अपनी सभ्यता और भाषा छोड़कर सामान्यतः भारतीय सभ्यता और भाषा को अपनाया वरन् यहाँ की भाषाओं को एक सीमा तक प्रभावित भी किया।
2. मुसलमानों का शासन स्थापित हो जाने पर एक बार फिर कुछ समय के लिए भारतीय राजनीति दिल्ली में केन्द्रित हो गई और उत्तर भारत एक राज्यतंत्र की व्यवस्था के भीतर आया। इस तरह उत्तर भारत में नहरों एवं राजपथों के निर्माण के साथ व्यापार का भी प्रसार हुआ तथा व्यापार के साथ अंतर्प्रादेशिक बोलियों के बोलनेवालों में न केवल एक सम्बन्ध स्थापित हुआ, वरन् व्यापारियों को अपनी भाषा के प्रसार का भी अवसर मिला।
3. मुसलमानों की सभ्यता मूलतः सामंतवादी थी। सामंती ढाँचे में सामाजिक स्तर–भेद के अनुरूप भाषा–प्रयोग के विभिन्न स्तर देखे जा सकते हैं।
4. 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में अंग्रेजों ने भारत को पराधीन करके अपनी प्रभुता स्थापित कर दी। अपनी शासन–व्यवस्था के हित के लिए उन्होंने भारतीय भाषा, संस्कृति और कला को अपने अनुरूप मोड़ने का प्रयास भी किया। सभ्यता और संस्कृति की सम्वाहक भाषा होती है और भाषा को भी अपना अस्त्र बनाने में अंग्रेजों ने संकोच नहीं किया। इसलिए परिभाषा–व्याख्या की नई प्रणाली तक ही सीमित न रहकर उन्होंने भाषा–सम्बन्धी कुछ नए प्रयोगों की घोषणा भी की।
5. साम्प्रदायिक भिन्नता के आधार पर कुछ भारतीय नेताओं ने भाषा के रूप–निर्माण का भी प्रयास किया। महात्मा गाँधी ने साम्प्रदायिक भेद को मिटाने के लिए भाषा की विभिन्न प्रवृत्तियों को एक करने की कोशिश भी की।
6. स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद शब्द–निर्माण (पारिभाषिक) की आवश्यकता ने हिन्दी को संस्कृत की ओर मुड़ने को बाध्य किया और दूसरी ओर राष्ट्रीय प्रयोजनों के स्तर पर उसे परिनिष्ठित करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई।

*पूर्व शोध छात्रा, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

उपर्युक्त सामाजिक–ऐतिहासिक तथ्यों के परिप्रेक्ष्य के अभाव में 'हिन्दी' शब्द की व्याख्या या निरूक्ति सम्भव नहीं है। इसके संदर्भ में ही हिन्दी शब्द के अर्थ–विकास को देखना अभीप्सित होगा।

हिन्दी के अर्थ–बोध के संदर्भ में हमें कई परिभाषाएँ देखने को मिलती हैं। उन पर यहाँ विचार कर लेना अनुचित न होगा–

1. ''यह आधुनिक भारतीय भाषाओं के पश्चिमी (परिनिष्ठित) हिन्दी और पूर्वी (बोलचाल की) हिन्दी का समुच्चयबोधक नाम है।''– 'डिक्शनरी ऑफ लिंग्विस्टिक्स'।

2. कुछ विद्वानों ने इसके भौगोलिक विस्तार का आधार लेकर यह समझाने का प्रयास किया है कि हिन्दी कहाँ–कहाँ बोली जाती है तथा किन–किन भागों में इसका प्रसार है।

अ) ''व्यवहार में हिन्दी उस बड़े भूमिभाग की भाषा मानी जाती है, जिसकी सीमा पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर–पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तथा पहाड़ी प्रदेश, पूरब में भागलपुर, दक्षिण–पूरब में रायपुर तथा दक्षिण–पश्चिम में खांडवा तक पहुँचती है।''[1]

ब) ''यह बिहार, संयुक्त प्रांत, हिन्दी मध्य प्रांत, मध्यभारत, हिमालय के पहाड़ी प्रांत तथा पंजाब की साहित्यिक भाषा है।''[2]

3. कुछ अन्य विद्वान हिन्दी को और विस्तृत संदर्भ में देखते हैं।

''शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग हिन्द या भारत में बोली जाने वाली किसी भी आर्य, द्रविड़ या अन्य कुल की भाषा के लिए हो सकता है, किन्तु आजकल वास्तव में इसका व्यवहार उत्तर भारत के मध्यप्रदेश के हिन्दुओं की वर्तमान साहित्यिक भाषा के अर्थ में मुख्यतया तथा साथ ही इसी भूमिभाग की बोलियों और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले प्राचीन साहित्यिक रूपों के अर्थ में साधारणतया होता है।''[3]

4. डॉ0 ग्रियर्सन के अनुसार ''हिन्दी, हिन्दुस्तानी भाषा का वह रूप है, जिसमें संस्कृत शब्दों की बहुलता होती है, और जो देवनागरी लिपि में लिखी जा सकती है।'' पाश्चात्य विद्वानों ने प्रायः इसी मत को अपनाया है। अकादमिक बरान्निकोव तथा कुछ अन्य विद्वानों ने इसी परिभाषा को कुछ बदलकर प्रयोग किया है।

हिन्दी की उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश विद्वानों ने हिन्दीभाषी क्षेत्र, का या तो निर्देश देकर ही संतोष कर लिया है अथवा उसके अर्थ का ऐसा व्यापक प्रसार किया है जो साहित्यिक दृष्टि से भले ही मान्य हो, पर भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ग्राह्य नहीं हो सकता। कुछ विद्वानों ने ऐतिहासिक स्त्रोत के आधार पर यह भी कहा है कि हिन्दी का अर्थ केवल पश्चिमी हिन्दी से ही है, पूर्वी हिन्दी से नहीं, क्योंकि पश्चिमी हिन्दी शौरसेनी की वशंज है और पूर्वी हिन्दी अर्द्धमागधी की।''[4]

ग्रियर्सन और सुनीतिकुमार चटर्जी का भी यही मत है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह मत मान्य हो सकता है, लेकिन भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से नहीं। भाषा मूलतः कोई निश्चित बोली ही होती है जो भिन्न कारणों के फलस्वरूप कालांतर में भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो जाती है।। कभी ब्रज और अवधी भाषा थीं और आज बोली के रूप में स्वीकृत हैं। उस समय खड़ी बोली मात्र बोली थी, जो उसके नाम से ही ध्वनित है। पश्चिमी हिन्दी के अंतर्गत खड़ी बोली, बाँगरू, कन्नौजी, बुंदेली और ब्रज का नाम लिया जाता है। अगर पश्चिमी हिन्दी ही ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी है तो इसमें से कोई एक बोली ही हिन्दी भाषा के रूप में विकसित होगी–सभी नहीं। और अगर बोली विशेष पर आधारित भाषा–विशेष 'हिन्दी' नाम से पुकारी जाती है और उसके अंतर्गत बाँगरू, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली को उसकी बोलियाँ मानकर उसी भाषा के अन्तर्गत स्वीकार किया जा सकता है तो क्या पूर्वी हिन्दी (अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी) को उसकी बोलियाँ इस कारण नहीं कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक दृष्टि से वे शौरसेनी की वशंज न होकर अर्द्धमागधी अपभ्रंश से विकसित हुई है? क्या केवल ऐतिहासिक विकास मात्र से बोलियों को स्वीकृति मिलती है?

अगर डॉ0 ग्रियर्सन और अका. बरान्निकोव की मान्यता को स्वीकार किया जाए कि हिन्दी, हिन्दुस्तानी का ही एक विकसित साहित्यिक रूप है तो यहाँ यह देखना अनुचित न होगा कि हिन्दुस्तानी

का मूल रूप क्या है? हिन्दुस्तानी से हमारा तात्पर्य क्या है, और ऐतिहासिक क्रम में वह तथाकथित हिन्दी को किस प्रकार जन्म देने के सफल हुई?

'हिन्दुस्तानी' के तात्पर्य–बोध के लिए अगर स्वयं डॉ0 ग्रियर्सन के कथन को साक्ष्य माना जाए तो उनके अनुसार 'हिन्दुस्तानी' ऊपरी गंगा के दोआब की भाषा है जो भारत की लिंगुआ–फ्रांका भी है तथा फारसी और देवनागरी लिपि में लिखी जा सकती है। लेकिन यह तो एक तथ्यपरक निर्देश मात्र है, जहाँ तक 'हिन्दुस्तानी' शब्द का सम्बन्ध है–उनका कथन है कि– ''वह यूरोपियन प्रभाव के कारण प्रचलित शब्द है और हिन्दुस्तान की भाषा के अर्थ में प्रयुक्त होता है।'' लेकिन उनकी यह धारणा भी भ्रामक ही है, यद्यपि आज भी कुछ विद्वान इस मत को मानते हैं। ध्यान देने पर यह स्पष्ट होता है कि यूरोपियों के आगमन के पूर्व ही यह शब्द भारत में प्रचलित था। स्वयं बाबर ने अपने आत्म–चरित में इसका प्रयोग किया है। हाब्सन–जाब्सन ने टामस कैरियट की घटना का उद्धरण दिया है– ''कैरियट हिन्दुस्तानी इस प्रकार बोलता था कि 1616 ई0 में जब उसकी धोबिन ने उसे गालियाँ दीं तो उसी भाषा में गाली देकर उसने उसे चुप कर दिया।'' चंद्रबली पाण्डेय के अनुसार 'हिन्दुस्तानी' शब्द अंग्रेजों के आगमन की बात छोड़िए, मुसलमानों के भी पूर्व का है और इसके प्रचारक, उनके अनुसार, 'शक' थे।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि ग्रियर्सन की यह मान्यता कि 'हिन्दुस्तानी' शब्द अंग्रेजों की देन है, उचित नहीं। ग्रियर्सन ने हिन्दी को हिन्दुस्तानी की एक शैली अवश्य माना, लेकिन उन्होंने न तो हिन्दी शब्द की निरुक्ति ही दी और न हमारी भाषा के इस नाम की प्राचीनता के सम्बन्ध में ही विचार किया।''[5]

हाब्सन–जाब्सन के अनुसार हिन्दुस्तानी उत्तर भारत में रहने वाले मुसलमानों की भाषा है, जिसे उर्दू भी कहा जा सकता है। इस 'मूर' उर्दू को कुछ ऐंग्लोइंडियन 'मूर्स' भी कहते हैं। इस 'मूर' भाषा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा–''मूर भाषा से कथित भाषा की लिपि संस्कृत और बंगाली से भिन्न है। इसे नागरी कहते हैं, जिसका अर्थ है–लिखावट– (यहाँ नागरी लिपि पर ध्यान दें)'' इससे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुतः हिन्दुस्तानी अगर उर्दू है तो यह उर्दू, हिन्दी के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा नहीं है। जार्ज हैडले ने स्पष्ट शब्दों में मूर भाषा को 'हिंदवी' कहा है।

इस तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए यह आवश्यक है कि उर्दू के शब्दबोध और उसकी उत्पत्ति पर भी विचार करें। उर्दू के विषय में हाब्सन–जाब्सन ने लिखा कि ''ताशकंद और खोकंद में 'उर्दू' शब्द 'किला' के अर्थ में प्रयुक्त होता है 'शाही–पड़ाव' के अर्थ में 'उर्दू' शब्द सम्भवतः बाबर के साथ आया। 'शाही पड़ाव' के परिणाम से जिस मिश्रित भाषा का जन्म दरबार और पड़ाव में हुआ, वह 'ज़बाने–उर्दू' कहलाई।''

ध्यान देने की बात है कि उर्दू का अर्थ है– 'किला' और हाब्सन–जाब्सन के अनुसार ''दिल्ली के दरबार अथवा 'कैंप' में हिन्दू और मुसलमान जातियों के मिलने से जिस मिश्रित भाषा का जन्म हुआ, वही ''ज़बाने–उर्दू'' कहलाई।'' इस मत को स्वीकार करने वाले कई विदेशी और हिन्दुस्तानी विद्वान हैं। परंतु आचार्य चंद्रबली पांडे ने अपनी पुस्तकों ('उर्दू का रहस्य', 'उर्दू की जुबान', 'उर्दू का उद्‌गम' तथा 'राष्ट्रभाषा पर विचार') तथा डॉ0 रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक ('भाषा और समाज') द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि ऐसी धारणा भ्रामक है। विचारणीय है कि 18वीं शताब्दी के अंत तक 'उर्दू' शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में प्रयुक्त नहीं मिलता। डॉ0 बैली के अनुसार उर्दू का प्राचीनतम प्रयोग 18वीं शताब्दी के अंत में मसहफ़ी की रचना में मिलता है। यहाँ प्रश्न उठ सकता है, कि मुसलमानों को आए हुए तो अब तक पाँच–छह सौ वर्ष हो चुके थे। क्या इतनी लम्बी अवधि मिश्रित भाषा को उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त न थी? जो लेखक उर्दू को मिश्रित भाषा के रूप में देखते हैं और इसको जनसाधारण की बोली के रूप में स्वीकार करते हैं उनके लिए पाँच सौ वर्ष के अंतराल में उर्दू शब्द को न देखना आश्चर्य का कारण बन जाता है। इसलिए वे प्रश्न उठाते हैं कि इसके बावजूद हमारे समक्ष यह खुला प्रश्न है कि क्यों जिस भाषा के उदाहरण हमें 15वीं शताब्दी में मिलते हैं, उसका नामकरण 18वीं शताब्दी में हुआ? ऐसे लेखक उर्दू के वास्तविक स्वरूप और विकास–क्रम को ठीक से समझ नहीं पाते।

ध्यान देने की बात है कि आक्रामक के रूप में जो मुसलमान भारत में आए थे, वे प्रायः तुर्की थे। अगर दैनिक व्यवहार के मेल–जोल से भाषा बनने का सवाल है तो उर्दू में सबसे अधिक शब्द तुर्की के होने चाहिए। किन्तु वस्तुस्थिति इसके विरुद्ध है। ''मुसलमानी भाषाओं में सबसे कम तुर्की शब्द हिन्दी आदि भाषाओं में आए हैं। इसके बाद अरबी और सबसे अधिक फारसी शब्द''– (पं0 अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी), ''क्योंकि शासकों की राजभाषा स्वयं तुर्कों न होकर फारसी थी। वे स्वयं जातीय एवं सांस्कृतिक पराधीनता से संत्रस्त थे।''– (सैयद एहतिशाम हुसैन)। डॉ0 रामविलास शर्मा ने मुसलमान बादशाहों, सूफी संतो और उर्दू के पुराने कवियों के अनेक उद्धरण एवं प्रमाण देते हुए यह स्पष्ट किया है कि ''फारसी न मुसलमानों की बोलचाल की भाषा थी, न हिन्दुओं की। उसे हिन्दू भी सीखते थे और मुसलमान भी, किन्तु इस बात में संदेह की जरा भी गुंजाइश नहीं है कि दिल्ली के आम मुसलमानों की भाषा हिन्दी थी।'' अमीर खुसरो तुर्क थे, उनकी सांस्कृतिक भाषा फारसी थी, पर हिन्दुस्तानी होने का उन्हें गर्व था और हिन्दी से उन्हें असीम अनुराग था। उनका कहना है– ''मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ और हिन्दी में जवाब दे सकता हूँ। मेरे पास मिस्र की शकर नहीं है कि अरब की बात करें।'' मसूद ह–सद सलमान ने ''दो दीवान फ़ारसी में और एक दीवान हिंदवी में लिखा था।''[6] ''फरिश्ता'' के अनुसार महमूद गज़नवी के समय में भी हिन्दी कविता रची जाती थी। खुसरो के अलावा उस समय जिन और लेखकों ने फ़ारसी में ग्रंथ लिखे हैं, उन्होंने भी हिन्दी शब्दों का प्रयोग किया है। यह स्वाभाविक था क्योंकि जो गैर–ईरानी मुसलमान फ़ारसी सीखते थे। वे उसे भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही सीखते थे यदि आम मुसलमानों में आपस के व्यवहार के लिए फ़ारसी भाषा का प्रयोग होता, तो उसे सीखने के लिए किसी भारतीय भाषा के सहारे की जरूरत न थी।

इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी के आधर के रूप में बोलचाल की खड़ीबोली उर्दू की भी मूलाधार बनी। 'वर्जे–इस्तला' (परिभाषा–निर्माण) में प्रो0 मौलवी वहीदुद्दीन साहब ''सलीम'' ने लिखा है– ''...हिन्दी को हम अपनी ज़बान के लिए उमुल्लिसान (भाषा की जननी) और हमूलाए–अव्वल (मूलतत्त्व) कह सकते हैं। इसके बगैर हमारी ज़बान की कोई हस्ती नहीं है।''[7] क्या इस हिन्दी में फारसी के कुछ या अधिक शब्दों के अंतर्भुक्त हो जाने मात्र से ही नई भाषा का आविर्भाव हो जाता है? बंगाल में भी तो फ़ारसी कुछ समय क लिए राजभाषा बनी। बंगाली भाषा में फ़ारसी के कई शब्द शामिल हुए पर इससे क्या बंगाली का कोई दूसरा रूप भी निर्मित हुआ? सिंधी, पंजाबी, कश्मीरी और बंगला साहित्य में मुसलमानों के योगदान से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि भारत के हर भरतीय प्रदेश में मुसलमानों ने वहाँ की भाषा को अपनाया।[8] यहीं नहीं, हिन्दी में अंग्रेजी और पुर्तगाली के अनेक शब्द आए पर उससे कोई नई भाषा का आविर्भाव नहीं हुआ। स्वयं अंग्रेजी, फ़ारसी और रूसी भाषा में कई शब्द आए पर उनका कोई दूसरा नाम नहीं रखा गया। हिन्दी के सन्दर्भ में बहुत पहले जार्ज हैंडले ने इस ओर स्पष्ट संकेत किया है। 18वीं शताब्दी तक हम मुसलमानों की इस बोली को 'हिन्दी', 'हिन्दवी', 'हिन्दुई' नाम से बोधित होता हुआ पाते हैं। अमीर खुसरो से लेकर मीर तक इस भाषा को हिन्दी कहते हैं।

I Un Ò ¼

1. श्यामसुंदर दास : हिन्दी भाषा, (प्रयाग, 1957)
2. बाबूराम सक्सेना : सामान्य भाषा विज्ञान : (प्रयाग, सं0 2010)
3. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास : (प्रयाग 1952)
4. श्यामसुंदर दास : भाषा विज्ञान (प्रयाग, सं0 2010)
5. उदयनारायण तिवारी : हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास (प्रयाग सं0 2018)
6. बाबूराम सक्सेना : दक्खिनी हिंदी (इलाहाबाद, 1952)
7. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : हिन्दी पर फारसी का प्रभाव, (प्रयाग सं0 2006)
8. रामविलास शर्मा : भाषा और समाज (दिल्ली, 1961)

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 5-8

ekuorkoknh pruk d fprj dfo % dqoj ukjk;.k

/keUnz dqekj flag*

कुँवर नारायण अज्ञेय द्वारा सम्पादित तीसरा सप्तक (1959) के प्रमुख कवियों में रहे हैं, उन्होंने कविता आंदोलन में भी अपनी रचनात्मकता द्वारा महत्पूर्ण हस्तक्षेप किया तथा अपनी रचनाशीलता में इतिहास और मिथक के जरिए वर्तमान को देखने का प्रत्यत्न किया है। वे मूलतः कवि रहे हैं, उन्होंने कविता के अलावा कहानी, लेख, समीक्षा, सिनेमा, रंगमंच तथा अन्य कलाओं में बखूबी कलम चलाये है। उन्हें सहित्य का सर्वोच्च सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। नई कविता प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का विकासात्मक चरण थी, प्रगतिवाद जहॉ मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित सामाजिक चेतना की बात करता है तो वही प्रयोगवाद व्यक्ति मन और जीवन मूल्यों की बात इस संदर्भ में डॉ0 नगेन्द्र अपने द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि ''नई कविता भारतीय स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं को कहा गया, जिनमे परंपरागत कवियों से आगे नए भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही गए मूल्यों और नए शिल्प–विधनों का अन्वेषण किया गया है।''[1] नई कविता के अधिकांश कवि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में रह चुके थे और इन दोनों ही वादों की परिस्थितियों और विचारों से भलीभांति परिचित थे। किन्तु कुँवर नारायण नई कविता में एक नवीन कवि के रूप में उभर कर आये, वो न केवल स्वयं नए थे अपितु उन्होंने नई कविता में भी नई चेतना के स्वर संप्रेषित किये। वे विविधताओं के कवि हैं। उनके काव्य में जीवन के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति दिखलाई पड़ती है। उन्होंने नई कविता के भावानुरूप जीवन को जीवन के रूप में ही ग्रहण किया, उसकी कोई सीमा रेखा नहीं खींची। उनका काव्य संघर्ष और साहस का द्योतक है। उनका मानना है कि जीवन में संघर्ष सदैव बना रहता है और इस संघर्ष से जूझने के लिए हमें निरंतर साहस की आवश्यकता पड़ती है जो जीवनपर्यन्त संघर्षो के अपना साहस बनाये रहता है। वहीं इस संघर्ष को पार कर पाता है। वे लिखते हैः–

^^dkbZ n%[k eu"; dh lkgl lh cMk ugh
ogh gkjk tk yMk ugh**

वे मानते हैं कि मनुष्य संघर्ष में अकेला होता है। सभी का अपना–अपना संघर्ष है। यदि जीवन में संघर्ष है तो वह कुछ समय के लिए ही हैं, उसके बाद जिंदगी में रोशनी रहती है जैसे तेज आंधी और बारिश के बाद मौसम सापफ और सुहावना हो जाता है। 'वाजश्रवा के बहाने' काव्य संग्रह की भूमिका में वे लिखते हैं कि

''जीवन में संघर्ष भी है, पर संघर्ष ही संघर्ष नहीं है.....। उसमें मार्मिक समझौते और सुलहे भी हैं। इस विवेक को प्रमुख रख कर भी जीवन को सोचा और चित्रित किया जा सकता है। संघर्ष और हिंसा अतिवाद में हैं न कि विभिन्नताओं में।''[2]

कुँवर नारायण मुनष्य के इस संघर्ष को अपनी कविता 'सम्मेदनी की लड़ाई में बड़ी ही मार्मिकता से चित्रित करते हैं। जहॉ 'सम्मेदनी' एक आम मनुष्य का बिम्ब बन कर सामने आता है जो समाज में फैले भ्रष्टाचार, विद्रूपताओं तथा विसंगतियों से पीड़ित हैः–

^^[kcj gS fd
Hk"Vkpkj dh fo:)

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार

fcydy vdyk yM jgk g ,d ;)
djkgk xko dk [kCrh lEenhu
tYnh gh og ekjk tk,xk
flQ mldk mtkyk yMxk
v/kjk d f[kykQ --------
[kcj jg fdl&fdl d f[kykQ yMr g, ekjk x;k
fugR;k lEenhuA**3 ¼lEenhu dh yMkbZ½

कुँवर नारायण मानते हैं कि हम कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी सही बात चुन सकते हैं, सही फैसले ले सकते हैं, यदि हम उम्मीद और रोशनी का दामन थामें रहें। इनकी कविता संग्रह 'कोई दूसरा नहीं' में संकलित कविता 'स्पष्टीकरण' में देख सकते हैं। वे लिखते हैं :–

^^xyr l xyr oDr e Hkh
lgh l lgh ckr dgh tk ldrh gA**4

उनका मानना है कि मनुष्य सत्य का अन्वेषी होता है। वे मनुष्यता पर अधिक बल देते हैं। वे चाहते हैं कि मनुष्य हमेशा सत्य का ही अनुसरण करे चाहे फिर परिस्थितियाँ कैसी भी क्यों न हो? उनका मानना है कि झूठ एक वक्त तक ही चिल्ला सकता है परन्तु जीत अन्ततः सतय की ही होती है जो खामोशी से ही सही किन्तु हमेशा अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। 'बिजूका' शीर्षक कविता में वे इस संदर्भ में संकेत करते हुए लिखते हैं–

^^Mjk er
vxj re lp dg jg gk
rk re ,d vkQr ugh
,d lPph rkdr gkA**5 ¼fot dk½

कुँवर नारायण अपनी कविताओं में से ज्यादा बल यदि किसी मूल्य पर देते हैं तो वह मनुष्यता है। यह मनुष्यता उनकी रचना के मूल में है। वे मनुष्य को मनुष्यता का पाठ सिखाते हुए यह कहते हैं कि–

^^re tk cnnh l gR;k,a dj ldr gk
D;k fdlh dk fny Hkh thr ldr gk\
vxj ^gk* rk re gR;kj ugh gk ldr
vxj *ugh* rk re vkneh ugh gk ldr!**6

(क्या फर्क पड़ता है।)

कुँवर नारायण मानते हैं कि मनुष्य ही परिस्थितियों का निर्माता है। तो परिस्थितियों का हल भी उसी के पास है। वे 'उत्तरदायित्व' शीर्षक कविता में कहते हैं कि इन परिस्थितियों को बदलने कोई और नहीं आयेगा। इसलिए मनुष्य को ही उन्हें बदलने के लिए स्वयं पर उत्तरदायित्व लेना चाहिए। वे लिखते हैं–

^^e b'oj gkrk rk
eDr dj yrk viu dk
;g dgdj fd fl)kUrr%
e viuh jpukvk l ij gA
yfdu e eu"; gA
Hkkx ugh ldrk ,d eu"; gku dh ftEenkfj;k l**7

वे मानवता में विश्वास करते हुए वे इस जगत में मानव प्रेम को ही सर्वोपरि मानते हैं। संकटग्रस्त समय के लिए, समाज में फैली कठिन परिस्थितियों के लिए कुँवर नारायण मुनष्य को ही जिम्मेदार मानते हुए 'उत्तरदायित्व' शीर्षक कविता में लिखते हैं कि–

^^tk Hkh jpk g: eu:
m lh dk fgLl k g:
ijh rjg ek:t:n g: mle:
e:j: vUrfo:jk/k vkj e:jk vUr% dj.k
gj rjg mÙkjnk;h gA
viuh jph nfu;k d: fy,
vdkr g: mu reke dfe;k: vkj vfr;k: dh
fuj:rj vfot kgh l:A
ftud: fy, NV x;h g: x:tkb'k:
e:j: vKku ;k e:jh ykijokgh l:A**8

(उत्तरदायित्व)

कुँवर नारायण की कविताओं में अदम्यता और जीवंतता से भरपूर है। एक ऐसी जिजीविषा देखने को मिलती है कि जो परिस्थितिवश हारे समाज को उम्मीद की एक किरण दिखाती है। यह जीवंतता ही आज हमारे समाज की सबसे बड़ी अवश्यकता है। आज हम प्रत्येक मनुष्य के चेहरे पर निराशा और दुख की छाया देखते हैं। तो हमें अनायास ही इनकी कविताएँ याद आने लगती हैं। निराशा से भरे इस संसार में आशा की एक किरण है कुँवर जी की कविताएँ। ऐसी आशा जो विपरीत परिस्थितियों में भी मनुष्य को जीने के लिए प्रेरित करती है। समाज में व्याप्त खामोशी और निराशा को कवि ने बहुत बारीकी से पकड़ा है–

^^fdruk [kkek'k g: e:j: dN vkl&ikl
fdruh c:[okc g: lkjh ph t: mnkl**9

कवि जीवन में खामोशी नहीं हलचल चाहता है, एक चहल–पहल चाहता है। एक ऐसी हलचल जो जीवन की कुठांओं को बाहर निकालकर जीवन को सकारात्मकता से भर दें। वे लिखते हैं–

^^bu e:jnk egyk: dh feukj: fgy tk;:A
bu jkxh [;ky: dh lhek,: /k:y tk;:
vUnj l: ckgj vk lkfn;k: dh d:Bk,¡
cg:r cM: thou dh gypy l: fey tk;:A**10

कुँवर नारायण आधुनिक समाज में रिश्तों के बदलते मायनों को भी भली प्रकार देख पा रहे हैं। स्वार्थ और सपने व्यक्तिगत सुखों के कारण रिश्तों को ताक पर रखने वाले इस समाज को आगाह करना चाहते हैं। आज संबंधों में जो अजनबीपन आया है, कवि उससे डर रहा है–

^^dHkh yxrk g: [kk: x;k g:
vkj ftud: ch:p e:jh o:nuk Mk:yh vlgk; viu: ugh:A**11

कुँवर नारायण की कविताएँ सीधे आत्मा से संवाद करती हैं। भविनाओं के अतल में पहुँचकर जीवन का उत्सव रचती है। प्रेम की विशाल दुनिया का रोमांचक दृश्य तैयार करना जैसे कुँवर जी के लिए सरल है। वह समय और समाज की पीड़ा में धुली हुई वेदना और खुशी दोनों को ही अभिव्यक्ति देते हैं। कुँवर जी मानवता के कवि हैं मानवीय पीड़ा उनकी कविताओं का स्थायी भाव हैं। सामयिक कविता के संवेदनशील कवि एवं आलोचक पंकज चतुर्वेदी उनकी कविताओं में छिपी हुई आंतरिक चेतना को यूँ परिभाषित करते हैं– ''उनकी कविता में निरी समकालीनता और सामाजिकता की अविचारित वाचालता चमक–दमक या आतंक नहीं है। वह मनुष्य की आत्मा, मनुष्य और प्रकृति, मनुष्य और सत्ता, मनुष्य और समाज, मनुष्य और इतिहास–यानी प्रकट–अप्रकट सभी तरह के संबंधों और सच्चाइयों की पड़ताल में प्रवृत होती है।''12

कुँवर जी की कविता मुझे इसलिए भी प्रिय है क्योंकि वह अपने लिए नहीं बल्कि जनहित के लिए है। वह अपने अंतिम क्षण तक परोपकार की भावना को जीते हुए जीवित रहना चाहते हैं। उनकी कविताएँ मनुष्य और मनुष्यता के बीच कड़ी का काम करती हैं। उनकी कतिवताएँ मानव जीवन के विशाल

पटल पर जीवन उत्सव का कोलाज बनाती है। पीड़ाओं की तासीर को कम करती है एवं हँसने–मुस्कुराने के कुछ पल मुहैया कराती है। उनकी कविताओं में जीवन के विविध रंगो की झलक मिलती है। उनकी कवितओं में सामाजिक सरोकार जीवनानुभूतियाँ सभी भाव–अनुभूतियॉ कोमल, सरल एवं सहज भाषा में मुखारित किया है कि वे हमें आत्मीय मालूम होने लगते हैं। मानवीय संवेदना का हर पहलू उनकी कविताओं में हमें प्राप्त होता है। उनकी कविता में मौजूद संवेदनात्मकता का यह भाव कोरा और स्थूल नहीं बल्कि सूक्ष्य भविनाओं से भरभूर है। इसलिए वह आज भी हमें प्रासंगिक लगता हैं। एवं मानवतावादी चेतना के चितेरे कवित कहे जा सकते हैं।

I UnHk%

1. डॉ0 नगेन्द्र (सम्पादक), हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स 2015, पृष्ठ सं0–612
2. कुँवर नारायण, बाजश्रवा के बहाने, भारतीय ज्ञानपीठ, 2008, पृष्ठ–8 (भूमिका से)
3. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, राजकमल प्रकाशन 1993, पृष्ठ सं0–18
4. वहीं पृष्ठ सं0–157
5. कई समयों में, सम्पादन दिनेश कुमार शुक्ल, यतीद्र मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ 2012 पृष्ठ संख्या–41
6. कई समयों में, ;कुंवर नारायण संचयनद्ध, सम्पादन–दिनेश शुक्ल यतीद्र मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ 2012, पृष्ठ–39
7. वही, पृष्ठ–43
8. वही, पृष्ठ–43
9. तीसरा सप्तक, पृष्ठ–160
10. वही सप्तक, पृष्ठ–161
11. वही सप्तक, पृष्ठ–173
12. जनसत्ता, 3 मई 2015

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 9-13

jkek;.kdkj okYehfd d 'oipRo dk fujkdj.k

MkO liuk fl g*

वर्तमान समय में महर्षि वाल्मीकि को लेकर अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ समाज में प्रचलित हैं। भ्रान्तियों का कोई अन्त नहीं होता किन्तु शास्त्रीय प्रमाणों के द्वारा उनका निराकरण किया जा सकता है। भ्रान्तियों में कुछ ऐसी विलक्षण शक्ति होती है जिससे सत्यवस्तु को विकृत रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि सत्य असत्य के समान एवं अयथार्थ–यथार्थ के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। जैसे अन्धकार में रस्सी में सर्प की भ्रान्ति हो जाने पर यथार्थ वस्तु रज्जु आवृत्त हो जाती है और भ्रमात्मक सर्प यथार्थ होकर भय का कारण बन जाता है– ''रज्जौमथाहेर्भ्रमः''। यद्यपि सर्प की भ्रमात्मक प्रतीति से रज्जु में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता, तथापि मिथ्या सर्प के भ्रम से मनुष्य भयाक्रान्त तो हो ही जाता है।

महर्षि वाल्मीकि का यथार्थ परिचय भी विविध भ्रान्तियों से आवृत्त हो गया है। आजकल देखा जाता है कि हिन्दू समाज में अनुसूचित जाति के अन्तर्गत आने वाले श्वपच जाति के लोग रामायणकार महर्षि वाल्मीकि को अपना पूर्वज मानकर अपने को वाल्मीकि का वंशज कहते हैं और आदिकवि वाल्मीकि को श्वपच मानते हैं। वाल्मीकि जयन्ती के अवसर पर जो प्रायः श्वपचों के द्वारा आयोजित होती है, यह कहा जाता है कि आदिकवि वाल्मीकि श्वपच जाति के थे उन्होंने रामायण की रचना की है, हो सकता है कि श्वपच जाति के कोई वाल्मीकि नामक सन्त रहे हों, जो अपने त्याग और तपस्या के कारण श्रेष्ठ सन्त के रूप में समाज में सम्मानित एवं प्रतिष्ठित हुये हों। वस्तुतः आदिकवि रामायणकार महर्षि वाल्मीकि निःसन्देह श्वपच वाल्मीकि से भिन्न हैं, उनको भ्रान्तिवश श्वपच मानना सर्वथा निराधार है। स्वामी करपात्री जी की मान्यता है कि ''श्वपच वाल्मीकि कोई अन्य ही वाल्मीकि हुये है''।[1]

वाल्मीकि रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम से स्वयं अपना परिचय देते हुये कहा है कि मैं वरूण का दशम पुत्र हूँ।

pprk lks·g n'kes% iq=k jk?kou Unu A[2]

सीता के पुत्र लव–कुश ने भी राम से कहा कि भृगुवंशी ब्राह्मण महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना की है।

lfuc) fg 'yksdkuk prfo'kRlgL=dea
mik[;ku 'krp o Hkkxo.k egkReukA A[3]

श्री राम ने स्वयं महर्षि वाल्मीकि को ब्राह्मण कहकर सम्बोधित किया है और कहा है कि आपके विशुद्ध वचनों से मुझे सीता की पवित्रता पर पूर्ण विश्वास हो गया है।

,oe rUegkHkkx ;Fkkonfl /ke for
iR;;Lr ee cãu rookD;jdYe"k%A[4]

विष्णु पुराण में वाल्मीकि को भृगुवंशी ब्राह्मण कहा गया है।

_{kk·HkRHkkxoLrLekn okYehfd;k·fHk/kr A[5]

वाल्मीकि का एक नाम ऋक्ष भी था। रामायण के भूषण टीकाकार गोविन्दराज ने अपनी टीका की प्रस्तावना में लिखा है कि कोई प्रचेता नामक भृगुवंशी ब्राह्मण था, वाल्मीकि उसी के ऋक्ष नामक पुत्र थे–

*प्राचार्या, श्रीपाल सिंह स्मारक महिला महाविद्यालय, गारवपुर, लम्भुआ, सुलतानपुर

^^;}k Hkxoa';% df'pr~ izpsrk uke] rL;k;a izFke% _{kkuke**[6]

इसी अध्याय के तृतीय बिन्दु के रूप में वाल्मीकि की वंश परम्परा का अध्ययन करते समय अनेक मान्य प्रमाणों द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि रामायणकार वाल्मीकि भृगुवंशी ब्राह्मण थे, अतः उनके श्वपचत्व का निराकरण स्वतः हो जाता है। रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महर्षि भरद्वाज वाल्मीकि के प्रधान शिष्य थे, चूँकि भरद्वाज ब्राह्मण थे अतः उनके गुरू वाल्मीकि का ब्राह्मण होना स्वतः सिद्ध होता है।

,oeDrk Hkj}kt% okYehdsu egkReukA
izk;PNr euqLrL; oDdy fu;rkxjk%AA[7]

रामायण 7/49/15, भागवत पुराण 9/11/10, रघुवंश महाकाव्य 14/58 और उत्तररामचरित द्वितीय अंक के अनुसार राम से परित्यक्त सीता ने महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में निवास किया था। अग्नि–पुराण का भी कथन है कि लोकापवाद से परित्यक्त सीता ने महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में निवास किया था। अग्नि पुराण का भी कथन है कि लोकापवाद से परित्यक्त सीता के लव–कुश पुत्र वाल्मीकि आश्रम में उत्पन्न हुये थे।

^^i=k% d'kyok tkrk okYehdjkJes ojk**
^^ykdkiokn nR;Drk;k Kkrk lqpfjrJok r**[8]

आनन्द रामायण आदिकवि वाल्मीकि की कृति है– उसमें भी उल्लेख मिलता है कि लव–कुश वाल्मीकि आश्रम में जन्मे थे और महर्षि वाल्मीकि ने उनके वैदिक संस्कार करके उन्हें वेद, शास्त्रों की शिक्षा के साथ शस्त्रास्त्र का भी प्रशिक्षण दिया था। लव–कुश की शस्त्र विद्या ने सबको आश्चर्यचकित किया था। महर्षि ने ज्येष्ठ पुत्र का नाम कुश तथा छोटे पुत्र का नाम लव रखा था।

okYehdks pukR lkfo f'k'k% txkg tkudhA
efuLr;kuqepØ d'kkT;a"Bk·u tk yo%A
tkrdekfn lLdkjku yoL;kfi pdkj l%A
/kuqfo|keL=fo|k f'k{kekek l rk efu%AA[9]

यहाँ पर विचारणीय बिन्दु यह है कि यदि वाल्मीकि श्वपच होते तो वर्णव्यवस्था के उस प्रधान युग में सीता श्वपच के आश्रम में कैसे रह सकती थी? तथा तत्कालीन व्यवस्था के अनुसार कोई श्वपच क्षत्रिय कुमारों का गुरू होकर उनके उपनयन, वेदारम्भ आदि वैदिक संस्कार कैसे सम्पन्न कर सकता था? मनुस्मृति के अनुसार पूर्वकाल में वेद पढ़ाने का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही प्राप्त था। ब्राह्मणेतर को अध्यापन का अधिकार नहीं था।

fo|k ckã.keR;g 'kof/kLr·fLe j{kekeA
v;a ldke ek eknkLrFkkLek oh;ksRrekAA[10]

कुलूकभट्ट ने मनुस्मृति की टीका में ''छान्दोग्य ब्राह्मण'' का वह वाक्य भी उद्धृत किया है कि जिसके अनुसार वेदाध्यापन में ब्राह्मण का अधिकार प्रमाणित होता है–

^^fo|k g o ckã.k ekt xke rokgefLe] Ro ek
^^iky;kug;a ekfuu pso eknk% xkik; ek J; lh rokgefLe**A

महाभारत में वर्णधर्म का निर्धारण करते हुये क्षत्रिय को भी वेद पढ़ाने तथा आचार्य बनकर यज्ञ कराने का निषेध प्राप्त होता है–

n|kr jktu u ;kpr ;t up ;kter A
uk/;k;Hkn/kh;hr itk'p ifjiky;sr A[11]

ऐसी स्थिति में जब वेदज्ञ क्षत्रिय भी वेद पढ़ाने का अधिकारी नहीं है तब उस धर्म प्रधान त्रेतायुग में कोई श्वपच लव–कुश को वेदों का अध्यापन नहीं करा सकता था। चूँकि रामायण के अनुसार लव–कुश वेदज्ञान में परम प्रवीण थे, अतः वेदज्ञान के विस्तार के लिये वेदों के तात्पर्य बोध के लिये प्राचेतस वाल्मीकि ने रामायण की रचना करके उसे लव–कुश को पढ़ाया था।

अस्तु वाल्मीकि के द्वारा व्याकरणादि अंगों के सहित वेदाध्यापन करने से उनका ब्राह्मणत्व प्रमाणित होता है। इसी प्रसंग के तारतम्य में कहा गया है कि जिस वाल्मीकि ने लव–कुश को वेदाध्ययनपूर्वक रामायण पढ़ाया है उसी ने रामायण महाकाव्य की रचना की है। अतः ब्राह्मण वाल्मीकि द्वारा रामायण की रचना होने से श्वपच वाल्मीकि के रामायणकार होने का खण्डन स्वतः हो जाता है।

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।

ikyLR;o/k fuR;o pdkj pfjr o.kA[12]

आनन्द रामायण में श्रीराम वाल्मीकि को ब्राह्मण कहकर सम्बोधित करते हैं तथा उनसे सीता परित्याग के लिये क्षमा याचना करते हैं।

l;s ykdHk;kn cãUuikikfi lrhi;kA
lhrke;k ifjR;Drk rnHkoku {kUrO;egfrAA[13]

वस्तुतः महर्षि वाल्मीकि को रामायण, तथा पुराण ग्रन्थों में मन्त्रदृष्टा महर्षि माना गया है। वैदिक मन्त्रों की उपासना करके मन्त्रगत देवताओं का साक्षात् करने वाले साधक को ऋषि या महर्षि कहा जाता है– ''ऋषियों मन्त्र दृष्टारः''। महाभाष्यकार पंतजलि ने ऋषियों की परिभाषा देते हुये कहा है कि वेद–स्मृति प्रतिपादित योगाभ्यास के द्वारा मन्त्रशक्ति का साक्षात्कार करने वाले, परा ब्रह्मविद्या एवं अपरा व्याकरण, दर्शन आदि लौकिक विद्या में पारंगत, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि दैवी संपत् से विभूषित, ज्ञेय वस्तु परब्रह्म के सच्चिदानन्द स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाले महापुरूष ऋषि कहे जाते है।

;ok.kLrok.kka uke _"k;k cHko% iRk;{k /kek.kkA
ijKk% fofnr ofnr0;k% vf/kxr ;kFkkrF;kAA[14]

निष्कर्ष यह है कि गायत्री जप उपवास तथा संयम–नियम के साथ शास्त्रोक्त कर्म करने वाले एवं जितेन्द्रिय होकर निरन्तर आत्मानुसन्धान करने वाले तपोनिष्ठ महात्मा ही ऋषि पदवी को प्राप्त करते है।

tkiokl fu;e dsi/;kujr% lnkA
nkUr% {kek fuLi`n'p rikfu"B% l mP;rAA[15]

मन्त्रदृष्टा ऋषि आर्ष–प्रतिभा से सम्पन्न होकर दिव्य दृष्टि को प्राप्त कर लेता है जिससे उसे तीनों कालों की घटनाओं का साक्षात्कार हो जाता है। जिस महर्षि को आत्मा का निर्मल प्रकाश प्राप्त हो जाता है, तथा अज्ञान के आवरण से जिसका अन्तःकरण मुक्त हो जाता है, उसको भूतकालीन तथा भविष्यकालीन घटनायें वर्तमान काल की भांति दृष्टि गोचर होने लगती हैं। आचार्य भर्तृहरि के अनुसार अतीत और अनागत का ज्ञान ही दिव्यदृष्टि का परिचायक है–

vkfoHkkZrk`dk'kukeq ily`r p`rkeA
vrhrkukxrKku iR;{kkiUu fof'k";rAA[16]

महर्षि वाल्मीकि भी दिव्यदृष्टि से सम्पन्न थे। उन्होंने श्रीराम से सीता के विशुद्ध सतीत्व को प्रमाणित करते हुये कहा था कि मैंने अपनी दिव्यदृष्टि से सीता के आन्तरिक भावों एवं उनके निर्मल चरित्र का परीक्षण करके ही उनको अपने आश्रम में निवास दिया था–

rLekfn;s ujojkRet 'k)HkkokA
fn0;u nf"Vfo"ke.k e;kifo"VkAA[17]

यह दिव्यदृष्टि ही वाल्मीकि के मन्त्रदृष्टा होने का परम प्रमाण है। ब्रह्माजी ने वाल्मीकि को आर्ष–प्रतिभा से सम्पन्न जानकर ऋषिवर शब्द से उनको सम्बोधित करते हुये रामकथा लिखने का आदेश दिया था।

मन्त्रदृष्टा ऋषि की वाणी से सत्य ही निकलता है, असत्य उसकी वाणी का स्पर्श भी नहीं कर सकता। यही कारण है कि ब्रह्मा ने वाल्मीकि से कहा था कि तुम्हारी वाणी से किसी भी स्थिति में असत्य नहीं निकलेगा तथा राम–लक्ष्मण एवं सीता के चरित्र का जो भी गुप्त रहस्य है, जो अविदित भी है वह सब तुमको विदित हो जायेगा। ब्रह्मा के इस कथन से भी वाल्मीकि का मन्त्रदृष्टा स्वरूप प्रमाणित होता है।

rPpkI; fofnr lo fofnr r Hkfo";frA
u r okxur dkO; dkfpn= Hkfo";frAA[18]

वस्तुतः वेदों से जानने योग्य भगवान् श्रीराम् के दशरथ के पुत्र रूप में उत्पन्न होने पर स्वयं वेद ही वाल्मीकि के मुख से रामायण के रूप में साक्षात् प्रकट हुये थे। अस्तु रामायण कोई साधारण महाकाव्य नहीं है अपितु वेदों का रूपान्तर है।

onoj ij ifl tkr n'kjFkkRet A
on% ikpr lknk lhR lk{kkRjkek; .kkReukAA[19]

इससे बढ़कर वाल्मीकि के मन्त्रदृष्टा होने का प्रमाण और क्या हो सकता है ? अग्नि पुराण के अनुसार इस मन्वन्तर के अट्ठाइसवें व्यास कृष्ण द्वैपायन ने पुराणों की रचना एवं वेदों का विस्तार करने से पूर्व महर्षि वाल्मीकि से पुराणों का सूत्र पूंछा था। महर्षि वाल्मीकि ने मौन धारण कर वाग्देवी का स्मरण करके अज्ञान निवारक निर्मल ज्ञान प्राप्त करके पुराणों का सिद्धान्त सूत्ररूप में कृष्ण द्वैपायन व्यास को बतलाया था–

0;k l% ijk.k l=s p ipN okfYed ;nkA
ekuhHkr% l lLekj Roke txnfEcdkeAA
ijk.k l=s JRok l 0;k l% d".k dyknHko%A
Rok fl"ko p n/;kp 'kro"k p i"dj AA[20]

इससे भी स्पष्ट होता है कि वाल्मीकि अपने युग के पुराणाचार्य भी थे।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आदिकवि रामायणकार वाल्मीकि वेद–वेदांग तथा पुराणेतिहास के पारंगत विद्वान थे। वे आदि कवि होने से पूर्व उच्च कोटि के तपस्वी एवं मन्त्रदृष्टा महर्षि भी थे। उन्होंने नैमिषारण्य में श्रीराम द्वारा आयोजित यज्ञस्थल में उपस्थित होकर श्रीराम से अपना परिचय देते हुये कहा था कि मैं वरूण का दशम पुत्र हूँ, मैंने कभी असत्यभाषण नहीं किया, मैं सत्य कह रहा हूँ कि ये दोनों लव–कुश आपके पुत्र हैं–

ipr lk·g n'ke% ik=k jk?kou unuA
u Lejkeh;u r okD;fek r ro ik=k dkAA[21]

वाल्मीकि द्वारा स्वयं अपने मुख्य से दिया गया आत्मपरिचय सर्वाधिक प्रामाणिक है। वाल्मीकि ने अपने तपस्वी जीवन का परिचय देते हुए कहा था कि मैंने अनेक सहस्त्र वर्षों तक कठिन तपस्या की है, यदि सीता में कोई दोष हो तो मुझे मेरे तप का फल प्राप्त न हो।

महर्षि वाल्मीकि का जीवन परम पवित्र होने से विशुद्ध था। उन्होंने मन से, वाणी से, तथा कर्म से कोई पाप या निन्दनीय आचरण नहीं किया। वे सीता–शपथ के अवसर पर अपने जीवन की विशुद्धता को प्रमाणित करते हुए कहते हैं कि यदि मेरा जीवन निष्कल्मष हो, दोषरहित हो तो मुझे अपने पुण्य कर्म का फल प्राप्त हो–

eu lk de.kk okpk Hkr rio u fdfYo"keA
rL;kg Qye'ukfe vikik ;fn eSfFkyhAA[22]

रामायणकार के रूप में वाल्मीकि का परिचय देते हुये लव–कुश ने श्रीराम से कहा था कि जिस रामायण महाकाव्य के द्वारा आपके सम्पूर्ण चरित्र को प्रकाशित किया गया है उसके कर्ता महर्षि वाल्मीकि हैं, उन्होंने चौबीस हजार श्लोकों तथा एक सौ उपाख्यानों में सम्पूर्ण रामायण महाकाव्य की रचना की है।

अस्तु विभिन्न प्रमाणों के आधार पर यह सत्य आविर्भूत होता है कि रामायणकार वाल्मीकि श्वपच जाति के नहीं थे अपितु सदाचार सम्पन्न ब्राह्मण थे। दूसरी बात यह कि श्वपच जाति के वाल्मीकि किसी भी प्रमाण के आधार पर रामायणकार नहीं थे।

lUnHkZ %

1. करपात्री स्वामी– रामायण मीमांसा–अध्याय 3 पृष्ठ 76
2. वा0रामा0 7/96/19
3. वा0रामा0 7/94/26
4. वही0 7/76/2
5. वि0पु0 3/3/18
6. भूषण टीका
7. वा0राम0 1/2/7
8. अग्निपुराण –11/10
9. आ0रामा0 जन्म0 4/76/से 79 तक
10. मनु0 2/114
11. म0भा0 शान्ति 60/14
12. वा0रामा0 1/4/7
13. आ0रामा0 जन्म0 8/43
14. म0भा0 1/2
15. शुक्रनीति – 2/177
16. वाक्यपदीय–1/17
17. वा0रामा0 7/96/24
18. वा0रामा0 1/2/35
19. मन्त्र रामायण
20. अ0पु0 3/5/23–25
21. वा0रामा0 7/96/19
22. वही 7/96/21

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 14-16

Hkkjrh; ifjokj&lajpuk d Hkhrj dldrs L=h&Lolu % nD[ke&lqD[ke!

fn0;k ;kno*

हिंदी उपन्यासकारों में ममता कालिया बिना किसी शोर–शराबे व विमर्शवादी जोशोखरोश के अपनी सादगी में भाषा और कथ्य दोनों स्तरों पर यथार्थ को उसकी पूरी प्रमाणिकता में पकड़ने वाली लेखिका हैं। बिना लब्बो–लुआब के कथा में बाँधकर यथार्थ को चित्रित कर सकने वाली पठनीय कथाकार के तौर पर ममता कालिया की पहचान है। ममता कालिया ने हालांकि बेघर (1971), नकर–दर–नरक (1975), एक पत्नी के नोट्स (1997), दौड़ (2000) तथा अँधेरे का ताला (2009) जैसे उपन्यासों से अपने कथा–लेखन की शुरुआत किया, जिसमें वे आजादी के बाद के बदलते सामाजिक रिश्तों तथा शहरी मध्यवर्ग के रुप में उभरते नवशिक्षित–नवधनाढ्य वर्ग की चेतना को केंद्र में लिया हैं, शायद इसीलिए ममता कालिया की छवि एक उपन्यासकार के तौर पर शहरी मध्यवर्गीय चेतना के उपन्यासकार की है। हालांकि 'दुक्खम–सुक्खम' (2009) में उन्होंने अपनी यह छवि तोड़ी है। नन्द किशोर नवल ने तो 'दुक्खम–सुक्खम्' पर लिखते हुए ममता कालिया को प्रेमचंद की परपंरा से बड़ी गंभीरता से जोड़ा है –

''हिंदी की समकालीन कथाकार ममता कालिया को पूरी गंभीरता से प्रेमचंद की परम्परा की लेखिका मानना चाहिए। इस बात की जोरदार पुष्टि उनके नवीनतम् उपन्यास 'दुक्खम–सुक्खम' से होती है।'' (निम्नमध्यवर्गीय जीवन का बोलता हुआ चित्र, नन्द किशोर नवल)

'दुक्खम–सुक्खम' मथुरा के लाला नत्थीमल के परिवार की कहानी है, जिसमें तीन पीढ़ियों की स्त्रियों का जीवन–संघर्ष, परिवार–जीवन के भीतर उनके अन्तर्द्वन्द्व उभरे हैं। इनमें विद्यावती केंद्रीय चरित्र है जो समय के साथ अपने समाज से बहुत कुछ सीखती है। बदलती है। दूसरी पीढ़ी में नत्थीमल और विद्यावती के इकलौते पुत्र कविमोहन की पत्नी इन्दू है जो भारतीय परिवार संरचना में अन्ततः खप जाती है, जबकि तीसरी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व इन्दू की बेटियाँ–प्रतिभा और मनीषा करती हैं, जिसमें दोनों युवा पीढ़ी के दो अलग–अगल व्यक्तित्वबोध की प्रतीक हैं। जहाँ प्रतिभा परंपराविमुख व्यक्तिवादी अहंवाद के तुष्टिकरण और बाजारवादी चकाचौंध की तरफ जाती है, तो मनीषा अपनी दादी विद्यावती और परंपराओं से जुड़ती है और अपने मूल्य–परंपरा और आधुनिकता के द्वन्द्व के भीतर से गढ़ने का प्रयास करती है। उपन्यास के दो पुरुष पात्र लाला नत्थीमल और कविमोहन दोनों आजादी के पहले और आजादी के आसपास की पीढ़ी के प्रतिनिधि पात्र हैं किन्तु दोनों अपनी–अपनी जकड़नों से मुक्त नहीं हो पाते।

उपन्यास का केंद्रीय सवाल लेखिका ने गाँधी की हत्या की खबर सुनकर विद्यावती की प्रतिक्रिया के माध्यम से उजागर किया है –

''गाँधी बाबा से तो भेंट ही नायँ भयी, नईं मैं बिनसे पूछती लुगाइयों की आजादी के लिए च्यों नईं लड़े तुम। अभी तो आजादी ठीक से मिली भी नायँ।'' (पृष्ठ – 166)

''विद्यावती का जैसे स्वप्न ही टूट गया। उसने सोचना था आजादी आयेगी तो रामराज्य आ जायेगा बल्कि सीताराज्य आ जाएगा। औरत को आदमी की धौंस नहीं सहनी पड़ेगी। वह अपनी मर्जी की मालकिन होगी'' (पृष्ठ – 166)

विद्यावती उपन्यास का केन्द्रीय चरित्र है। उसके व्यक्तित्व में एक ओर परंपरागत सास का ठस एवं पुरुषवादी वर्चस्वबोध है तो दूसरी तरफ गांधी के आंदोलनों के प्रभाव में बाहरी दुनियाँ से जुड़ते चले

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ0प्र0

जाने से आयी आजादी व स्त्री अधिकारों की चेतना। घर में बहू इन्दू के आने पर बाथरुम की माँग पर उसकी त्वरित प्रतिक्रिया है कि – ''उसको कहो हमारे सिर पर मूत ले। हम कहाँ बताएँ कहाँ जाय।'' परन्तु बहू की जिद पर एक काम चलाऊ स्नानागार बन जाने के बाद जब विद्यावती उसमें नहाती है तब उसकी प्रतिक्रिया गौरतलब है – ''जब से मैं पैदा भई, बस आज कायदे से नहाई हूँ। अरे कपड़े पहने–पहने नहाने का क्या मतलब है! कुछ नहीं। मैं कहूँ पूजाघर और चौके से भी जरुरी चीज है नहानघर। कम से कम आदमी एड़ी से चोटी तक सुच्च तो हो जाये।'' (पृष्ठ 39)

एक तरफ विद्यावती अपनी लगातार दूसरी पोती मनीषा की पैदाइश पर दुःखी हो जाती है और लड़की पैदा होने के गम में घर का चूल्हा तक नहीं जलाती, बहू को खरा–खोटा सुनाती है तो वहीं अपने पति नत्थीमल की इस टिप्पणी पर कि ''तुमने क्या कम लाइन लगाई थी छोरियों की'' भिड़ जाती है स्त्री के पक्ष से और कहती है –''हाँ मैं तो दहेज में लायी थी ये छोरियाँ, तुम्हारी कछू नायँ लगैं।'' (पृष्ठ 9)

'दुक्खम–सुक्खम' उपन्यास में विद्यावती अपने व्यक्तित्व में रचनात्मक छलाँग लगाने वाली किरदार है। वह अपने भीतर के पुरुषवाद के साथ–साथ बाहर के स्त्री–दमन व वर्जनाओं के खिलाफ अपना वैचारिक प्रतिरोध दर्ज करती है –

''वह अपनी मर्जी की मालकिन होगी। कोई उसके हाथों किये खर्च पर नाक–भौं नहीं सिकोड़ेगा, कोई उसे बात–बात पर झिड़की नहीं लगायेगा, घर–बाहर हर जगह उसके साथ बराबरी का बर्ताव होगा। यह क्या कि आजादी के छह महीने बीत गये और औरत की जिन्दगी, वही ढाक के तीन पात। गाँधी बाबा को कम से कम औरतों का तो ध्यान रखना चाहिए था, मर्द तो पहले भी कौन कम आजाद थे। चलो समाज को तराजू मान लो और आदमी–औरत को बटखरा। ऐसा कैसे हो रहा है कि आदमी तो तीन छटाँक का भी सवा सेर और औरत सवाया होकर भी पौनी। बच्चों का पासंग बनाओ तभी भी तराजू सतर नहीं होती। औरत की तमाम उम्र ऐसे ही कट जाती है – कभी दुक्खम्, कभी सुक्खम्।'' (पृष्ठ 167)

विद्यावती ने स्त्री के शोषण व दुर्गति के लिए सिर्फ पुरुष को या ससुराल को ही जिम्मेदार नहीं माना है बल्कि वह मानती है कि स्त्री का दमन परिवार के शुरुआती चरण से ही शुरु हो जाता है –

''कहने की बात है कि मायके में सुख मिले, सासरे में दुख। माँ भी कम बैरी नहीं होती। बच्चों में दुभाँत करना बाप का नहीं, माँ का काम दिखता है। बेटों को प्यार, बेटियों को दुतकार। बेटे सारी जमा–पूँजी, जमीन–जायदाद ले जाएँ तब भी प्यारे। बेटियाँ अचार की फाँक पर पलें, तब भी भारी।'' (पृष्ठ 167)

इस प्रकार न केवल विद्यावती का चरित्र बल्कि उसी के माध्यम से पूरा उपन्यास बीसवीं सदी के प्रथमार्ध में हर मनुष्य के अन्दर की जड़ता और जागरुकता के घमासान का चित्र पेश करता है। इस उपन्यास को एक तरफ से अपनी आजादी के लिए लड़ती चार महिलाओं के जीवन का दस्तावेज कहा जा सकता है। नन्द किशोर नवल ने लिखा है कि ''इस उपन्यास की एक बड़ी भारी विशेषता यह है कि यह न लाला नत्थीमल की कहानी है न, विद्यावती की, न इन्दु की और उसकी दो बेटियों – प्रतिभा और मनीषा की। ये सभी अपने चरित्र और व्यवहार से कथा–धारा में उगते और डूबते हैं और बहुत ही मन्द गति से बदलने वाले निम्नमध्यवर्गीय भारतीय समाज की कहानी कहते हैं। जैसे कथा में कोई पात्र प्रधान नहीं है, वैसे ही कोई घटना भी नहीं। बिना किसी सुदृढ़ कथानक के पूरा रोचक उपन्यास लिखना कथाकार की परिपक्वता का सूचक है।''

पुष्पपाल सिंह ने 'दुक्खम–सुक्खम' को ब्रज क्षेत्र के जनजीवन के एक दस्तावेज की तरह माना है –''एक ऐसा दस्तावेज जो प्रायः 60–70 बरस पूर्व के समाज को बड़े चटख रंगों में प्रस्तुत करता है – एक प्रकार से यह बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की–समाज–कथा है। यद्यपि कथा के केन्द्र में मथुरा है, कहीं–कहीं वृन्दावन भी किन्तु यह कथा केवल इस ब्रज क्षेत्र की कथा न रहकर पूरे उत्तर भारत की कस्बाई–संस्कृति को पुनर्जीवित करती है और भारतीय समाज के पिछले 60–70 वर्षों का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करता है। (शोर के विरुद्ध सृजन, संपा0–जितेन्द्र श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन, 2017)

श्रीभगवान सिंह ने 'दरकते रिश्तों की दास्तान' के रुप में उपन्यास का मूल्याकंन करते हुए ममता कालिया के स्त्री विमर्श और राजनीतिक चेतना पर बहुत संतुलित टिप्पणी की है –''ऐसे में हिंदी की सुप्रसिद्ध महिला कथाकार ममता कालिया द्वारा 'दुक्खम–सुक्खम' जैसा उपन्यास लिखा जाना जहाँ एक तरफ विलुप्त होती जा रही कथा–परंपरा का पुनराविष्कार करता है, तो दूसरी तरफ स्त्री विमर्श के नाम पर फैली एकांगिता, विसंगतियों का परिमार्जन करते हुए पूरे सामाजिक ताने–बाने की संरचना में व्याप्त अच्छाइयों एवं बुराइयों से पाठक को रु–ब–रु कराता है।..... एक लिहाज से देखा जाय तो इस उपन्यास में ममता कालिया जैनेन्द्र कुमार जैसे घोषित गाँधीवादी कथाकार की तुलना में ज्यादा गाँधीवादी लेखिका के रुप में पहचान बनाती हैं और आज स्त्री–पुरुष के सम्बंधों में आ रही मूल्य–विहीनता के विरुद्ध एक आवश्यक हस्तक्षेप करती हैं।'' (शोर के विरुद्ध सृजन)

दरअसल राजनीतिक दृष्टि से भी यह उपन्यास अछूता नहीं है। पूरे उपन्यास के घटना क्रम, प्रवाह और बदलाव के बीच गाँधीवाद प्रछन्न रुप से उपस्थित नजर आता है। चरखा, खादी, स्वदेशी, नमक सत्याग्रह से लेकर देश–विभाजन की त्रासदी और गाँधी की हत्या की झलक उपन्यास में मौजूद है। विद्यावती का चरित्र जहाँ गाँधीवाद के संस्पर्श से दीप्त होता है वहीं कवि मोहन और नत्थीमल अपनी–अपनी जकड़बदियों से ग्रस्त हैं। अजय तिवारी और पल्लव जैसे कथा–आलोचकों ने इस उपन्यास को ममता जी के आत्मकथात्मक उपन्यास के रुप में पढ़ने का परिप्रेक्ष्य दिया है। अजय तिवारी ने उपन्यास की पात्र मनीषा को लेखिका का प्रतिरुप माना है तो मनीषा के पिता कवि मोहन को अंशतः लेखिका के चाचा भारतभूषण अग्रवाल के रुप में देखा है। सच्चे अर्थों में यह उपन्यास परिवार जीवन की विसंगतियों को केंद्र में रखकर उसमें स्त्री संघर्ष व जीवन की विसंगतियों को केंद्र में रखकर उसमें स्त्री संघर्ष व जीवन को रचता है। ममता कालिया जी ने स्वयं लिखा है –

''परिवारों का आगामी इतिहास मोह–विहीन इतिहास होगा। यह दोनों ओर से होना होगा, उसी में कल्याण है। एक तरफ से डोरी टूट गयी और दूसरी तरफ आप डोरी पकड़े खड़े हैं प्रतीक्षा में, तो केवल त्रासदी जन्म लेगी।''

(लिखते समय कौन घूँघट निकालता है, दो आब, जून 2007)

lUnHk@ lgk;d xzFk %

1. दुक्खम–सुक्खम, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, छठा संस्करण, 2015
2. शोर के विरुद्ध सृजन, संपा0–जितेन्द्र श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन दिल्ली–2017
3. गालिब छुटी शराब, रविन्द्र कालिया, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पाँचवाँ संस्करण–2019
4. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पहला संस्करण 2010
5. स्त्री एवं सामाजिक प्रसंग : ममता कालिया का कथा – साहित्य, पीटर शागि, वाणी प्रकाशन दिल्ली।
6. ममता कालिया : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ0 फैमिदा बिजापुरे, विनय प्रकाशन, कानपुर, संस्करण (प्रथम) 2004
7. ममता के कथा–साहित्य में नारी–चेतना, डॉ0 सानप शाम, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण – 2010

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 17-20

firlÙkkRed 0;oLFkk d fo#) clrh dk thou&l?k"k

';ke cgknqj*

भीष्म साहनी हिन्दी कथा साहित्य की प्रगतिशील परम्परा के एक सशक्त रचनाकार हैं, जिनकी रचनाओं में भारत के एक वृहद मानव समाज की समस्याओं का चित्रण देखने को मिलता है, जिनमें निम्न और मध्यवर्गीय जीवन की समस्या, स्त्री–मुक्ति की समस्या, सामाजिक कुरीतियाँ, वर्ग–विभाजन, पारिवारिक विघटन, पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण, साम्प्रदायिकता, सामंतवादी और पूँजीवादी मूल्यों में पिसती आम जनमानस की समस्या प्रमुख है। मानव समाज की इन्हीं समस्याओं से सरोकार रखने के कारण भीष्म साहनी को मुंशी प्रेमचन्द और यशपाल की परम्परा का लेखक कहा जाता है। 'बसंती' भीष्म साहनी का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। जिसमें सामाजिक और राजनीतिक अन्तर्विरोध, अनमेल विवाह, दहेज–समस्या, जाति–पाँति, ऊँच–नीच की भावना, निर्धनता, मध्यवर्गीय पाखण्ड, सत्तावर्ग की हृदयहीनता और भावशून्यता के साथ–साथ एक स्त्री 'बसंती' के जीवन–संघर्ष और उसकी जिजीविषा का भी चित्रण किया गया है।

उपन्यास के केन्द्र में निम्नवर्गीय मजदूर हैं जो गाँवों में सूखा, भूखमरी और अकाल से पीड़ित होकर दिल्ली जैसे महानगर में आते हैं और यहीं पर अपनी बस्ती बनाकर रहने लगते हैं। जिसका चित्रण भीष्म साहनी इस प्रकार करते हैं– ''बस्ती क्या थी, दिल्ली की ही एक सड़क के किनारे छोटा–सा राजस्थान बना हुआ था। आजादी के बाद, दिल्ली शहर फैलने लगा था। नई–नई बस्तियों की उसारी होने लगी थी और उन बस्तियों को बनाने के लिए जगह–जगह से राज–मजदूर खिंचे आने लगे थे। दिल्ली से दूर, जहाँ कहीं सूखा पड़ता, या बाढ़ आती, वहीं से लोग उठ–उठकर दिल्ली की ओर भागने लगते। कहीं परिवार–के–परिवार चले आए, कहीं अकेले मर्द, कहीं छोटी उम्र के लौंडे–लड़के भी। कहीं राजस्थान से तो कहीं हरियाणा और पंजाब के गाँवों से, और कहीं तो दूर दक्षिण से भी; पर राज–मजदूरी के काम के लिए सबसे ज्यादा लोग राजस्थान से ही आए। रोजगार की तलाश में, राज–मजदूर ही नहीं, धोबी, नाई, चाय–पान वाले, और भी तरह–तरह के धंधे करने वाले लोग दिल्ली पहुँचने लगे। कहीं नए मकानों की नींवे खोदी जाने लगतीं तो आस–पास के राज–मजदूरों की छोटी–छोटी अनगिनत झोपड़ियाँ खड़ी हो जातीं, लोहा–सीमेंट–ईंट–पत्थर के ढेरों के बीच, इन झोपड़ियों में मोटी–मोटी रोटियाँ सेंकी जाने लगतीं, बच्चे रेत–मिट्टी के ढेरों पर खेलने–सोने लगते, और मजदूरी के काम से निबटकर स्त्रियों की टोलियाँ गाती हुई अपनी–अपनी झोपड़ियों में लौटने लगतीं। गारे–मिट्टी की अधकचरी झोपड़ियों में भी स्निग्धता आ जाती।''[1]

दिल्ली महानगर में बस्ती बस जाने के बाद गाँवों की स्त्रियाँ जो सदियों से सामंती मूल्यों की बेड़ी में जकड़ी हुई थी वे दिल्ली जैसे महानगर में आने के बाद सामंती मूल्यों को खुली चुनौती देती है जो निम्न उद्धरण से स्पष्ट होता है– ''दो–दो पीढ़ियाँ बस्ती में उम्र लाँघने लगीं। ऐसे छोकरे–छोकरियाँ, जिन्होंने राजस्थान की धरती को कभी देखा नहीं था, बस्ती और बस्ती के बाहर रमेश नगर की सड़कों पर घूमती–दौड़ती फिरतीं। लड़कियाँ बिंदी–लिपस्टिक लगातीं, फोटो खिंचवाती और शहर में टेलीविजन आ जाने पर शाम को किसी–न–किसी घर की खिड़की में झाँक–झाँककर टेलीविजन देखतीं। उनकी बस्ती में रेडियो और ट्रांजिस्टरों पर फिल्मी गाने गूँजते। नई पौध को दिल्ली की हवा लगने लगी थी।''[2]

लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था ने भ्रष्ट सरकारी तन्त्र और पुलिस प्रशासन की मदद से मजदूरों द्वारा बसाई बस्ती को उजाड़ दिया जाता है जिससे मजदूरों के साथ–साथ स्त्रियों और बच्चों के सामने

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

आजीविका की समस्या खड़ी हो जाती है। वे अपने सामानों को समेटकर नए आशियाने की तलाश में निकल पड़ते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था की इस असंवेदनशीलता को भीष्म साहनी गंगो चाची के संघर्ष के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं– ''ढलान अब लोगों से खचाखच भरी थी। सभी लोग मर्द और औरतें अपने–अपने टीन–कनस्टर उठाए, मूसलाधार बारिश में, एक–दूसरे से टकराते–उलझते, नीचे उतर रहे थे। अब ऊपर की ओर भी शोर बहुत बढ़ गया था। कोठरियों के बाहर बहुत–सा सामान रखा रह गया था और अब ढलान पर भी लोगों का सामान छूटने लगा था। कहीं पर कोई खाट गिरी पड़ी थी तो कहीं पर कोई घड़ा या छोटे–छोटे डिब्बे। एक बार हाथ से छूट जाने पर भीड़ में उसे दोबारा उठा पाना असंभव था। डिब्बा एक बार गिरकर खुल गया तो उसे समेटने–उठाने का सवाल ही नहीं उठता था। शामो की माँ, गंगो चाची, गोद में बच्चे को उठाए, सिर पर ट्रंकी रखे ढलान पर से उतर रही थी जब पीछे से लोगों को धक्का पड़ा और गंगो चाची औंधे मुँह गिरते–गिरते बची, और ट्रंकी नीचे गिरते ही खुल गई और सभी कपड़े–लत्ते लोगों के कीच–भरे जूतों के नीचे मसले जाने लगे। गंगो चाची बड़ी कठिनाई से अपने बच्चे को सँभाल पाई थी। बच्चे को छाती से लगाए वह चिल्लाए जा रही थी और खुली ट्रंकी में से उसके कपड़े, लोगों के कीच–भरे पाँवों से खिंच–खिंचकर बाहर कीच में रौंदे जा रहे थे। लाल रंग की चुनरी तो देखते–ही–देखते, कीच में लथपथ, गोल गेंद की तरह नीचे लुढ़कती जा रही थी। चाची गंगो बच्चे को छाती से चिपकाए, एक बार टंकी को उठा पाने के लिए लपकी पर पीछे से एक और रेला आया और गंगो चाची को ही धकेलकर नीचे ले गया।''[3]

'बसंती' उपन्यास की प्रमुख पात्र बसंती भी इन्हीं मजदूरों की बस्ती में पली–बढ़ी एक नई पौध थी जो चौदह वर्ष की छोटी सी उम्र में ही विवाह जैसे सामाजिक बंधनों में बाँध दी जाती है। बसंती के पिता चौधरी पैसों के लिए उसका सौदा साठ वर्ष के बूढ़े दर्जी बुलाकीराम से करते हैं। सदियों से पुरुष सत्ता के अधीन रही स्त्री जिसे समाज में अपनी मर्जी से जीने का कोई हक नहीं था तथा वहीं उसके भाग्य का निर्माता भी था। समाज का यह क्रूर सत्य चौधरी और बुलाकीराम के आपसी संवाद में दिखाई पड़ता है– ''बारह सौ होंगे। चाहे तो आज ही ब्याह कर ले।'' दर्जी के चेहरे की ओर इकटक देखते हुए चौधरी ने स्थिर, निश्चेष्ट आवाज में कहा।

''हैं? क्यों भला? आठ सौ पर बात पक्की कर चुका है। छः सौ पेशगी ले भी चुका है। अब बारह सौ कह रहा है? अपनी जबान से मुकर रहा है। यह बात अच्छी नहीं, चौधरी, आदमी को जबान का पक्का होना चाहिए।....''

''बारह सौ होंगे। कहेगा तो आज ही उसके हाथ पीले कर दूँगा? चार सौ पेशगी अभी दे दे, पूरे एक हजार हो जाएँगे, दो सौ, लुगाई घर आ जाने पर दे देना।''

''बारह सौ क्यों? किस बात के बारह सौ? आठ सौ पर तैने जबान की थी।''

''जबान दे चुका हूँ, इसीलिए कह रहा हूँ। चौदह बरस की भी नहीं है छोरी, अब चौदहवें में पैर रखा है। और तेरे जैसे के हाथ दे रहा हूँ। नहीं तो दस आदमी रोज इसके लिए पूछते हैं। अब मंजूर हो तो बोल दे।''[4] बसंती अपने पिता चौधरी द्वारा बुलाकीराम के साथ विवाह का विरोध करती है और कहती है कि वह इस विवाह को कभी स्वीकार नहीं करेगी। वह पूरे समाज को चुनौती देती हुई श्यामा बीबी से कहती है–

''हमारा बापू बेटियाँ बेचता है?'' / ''क्या बक रही है?''

''सच, बीबी जी, मेरी बड़ी बहिन का ब्याह भी गाँव में किसी बूढ़े के साथ कर दिया। उससे आठ सौ रूपये लिए। वह गाँव में बैठी घास छिलती है....''

''तुझे भी तो बूढ़े के साथ ब्याह रहा था?'' श्यामा ने हँसकर कहा।

''मैं बूढ़े लँगड़े के साथ क्यों ब्याह करूँगी, बीबी जी?'' / ''अगर कर दिया तो?''

''करके तो देखे, बीबी जी, मैं उसे करने ही नहीं दूँगी। मैं फिर से चूहे मारने वाली गोलियाँ खा लूँगी, ''और बसंती सिर झटककर हँसने लगी।''[5]

इस तरह स्वछन्द जीवन जीने वाली बसंती बुलाकीराम को छोड़कर अपनी पसंद के लड़के दीनू के साथ भाग जाती है। लेकिन हमारे समाज की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि पुरुष चाहे उच्चवर्ग का हो या निम्न वर्ग का, उसके ह्रदय में स्त्री की भावना के लिए कोई स्थान नहीं होता। वह सिर्फ स्त्री की मानसिक और शारीरिक शोषण करता है। बसंती के साथ भी यही होता है, वह जिस उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करके दीनू के साथ भाग आई थी उसे टूटने में अधिक समय नहीं लगा। दीनू बसंती का शारीरिक शोषण करके उसे गर्भवती करके तीन सौ रूपए में बरडू को बेचकर गाँव चला जाता है। इस तरह पहले पिता के द्वारा बेचे जाने पर, दूसरी बार प्रेमी के हाथों बेची जाने पर उसे काफी दुःख होता है। लेकिन इन सबके बावजूद वह टूटती नहीं है। बल्कि उनके सामने डटकर खड़ी हो जाती है। गाँव से वापस शहर आने के बाद दीनू का विरोध करते हुए कहती है– ''तू भी हरामी, वह भी हरामी। खबरदार जो मेरे बच्चे को हाथ लगाया। बड़ा आया बेचनेवाला। मेरे पेट में अपना बच्चा देकर मुझे बेचने चला था, हरामी, बेशर्म, बदजात!''[6] बसंती की इस बात को सुनकर दीनू उसे मारने की धमकी देता है तो वह गरजती हुई कहती है– ''मैं तेरी आँतें खींच लूँगी, तू समझता क्या है? लगा तो हाथ मुझे।''[7]

बसंती परिवार, प्रेमी और समाज के द्वारा सताए जाने पर भी अपने संघर्ष और जिजीविषा को जिंदा रखे रहती है। उसकी इस जिजीविषा और संघर्ष को देखकर श्यामा बीबी भी हैरान होकर कहती है– ''इस लड़की के अंदर भगवान ने हँसी के कैसे सोते डाल रखे हैं। बात–बात पर इसकी हँसी फूटने लगती है। भगवान ने शरीर तो इसे लड़की का दिया है, पर आत्मा जैसे पक्षी की, तभी यह सारा वक्त फुदकती–चहकती फिरती है। एक मिनट के लिए भी चैन से नहीं बैठ सकती।''[8]

उपन्यास में बसंती का चरित्र एक ऐसा उदात्त ममतामय और संघर्षशील चरित्र है जो बड़ी–से–बड़ी समस्याओं को बड़ी अल्हड़ता और बेफिक्री से टाल देती है। वह श्रम करने वाली स्त्री थी। उसे स्वयं की कमाई पर अटल विश्वास था। वह किसी पर निर्भर रहने वाली स्त्री नहीं थी। जबकि दीनू एक पुरुष होते हुए भी पूरी तरह बसंती पर आश्रित रहता था। दीनू की पहली पत्नी रूक्मो भी बसंती की कमाई पर ही आश्रित थी। जब तक बसंती पैसे नहीं देती थी तब तक घर में चूल्हे नहीं जलते थे। इसीलिए भीष्म साहनी बसंती के चरित्र को एक उदात्त और संघर्षशील चरित्र मानते थे। उसकी संघर्षशीलता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है– ''अभी तक तीनों में से केवल बसंती ही काम करती थी और कुछ कमाकर लाने लगी थी। पहले, तीन घर पंद्रह–पंद्रह रूपये के, और बाद में दो घर और दस–दस रूपये के बसंती ने पकड़ लिए थे। पप्पू को दीनू और रूक्मी के सहारे कोठरी में छोड़ जाती, पर कई बार ऐसा होता कि कुछ घरों को निबटाकर वह भागती हुई घर लौटती तो देखती कि घर में चूल्हा ही नहीं जला है। दीनू घर पर नहीं है, किसी के साथ गप्पे हाँकता निकल गया है, और रूक्मी ने चूल्हा इसलिए नहीं जलाया कि घर में चढ़ाने–बनाने को कुछ था ही नहीं और पप्पू कोठरी की दहलीज के आर–पार रो–रोकर सो गया है। बसंती मन मसोसकर रह जाती। थोड़े–से वक्त में चूल्हा जलाती और खाना बनाती तो दीनू भी पहुँच जाता और रूक्मी भी आकर बैठ जाती। इस पर दीनू हुक्म चलाता, ''सुषमा बीबी ने पगार बढ़ाई है या नहीं? तेरे मुँह में जबान नहीं है? उसे कह नहीं सकती कि हमें पन्द्रह रूपये मंजूर नहीं है? आज उसे कहकर आना।''[9]

बसंती पुरानी सड़ी–गली सामंती मूल्यों के विपरीत आधुनिकता को अपनाने का प्रयास भी कर रही थी। वह बड़े घर की औरतों की तरह टा–टा, बाय–बाय करना, फिल्में देखना और गाने गुनगुनाना, बीड़ी के कश खींचना उसका शौक हो गया था। बाद में उसकी ये इच्छाएँ और आकांक्षाएँ अपने बच्चे पप्पू के ही इर्द–गिर्द सिमटकर रह जाती है। वह बड़े घर के बच्चों की तरह पप्पू के लिए हार्लिक्स के डिब्बे वाला दूध पिलाती, रंग–रंगीले खिलौने लाती। ये सारी चीजें बसंती के लिए खरीद पाना काफी कठिन था फिर भी वह इसे करने में पीछे नहीं हटती थी। उदाहरणार्थ– ''मार्कीट में दर्जी को कुछ कपड़ा लेना था, और बसंती बच्चे के लिए दूध की बोतल लेना चाहती थी। बसंती भी अपने बच्चे को वैसी ही बोतल से दूध पिलाती थी जैसी बोतल से इन घरों में रहने वाली स्त्रियाँ पिलाती थीं। वैसे ही नेपकिन भी बच्चे को बाँधती थी, उसे नहलाने के बाद पाउडर भी छिड़कती थी। जो कुछ इन घरों में देखती रही थी वह

सब करती थी। बच्चे के पालने पर भी उसने वैसा ही बिछौना लगा रखा था, वैसे ही घंटियों और खिलौनों से उसे सजा रखा था।''[10]

बसंती को समाज के द्वारा भी उचित सम्मान नहीं मिलता है, वह चाहे श्यामा बीबी हो या सूरी दम्पत्ति। सभी ने बसंती का उपयोग अपनी महत्त्वाकांक्षा और पाखण्ड के लिए किया। उन्हें बसंती और उसके बच्चे का रहन–सहन पसंद नहीं आता है। उस पर चोरी और एक बिगड़ैल स्त्री का ठप्पा लगाकर समाज में उसे बेइज्जत किया जाता है। उसके प्रति स्त्रियों और पुरुषों की मानसिकता का एक उदाहरण दृष्टव्य है– ''बस्ती में बसंती की साख जाती रही थी। उजले कपड़े पहने, कभी भड़कीली साड़ी तो कभी सलवार–कमीज डाले और बनी–ठनी, अपने बच्चे को गोद में लिए जब वह बस्ती की सड़कों पर जा रही होती तो गृहणियों में खुस–फुस होने लगती कि इसके पास इतने पैसे कहाँ से आए कि छैली बनी घूमती है। श्यामा बीबी ने भी अपनी एकाध सहेली को बता दिया था कि उसे बसंती के थैले में से हॉर्लिक्स का डिब्बा मिला था और यह बहुत स्त्रियों तक फैल चुकी थी। उसके साथ पिछली घटनाएँ भी जुड़ गई थीं वह किसी आदमी के साथ भाग गई थी, कि वह चाल–चलन की अच्छी नहीं है। पहले भाग गई थी, और अब एक ऐसे आदमी के साथ रह रही है, जिसकी पहले से घरवाली है। यहीं तक बस होता, तो कोई बात न थी, पर एक दिन बाबू जगन्नाथ के घर में, जहाँ बसंती काम करती थी, उस पर घड़ी चुराने का साफ इल्जाम लगाया गया। अब बसंती ने सचमुच घड़ी चुराई थी या नहीं, भगवान जाने, उम्मीद तो नहीं थी कि बसंती ने ऐसा काम किया हो क्योंकि इस प्रकार के जीवन से ही तो वह अपने को उबारने की कोशिश करती आ रही थी, पर फिर भी किसी के दिल की कौन जाने। नतीजा यह हुआ कि उसे चौका–बर्तन के काम पर से हटा दिया गया। घर का मालिक इतना बिगड़ा था कि उसने कहा था, अगर बसंती कभी उस तरफ आई तो वह उसकी टाँगे तोड़ देगा और उसे हवालात में बन्द करवा देगा।''[11]

बसंती समाज का अपने प्रति ऐसी सोच और पति के निकम्मेपन के कारण उसके सामने आर्थिक समस्या खड़ी हो जाती है। ऐसे समय में वह हार न मानकर तंदूर लगाकर रोटी पकाने का धन्धा खोल देती है। इसी के संदर्भ में श्यामा बीबी से बात करती हुई बसंती कहती है– ''उधर खाली जमीन पड़ी है। बीबी जी, झट–से मैं तंदूर लगा लूँगी। दो पैसे रोटी लगवाई लिया करूँगी। बहुत लोग हैं जो घर पर रोटी पकाना नहीं चाहते।''[12] लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था और पुलिस प्रशासन ने दुबारा उनकी बनाई झुग्गी–झोपड़ियों को उजाड़ देते हैं जिसमें बसंती के तंदूर को भी तहस–नहस कर दिया जाता है। इस तरह दुबारा टूट रही झुग्गी–झोपड़ियों को देखकर श्यामा बीबी बसंती से पूछती है अब तू क्या करेगी पगली? कहाँ जाएगी? श्यामाबीबी के इस सवाल का जवाब बसंती बड़ी जिन्दादिली से देती है ''क्यों बीबी जी, पीछे मेरी कोठरी है, पास में पप्पू है।''.....

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि भीष्म साहनी बसंती उपन्यास में पूँजीवादी व्यवस्था की बढ़ती शक्ति के परिणामस्वरूप मजदूरों के शोषण, गरीबी, भुखमरी और विस्थापन के चित्रण के साथ–साथ बसंती के माध्यम से पुरानी सड़ी–गली सामंतवादी मूल्यों और पितृसत्तात्मक सत्ता के खिलाफ विद्रोह और उसके जीवन–संघर्ष और जिजीविषा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है।

I UnHk%

1. भीष्म साहनी, बसंती, राजकमल प्रकाशन, संस्करण चौथा, वर्ष 1990, पृ0 11–12.
2. वही, पृ0 13.
3. वही, पृ0 24.
4. वही, पृ0 15–16.
5. वही, पृ0 40.
6. वही, पृ0 155.
7. वही, पृ0 155.
8. वही, पृ0 36–37.
9. वही, पृ0 153.
10. वही, पृ0 134.
11. वही, पृ0 167–168.
12. वही, पृ0 184.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 21-23

ykd&ukV; ijijk ,o gchc ruohj dk jx&ykd

vydk*

जब हम 'लोक' की बात करते हैं तो हमारी स्मृति में स्वतः ही अपनी परंपरा एवं संस्कृति की सुन्दर और मोहक छटा उभर आती है। "प्रत्येक काल और हर हाल में जीवन एवं जनप्रिय बने रहने वाले लोक–नाट्य–रूप शास्त्र से नहीं परंपरा से बंधे होते हैं। वे शास्त्र को भी प्रमाणित करने की कसौटी हैं। नाट्य–शास्त्रकार भरत के अनुसार,

onk/;Rekiiwu% r| 'kCnNUn% lefUoreA ykd fl)% Hkor fl)% ukV; ykd LoHkkoteA
rLekr ukV; i;kx r| iek.k ykd b";rAA ¼Hkjrefu%] ukV;'kkL=] v- 26&113½[1]

भारतीय लोक–नाट्य रूपों– अंकिया (असम), कूडियाट्टम (केरल), यक्षगान (कर्नाटक), भवई (गुजरात), जात्रा (बंगाल), माच (मालवा), ख्याल (राजस्थान), नाचा (मध्यप्रदेश), स्वांग (हरियाणा), तमाशा (महाराष्ट्र), नकल (पंजाब), बिदेसिया (बिहार), नौटंकी एवं रामलीला (उत्तर प्रदेश) आदि में लोक–रंगमंच जीवित है। हमारी संस्कृति और परंपरा लोक–जीवन में बसी हुई है और लोक–जीवन की छटा हमारे लोकनाट्य–कर्म में निहित है। लोक–नाट्य के अंतर्गत हमारे ग्रामीण जीवन की परम्पराओं, कहानियों, रीति–रिवाज़ों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, त्यौहारों, खान–पान, गीत–संगीत, नृत्य, परिधान आदि का सजीव चित्रण होता है। इन लोक–नाट्य प्रस्तुतियों को गाँव के अनगढ़ कलाकार अपनी क्षेत्रीय भाषा एवं शैली में लोक–रुचि और मनोरंजन को ध्यान में रखते हुए करते हैं। ये नाटक किसी विशेष मंच की मांग नहीं करते बल्कि खुले आसमान के नीचे अथवा गाँव की चौपालों, नुक्कड़ों आदि किसी भी स्थान पर मंचित किये जाते हैं।

इन नाट्य–प्रस्तुतियों में किसी भी प्रकार की औपचारिकता एवं आडम्बर नहीं होता। इन नाटकों का स्वरूप नगरों में होने वाले नाटकों से सर्वथा भिन्न होता है। इनका जुड़ाव लोक–जीवन के विशाल जन–समूह से होता है। ये नाटक लोक–जीवन की संवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। किन्तु ऐसा बिलकुल नहीं है कि इन नाटकों में नाट्य–संभावनाएँ निहित नहीं होतीं। "सावधानी से विचार करने पर उनमें नाटक की समस्त संभावनाओं की खोज की जा सकती है। दरअसल लोक–नाटक का मंच आयासहीन अव्यवस्था में ढला हुआ होता है, किन्तु बेतरतीब जंगल या पहाड़ की शृंखला के सामान उसमें एक अव्यवस्थित व्यवस्था होती है।"[2]

भरतमुनि कहते हैं कि सारी शिल्प और कलाएँ तथा सारे के सारे शास्त्र लोक या हमारी दुनिया पर ही तो टिके हुए हैं, लोक नहीं रहेगा, तो ये भी नहीं रहेंगे। लोक इनसे बड़ा है। इसलिए जो शास्त्र में न मिले, उसे लोक में खोजना चाहिये।[3] किन्तु हमारे भारतीय रंगमंच की यह विडम्बना रही है कि स्वततंत्रता से पूर्व लोक–नाटकों एवं लोक–कलाकारों को हीन दृष्टि से देखा जाता था और उनकी फूहड़ कहकर भत्सर्ना की जाती थी। ये नाटक सभ्य समाज के देखने लायक नहीं समझे जाते थे। इसलिए इन लोक–नाट्य–रूपों को सहेजने एवं इन्हें जिंदा रखने का कार्य अधिकांशतः उन्हीं फूहड़ और भोंडे समझे जाने वाले लोक–कलाकारों की गिनी–चुनी पीढ़ियों ने किया।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय रंग–परिवेश में परिवर्तन होने के कारण हम अपनी जड़ों से रूबरू होने लगे। जिससे कि भारतीय रंगकर्मी अपने असभ्य कहे जाने वाले लोक–नाट्यों रूपों से साक्षात्कार करता है। इन रंगकर्मियों ने न केवल लोक–नाट्य रूपों की फिर से तलाश शुरू की अपितु इनके पुनरुत्थान एवं संरक्षण में भी सक्रीय भूमिका निभाई। हिंदी रंगमंच के क्षेत्र में दिल्ली के राष्ट्रीय

*शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

नाट्य–विद्यालय का योगदान सराहनीय है, जिसने विभिन्न नाटकों को अपनी लोक–रंग–शैलियों में प्रस्तुत करके लोक–नाट्य के विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। अंधेर नगरी, बरनम वन, हयवदन, घासीराम कोतवाल, जसमा ओडन, अमली, कन्यादान, बकरी, उरुभंग, कबिरा खड़ा बाजार में, एक सत्य हरिश्चंद्र, आधे अधूरे आदि नाटकों को विभिन्न लोक–रंग–शैलियों में प्रस्तुत किया गया।

भारतीय रंगकर्मियों में से प्रसिद्ध शायर, अभिनेता, नाटककार एवं निर्देशक हबीब तनवीर का बहुआयामी व्यक्तित्व अपने आप में एक अलग और महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हबीब तनवीर स्वातंष्योत्तर हिंदी रंगांदोलन के ऐसे महत्त्वपूर्ण स्ततंभ हैं, जिन्होंने अपनी हिंदुस्तानी रंग–परंपरा को एक नया आयाम प्रदान किया। वे एक ऐसी शख़्सियत हैं, जिन्हें अपनी परंपरा से विशेष लगाव रहा है। इसलिए वे अपने रंग–कर्म में लोक–परंपरा से जुड़कर काम करते हैं। उनकी विशेषता इस बात में हैं कि वे परंपरा और आधुनिकता को एक–दूसरे में समाहित करते हुए, एक नयी रंग–परंपरा का आरंभ करते हैं। साथ ही वे लोक और शास्त्र के अन्योन्याचित संबंध की भी पहचान करते हैं और भरत की ही भाँति नाट्य के विस्तृत अर्थ को ग्रहण करते हैं। प्रो. कुसुमलता मलिक हबीब तनवीर की इसी दृष्टि की पहचान करते हुए अपनी पुस्तक 'हिंदी रंग आंदोलन तथा हबीब तनवीर' में लिखती हैं "स्वयं हबीब साहब रस को नाट्य कर्म का आधारभूत तत्त्व मानकर आगे बढ़े है। जो अनुष्ठानमूलकता ऋग्वेद का प्राण तत्त्व है वही अनुष्ठानमूलकता समस्त भारतीय लोक रंगकर्म का प्राण तत्त्व रही है यही कारण है कि शास्त्र तथा लोक दोनों के अन्योन्याश्रित भाव के मूल संबंध को समझकर हबीब साहब ने आदिम कारक लोक को पकड़ा।"[4]

छत्तीसगढ़ में जन्में हबीब साहब ने अपने करियर के शुरुआती दौर में ही शिक्षक बनने की जगह फिल्मों की तरफ रुख़ कर लिया और मुम्बई चले गए, जहाँ उन्होंने 'आपके लिए', 'राही' एवं 'फुटपाथ' जैसी फिल्मों में काम किया। बतौर रंगकर्मी उन्होंने सर्वप्रथम अपनी ही रंगपरंपरा का भरपूर अध्ययन–विश्लेषण किया। तत्पश्चात् वे पश्चिमी थिएटर के अध्ययन के लिए विदेश भ्रमण के लिए निकल पड़े। उन्होंने इब्राहिम अल्काजी की ही भाँति 'राडा' (रॉयल अकेडमी ऑफ ड्रैमेटिक आर्टस्–लंदन) से पश्चिमी नाट्य–प्रशिक्षण प्राप्त किया किंतु हबीब तनवीर ने पश्चिमी थियेटर की नकल न करके अपनी एक नई शैली विकसित की, जिसका आधार था 'लोक'। साथ ही उन्होंने 'इप्टा' तथा प्रगतिशील लेखक संघ के साथ जुड़कर काम किया। वस्तुतः वे ऐसे थिएटर का निर्माण करना चाहते थे जो पूर्णतः भारतीय जनता की मनोवृत्ति को दर्शा सके, उसका परिष्कार कर सके एवं तत्कालीन भारतीय समाज की समस्याओं का उद्घाटित करने में सक्षम हो। उनके मुताबिक यह काम लोक नाटकों के माध्यम से आसानी से किया जा सकता था। उन्होंने अपने रंगकर्म को सीमित दायरे में न रखकर उसे एक विस्तृत अर्थ प्रदान किया। वे एक ऐसी नाट्य–परंपरा का निर्माण करने चाहते थे जिसका एक कदम अपनी परंपरा से जुड़ा हो तथा दूसरा आधुनिकता से। हबीब तनवीर अपनी ज़मीनी हकीकत से रूबरू थे। उन्हें अपनी संस्कृति व परम्परा से बेहद लगाव था। वे अपनी ही मिट्टी से जुड़कर काम करना चाहते थे। इसलिए अपने रंगकर्म में भी उन्होंने अपनी मिट्टी से जुड़े हुए लोक–कलाकारों के साथ मिलकर काम किया। अपनी नाट्य प्रस्तुति 'मृच्छकटिकम्' को उन्होंने 'मिट्टी की गाड़ी' के रूप में प्रस्तुत किया तो उसके लिए वे छत्तीसगढ़ से लोक–कलारों को साथ लेकर आए, जिन्हें देखकर बेग़म कुदसिया ज़ैदी ने नापसंद कर दिया। कुसुमलता मलिक अपनी पुस्तक 'हिंदी रंग आंदोलन तथा हबीब तनवीर' में हबीब तनवीर का हवाला देते हुए लिखती हैं "उन देहाती कलाकारों को देखकर बेग़म ज़ैदी ने कहा कि किन काली–काली सूरतों को उठा लाए हो, क्या होगा इनका? मैंने उनकी एक न सुनी क्योंकि मैं मानता हूँ रूप, सौंदर्य, कद–काठी, चेहरा–मोहरा थिएटर में अच्छी भूमिका निभाता हैं, लेकिन मैं उसे थिएटर के लिए अनिवार्य नहीं मानता।"[5]

इस तरह हबीब तनवीर अपने थियेटर का निर्माण लीक से अलग हटकर अपनी जमीन से जुड़े देहाती लोक–कलाकारों के साथ मिलकर करते हैं। हबीब साहब ने इन कलाकारों को अपनी कला प्रदर्शित करने एवं निखारने की खुली छूट दी, इसी वजह से सभी कलाकारों ने अंत तक उनका सहयोगी बनकर काम किया। अपनी परंपरा और नई लोक–शैली विकसित करने में इन्होंने अनेक लोक–शैलियों को संरक्षित भी किया। अमितेश कुमार नटरंग में प्रकाशित अपने लेख में लिखते हैं "देशज परंपरा से जुड़ते हुए हबीब

ने कई लोक–शैलियों का संरक्षण भी किया जिसमें नाचा, गम्मत, गजवानी, चन्दैनी, पडवानी आदिवासी लोक नृत्य आदि हैं, जिसे उन्होंने अपनी प्रस्तुतियों में शामिल किया है।"[6] इसके अतिरिक्त हबीब तनवीर ने अपने नाटकों– चरणदास चोर, आगरा बाज़ार, गाँव का नाम ससुराल मोर नाम दामाद, मिट्टी की गाड़ी, बहादुर कलारिन, हिरमा की अमर कहानी, चम्पापुर की साजाबाई आदि को छत्तीसगढ़ के लोक–नाट्य रूप 'नाचा' में प्रस्तुत किया।

वे एक ऐसे प्रतिभावान एवं सहृदय व्यक्ति थे, जो मनुष्य मात्र में विश्वास रखते थे। इसलिए उनके प्रायः सभी नाटकों में सामान्य मनुष्य के संघर्ष एवं सुख–दुख को अभिव्यक्ति मिली है। अपने इसी मंतव्य को सार्थक करने तथा आम–जन की सरल–सहज जीवन–अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने ताम–झाम के बजाय सादे रंगमंच और अपनी निजी रंग–शैली को अपनाया। उनकी इसी विशेषता को रेखांकित करते हुए जयदेव तनेजा लिखते हैं "क्लासिकी संस्कृत नाटकों और लोक रंगमंच के सार्थक एवं जीवन्त रंग–तत्त्वों के कल्पनाशील सामंजस्य से हबीब ने एक ऐसी मौलिक और निजी रंग–शैली विकसित की है जो उनके 'टोटल थियेटर' को एक साथ ठेठ भारतीय और सार्वभौम नाट्यानुभव के स्तर तक पहुँचा देती है। आडम्बरहीन सादे रंगमंच पर केवल अभिनेता की जीवन्त उपस्थित से आप एक ऐसे कलात्मक और प्रभावशाली संसार की रचना करते हैं– जो आपके रंगकर्म को एक अलग और अनूठी पहचान देता है।"[7]

1959 में 'नया थियेटर' तथा 1973 में रायपुर (छत्तीसगढ़) में 'नाचा' कार्यशाला का आयोजन कर हबीब तनवीर ने अपनी एक विशेष शैली तथा रंग–भाषा का एक नया मुहावरा ईजाद किया। अपने थियेटर और कार्यशाला के ज़रिये उन्होंने अनेक छोटी–बड़ी लोक–नाट्य प्रस्तुतियाँ की। इनकी नाट्य–प्रस्तुतियाँ राजनीतिक सामाजिक विसंगतियों पर गहरा व्यंग्य करती हैं, वह भी बहुत सादगीपूर्ण और सरल शैली में। "हबीब साहब ने अपनी रंग भाषा तैयार कर ली थी। इनकी खासियत थी सादगी, इम्प्रोवाइजेशन और अभिनेता... कोरस कथा को आगे बढ़ाते थे और उन पर टिप्पणी करते थे।"[8]

गीत–संगीत उनके नाटकों की एक खास पहचान है। संगीत उनके नाटकों में इस प्रकार बसा हुआ है कि उसके बिना उनकी नाट्य–प्रस्तुतियों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। उनकी जितनी भी नाट्य–प्रस्तुतियाँ हैं (विशेष रूप से आगरा बाज़ार और चरनदास चोर), उनमें अधिकांशतः लोक–संगीत की छटा दिखाई पड़ती है। गिरीश रस्तोगी लिखती हैं "उनके गीतों के, नृत्य और संगीत के विलक्षण सर्जनात्मक प्रयोगों से जो सर्वथा नई सृष्टि हुई, उसने भारतीय जगत को टोटल थियेटर को नाटकीय और रोचक फार्म बनने–बनाने की सम्भावनाएँ दीं, चरणदास चोर में सर्वथा नई रंग–भाषा, नया रंग–परिदृश्य देखने को मिला।"[9]

I UnHkh %

1. तनेजा जयदेव, आधुनिक भारतीय रंग–परिदृश्य, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 201
2. सिन्हा महेश कुमार, बिहार की नाटकीय लोकविधायें, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2001, पृ. 5
3. त्रिपाठी राधावल्लभ, अनभै साँचा (सं. द्वारिका प्रसाद चारुमित्र), अंक–38–39, अप्रैल–सितम्बर, 2015, पृ. 16
4. मलिक कुसुमलता, हिंदी रंग आंदोलन तथा हबीब तनवीर, स्काई बुक्स इन्टरनेशनल, 2011, पृ. 12–13
5. वही, पृ. 29–30
6. वही, पृ. 29–30
6. नटरंग, सं. अशोक वाजपेयी, रश्मि वाजपेयी, अंक–86–87, खण्ड–22, जुलाई–दिसम्बर, 2010, पृ. 66
7. तनेजा जयदेव, आधुनिक भारतीय रंग–परिदृश्य, तक्षशिला प्रकाशन, 2015, पृ. 51
8. नटरंग, सं. अशोक वाजपेयी, रश्मि वाजपेयी, अंक–86–87, खण्ड–22, जुलाई–दिसम्बर, 2010, पृ. 64
9. वही, पृ. 58

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 24-26

MhO Dykl dk fu"dklu

'kyUnz flag*

प्रत्येक कथाकार समाज के प्रति अपना विशिष्ट दृष्टिकोण रखता है। जिस नजरिये में वह समाज को देखता है उसे उसी रूप में वह साहित्य के माध्यम से समाज के सामने लाने का प्रयास करता है। कथाकार दूधनाथ सिंह ने अपनी पैनी दृष्टि से उन सामाजिक समस्याओं को उजागर किया है जिसमें उन्होंने अपने दैनिक रोजमर्रा की जिन्दगी में कटु अनुभव किया है। यों समस्याएं प्रत्येक स्थान पर मनुष्य के सामने आती हैं लेकिन उन समस्याओं की जड़ तक पहुंचना और उनकी पहचान कर लेखन के माध्यम से सबके सामने लाना दूधनाथ सिंह जैसे बिरले कथाकारों की लेखनी का ही कमाल है।

लेखक दूधनाथ सिंह ने सामाजिक यथार्थ के उन पहलुओं को छुआ है, जो प्रशासनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक क्रिया कलापों से सम्बन्धित है। आजकल नेताओं और आला–अधिकारियों ने राजनीति को भ्रष्टाचार का ताजमहल बना दिया है जो देखने में तो सौन्दर्य प्रतीक मालूम होता है लेकिन इस सौन्दर्य के पीछे न जाने कितने निरीह असहाय लोगों का खून–पसीना मिला हुआ है।

दूधनाथ सिंह का कथा संसार सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करता है। उन्होंने सामाजिक विसंगतियों को सत्य के दर्पण में उतारने का प्रयास किया है। भारतीय समाज में लोगों को ऊँच–नीच, जात–पात और धर्म के नाम पर एक दूसरे से अलग किया गया है। हमारे भारतीय समाज में रूढ़ियों और परम्पराओं का बोल बाला है। रूढ़ियों और परम्पराओं के कारण आज के वैज्ञानिक युग में भी न जाने कितने नवजात शिशुओं की हत्या कर दी जाती है जिसका प्रमाण हमे रोज दैनिक समाचारों में दिखाई पड़ता है। कथाकार दूधनाथ सिंह ने अपनी लेखनी के माध्यम से इन रूढ़ियों एवं परम्पराओं के अंधविश्वास पर कुठारा घात किया है। –"मैं भंडारा करूंगी और देखना हजारों लोग इकट्ठे होंगे और यही म्लेच्छ की संतान सब हनुमान जी के सामने सिर झुकायेंगे। मै बदला लूंगी। पापियों पर थूः। बजरंग बली से कहूंगी उन सबका सर्वनाश कर दें जो मेरे पति की मति फेरने में लगे हैं। जिन लोगों ने वहां हवाई अड्डे पर हनुमान जी को उल्टा कर देखा, उनकी बेइज्जती की थी, तुम क्या समझते हो, अब तक बचे होंगे। अपरम्पार है उनकी महिमा अपरम्पार।"[1]

दूधनाथ सिंह के उपन्यासों में निम्न वर्ग की व्यथा का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। आज हमारा भारतीय समाज विभिन्न वर्गों और सम्प्रदायों में विभक्त है किन्तु उच्च और निम्न वर्ग दो ऐसे वर्गों में ऐसी विभाजक रेखा है जिसे मार्क्सवाद में शोषक वर्ग और शोषित वर्ग के रूप में देखने को मिलता है। आपके उपन्यासों में निम्न वर्ग का शोषण उच्च वर्गीय लोगों द्वारा किया जाता है इसी का उद्घाटन करता है और इस बात को दर्शाता है कि युग बदला है शोषण का तरीका नहीं। "निष्कासन उपन्यास के माध्यम से दलित महिला पर किये जा रहे अत्याचार और शोषण का चित्रण यही दर्शाता है– "रूपया नहीं दे सकती तो कुछ और दो।"[2]

इक्कीसवीं सदी में निम्न वर्ग का शोषण केवल इसलिए किया जाता है कि वह पैसा देने में असमर्थ है। यह समाज का सच है कि हमेशा से पूंजीपति ही समाज को नियंत्रित करता है। दूधनाथ सिंह समाज की इसी व्यथा से दुःखी थे। वे समाज के इस नंगे और वीभत्स सत्य को उजागर करते हैं। वे कहते हैं– "वे झूठ नहीं बोलते इलाहाबाद की भाषा बोलते हैं।" अर्थात् आप अपनी बातों को समय व रोचकता के साथ कहते हैं।

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, जीवा जी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म0प्र0)

दूधनाथ सिंह ने अपने कथा संसार में दलित चेतना की सत्यता को यथार्थ के धरातल पर परखने का प्रयास किया है। 'निष्कासन' इसी श्रेणी का उपन्यास है जिसमें दलित चेतना का दम घुटते दिखाया गया है। इस उपन्यास में कुछ शब्द आपने वैसे ही प्रयोग किये हैं जैसा लोगों का दृष्टिकोण होता है। दलित लड़की के लिए हास्टल की छात्राएं 'सुखंडी', 'बस्साती' शब्दों का प्रयोग करती है। निर्धन होने के कारण हास्टल वार्डन उसका दैहिक शोषण करने का प्रयास करती है– "रूपया नहीं दे सकती तो कुछ और दो"[3] क्लास रूम में दलितों को 'डी ग्रुप' कहकर सम्बोधित किया जाता है।

यहां स्पष्ट है कि लेखक दूधनाथ सिंह ने अपने विद्यालयी जीवन में दलितों और शोषितों के ऊपर हो रही इन मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना का कटु अनुभव किया और उसे लेखन के माध्यम से सबके सामने लाने का प्रयास किया।

कथाकार दूधनाथ सिंह ने दलित लड़कों की समस्या को राजनैतिक और साामाजिक मंच प्रदान किया है किन्तु राजनैतिक पार्टी केवल दलित कार्ड खेलते हैं और वोट की राजनीति करते हैं। उन्हें दलितों की समस्याओं से कोई वास्ता नहीं होता। अब दलित लड़की अपने वर्ग के दलित नेता 'छोटे लाल' से सहायता मांगती है तो वह स्पष्ट मना कर देता है कि वह सहायता नहीं कर पायेगा और कहता है "वह पार्टी लाइन से लास्ट नहीं जायेगा।" इन समस्याओं का नग्न चित्रण लेखक ने इस प्रकार किया–" यह लोकतंत्र का ही कमाल है कि यह अदना सा आदमी यहाँ सत्ता के शीर्ष पर बैठा है और अपने दलित एजेण्डे में अपने मुख्यमंत्री का जीना हराम किये है। कोई दलित उत्पीड़न नहीं हो रहा। मुख्यमंत्री जी हंस कर प्रेस वालों से कहते हैं।[4]

लेखक ने उपन्यास निष्कासन के माध्यम से समाज में शिक्षा के क्षेत्र एवं राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर किया है। 'शार्दूल' पर कार्यवाही इसलिए नहीं होती है क्योंकि वह राजनेताओं और उच्चाधिकारियों की जेबें गरम करता है उनके सामने हास्टल की छात्राओं को नंगा करता है। दलित नेता छोटे लाल अपने ही दलित वर्ग की लड़की की सहायता इसलिए नहीं करता क्योंकि हास्टल के मेस में खाने के समान की वह सप्लाई करता है। राज्यपाल दलित वर्गीय है लेकिन वह लड़की की सहायता नहीं कर सकता क्योंकि वह सवर्णों की कृपा से ही कुर्सी पर बैठा है वह एक शब्द भी पार्टी के विरूद्ध बोलता है तो जिस कुर्सी से वह चिपक कर बैठा है वह कुर्सी ही चली जायेगी। यह उपन्यास केवल एक छात्रावास में रहने वाली दलित 'सुखड़ी' लड़की की नहीं है अपितु पूरे भारतीय समाज में रहने वाले दलितों और वंचितों की व्यथा कथा है जिनका प्रत्येक जगह शोषण किया जाता है। और जब वह शोषण और अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाता है तो या तो उसकी आवाज शोषण कर्ताओं के द्वारा दबा दिया जाता है। इस दलित लड़की का 'निष्कासन' केवल छात्रावास से ही नहीं होता बल्कि समाज और दुनिया से भी निष्कासन हो जाता है। लेखक ने इसी असंवेदनशीलता, भ्रष्टाचार, शोषण, नैतिक पतन और आर्थिक विषमता का उद्घाटन करता है।

दूधनाथ सिंह के कथा साहित्य में समाज के बेबस, मजबूर और शोषितों का गुण धर्म प्रकट होता है। हमारे भारतीय समाज में भ्रष्टाचार एक सामान्य घटना है जो सदियों से होता चला आ रहा है और सदियों तक इसका अन्त नहीं होने वाला है क्योंकि ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं जो भ्रष्ट न हो। किन्तु जब किसी गरीब को भ्रष्टाचार के कारण न्याय नहीं मिल पाला उसका दैहिक और मानसिक शोषण किया जाता है तो दूधनाथ सिंह जैसे कथाकारों का मन व्यथित हो जाता है।

हमारे देश में बिना लेन–देन रिश्वत खोरी के एक छोटा सा काम भी नहीं होता है। अर्थात् भ्रष्टाचार और शोषण हमारे संस्कृति का हिस्सा बनती जा रही है। लेखक दूधनाथ सिंह ने इस समस्याओं को करीब से देखा और महसूस किया है जिसकी अभिव्यक्ति उनके कथा साहित्य में बार–बार देखने को मिलती है। हमारा समाज आजादी के बाद से नौकर शाही प्रवृत्ति की गिरफ्त में आ चुका है नेताओं और प्रशासनिक अधिकारियों की मदद से भ्रष्टाचार का यह तमाशा खुल्लम–खुल्ला बिना रोक टोक के जारी है। इस भ्रष्टाचार में सरकारी तंत्र के साथ ही साथ अशासकीय तंत्र भी बराबर का सहयोगी है। स्वतंत्रता पूर्व जो सपना आजादी के सत्तर वर्षों में भी पूरा नहीं हो पाया।

आर्थिक विषमता और शोषण करने वाले भ्रष्टाचार का तथा शोषित दलित लड़की 'सुखंडी' के माध्यम से कथाकार दूधनाथ सिंह ने भारतीय समाज की नग्नता एवं क्रूरता तथा नैतिक पतन का खाका प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यहाँ पर 'निष्कासन' केवल एक दलित लड़की का हास्टल से नहीं हो रहा है बल्कि उसके सपनों का जिसे लेकर वह गांव से शहर आयी थी उसका 'निष्कासन' हो रहा, उसे समाज से जो अपेक्षाएं थी उसका 'निष्कासन' हो रहा है, उसे प्रशासनिक अधिकारियों एवं विश्वविद्यालयी समाज से न्याय की जो उम्मीद थी उन उम्मीदों का 'निष्कासन' हो रहा है और अन्ततः उसकी जिन्दगी से उसका 'निष्कासन' हो गया।

I UnHk; %

1. सिंह दूधनाथ, आखिरी कलाम, पृ0 71-72
2. सिंह दूधनाथ, निष्कासन, पृ0 62
3. सिंह दूधनाथ, निष्कासन, पृ0 62
4. सिंह दूधनाथ, निष्कासन, पृ0 69

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 27-34

dchj d dk0; e ukjh

M,0 fcfiu dekj*

कबीर का संपूर्ण चिंतन दो भागों में विभक्त है– सामाजिक और आध्यात्मिक। दोनों तरह के चिंतन का लक्ष्य दुःख से मुक्ति और मानव समानता है। जब वे कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के अंदर एक ही ईश्वर का वास है (एकहिं जोति सकल घट व्यापत) तब यह कहने की कहीं से कोई गुंजाइस नहीं रह जाती कि वे स्त्री और पुरूष के बीच कोई भेद रखते हैं। उनके काव्य में नारी से संबन्धित कुछ ऐसे पद हैं जिसको लेकर कुछ विद्वान उनको नारी विरोधी सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। भारत परंपराओं का वाहक देश है। परंपरा के नाम पर यहाँ नारी संगत अमानवीय पक्ष का सदियों से निर्वहन किया जाता रहा है। सती–प्रथा, पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह, दासी–प्रथा और विधवा कलंक का दंश नारी झेलती रही है। इसका जिक्र कबीर के काव्य में मिलता है। इससे संबन्धित पर्याप्त ऐतिहासिक साक्ष्य भी मौजूद हैं।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक सूक्त से पता चलता है कि सती–प्रथा की औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए स्त्री अपने मृत पति के साथ चिता पर लेटती थी तथा फिर उसके सम्बन्धी उससे उठने के लिए आग्रह करते थे।

mnh'o uk;hfHk thoykd xrkl|e:re|i'k"k ,fgA
gLrkxHkkxL; fnf/k'kkLron iR;|tfuRoefHk lo¡HkkFkAA

दो दृष्टियों से ऋग्वेद समाज स्त्रियों को अयोग्य समझता था–

1. उन्हें राजनीति में भाग लेने का अधिकार नहीं था।
2. उन्हें सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार नहीं प्राप्त था।[1]

एक पुरूष कई पत्नियों को रखने का अधिकारी था। मैत्रायणी संहिता में मनु की दस पत्नियों का उल्लेख है। ..... ऐतरेय ब्राह्मण स्पष्टतः कन्या को चिन्ता का कारण बताता है। अथर्ववेद भी कन्याओं के जन्म की निन्दा करता है। मैत्रायणी संहिता में तो स्त्री को द्यूत तथा मदिरा की श्रेणी में रखा गया है।[2]

वशिष्ठ धर्मसूत्र में कहा गया है कि स्त्री स्वतंत्रता के योग्य नहीं है। बाल्यकाल में पिता उसकी रक्षा करता है, यौवन में पति रक्षा करता है तथा वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करते हैं–

firk j{kfr dkekj Hkrk j{kfr ;kouA
j{kfUr LFkfoj i=k u L=h LokrU«;egfrAA[3]

अर्थशास्त्र में स्त्री के लिए 'असूर्यपश्या'(सूर्य को न देखने वाली), 'अवरोधन', 'अन्तःपुर' शब्दों का प्रयोग हुआ है। इससे ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि समाज में पर्दा–प्रथा प्रचलित रही होगी।[4]

मनुस्मृति में एक जगह बताया गया है कि स्त्री को अपनी पति की देवता के समान पूजा करनी चाहिये तथा उसकी इच्छा के प्रतिकूल कोई काम नहीं करना चाहिए भले ही उसका पति दुश्चरित्र अथवा लम्पट ही क्यों न हो।[5]

महाभारत में सती–प्रथा के उदाहरण प्राप्त होते हैं, जैसे माद्री अपने पति पाण्डु के साथ सती हो गयी थी। ..... महाभारत में वेश्याओं के भी उल्लेख मिलते हैं।[6]

चुल्लवग्ग जातक से पता चलता है कि महात्मा बुद्ध स्त्रियों के संघ में प्रवेश के विरोधी थे और प्रथम बार उन्होंने अपना पोषण करने वाली प्रतापति गौतमी को संघ में लेने से स्पष्टतः इनकार कर दिया था।[7]

*असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि राजा और कुलीन वर्ग के लोग बहुविवाह करते थे। महावग्ग जातक में कहा गया है कि मगध नरेश बिम्बिसार की पाँच सौ रानियाँ थीं।[8]

बृहस्पति ने विधवा के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने तथ व्रत, उपवास, तप, दान आदि में लगे रहने का विधान प्रस्तुत किया है।[9]

याज्ञवल्क्य स्मृति कन्या के लिए उपनयन एवं वेदाध्ययन का निषेध करती है।[10]

कामसूत्र में गणिकाओं को दिये जाने वाले प्रशिक्षण का विवरण दिया गया है। ....मुद्राराक्षस से पता चलता है कि उत्सव में बड़ी संख्या में वेश्यायें सड़कों पर निकलती थीं। मंदिरों में कन्यायें देवदासी के रूप में नृत्य करती थीं।[11]

राजपूत काल में प्रायः बाल–विवाह का ही प्रचलन हो चुका था। कुलीन वर्ग के लोग कई पत्नियाँ रखते थे। समाज में जौहर तथा सती की प्रथायें प्रचलित थीं। जौहर के अन्तर्गत अपने को विदेशियों के हाथ से बचाने के लिए राजपूत महिलायें सामूहिक रूप से प्राणोत्सर्ग करती थीं जबकि सती–प्रथा के अन्तर्गत पति की मृत्यु के बाद वे चिता बनाकर जल जाती थीं। समाज की उच्च वर्ग की महिलाओं में पर्दा–प्रथा का प्रचार होता जा रहा था। विधवाओं को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था तथा उनका दर्शन अशुभ माना जाने लगा। उनके सिर से बाल कटा दिये जाते थे।[12]

तुर्क–अफगान काल में हिन्दुओं में सती–प्रथा, पर्दा–प्रथा, देवदासी प्रथा और अल्पायु विवाह अपनी यथास्थिति में विद्यमान था। मुसलमानों में सती प्रथा न थी। स्त्रियाँ विधवा होने पर पुनर्विवाह कर सकती थीं। इसके लिए तलाक की व्यवस्था थी। सामान्य रूप से स्त्रियों की स्थिति खराब थी और उनका स्थान भोग्या के रूप में था।[13]

मुगल काल में रानी कर्णवती, रानी जोधाबाई, रानी दुर्गावती, रानी रूपमती, चाँदबीबी, नूरजहाँ और उसकी माँ असमत बेगम, मुमताज महल, जहाँनआरा, रोशनआरा, जेबुन्निसा, शिवाजी की माँ जीजाबाई, राजाराम की पत्नी ताराबाई, काबुल के सूबेदार अमीरखाँ की बीबी साहिबजी आदि ऐसी स्त्रियाँ थीं जिन्होंने अपने समय की राजनीति और समाज को प्रभावित किया। ....परन्तु जनसाधारण में स्त्रियों की स्थिति बहुत गिरी हुई थी। ....बादशाहों और राज्य के बड़े–बड़े सरदारों के 'हरम' में हजारों स्त्रियाँ सह–पत्नियों, रखैलों और दासियों के रूप में रहा करती थीं। ...स्त्री और शराब दोनों विलासिता की मुख्य सामग्री बन गयी थी। ...अकबर के हरम में 5,000 स्त्रियाँ थीं। यही स्थिति अन्य मुगल बादशाहों की थी। हिन्दू सरदार और राजा थी इनका अनुकरण करने लगे थे। राजा मानसिंह के हरम में 1,500 स्त्रियाँ थीं। ...पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह, विधवाओं का पुनर्विवाह न होना, लड़की के जन्म को अपशकुन मानना, सती–प्रथा, धनवान व्यक्तियों में बहुविवाह आदि सामाजिक कुरीतियाँ हिन्दू समाज का अंग बन गयीं और स्त्रियों का स्तर समाज में बहुत निम्न हो गया। ....समाज में हिन्दू–विधवाओं की संख्या बहुत बढ़ गयी, अवैध–सन्तानें भी बड़ी संख्या में होने लगीं, नाचने गाने का पेशा लोकप्रिय हो गया और वेश्यावृत्ति बढ़ गयी।[14]

आधुनिक काल में राजा राममोहन राय के प्रयास से अंग्रेज सरकार ने 1812 के एक आदेश द्वारा नशीली वस्तुओं के प्रभाव में विधवाओं के सती होने पर प्रतिबंध लगा दिया था। 1828 के पहले दस वर्षों में पति के साथ जलकर मरने वाली विधवाओं का औसत 600 से कम नहीं रहा। 1829 में सरकार द्वारा सती– प्रथा पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया। डलहौजी के समय में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयास से 26 जुलाई 1856 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित हुआ। उन्हीं के प्रयास से 1860 में बाल विवाह तथा न्यूनतम अवस्था बिल पारित हुआ। 1929 में अजमेर निवासी हरविलास शारदा के प्रयत्नों से बाल–विवाह निषेध कानून बना। ज्योति वा फूले और सावित्री बाई फूले ने स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम किया। उन्होंने 1854 ई0 में लड़कियों के लिए स्कूल खोला। उन्होंने महाराष्ट्र में विधवा विवाह आन्दोलन को लोकप्रिय बनाया।[15]

आजाद भारत में परम्परा के नाम पर किसी न किसी रूप में स्त्री को बंधन में रखना का प्रयास जारी है। विकास और न्याय के नाम पर सरकारों द्वारा समय–समय पर स्त्री के लिए विकास और न्याय की योजनाएँ लागू की जाती हैं। आज भी स्त्री न्याय पाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में संघर्षरत है।

उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि भारत में नारी के साथ समानता का व्यवहार नहीं किया जाता था। नारी पुरुष के अधीन थी। वह स्वेच्छा से अपना जीवन यापन नहीं कर सकती थी। वह पुरुष द्वारा बनायी गयी आचार संहिताओं के आधार पर जीवन बिताने के लिए मजबूर थी। मध्य काल में इसकी अभिव्यक्ति संतों–नाथों के साहित्य में हुई है। आधुनिक काल में विमर्शों का केन्द्रीय विषय यही है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में कबीर के लिए नारी का संघर्षपूर्ण जीवन आदर्श है। वे साधना के क्षेत्र में जीवात्मा को नारी के रूप में और ईश्वर को प्रियतम (पति) के रूप में कल्पित करते हैं। उनका मानना है कि जिस तरह नारी के अन्दर पति के प्रति एकनिष्ठ प्रेम, विरह की तीव्रता, आत्म समर्पण का भाव होता है, उसी तरह का भाव जीवात्मा के अन्दर भी होना चाहिए। जिस तरह नारी के लिए पति के अलावा जगत निस्सार होता है उसी तरह जीवात्मा के लिए भी ईश्वर के अलावा भौतिक जगत सारहीन होता है। जगत की असारता जानने और ज्ञान प्राप्ति के बाद जीवात्मा के अन्दर विरहणी की तरह असीम विरह उत्पन्न होता है। जीवात्मा उसी विरह अग्नि में जलती रहती है–

dchj ru eu ;: TkY;k] fojg vxfu lk ykfxA
e:rd ihM: u tk.kb] tk.kxh og vkfxAA[16]

विरहणी आत्मा विरह से इतना संतप्त है कि वह एक बार में पूरी तरह जल जाने की कामना करती है–

dchj gk fcjg dh ykdMh] lef> lef> /k/kkmA
NfV iMk ;k fcjg r:] t: lkjh tfy tkÅAA[17]

जिस तरह से विरहणी नायिका अपने रात–दिन अपने प्रियतम से मिलन की उम्मीद में जलफती रहती है उसी तरह विरहणी आत्मा भी ईश्वर दर्शन के लिए प्रत्येक क्षण तड़पती रहती है–

dchj n:[kr fnu x;k] ful Hkh n:[kr tkbA
fcjgfu iho ikoi ugh] ft ;k ryi: ekbAA[18]

विरहणी की विरह वेदना इस हद तक पहुँच जाती है कि वह प्रियतम से मष्यु की अपेक्षा करने लगती है। या तो तुम विरहणी को दर्शन दे दो या तो मृत्यु दे दो क्योंकि आठों पहर विरह में जलना अब सहन नहीं होता–

d: fcjgfu dk ehp n:] d: vkik fn[kykbA
vkB igj dk nk>.kk] ekl: l°;k u tkbAA[19]

विरहणी की तरह जीवात्मा अपना अस्तित्व खत्म करने के लिए तैयार है केवल शर्त इतना है कि उसे प्रियतम के दर्शन हो जायं। वह अपने प्रियतम को देखने की उम्मीद के अपने शरीर को दीपक, जीव को बाती, रक्त को तेल बनाकर साधना कर रही है–

dchj bl ru dk nhok djk] ckrh e:Yg: thoA
ykgh lhpk r:y T;:] dc e:[k n:[kk ihoAA[20]

कबीर केवल विरहणी के जीवन को ही नहीं वल्कि सती जीवन को साधना के क्षेत्र में आदर्श मानते हैं। सती–प्रथा बहुत ही अमानवीय है। यह पुरुष द्वारा नारी पर आरोपित है। इसकी प्रांगिकता के समर्थन में कोई भी तर्क उचित नहीं है। आत्मदाह या जबरन किसी का दाह दोनों किसी भी समाज की हिंसात्मक प्रवषत्ति के क्रूरतम चेहरे हैं। यह सत्य है कि भारत में सदियों तक सती–प्रथा कायम रही। मेरा मानना है कि कबीर जैसा प्रगतिशील और क्रांतिकारी चेतना का व्यक्ति कभी भी ऐसी प्रथा का समर्थन नहीं कर सकता। फिर उनके काव्य में सती से संबन्धित जो प्रसंग उपस्थित हैं उनका स्पष्ट होना जरूरी

है। ईश्वर की साधना के लिए कबीर ने लौकिक जगत से जो भी उदाहरण उद्धृत किये हैं वे सभी नारी जीवन से संदर्भित हैं। वे लौकिक जगत से प्राप्त शरीर को ईश्वर और जीव के बीच की दूरी मानते हैं। जब तक कर्म फल युक्त इस शरीर का नाश नहीं हो जाता तब तक जीव को अपने मूल स्वरूप ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस कर्म फल युक्त शरीर कठोर साधना से ही नष्ट हो सकती है। साधना का मार्ग बहुत ही कठिन है। शरीर को इस मार्ग में विविध यातनाओं से गुजरना पड़ता है। यह शरीर ही जीव को मोह पाश में बांधे रहता है। यह साधना ठीक उसी तरह कठिन है जिस तरह से समाज में नारी का यातनापूर्ण जीवन। जिस तरह अपना जीवन बिताने के लिए नारी के पास प्रियतम के अलावा कोई और आधार नहीं है, प्रियतम के न रहने पर उसे सब कुछ बेकार लगने लगता है, यहाँ तक कि उसका अपना शरीर भी, ठीक उसी तरह साधना के मार्ग पर चलने वाली जीवात्मा भी ज्ञान प्राप्ति के बाद इस भौतिक जगत के हर एक तत्व को बेकार समझने लगती है, उसको त्यागने के लिए तमाम उपाय करने लगती है। कबीर ने इस आशय से सती नारी को अपना आदर्श माना है–

dchj fcjgfu Fkh rk D;k jgh] tyh u iho dk ukfyA
jg jg exf/k xgyMh] ik e u ykt ekfjAA[21]
dchj VVh cjr vdkl Fk] dkb u ld >M >yA
lk/k lrh v# lj dk] v.kh Åfiyk [kyAA
dch lrh ikdkj lfy p<h] lfu j ehr elkuA
ykx cVkÅ pfy x;] ge re jg funkuAA
dchj lrh fcpkjh lr fd;k] dkBk l t fcNkbA
y lrh iho vki.kk] pg fnfl vfXx yxkbAA
dchj lrh ljkru lkfg dfj] ru eu dh;k ?kk.kA
nh;k egyk iho dh] rc eMgV dj c'kk.kAA
dchj lrh tyu dk uhdyh] iho dh lefej lugA
lcn lur tho uhdY;k] Hkfy xbs lc ngAA
dchj lrh tyu dk uhdyh] fpr /kfj ,d ceA
ru eu lkl;k iho dh] rc vrfj jgh u j[kAA[22]

डॉ. धर्मवीर सती से सम्बन्धित साखियों को कबीर की साखी नहीं मानते। वे लिखते हैं कि ''अब इन्हें कौन बताए कि यह कबीर की साखी नहीं है? यह किसी कबीर विरोधी की साखी है जो कबीर के नाम से चलाई गयी है। ...मानसिक भ्रमों और धार्मिक अंधविश्वासों को जड़मूल से नष्ट करने वाले कबीर सती जैसी कुप्रथा के समर्थक नहीं थे। आखिर कबीर को सती प्रथा के समर्थन में साखी लिखने की क्या जरूरत पड़ी थी? वे मुसलमान पैदा होने के बाद हिन्दुओं की इन घातक रूढ़ियों को ओढ़ने और ढोने की कोशिश क्यों करेंगे? वे इन रूढ़ियों से कोरी होने के कारण पहले से ही मुक्त थे। उनके दलित समाज में विधवा विवाह का चलन था। कबीर के हाथ औरतों को आग में जलने से बचाने के लिए बढ़े थे, उन्हें बाँह से पकड़कर चिता में जलाने के लिए नहीं। सती प्रथा का गुणगान द्विजों की प्रथा में खपता है, दलितों के व्यवहार में नहीं।''[23]

कबीर के काव्य में नारी दुलहिन के रूप में उपस्थित है। यह साधना की सिद्धावस्था है कि ईश्वर उसको पति के रूप में प्राप्त हो चुके हैं। यह उसके लिए सौभाग्य का दिन है–

nyguh xkog exypkjA
ge ?kfj vk;k gk jkt jke Hkjrk jAA
ru jr dfj e eu jr dfjg] ikprr cjkrhA
jkeno ekj ikgun vk;k g] e tkcu ekrhAA
ljh ljkoj cnh dfjg] cã cn mpkjA

jkenso lfx Hkkofj yhg] /kfu /kfu Hkkx gekjAA
lj rjrhl dkfrx vk,] efu;j lgl vB;klhA
dg dchj ge 0;kfg py gi] ifj"k ,d vfcuklhAA[24]

जीवात्मा को एकनिष्ठ साधना से बहुत दिन के बाद प्रियतम मिलन का संयोग मिला है। कबीर के अनुसार जीवात्मा के लिए सारा सुख प्रियतम(ईश्वर) के साथ रहने में ही है–

cgr fnuu Fkh e ihre ik;A
Hkkx cM ?kfj cB vk;AA
Ekxypkj ekfg eu jk[kkA jke jlkbu jluk pk[kkAA
Ekfnj ekfg Hk;k mft ;kjkA y lrh viuk iho fi;kjkAA[25]

कबीर के काव्य में ईश्वर के सानिध्य की अनुभूति के लिए प्रियतम ही नहीं बल्कि माता का रूपक भी मिलता है–

gfj tuuh e ckfyd rkjkA
dkg u vox.k cdlg ekjkAA
lr vijk/k dj fnu dr tuuh d fpr jg u rrAA
dj xfg dl dj tk ?kkrkA rÅ u gr mrkj ekrkAA
dg dchj ,d cf/k fcpkjhA ckfyd n[kh n[kh egrkjhAA[26]

कबीर के काव्य में नारी के लिए पापिनी, माया, महाठगिनी, नरक का कुंड, कामिनी, विष–फल, जगत की जूठन, विषधर भुजंग आदि पदों का प्रयोग मिल जाता है। ये ऐसे पद हैं जो परम्परा से नारी के लिए लोक में प्रयोग में लाये जाते रहे हैं। इनका प्रयोग करने वाले कबीर पहले व्यक्ति नहीं हैं। नारी को हीन बतलाने के लिए इन पदों का प्रयोग सदियों से होता रहा है। कबीर ने इन पदों का प्रयोग नारी को हीन बतलाने के लिए नहीं किया है। उन्होंने अपने आध्यात्मिक चिंतन में कामवासना को पूर्णतः वर्जित किया है। इसलिए उन्होंने साधक को नारी से दूर रहने के संदर्भ में इन पदों का प्रयोग किया है। दूसरी स्थिति यह भी है कि पुरुष द्वारा नारी का समाज में जिस तरह से शोषण और दोहन हो रहा था, उसको देखते हुए पुरुष के अंदर ईश्वर का भय पैदा करने के लिए भी कबीर ने इन पदों का प्रयोग किया है।

dchj f=;k f=Luk ikih.kh] rkl ikl ihfr u tkfMA
iMh pf< ikl iM] ykx ekfV [kkfMAA[27]
dchj ek;k ekg.kh] tlh ehBh [kkMA
lrxj dh Ñik Hkbl] ugh rj djrh HkkMAA[28]
ek;k rjoj f=fc/k dk] lk[kk n[k lrkiA
lhryrk lfiu ugh] Qy Qhdk ru rkiAA[29]
dchj dkef.k dkyh ukx.kh] rhU;k ykd e>kfjA
jke lugh Åcj] fc'kb [kk;k >kfMAA[30]
dchj ukfj ulko rhu l[k] tk uj ikl gkbA
Hkxfr e dfr fut X;ku e] ifl u ld dkbAA[31]
dchj ,d dud v# dkeuh] fc'k Qy dh;k mik;A
n[k gh Fkh fc'k p<] [kk;k l efj tkbAA[32]
dchj tk: tBf.k txr dh] Hky cj dk chpA
mfÝke r vyx jgi] fudfV jg r uhpAA
dchj ukjh dM ujd dk] fcjyk FkHk ckxA
dkb lk/k tu Åcj] lc tx eok ykxAA
dchj lnfj Fkh lyh Hkyh] fcjyk cp dkbA
ykg fygkyk vxfu e] tfy cfy dkbyk gkbAA[33]

उपर्युक्त पदों के आलोक में मैनेजर पाण्डेय का कहना है कि ''कबीर और तुलसी का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण एक था। यानि दोनों स्त्री विरोधी संस्कृति के बड़े कवि थे, जबकि सूरदास और मीरा में स्त्रियों के स्वातंत्र्य के प्रखर स्वर थे।''[34] प्रो. पुष्पलता सिंह का कहना है कि ''स्त्री निंदा करते हुए उनका (कबीर का) मुख्य उद्देश्य साधक और समाज को चरित्र भ्रष्टता से बचाना था।''[35] डॉ. श्यामसुन्दर दास ने लिखा है कि ''ज्ञानी संतों ने स्त्री की जो निंदा की है, वह दूसरी ही दृष्टि से है। स्त्री से उनका अभिप्राय स्त्री के कामवासनापूर्ण संसर्ग से है। स्त्री की निंदा कबीर से बढ़कर कदाचित ही किसी ने की हो, परन्तु पति–पत्नी की भांति न रहते हुए भी लोई का आजन्म उनके साथ रहना प्रसिद्ध है।''[36]

ओमप्रकाश वाल्मीकि कबीर को नारी विरोधी कहते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि के विचारों के संदर्भ में कँवल भारती लिखते हैं कि ''ओमप्रकाश वाल्मीकि कबीर को स्त्री विरोधी मानते हैं, जिसकी पुष्टि में वे यह साखी उद्धृत करते हैं–

ukjh rk ge Hkh dfj] ik;k ugh fopkjA
tc tkuk rc ifjgfj] ukjh cMk fodkjAA

कबीर की तुलना वे तुलसी के स्त्री–विरोध से करते हैं और इस तरह वे कबीर और तुलसी को एक ही सोच का बता देते हैं। उन्होंने कबीर की उपर्युक्त साखी का भी स्रोत बताने की जहमत नहीं उठायी है। कबीर रचनावली में स्त्री सम्बन्धी पद 'कामी नर कौ अंग' और 'अथ काम कौ अंग' के अंतर्गत साखियों में शामिल हैं। उपर्युक्त साखी प्रो. युगेश्वर द्वारा संपादित 'कबीर समग्र' के प्रथम खंड में 'अथ काम कौ अंग' परिच्छेद की 57वीं साखी है। इन परिच्छेदों में कबीर की साखियाँ जारकर्म में लिप्त पुरुष और व्यभिचारिणी स्त्री की निंदा में कही गयी हैं। कबीर गृहस्थ जीवन के समर्थक थे। उनके समय में स्त्री–पुरुषों में जारकर्म चरम सीमा पर था। बड़े–बड़े ज्ञानी, साधु, सन्यासी, वैरागी, सिद्ध, योगी, भक्त व्यभिचार में लिप्त थे। ऐसी स्त्रियाँ बहुतायत में थीं, जो अपने पतियों को धोखा देकर, अपने यार के साथ सोती थीं। कबीर ऐसी स्त्रियों के विरोधी थे जो विवाहेत्तर सम्बन्ध रखती थीं और ऐसे पुरुषों के विरोधी थे जो पर स्त्रीगमन करते थे। ब्राह्मण आचार्यों और उनके शास्त्रों ने ऐसी गंदी संस्कृति को नैतिक ठहराया हुआ था। दलित दर्शन की परंपरा में इस गंदी संस्कृति के खिलाफ पहली आवाज आजीवक गुरु मक्खलि गोशाल ने उठाई थी और अपनी इस आवाज को उन्होंने 'संसार शुद्धि' नाम दिया था। दूसरी आवाज कबीर ने उठाई थी। ब्राह्मणों ने पहली आवाज आजीवक दर्शन को नष्ट करके दबा दी और कबीर का स्त्री विरोधी प्रचारित करके बदनाम कर दिया। कबीर ने परिवार को प्रतिष्ठा दी थी और परिवार की पवित्रता को कलंकित करने वाले स्त्री–पुरुष की निन्दा करके 'संसार–शुद्धिवाद' को ही पुनर्जीवित किया था। इस शुद्धिवाद को कबीर की इन साखियों में देखा जा सकता है–

ij ukjh ij lqUnjh] tSlh lyh lkyA
fur dy'k Hkxr lgh] rkg u NkMs [kkyAA
dfcjk tk dkb lqUnjh] tku u dj 0;fHkpkjA
rkfg u dcg vknj] ije i#"k Hkjrk jAA
ukfj dgko ihao dh] jg vkj lx lk;A
tkj lnk eu e cl] [kle [k'kh D;k gk;AA
ifro rk dk l[k ?kuk] tkd ifr g ,dA
eu&e yh 0;fHkpkfj.kh] rkd [kle vudAA**[37]

कबीर केवल नारी को साधना के मार्ग में बाधक मानते हों, ऐसा नहीं है। वे सांसारिक स्त्री–पुरुष दोनों को चंचल मन का मानते हैं–

dSlh uxfj djk dVokjh
pipy ijf'k fop'ku ukjhA[38]

वे पथ–भ्रष्ट नर–नारी दोनों को धिक्कारते हैं–

jke fcuk f/kx f/kx uj ukjhA
dgk r: vkb fd;k l:lkjhAA[39]

वे काम–वासना में लीन सभी नर–नारी को नर्क के समान कहते हैं। काम–वासना में लीन न तो पुरुष और न ही नारी के लिए उनके यहाँ कोई जगह हैं। कामी पुरुष की कुबुद्धि कभी नहीं जाती है। कामी पुरुष विषधर नाग के समान होता है–

uj ukjh lc ujd g] tc yx ng ldkeA
dg dchj r: jke d] t: l:fej fugdkeAA
dchj dkeh veh u Hkkob] fc'k b dk y: lkf/kA
dcf/k u tkb tho dh] Hkko L;Hk jgk ijekf/kAA
dchj fc'k dje dh dpyh] igfj gvk uj ukxA
flj QkM: l>: ugh] dk vkfxyk vHkkxAA[40]

कबीर बार–बार यह कहते हैं कि माया ने ईश्वर के साथ छल करके इस दृश्य जगत की रचना की है। इसमें सभी सांसारिक सम्बन्ध माया द्वारा बनाये गये हैं। यहाँ न कोई पुरुष है, न कोई नारी है, न कोई पुत्र है, न कोई बाप–

gfj Bx tx dk Bxkjh ykbA
gfj d: fc;kx d:l: thÅ ejh ekbAA
dku ifj'k dk dkdh ukjh] vfHkvrfj rEg yg fcpkjhAA
dku ir dk dkdk cki] dku ej dku dj l:rkiAA
dg dchj Bx lk euekuk] xb Bxkjh Bx ifgpkukAA[41]

स्पष्ट है कि कबीर नर और नारी का भेद स्वीकार नहीं करते हैं। वे कामी नर और कामी नारी दोनों की निन्दा करते हैं। इस निन्दा के पीछे एक कारण ईश्वरीय साधना तो है ही साथ ही ऐतिहासिक तथ्य स्त्री का जो चित्र हमारे सामने उपस्थित करते हैं वह भी है। कबीर जैसा सामाजिक सुचिता का समर्थक चिंतक कहीं से भी पुरुषों की कुण्ठित प्रवृत्ति का समर्थन नहीं कर सकता। उन्होंने स्त्री जीवन संघर्ष को अपना आदर्श बनाया है। उन्होंने स्त्री की निन्दा नहीं की है। उनके जिन पदों को पढ़कर स्त्री निन्दा का आभास होता है, वहाँ उनका आग्रह चारित्रिक सुचिता का है। वे स्त्री को लेकर समाज में व्याप्त किसी भी कुरीति को समर्थन नहीं करते। यदि वे आध्यात्मिक क्षेत्र में सती जीवन को आदर्श मानते हैं तो वे सती प्रथा का समर्थन नहीं करते हैं, बल्कि यह बताने की कोशिश करते हैं कि एक साधक को सती स्त्री की तरह ईश्वर के प्रति एकनिष्ठता की जरूरत होती है। चूंकि यह शरीर नश्वर है, इसलिए इसके प्रति आकर्षण ईश्वर प्राप्ति में बाधा है। जब तक यह शरीर है तब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। कबीर के चिन्तन में ईश्वर वह अवधारणा है जो प्रत्येक मनुष्य को केवल मनुष्य के रूप में देखता है न कि स्त्री–पुरुष, ऊँच–नीच, धनी–निर्धन, पवित्र–अपवित्र के रूप में।

lUnHk %

1. प्राचीन भारत का इतिहास, के.सी.श्रीवास्तव, संस्करण–2006, पृ0 82–83
2. वही, पृ0 95
3. वही, पृ0 100
4. वही, पृ0 275
5. वही, पृ0 302
6. वही, पृ0 106
7. वही, पृ0 180
8. वही, पृ0 180
9. वही, पृ0 472
10. वही, पृ0 472

11. वही, पृ0 472
12. वही, पृ0 700–701
13. मध्यकालीन भारत (तुर्क–अफगान काल), एल.पी.शर्मा, पृ0 334
14. मध्यकालीन भारत (मुगल काल), एल.पी.शर्मा, पृ0 329–30
15. आधुनिक भारत, पी. एल. गौतम. पृ0 375, 377, 379, 383, 384, 389
16. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, बिरह कौ अंग, पृ0 18
17. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, बिरह कौ अंग, पृ0 18
18. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, बिरह कौ अंग, पृ0 18
19. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, बिरह कौ अंग, पृ0 18
20. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, बिरह कौ अंग, पृ0 16
21. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, बिरह कौ अंग, पृ0 18
22. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, सूरातन कौ अंग, पृ0 118–119
23. कबीर के कुछ और आलोचक, डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, आवृत्ति–2017, पृ0 32–33
24. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, राग गौड़ी, पृ0 140
25. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, राग गौड़ी, पृ0 141
26. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, राग गौड़ी, पृ0 209
27. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, माया कौ अंग, पृ0 57
28. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, माया कौ अंग, पृ0 56
29. वही, माया कौ अंग, पृ0 57
30. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, कामी नर कौ अंग, पृ0 66
31. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, कामी नर कौ अंग, पृ0 67
32. वही, पृ0 67
33. वही, पृ0 68
34. कबीर : एक पुनर्मूल्यांकन, सं. बलदेव वंशी, पृ0 105
35. वही
36. वही
37. दलित कविता का संघर्ष, कँवल भारती, स्वराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2012, पृ0 29–30
38. कबीर–ग्रंथावली, भगवत स्वरूप मिश्र, पंचम संस्करण–2005, पृ0 236
39. कबीर–ग्रंथावली, भगवत स्वरूप मिश्र, पंचम संस्करण–2005, पृ0 262
40. कबीर ग्रंथावली, माता प्रसाद गुप्त, कामी नर कौ अंग, पृ0 67–69
41. कबीर–ग्रंथावली, भगवत स्वरूप मिश्र, पंचम संस्करण–2005, पृ0 242

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 35-39

ykd lkfgR; dk fopkj&rÙo o ykdxhr

fnokdj jk;*

''लोकसाहित्य का अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी रचना लोक करता है। लोकसाहित्य उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव, इसलिए उसमें जनजीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है, समाहित है।''[1]

लोकसाहित्य में जनमन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। यह लोक की संवदेनाओं, अनुभूतियों, परम्पराओं, विश्वासों, मान्यताओं तथा जीवन की सहजताओं–जटिलताओं का सरस प्रकटीकरण है। ''लोकसाहित्य मानवीय मूल्यों का परिपोषक और परिबोधक रहा है। लोकसाहित्य मनुष्य और प्रकृति की अभेदकता में अपनी कल्पना–दृष्टि विकसित करता रहा है। लोककथाओं में बहू का चिड़िया बन जाना, राजकुमारों का कमल–पुष्प के रूप में अवतरित होना, पुत्रों का बाँस का पेड़ बनकर अपनी सुरीली आवाज में अपने साथ किये गये आघात का दर्द भरा वर्णन करना, चूहा, शृंगाल, लोमड़ी, शेर आदि का मानवीय स्तर पर मनुष्य के लीला–लोक में प्रवेश करना इसी अभेद दृष्टि का परिणाम है। लोककथाओं में लोक के साधारणजन की संघर्ष गाथा को अधिक चमकदार बनाकर प्रस्तुत किया गया है। राजा और रानियों पर भी इन लोककथाओं में अबेरा पड़ता है और वे सामान्य आदमी की विपत्तियों को भोगते हैं। लोक अहंकार के तिरोहण का स्थल है लोकसाहित्य। वहाँ रूप, नाम, उपाधि महत्त्वपूर्ण नहीं है। वहाँ मनुष्य की पहचान उसके मनुष्य होने से ही होती है।''[2]

लोक साहित्य का संसार इतना व्यापक और रहस्यमय है कि उसमें जितना ही डूबेंगे उतना ही मूल्यवान रत्न हाथ लगते जायेंगे। यदि किसी समाज को समुचित ढंग से समझना है तो उसकी प्राथमिक शर्त है कि उसके लोकसाहित्य का विशद और गहन अध्ययन किया जाय। लोकसाहित्य उस समुद्र की भाँति है जो रत्नों से भरा पड़ा है, हमारी जितनी क्षमता है, जितना सामर्थ्य है, उतना रत्न अपने लिए उपयोग में ला सकते हैं। लोक–साहित्य का जितना ही अध्ययन–मनन किया जायेगा, समाज के लिए उपयोगी अमूल्य रत्न प्राप्त होते जायेंगे।

लोक और साहित्य का अन्योन्याश्रय संबंध है। लोक का सुंदर व सजीव चित्रण जब साहित्य के रूप में होता है तो वह लोकसाहित्य कहलाता है। ''साहित्य और जनजीवन दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। जनजीवन के चित्रण और अभिव्यक्ति के बिना साहित्य असफल है। साहित्य एक आइना है जहाँ जनजीवन का चित्रण तथा उनकी समस्याओं का प्रतिफलन होता है। जनजीवन को हम शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करके साहित्य को जनमुखी बना सकते हैं। जब एक जाति या जनजाति का आर्थिक–सामाजिक वातावरण साहित्य में सुन्दर रूप से प्रतिफलित होता है, तब वह साहित्य उस समाज का आइना बन जाता है। जिस साहित्य में जनजीवन का चित्रण नहीं होता है, जहाँ समाज प्रतिफलित नहीं होता है, उसे हम प्रकृत साहित्य की संज्ञा नहीं दे सकते। साहित्य की एक पारंपरिक और प्रकृत शाखा है– लोक साहित्य।''[3]

लोक साहित्य का विकास वाचिक परंपरा से होता है। यह कार्य वर्षानुवर्ष के परिश्रम–परिमार्जन के फलस्वरूप सम्पन्न होता है। कोई एक व्यक्ति या व्यक्ति–समूह इसकी रचना नहीं करता है। सम्पूर्ण लोक इसका रचयिता होता है। इसमें व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा या अहंकार का कोई स्थान नहीं है। सभी मिलकर लोक में समाहित हो जाते हैं, अपना श्रेष्ठ समर्पण प्रस्तुत करते हैं तथा वाचिक–मौखिक रूप से उसे अपने अंदर अंगीकार कर लेते हैं, तब जाकर ''लोकसाहित्य का पूर्ण स्वरूप हमारे सामने प्रकट होता

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

है। लोकसाहित्य का स्वप्नलोक एक विराट् ब्रह्माण्डीय अनुभव चेतना है जिसमें समस्त फेनोमेना अपनी विराटता के सागर को एक शब्द की लघु–अंजुरी में उड़ेल देता है। लोकसाहित्य वर्जनाओं का हनन करता है, मानवकृत उन वर्जनाओं का जिन्होंने मनुष्य को छोटा बनाया है, मनुष्य को पाप–बोध से जकड़ा है, मनुष्य को उसके असली स्वभाव से हटाकर उसे कृत्रिम जीवन जीने के लिए प्रेरित किया है। लोकसाहित्य में अभिव्यक्ति के स्तर पर अलगाव रहा है– यह अलगाव स्वाभाविक ही है। जलवायु, प्रकृति, भूगोल आदि ने छन्द संरचनाओं को भिन्नता दी है, संगीत को अलग–अलग राग–रागिनियाँ दी हैं– किन्तु उसके आन्तरिक भाव–तन्तु इस देश की अछोर संस्कृति को भी गूँथते हैं। लोकसाहित्य का मानवीय अनुभव वैश्विक होता है।''[4]

लोकसाहित्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसके अन्तर्गत वह सम्पूर्ण रचित–मौखिक व लिखित साहित्य आता है जिसकी रचना लोक ने अपने सांस्कृतिक विकास के साथ–साथ किया है। इसीलिए ऐसा संभव है कि इस साहित्य में छंदगत व भाषागत दोष मिले, पर यही इसकी प्राचीनता, व्यापकता और सतत विकास का परिचायक भी है। ''लोक साहित्य का उपयोग कई अर्थों में किया जाता है– (1) उस लोक का साहित्य, जो सभ्यता की सीमाओं से बाहर है– सभ्य समाज में जिनकी गिनती नहीं उनका साहित्य, (2) जंगली जातियों का साहित्य है, जो आदिम परंपरा को सुरक्षित रखे हुए हैं क्योंकि लोकसाहित्य का संबंध फोकलोर लिटरेचर अर्थात् लोकवार्ता से है, (3) लोकसाहित्य ग्रामीण साहित्य है, (4)लोकसाहित्य वह युगयुगीन साहित्य है जो मौखिक परम्परा से प्राप्त होता है, जिसके रचयिता का पता नहीं, जिसे समस्त लोक अपनी कृति मानता है, (5) लोक साहित्य वह साहित्य है, जो लोक–मनोरंजन के लिए लिखा गया हो, उस लोक के लिए जो विशेष पढ़ा–लिखा नहीं। लेकिन वास्तव में भारतीय परम्परा में लोकसाहित्य का अर्थ उस साहित्य से है जो परंपरागत रूप से लोक–कण्ठों में रचा–बसा है और उनके रचयिता का कोई अता–पता नहीं है। फिर भी लोक–साहित्य विशाल जन–समूह का साहित्य बन जाता है। इसका सबसे प्रबल और प्रमुख कारण है– इन रचनाओं में लोकमानस का प्रतिबिम्बित होना। विशाल पृथ्वी के ऊपर पूरे संसार में लोक–साहित्य का विपुल–भंडार लोक–कण्ठों में छिपा हुआ है। किसी भी देश की सभ्यता–संस्कृति, साहित्य–कला, सामाजिक रीति–रिवाज, धार्मिक अनुष्ठान के अध्ययन–मनन से वहाँ की मानव–जाति के विकास के परम्परित इतिहास का ज्ञान हमें मिलता है क्योंकि उसके विकास की तह में लोकसाहित्य की बहुत बड़ी भूमिका होती है। लोकसाहित्य की मूल भावना व्यक्तिगत न होकर सामूहिक होती है, इसलिए उसकी महत्ता बढ़ जाती है।''[5]

''भारतीय जनजातीय लोकसाहित्य भी सामाजिक–सांस्कृतिक तथा नृशास्त्रीय विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जनजातीय समाज के व्यापक संदर्भ में तथा ऐतिहासिक विकास के परिप्रेक्ष्य में समझने–जानने के लिए उनके बिखरे लोकसाहित्य का संकलन–अध्ययन बहुत ही आवश्यक है। ''आदिवासियों का मौखिक साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। पुरखों की (लोक) कथाओं, गीतों, कहावतों और मुहावरों की वाचिक परम्परा आदिवासी समुदायों में भरी पड़ी है। अपनी इस वाचिक परम्परा को आदिवासी पुरखा साहित्य कहते हैं जबकि हिन्दी में इन्हें लोक साहित्य एवं अँगरेजी में फोक लिटरेचर कहा जाता है।''[6]

पीढ़ियों से जनजातीय समाज अपनी लोकधर्मिता को लोकसाहित्य के रूप में सहेज–सँवारकर रखा है। यही उनकी असली पूँजी है। उनका सम्पूर्ण सामाजिक जीवन इस साहित्य में प्रकट होता है। ''आदिवासी समाज का सुख–दुख, आनन्द, क्रोध, आशा–निराशा, भाव–भावना यानी उनकी जीवन–शैली, जिन पारम्परिक साधनों के माध्यम से व्यक्त की जाती है, वे साधन क्या हैं ? यानी आदिवासी लोगों का साहित्य कौन–सा है? शादी–विवाह और उत्सव के समय गाये जाने वाले गीत, काम करते समय गाये जाने वाले श्रमगीत, देवी–देवताओं के सामने रातभर चलनेवाला कथा–कथन, नृत्य–नाटक, जिसमें मनोरंजन का उद्देश्य भी होता है, विविध प्रकार के समूह–गीत, सामूहिक नृत्य या संगीत आदिवासी बान्धवों का साहित्य है। यह साहित्य उनके जीवन का दर्पण है, उनके जीवन का यह अविभाज्य अंग है। यह लोकसाहित्य उन्होंने पीढ़ियों से जतनपूर्वक अर्जित किया है। उन्होंने इस धरोहर को आज तक सही–सलामत रखा है।''[7]

पश्चिमी चम्पारन का थारू लोकसाहित्य भी आज तक जनमानस में उसी प्रकार जीवन्त है। यह थारू जनजाति को समग्रता में और व्यापक संदर्भों में समझने–जानने का एकमात्र विश्वसनीय स्रोत है। थारू समाज की सामाजिकता, लोकधर्मिता, प्रकृति–साहचर्य, जीवजगत के साथ सामन्जस्य, जल–जंगल–जमीन के साथ अभिन्नता थारू लोकसाहित्य में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

ykd lkfgR; dk Hkn % चूँकि लोकसाहित्य में लोक के अनुभवों को समाहित किया जाता है, इसलिए समय–समय पर इसे संपादित–संवर्द्धित भी किया जाता है। अर्थात् बदली हुई परिस्थिति में इसका नवीकरण होते रहता है। यह नवीकरण सुनियोजित ढंग से नहीं होता है बल्कि लोक मानस स्वतः स्फूर्त ढंग से इस कार्य को करते जाता है। रूपान्तरण की यह प्रक्रिया अत्यन्त सरल है। हर प्रस्तुतीकरण के समय वाचक इसे अपनी सुविधा के अनुसार परिवर्तित कर देते हैं। अतः लोक की समस्त गतिविधियों को इसमें समाहित किया जाना इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसलिए जब किसी समाज का विशेष अध्ययन करना होता है तो उसकी प्राथमिक शर्त होती है उस समाज के लोकसाहित्य का गहन अध्ययन–विश्लेषण करना। और लोकसाहित्य के निर्धारण का सबसे प्रमुख तत्त्व है– लोकवार्ता। ''लोकवार्ता को लोकसाहित्य के निर्धारण का सबसे प्रमुख तत्त्व माना जा सकता है। यह लोकमानस उस प्रवृत्ति से बिल्कुल भिन्न और अद्‌भुत होता है, जो सभ्य तथा संस्कृत मनीषिता को प्रकट करती है और जिसे मुनिमानस से संबंधित माना जा सकता है।''[8]

''लोकवार्ता संकलन और विश्लेषण के लिए लोकसाहित्य के विद्वानों ने अनेक सिद्धान्तों की स्थापना की। लोकवार्ता के अन्तर्गत लोक की वह समस्त अभिव्यक्ति आती है, जिसमें लोकमानस अपनी भावनाओं, आकांक्षाओं, परंपरा और विरासत के विविध रूप प्रस्तुत करता है। लोक साहित्य लोकवार्ता का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। डॉ0 सत्येन्द्र ने लोकवार्ता का विश्लेषण करते हुए लोक साहित्य के विविध रूपों को 'लोकवाणीविलास' शीर्षक के अन्तर्गत शामिल किया है। उन्होंने लोकवाणीविलास के तीन प्रकार माने हैं।[9]

वाणी

बात कथात्मक गेय

(सामान्य व्यवहार विषय)

लोक साहित्य की व्यावहारिक जानकारी और समझ की दृष्टि से डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकसाहित्य के पाँच भेद माने हैं।[10]

1. लोकगीत, 2. लोकगाथा, 3. लोककथा, 4. लोकनाट्य, 5. लोक सुभाषित।

ykdxhr % लोकसाहित्य का सबसे अधिक व्यापक विविधतापूर्ण लोकप्रिय और प्रचलित रूप लोकगीत है। मनुष्य की अनुभूतियों को उसके सामाजिक जीवन से जुड़कर जो भावप्रवण लयात्मक अभिव्यक्ति मिली वही लोकगीतों के विविध रूपों में व्यक्त हुई है।

''लोकगीत अधिकतर उत्सव, पर्वों, त्योहारों और आयोजनों से संबंधित हैं। मानवीय जीवन में सहज प्रसन्नता भी एक महत्त्वपूर्ण मूल्य की तरह है। बदलती ऋतुओं और फसलों की बोवनी, कटाई, गहाई आदि के साथ मानवीय जीवन की अंतरगता है। कर्म का उत्सव मनुष्य के पुरुषार्थ का महनीय मूल्य है। हमारा श्रम सृजन में तब्दील होकर जब फलवान होता है तब हमारा पुरुषार्थ ही प्रकटता है। इस पुरुषार्थ को हम उत्सवी बनाते है और लोकगीत हमें एक सामूहिक प्रसन्नता का अवसर देते हैं। लोकगीतों में जीवन के प्रति गहन आसक्ति का भाव निहित है। यह आसक्ति एक ऐसा मूल्य है जो जीवन को जीवन बनाता है, जीवन से पलायन नहीं। जीवन के संघर्षों के बीच ही उल्लास की तलाश, होली, कजरी, दिवाली, आदि गीतों में जीवन का यही आसक्ति बोध है। यह आसक्ति–बोध जीवन को कर्ममय बनाता है। इन उल्लास गीतों में सामाजिकता में निहित एकात्म्य भाव भी प्रकट होता है। समाज के शोषित वर्ग को इन गीतों में विशेष महत्त्व दिया गया है।''[11]

लोकगीत वर्षानुवर्ष की सतत् प्रवाहमान सभ्यता के साथ तादात्म्य स्थापित कर सर्वसमाज द्वारा स्वीकृत एवं अंगीकृत गीत होते है। ये लोगों की जिन्दगी में प्रतिदिन की दिनचर्या की भाँति रच–बस गये होते हैं। इसमें रचनाकार का व्यक्तिगत आग्रह कही भी दिखाई नहीं देता। इसका सतत् विकास होते रहता

है। सभ्यता के प्रारंभ से ही यह विकास क्रम चलता रहता है। ''लोकगीत की प्रथम अभिव्यक्ति का प्रमाण ऋग्वेद में मिलते हैं। संस्कृत साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख स्थान–स्थान पर मिलता है वे ही लोकगीतों के पूर्व रूप हैं। पद्य या गीत के अर्थ में 'गाथा' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर मिलता है। ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रंथों में गाथाओं का विशिष्ट उल्लेख उपलब्ध होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में ऋक् देवी होती थी और गाथा मानुषी अर्थात् गाथाओं की उत्पत्ति में मनुष्य का उद्योग प्रधान कारण होता था। ब्राह्मण ग्रंथों के अध्ययन से यह पता चलता है कि गाथाएँ, ऋक्, यजुः और साम से पृथक् होती थीं अर्थात् गाथाओं का व्यवहार मंत्र के रूप में नहीं किया जाता था। अतः प्राचीन काल में किसी विशिष्ट राजा के किसी विशिष्ट कार्य–अवदान को लक्षित करते हुए जो लोकगीत समाज में प्रचलित थे तथा कुछ प्रचुर रूप में गाये जाते थे वे ही 'गाथा' के नाम से साहित्य का एक पृथक् अंग माने जाते थे। विक्रम संवत् की तीसरी शताब्दी में प्राकृत भाषायें प्रभुत्व में थी। उस समय लोकगीतों की पर्याप्त रचना हुई। राजा हाल के द्वारा संग्रहित 'गाथा सप्तशती' से पता चलता है कि उस समय लोकगीतों के बनाने और गाने का प्रचलन बहुत ही अधिक था।''[12]

लोकगीतों की रचना प्रयासपूर्वक नहीं होती है। ये जीवन की सातत्यता में से स्वतः निःसरित होते हैं। भाषा के उद्‌गम एवं विकास के साथ ही लोकगीतों का उद्‌गम एवं विकास प्रारंभ हो गया होगा। ''लोकगीत का अति लघुरूप कार्यरत श्रमिक वर्ग के स्वरों में लघु पंक्तियों के रूप में ही फूटा होगा– यह उतना ही सत्य है जितना भाषा के उद्‌भव के साथ श्रमपरिहरण मूलक सिद्धान्त को स्वीकार किया जाता है। लोकगीत उद्‌भव की तलाश प्रकृति, परिवेश और जैविक स्थितियों से अलग हटकर नहीं की जा सकती। मांसपेशियों के सिकुड़ने और फैलने, श्वास के तेज होने और शरीर के प्रत्येक अंग को संचालित करने के लिए अतिरिक्त ऊर्जा के प्रयोग से मन के भीतर भी हलचल होती है और उस हलचल के परिणामस्वरूप ही अनायास कुछ ध्वनियाँ मुख से उच्चरित हो उठती हैं। ये किसी एक भाषा का स्वरूप धारण नहीं कर पातीं। इन ध्वनियों में गति, लय और आरोह–अवरोह होता है। इन्हीं अस्फूट ध्वनियों से उन ठेकों का विकास हुआ है जिन्हें धोबी कपड़ा धोते समय या मल्लाह चप्पू चलाते समय उच्चारते हैं।''[13]

चूँकि लोकगीत लोक द्वारा स्वतः उत्पन्न–विकसित होते हैं, इसलिए इसमें भाषा और छंदों की मर्यादा का पालन प्रायः नहीं होता है। ये तो जीवन के उल्लास का, खुशियों का, आनंद का, मानवीय संवेदनाओं का, प्रकृति के साथ तारतम्यता का, सहजता और सरसता का जीवन्त प्रतीक होते हैं। इनमें सामाजिक जीवन स्वतः झलकता है। इसमें कुछ भी कृत्रिम या बनावटी नहीं होता है। सब कुछ स्वाभाविक रीति से चलता है– भाषा, स्वर, लय, ताल, विषय–वस्तु सबकुछ। ''लोकगीतों में छंदों की नहीं, बल्कि सुर, ताल और लय की प्रधानता रहती है। लोकगीत समाज की सहज अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम है, जिसमें सुख–दुःख, जीवन–मरण, हर्ष–उल्लास, वीरों की गाथा आदि का वर्णन रहता है।''[14]

लोकगीतों को विविध अवसरों पर गाया जाता है। इन गीतों में जीवन का सहज उच्छल आवेग अविरल प्रवाह के रूप में मिलता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक, पूजा–पाठ से लेकर व्रत–त्योहार तक, फसल के लिए जोताई–कोड़ाई से लेकर फसल को घर लाने तक, पशु चराई से लेकर जंगल में विचरण तक, मौसम परिवर्तन से लेकर मौसम के अनुकूल लोकधर्मिता को बढ़ाने तक, अतिथि के आगमन से लेकर उसकी बिदाई तक, पुरखों को याद करने से लेकर उनको श्रद्धा–समर्पण करने तक, प्रेम से लेकर समर्पण तक हर अवसर पर लोकगीतों को अपनी अभिव्यक्ति मिलती है। लोकगीतों का वर्गीकरण भी इसी आधर पर किया जाता है–[15]

ykdxhr %

1. संस्कार संबंधी गीत	2. ऋतु संबंधी गीत	3. व्रत संबंधी गीत	4. जाति संबंधी गीत	5. श्रम संबंधी गीत	6. विविध गीत
1. पुत्रजन्म	1. कजली	1. नागपंचमी		1. रोपनी	1. झूमर
2. मुंडन	2. हिंडोला	2. बहुरा		2. सोहनी	2. अलचारी
3. यज्ञोपवीत	3. होली	3. गोधन		3. जाँत के गीत	3. पूरबी
4. विवाह	4. चैता	4. पिड़िया		4. कोल्हू के गीत	4. निर्गुन

5. गौना	5. बारहमासा	5. छठी माता	5. चरखा के गीत	5. भजन
6. मृत्यु				6. पालना
				7. खेल

जनजातीय समाज में लोकगीतों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। जनजातीय लोकगीतों का अध्ययन उस समाज के साथ–साथ मानव जाति के सांस्कृतिक विकास की कहानी को समझने की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। सभ्यता के क्रमबद्ध विकास के साथ मानवीय संवेदनाओं का किस रूप में प्रकटीकरण हुआ है, उसे अभिव्यक्ति मिली है, इस दृष्टि से भी जनजातीय लोकगीत हमारा मार्गदर्शन करते हैं। ''जनजातीय लोकगीतों की भावभूमि विस्तृत और वैविध्यपूर्ण है। जीवन और प्रेम, माधुर्य और सौन्दर्य, दाम्पत्य और गार्हस्थ्य, संयोग और वियोग, मिलन और बिछोह, अभाव और जीवनसंघर्ष, नैतिक और सामाजिक आदर्श, ऐतिहासिक और पौराणिक संकेत आदि के भावों से ये लोकगीत अलंकृत हैं। प्रकृति की सामान्य से सामान्य वस्तु या घटना के सूक्ष्म निरीक्षण और मानव–प्रकृति पर उसकी प्रतिक्रिया के हृदयग्राही शब्द–चित्र तो इन जनजातीय लोकगीतों में मिलते ही हैं, आलंबन और उद्दीपन के रूप में भी प्रकृति की सहज झलकियाँ इनमें मिल जाया करती हैं। विवाह के पहले के प्रणय–प्रसंग, मिलन की उत्कंठा, प्रेमी की प्रवंचना, प्रेमिका की परवशता, बिछुड़न की वेदना, जीवन संगी की कामना, विवाहिता कन्या की कारुणिक विदा–वार्ता, विवाहितजीवन की प्रतिबद्धता, दाम्पत्य के आमोद–प्रमोद, ससुराल के दुःख–द्वन्द की व्यथा, आर्थिक–विपन्नता की कष्ट–कथा, वन–पर्वतीय जीवन–संघर्ष, परंपरागत आदर्शों का समादर, जीवन–दर्शन की झाँकी, मजाकिया रिश्तों में हास्य–विनोद की बातें इत्यादि इन लोकगीतों के मुख्य–मुख्य विषय हैं। कहा जा सकता है कि ये लोकगीत 'तन की क्षुधा मिटाने की अपेक्षा मन की पिपासा तृप्त करने के लिए अधिक हैं।''[16]

lUnHkZ %

1. प्रणव कुमार नाथः लोकसाहित्य और असम का जनजातीय जीवन, लोक और शास्त्र, (सं0 डॉ0 अनुशब्द), वाणी प्रकाशन, 2017, पृ0 111
2. डॉ0 श्यामसुन्दर दुबेः लोक परम्परा, पहचान एवं प्रवाह, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2011, पृ0 69
3. प्रणव कुमार नाथः लोकसाहित्य और असम का जनजातीय जीवन, पृ0 111
4. डॉ0 श्यामसुंदर दुबेः लोकपरम्परा, पहचान एवं प्रवाह, पृ0 59
5. कृष्णनंद कृष्णः लोकसाहित्य की समस्याएँ और समाधान, परिषद्–पत्रिका, लोकसंस्कृति अंक, जुलाई, 1999, पृ0 128
6. स्वाति रेड्डीः आदिवासी जीवन और साहित्य, लोक और शास्त्र (सं0 डॉ0 अनुशब्द), वाणी प्रकाशन, 2017, पृ0 120
7. रमणिका गुप्ताः आदिवासी साहित्य–यात्रा, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2018, पृ0 35
8. डॉ0 सत्येन्द्रः लोकसाहित्य–विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंण्प्राणलि, आगरा, 1962
9. डॉ0 विद्या सिन्हाः भारतीय लोकसाहित्य–परम्परा और परिदृश्य, पृ0 36–37
10. डॉ0 कृष्णदेव उपाध्यायः लोकसाहित्य की भूमिका, साहित्य भवन प्राणलि, इलाहाबाद, 1957, पृ0 26
11. डॉ0 श्यामसुंदर दुबेः लोकःपरम्परा पहचान एवं प्रवाह, पृ0 71
12. विद्या सिन्हाः भारतीय साहित्यः परम्परा और परिदृश्य, पृ0 12–13
13. डॉ0 श्यामसुन्दर दुबेः लोकः परम्परा, पहचान और प्रवाह, पृ0 9
14. नरेन्द्र कुमार सिंहः बिहार के लोकगीत एवं लोकनृत्य, भारतीय लोकजीवन एवं संस्कृति (सं0 डॉ0 अमर कुणसिंह वर्धन, डॉ0 प्रमीला शुक्ल किरन), खेसला पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1999, पृ0 112
15. डॉ0 विद्या सिन्हाः भारतीय लोकसाहित्य, परम्परा और परिदृश्य, पृ0 38
16. डॉ0 डोमन साहु 'समीर': बिहार की जनजातीय संस्कृतिः लोकगीतों के संदर्भ में, परिषद्–पत्रिका, लोकसंस्कृति अंक, जुलाई, 1999, पृ0 55

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 40-45

ledkyhu fgUnh dfork e L=h&vfLerk dh vuxqt

_pk*

^^vkjr lk/kkj.k gkrh g jrr dh rjg
ij vufHkK ugh gkrh Hkhrj dh Hkyhkaf;k lA**

आसमान सा विशाल मन, पृथ्वी सी सहनशीलता, सागर सी गहराई, पवर्त सा धैर्य अगर किसी में है तो वह है स्त्री। परमात्मा ने इन सारी विशेषताओं से नवाजने के लिए स्त्री को ही चुना। स्त्री के बिना संसार की कोई भी चीज़, कोई भी रचना, कोई भी शास्त्र, कोई भी धर्म, कोई भी लोक पूरा नहीं होता। आज की स्त्री घर और बाहर दोनों जगहों पर अपनी जिम्मेदारियाँ निभाते हुये अपनी पहचान बनाने को तत्पर है। वह अब थोड़ी और सजग है और आत्मनिर्भर भी। स्त्री का आत्मनिर्भर, आत्मसजग होना उसका नया लोक है, उसका नया प्रस्थान भी। वह स्वयं की साधना, संयम एवं परिश्रम से पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलते हुए निरंतर नये आयामों को गढना चाहती है और समकालीन हिन्दी कविता स्त्री के इन्हीं संघर्षों, चुनौतियों एवं विविध पहलुओं की गहरी पड़ताल करती नजर आती है।

समकालीन कविता ने स्त्री की भूमिका को इस दौर में समझने, विचारने और जानने–पहचानने की जहमत उठाई है। यहाँ स्त्री की जीवंत और संघर्ष कर रही छवियों की तलाश दिखाई पड़ती है, स्त्री के निर्विकार व निःशब्द जीवन की शब्दशः अभिव्यक्ति मिलती है। समकालीन कवियों ने रसोई और बिस्तर के गणित से परे हटकर स्त्री संवेदना और भावना से जुड़कर अपनी कविताओं को तराशा है।

समकालीन कविता ने नयी कविता और अकविता की जमीन को तोड़कर स्त्री सरोकारों की फसल लहलहाई है। छायावादी कविता में स्त्री केवल प्रेयसी थी, वह कवि कल्पना और मनोभवों से उपजी थी। नयी कविता का आग्रह हाड़–मांस की सजीव स्त्री को कविता में चित्रित करने का था, लेकिन कवियों की मनोरचना व्यक्तिनिष्ठ थी इसलिएँ यहाँ भी जो स्त्री चित्रित है वह पुरूष दृष्टि से देखी, जानी–पहचानी गई स्त्री है। तदन्तर अकविता में स्त्री का घोर सरलीकरण हुआ– वह महज एक शरीर होकर रह गई। 1975 के बाद जो जनवादी–काव्यधारा प्रवाहित हुई जिसे हम समकालीन कविता कहते हैं, वहाँ एक आम भारतीय स्त्री के दैनिक जीवन की यातना, त्रास, दुःख, संवेदनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है। समकालीन कवियों ने स्त्री को उसकी वस्तुस्थिति में समझने का प्रयास किया, उसके संघर्षों, चुनौतियों की बेहतर पड़ताल की। समकालीन कवियों में अरूण कमल, राजेश जोशी इब्बार रब्बी, मंगलेश डबराल, उदय प्रकाश, नरेन्द्र जैन, असद जैदी, विष्णु नागर, बोधिसत्व, निलय उपाध्याय, एकान्त श्रीवास्तव, अष्टभुजा शुक्ल बद्री नारायण सरीखे कवियों ने स्त्री जीवन के विविध पहलुओं को बेहद सादगी और सच्चाई के साथ अपनी कविताओं में उजागर किया है। साथ ही अन्तिम दशक में उभरी कवयित्रियों ने भी स्त्री के दुःख–दर्द, सन्त्रास, पीड़ा, संघर्ष, साहस, जीवन की अभिव्यक्ति को अपनी–अपनी कविता का प्रमुख स्वर बनाया है जिनमें अनामिका, गगन गिल, कात्यायनी प्रमुख हैं।

लिंग अनुपात में असमानता, लड़कियों की संख्या में कमी आज भारत की ही नहीं विश्व की भी बड़ी समस्या है, फिर भी कन्या भ्रूण हत्या का सिलसिला थम नहीं रहा है। धीरे–धीरे कुछ लोगों की मानसिकता में परिवर्तन तो आया है परन्तु आज भी बड़ी संख्या में ऐसे परिवार मौजूद हैं जहाँ कन्या के जन्म पर प्रत्यक्ष उदासी छा जाती है।

*पीएचडी, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

आँकड़े बताते हैं कि साल में 10 लाख बच्चियों की हत्या गर्भ में ही कर दी जाती है। वैश्वीकरण की इससे बड़ी विडम्बना क्या होगी कि जो राज्य और शहर जितने अधिक विकसित हैं, मसलन पंजाब, गुजरात, हरियाणा, नई दिल्ली, कन्या भ्रूण हत्या की दर उतनी ही ज्यादा है। यह स्थिति तब है जब लिंग की जाँच को कानूनन अपराध की श्रेणी में रखा गया है। कन्या भ्रूणों की हत्या के आँकड़े समूचे वैधानिक प्रतिबंधों के बावजूद दिन–रात बढ़ रहे हैं। यह हमारी हिंसा की मनोवृत्ति भर नहीं है, बल्कि यह स्वार्थपरताओं का भयावह रूपक भी है।

कवि उदय प्रकाश 'औरत' शीर्षक कविता में इस स्थिति का अत्यन्त मार्मिक चित्रण करते हुए कहते हैं–

**gtkjk yk[k Nirh gS xHkZ dh v/kj esa
bl nfu;k esa tUe yus ls bdkj djrh gS
Okgk Hkh [kkt yrh gS mUgs Hkfn;k /ofu rjax
Okgk Hkh Hk.k esa mrjrh gS gR;kjh dVkjA**

यह आज के समय की एक सच्चाई है समकालीन कविता हमें इस सच्चाई से रूबरू करवाती है तथा उसके भयंकर परिणाम सामने आने से पहले हमें चेत जाने के लिए आगाह भी करती है।

कुलीन परम्पराओं और पुरूष वर्चस्ववादी व्यवस्था के चलते स्त्री ने सदियों से एक चुप्पी ओढ़ ली। उसके मौन को उसी कमजोरी मान कर उस पर अत्याचार किया जाने लगा। धीरे–धीरे यही मौन उसके व्यक्तित्व में रच–बस गया। वह सब कुछ चुपचाप सहन करने की आदी हो गयी।

समकालीन कवि अरूण कमल ने अपनी कविता 'एक बार भी बोलती' में ऐसी ही स्त्री की पीड़ा को व्यक्त करते हैं जो चुपचाप सारी यातनाओं को सहती जाती है–

**eSa mls cjh rjg MkVk
fQj Hkh og dN ugha cksyh jk;h Hkh ugha
vHkh Hkh es le> ugha ik;k
fd og dHkh cksyh D;k ughaA**[1]

यहाँ कवि को उसकी सहनशीलता पर आश्चर्य भी होता है साथ ही उसकी इस स्थिति पर क्षोभ भी। दरअसल सदियों से पितृसत्तात्मक समाज ने उसे मृदुभाषी, मितभाषी होने का पाठ पढ़ाया और अपनी सुविधा हेतु उससे अभिव्यक्ति का अधिकार भी छीन लिया और स्त्री इस स्थिति को अपनी नियति मान बैठी। अमृता प्रीतम के शब्दों में कहें तो–

**mxh gS] fiLh gS] cyu ls fcyh gS
vkt xe ro ij tks pkgs myV yk!
--------- vUunkrk!
Ekjh tcku vkj bUdkj
;g dSls gks ldrk gSA**[2]

अभिव्यक्ति का अधिकार न मिलने पर उसका आत्मविश्वास भी चूर–चूर हो गया। विवाह के कई वर्षों बाद भी वह पति की पिछलग्गू बनी रहती है। कवि लीलाधर जगूड़ी लिखते हैं–

**vdsyh vkjr ikj djuk pkgrh gS luh lMd
Vkx c<+ pqd ifr dk ihNk cykrh gS
Tkks fd ykV vkrk gS xLls vkj dgr ls
vdsyh vkjr 'kknh dh rhl o"kZ ckn Hkh
iNrh gS lMd ikj dj ysA**[3]

इस तरह खुद का कमजोर, असहाय समझने लगी और अपने निर्विकार जीवन की आदी औरत अणुवत अकेली होती गयी। अपने गृहस्थ जीवन, पति के लिए अपने सुख, इच्छाओं का त्याग करती गयी। कवि मंगलेश डबराल ने 'स्त्रियाँ' शीर्षक कविता में स्त्री के इसी त्याग, समर्पण एवं सहनशीलता का वर्णन करते हुए लिखा है–

**,d vk[k l glrh ,d l jkrh gbA
Okg fQj l vk igprh g i:"k d lkeu
tl mldk dN u Nhuk x;k gk
tl og mlh rjg djrh vk jgh gk iteA**[4]

यह सत्य है कि त्याग, समर्पण, क्षमा, प्रेम, स्त्रियोचित गुण है परन्तु कब तक इन सबके नाम पर वह स्वयं ही अपने स्वप्नों का गला घोटती जायेगी? यह एक बड़ा प्रश्न है समकालीन कवियों ने स्त्री के भीतर अपरिभाषित अपार जीवन को हिलोरें मारते देखा और महसूस किया।

स्त्री विमर्श और नारी जागरण के चौतरफा विमर्श की रोशनी में भी यातना और उत्पीड़न के अंधकार में जीती हुई कितनी ही स्त्रियाँ अभी भी हैं जो मुक्ति का स्वप्न देखती हुई जीवित हैं।

समकालीन कविता में कात्यायनी एक भूतपूर्व नगरवधू की दुर्गपति से प्रार्थना में ऐसी ही तड़पती इच्छाओं के बारे में बताते हुए कहती हैं–

**,d o{k d ru l ihB fVdkdj
de l de ,d ckj
Hky gh og ftnxh e vkf[kjh ckj gk
viu eu l ,d xhr xkuk g e>
ftldh dHkh fdlh u Qjekb'k u dh gkA
Tkyr jfxLrku e gh lgh
de l de ,d ckj e
viu fy, uR; djuk pkgrh gA**[5]

एक बार अपने लिए जी लेने की इच्छा। कवि अष्टभुजा शुक्ल स्त्री की ऐसी ही इच्छाओं का जिक्र करते हैं कि सारा जीवन नरक में बिताने की कीमत चुकाकर भी वे– ''एक बार दिल खोलकर खिलखिलाना चाहती थी/और सारा जीवन बिलखने को भी तैयार थीं/पर एक बार फफककर रोना चाहती थीं।''[6]

चन्द्रकान्त देवताले की कविता 'मेरा एक सपना यह भी' में रोजमर्रा के जीवन में खटती–रचती एक आम भारतीय स्त्री का वर्णन मिलता है, जहाँ स्वयं कवि का यह सपना है कि काश नींद में भी वह सुख से रह पाती, पर सोते वक्त भी अपने माथे की वो सलवटें नहीं मिटा पाती–

**l[k l ipydu l ugh
jpu&?kVu Fkdu l] lkbl g L=h
Ukhn e gl jr n[kuk ml
Ekjk ,d liuk ;g Hkh
lkj og rk ekFk dh lyoV rd
Ukgh feVk ikrh
lkdj HkhA**[7]

असद ज़ैदी की कविता 'बहनें' में विवाह के बाद स्त्रियों की दशा का वर्णन मिलता है जहाँ भाइयों के प्रति आत्मनिवेदन के माध्यम से बहनों के जीवन यथार्थ को सामने लाते हैं–

**dk;yk gk pidh g ge
Ckguk u dgk jr e /kslr g,
<d nk vc ge pkg
ge #drh g ;gk re tkvk
'kki dh rjg vkrh Fkh gekjh Fkjkrh gbA
ftUnfx;k e cgu VfQd l Hkjh lMdk ij
elhcr gkdj ljk ij eMjkrh Fkh
yMfd;k g ge yMfd;kA**[8]

इस कविता पर टिप्पणी करते हुए परमानन्द श्रीवास्तव ने ठीक ही लिखा है– ''असद ज़ैदी की कविता स्त्री के प्रति करूणा को जिन दूसरे अनुभवों से जोड़कर मूर्त करती है, उनमें स्त्री के बहाने एक पूरा संसार खुलने लगता है।''[9]

''दुलारी धिया'' शीर्षक अपनी प्रसिद्ध कविता में बद्रीनारायण ने भारतीय लोक को उपस्थित करते हुए विवाह के उपरान्त स्त्री के संघर्षों की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। आगन में कूदती–खेलती माँ–बाबुल की दुलारी धिया विवाह के बाद किस दुःख, संत्रास, पीड़ा से गुजरती है, इसका वर्णन करते हुए वे कहते हैं–

**ih ?kj e jkt djkxh nqykjh f/k;k
Nqykjh f/k;k fnu&Hkj
/kku mlhuu dh gfM;k cu
pkeg pYg ij /kdkxh
vdy e dgh Nqi d
e[d dh ;kn e nk&pkj /kkj QkMkxhA**

आजादी के इतने सालों बाद भी स्त्रियाँ सही मायने में स्वतंत्र नहीं हो पायी हैं। नरेन्द्र जैन अपनी एक कविता में आठ साल की सावित्री काजिक्र करते हैं जिसके लिए आजादी का अर्थ जूठें बर्तनों के सिवा और कुछ नहीं है। यहा कविता विकास के दौड़ में तेजी से आगे भागते भारत की चमचमाती तस्वीर के पीछे की कहानी को व्यक्त करती है–

**oDr d ml yEc nkj e
Ckny x;h nqfu;k
vkB cjl dh lkfo=h
fQj Hkh rirh /ki vkj Hkh"k.k tkM e
cqu ektrh g
vktknh dk vFk
fQj Hkh lkfo=h d fy, ugh jgxk
Fkkfy;k d tBu l T;knkA**

स्त्रियों के प्रति घर और समाज में बढ़ती हिंसा अपने समय की एक बड़ी त्रासदी है जिसकी शिकार पढ़ी–लिखी, अनपढ़ सभी महिलायें हैं। ताज्जुब की बात यह है कि घरेलू हिंसा को कानूनन अपराध माना गया है बावजूद इसके यह अपराध अब भी थमने का नाम नहीं ले रहा है। स्त्रियों के प्रति अपराध, हिंसा, यौन उत्पीड़न निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। सदियों से स्त्री को वस्तु, पुरुष के हाथों की सम्पत्ति ही मानने वाले पुरुष सत्तात्मक समाज पर व्यंग्य करती हुई कवयित्री रंजना जायसवाल कहतीं हैं–

**e i:"k g vkj tc e i:"k g
Rkk L=h lEifRr g ejh
[kjhn nq] cpq] c/kd j[k
Ekk:] tykÅ ;k u"V d:
;g ejh eth g oks Hkh bl l vf/kd D;k
mi;qx g L=h dkA**[10]

स्त्री है जो पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहती है, एक पुरुष है जो कंधे तक आयी स्त्री के आगे न बढ़ जाने के डर से उसे दबाने–डराने की भरसक कोशिश में लगा रहता है। परिवार और समाज द्वारा की जाने वाली हिंसा इसी का एक रूप है। समकालीन कविता इस पर व्यंग्य के जरिये अपने तेजाबी प्रश्नों की बौछार करती है। इसका विरोध करती है, अस्वीकृति दर्ज करती है।

घरेलू हिंसा की शिकार पढ़ी–लिखी, कामकाजी स्त्रियाँ भी हो रही हैं। सदियों की चुप्पी और खोखली मर्यादाओं का निर्वाह करते हूए पुरुष का अमानवीय व्यवहार सहने को विवश हैं। कात्यायनी के कविता के सहारे कहें तो –

''वे/हमें/हमारे वजूद की/याद दिलाते हैं/अहसास कराते हैं/एक वजूदवाली औरत को/प्यार करने का/उस पर काबू करने का/मजा ही कुछ और है।''[11]

कुमार अम्बुज की कविता 'किवाड़' भी समाज के वहशी वासनाओं से भरे उन पुरूषों का पर्दाफाश करते हैं जिनके लिए स्त्री मात्र एक खिलौना है चाहे उनकी उम्र भले ही गुड्डे–गुड़ियों के खेलने वाली क्यों न हो।

आज के संवेदनहीन समय का समाज स्त्रियों के लिए और भयावह एवं क्रूर होता जा रहा है। तेजी से पाँव पसारते बाजारवाद ने स्त्रियों की स्थिति को और अधिक दयनीय बना दिया है। बाजार और मीडिया ने स्त्री के लिए एक नया रीतिशास्त्र रच दिया है, वहा विक्रेता भी वही है और वस्तु भी वही। कात्यायनी के शब्दों में कहें तो–'' आज पूँजी चरित्र में भारतीय सामाजिकी–सांस्कृतिकी को इस उत्तर समाज में रूग्ण और बीमार बना दिया है जिसकी सर्वाधिक शिकार स्त्रियाँ है।''

निम्न वर्ग की कामकाजी, आदिवासी महिलाओं की स्थिति तो और अधिक दयनीय है। उन्हें भी पूँजीवाद विकृति के शिकार पुरूषों की हिंसा झेलनी पड़ती है–

**Mkd cxy esa vkfnoklh Hkh dU;k
gkuh pkfg, ;gk
vk;k ;gk dk tuthou dk vax gk
lk;Vdk dk fy,
ukdjkuh ,slh gk
fd gj ckr esa gl f[kyf[kykdj
txyh Qy fpVd x;k gkA**

समकालीन कविता में पुरुष मानसिकता का चित्रण भी मिलता है और समाज के लिए सीख भी मिलती है कि स्त्रियों के प्रति अपना दृष्टिकोण, अपना नजरिया बदलें। नारी चीज, कोई वस्तु नहीं है, वह भी इंसान है।

अनामिका की कविता 'कहती हैं औरतें' कुछ यही बयान करती है–

**Hkkxk x;k gedk
Ckgr nj dh fj'rnkjk dh n%[k dh rjg
,d fnu geus dgk
ge Hkh balku gk
ge Hkh dk;n ls i<k ,d&,d v{kj
tls i<k gkxk chE,E dh ckn ukdjh
dk igyk foKkiuA**[12]

समकालीन कवि ने स्त्री जीवन के तमाम संघर्षों को परखते हुए, उसकी भावनाओं से गहरे हुए, उसके को आत्मसात करते हुए, उसके मर्म को आत्मसात करते हुए अपनी लेखनी चलाता है। कहीं तो वह स्त्री दुःखों के बरअक्स अपनी कविता को अपर्याप्त मानता है।

इब्बार रब्बी अपनी कविता 'रोती हुई औरतें' में लिखते हैं–

**esa Hkhx jgk Fkk
Okg jk jgh Fkh
<hyk gvk ruko
Pkkgdj Hkh ikN ugh ldk vkl
;gh] fcYdy ;gh
dfork fy[krk jg x;k------**

स्त्री देवी है, गौरवशाली है, पूज्य है ये सारे शब्द तब तक बेमानी होंगे जब तक स्त्री को उसके सम्मान के साथ स्वीकार नहीं किया जायेगा। इस तरह के ''आप्त वाक्यों'' से स्त्री का भविष्य नहीं सँवर सकता।

स्त्री सदियों से महत्वपूर्ण होते हुए भी हाशिये पर डाल दी जाती रही है, उसे हमेशा से अपमान, उत्पीड़न, हिंसा का शिकार होना पड़ा है। मीरा के रूप में हमारे सामने ऐतिहासिक सच्चाई मौजूद है। स्त्री को उपदेश और नसीहतें तो असंख्य मिलीं लेकिन प्रेरणा और आश्वासन बहुत कम मिला। समकालीन कविता ने न सिर्फ स्त्री के संघर्षों, चुनौतियों को व्यक्त किया है बल्कि उसकी संवेदनाओं से गहरे जुड़ते हुए स्त्री मन को विश्वास की रोशनी से सराबोर करने का प्रयास भी किया। इस कठिन समय में समकालीन कविता स्त्री को मनुष्य रूप में स्थापित करने की जद्दोजहद के साथ उपस्थित होती है।

सनदर्भ :

1. सबूत (काव्य संग्रह)– अरूण कमल, ('एक बार भी बोलती', कविता), वाणी प्रकाषन, प्रथम संस्करण 1989, नवीनतम संस्करण 2004, पृ० 9
2. आज की कविता– विनय विश्वास, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2009, नई दिल्ली, पृ० 124
3. भय भी शक्ति देता है– लीलाधर जगूड़ी, राजकमल प्रकाशन, वर्तमान संस्करण, 2007, पृ० 92
4. आवाज भी एक जगह है– मंगलेश डबराल, 'स्त्रिया' (कविता), प्रथम संस्करण, 2000, वाणी प्रकाशन, पृ० 16
5. इस पौरूषपूर्ण समय में– कात्यायनी, परिकल्पना प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1999, दूसरा संस्करण 2008, पृ० 65
6. दुःस्वप्न भी आते हैं– अष्टभुजा शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ० 13
7. लकड़बग्घा हस रहा है– चन्द्रकान्त देवताले, संभावना प्रकाशन, रेवतीकुंज, हापुड़, प्रथम संस्करण, 1980, पृ० 17
8. बहनें और अन्य कविताए– असद ज़ैदी, जयश्री प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1980, पृ० 24
9. समकालीन कविता का यथार्थ– परमानन्द श्रीवास्तव, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण, पृ० 236
10. युद्धरत आम आदमी– सम्पादक– रमणिका गुप्ता, अंक–90, जनवरी–मार्च–2008, नई दिल्ली, पृ० 43
11. जादू नहीं कविता– कात्यायनी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002, पृ० 94

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 46-50

xkeh.k lLdfr vkj lonuk ds okgd % jkeujs'k f=ikBh

lquhrk dekj ik.Ms;*

गाँव की सोंधी मिट्टी वहाँ की वनस्पतियाँ और उन सब में व्याप्त खुशबू ग्रामीण संस्कृति और संवेदना का जीवंत उदाहरण है। गाँव की बोली–बानी, रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार, मेल–मिलाप, बात–चीत आदि में वहाँ लोगों की संवेदनाएँ जीवंत हो उठती हैं। वाल्मीकि हो या व्यास, कालिदास हो या भवभूति, प्रेमचंद हो या रामनरेश त्रिपाठी ये गाँव में ही जन्म लेते है। महानगरीय बोध के कथाकार नहीं हैं, न ही भौतिकवादी संवेदनाएँ इनमें दिखाई पड़ती है, अपितु गाँव की मिट्टी, ताल तलैया, गढ़ पोखर, मेड–डाड़, खाल–ऊँच, खर–पतवार, वेर, झरबेर विद्यमान होते हैं। जहाँ अनुपजाऊ भूमि है वहाँ रेह उड़ती है और आने जाने वाले लोग पगडंडी बना लेते हैं। घर, घास–फूस, मिट्टी, खपरैल आदि से बने होते हैं। भले ही अब शहरी संस्कृति के प्रवेश करने से ईंट के पक्के मकान बनने लगे हैं। रामनरेश त्रिपाठी ने 'ग्राम्य साहित्य भाग–एक' में लिखा है– ''अरे! ढाक के घने जंगल में, आम, महुवे, पीपल, इमली और नीम की घनी और शीतल छाया में नालों के कल रव के साथ तुलसी के चबूतरे के निकट, चमेली, माधवी, कामिनी और मालती के फूलों की सुगंध में, वंशी की ध्वनि में, कोकिल के अलाप में, लहराती हुई पुरवा हवा में और ललहाते हुये खेतों के किनारे जीवन का जो प्रवाह अनादि काल से प्रवाहित है, क्या हम उस प्रवाह से अलग हो गये हैं?''[1]

वहाँ का जन–जीवन अनेकाताओं में एकता का संचार करता है। ''जहाँ प्रत्येक कंठ से गान निकलता है। जहाँ की चौपालों में राजनीति के जटिल प्रश्न एक–एक वाक्य से सुलझाये जाते हैं। जहाँ मनुष्य मात्र के जीवन का निर्दिष्ट लक्ष्य और निश्चित पथ है। जहाँ धर्म के बंधन में सब प्रकार की स्वतंत्रता है। जहाँ प्रेम का नशा और आनन्द का उन्माद है। जहाँ के पशु–पक्षी, वृक्ष–लता, सूर्य–चन्द्र और मेघ भी मनुष्य–जीवन के सहचर है। जहाँ घटाये पतियों को घर बुला लाती हैं। जहाँ कोपले विरहिणियों के संदेश ले जाती है कि ''फागुन आ गया है। जहाँ कन्याएँ अपने लिये स्वयं वर चुनती हैं। जहाँ वर अपने लिये वधू पसन्द कर सकते हैं। जहाँ विवाह वासना–तृप्ति के लिये नहीं, बल्कि लोक–सेवा के लिये उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा से प्रेरित होकर किया जाता है। जहाँ माता के आकृत्रिम स्नेह की नदी, स्त्री के अखण्ड अनुराग की तरंगिणी, बहन के अपार प्रेम की सरिता और प्रकृति के शाश्वत शृंगार की धारा सदा प्रवाहित है।''[2]

लोगों के पहनावे में गाँव के गरीबी के साथ–साथ स्वाभिमान भी दिखाई पड़ता है। सूखी हड्डियों में बिखरे हुए सफेद बाल और तन पर सफेद धोती, पुरुष है तो धोती के साथ, बनियान या कुर्ता नवयुवक है तो कमर के नीचे कपड़े की मेकर कमर के ऊपर बनियान अथवा खादी का मोटा कुर्ता कोई गमछा या धोती नेकर के ऊपर लपेटे हुए जैसा दृश्य मिल जाता है। बालकों में वस्त्र या आभूषण का विशेष चाव नहीं होती। धोती या कुर्ता यदि फट भी जाता है, तो कई तरह से उसमें पैबंद लगाये जाते हैं और उन्हें जोड़कर या सिलकर धारण किया जाता है। ओढ़ने और विछाने के वस्त्र तो प्रायः कई पीढ़ियों के काम में आते है। कम्बल है दरी या चद्दर है। रजाई या गद्दा है तो वह आराम से दो या तीन पीढ़ियों तक चल जाता है। पुरुष होया स्त्री युवक हो या युवती सबके लिए स्वाभिमान से बड़ा कुछ नहीं है। निम्न श्लोक ग्रामीणों को पहनावे का संकेत करते है। ''किसी गरीब के पास एक ही वस्त्र है। वह उसके विषय में कहता है–

*षोध छात्र, हिन्दी एवं भाषा विज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म0प्र0)

v;a iVk e firjxHk"k.k firkegk}#iHkDr ;kouA
vyadkfj";R;Fkai= ik=dku e;k·/kuk i"iorks /kk;rsAA

यह वस्त्र मेरे पिता के शरीर का भूषण रहा है। जब यह नया था, तब पितामह ने इसका उपयोग किया था। अब यह मेरे पुत्र और पौत्रों को अलंकृत करेगा। मैं इसे फूल की तरह ही सँभालकर रखता हूँ।''[3]

ग्राम्य संस्कृति ने गाँवों की फटी हुई दीवारें यदि एक बार वर्षा हो जाए तो घंटो रोने वाले या छिजने वाले चिथड़े जैसे छप पर सड़ी हुई गलियाँ, घर द्वार पर उगे हुए घास या छोटी बड़ी वनस्पतियाँ कीड़े–मकोड़े, चींटी मेढ़क अन्य रेगनें या उड़ने वाले कीट पतंगे भी वहाँ की संस्कृति में अवकाश पाते हैं। लेकिन इनमें पृथक भी अपनी एक सुन्दरता होती है। इसके वाह्य सौन्दर्य को व्यक्त करते हुए रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं– ''तन और मन की आँखें तो खुली ही थीं। मैंने कान भी खोल दिये। मैं गाँवों का वाह्य सौन्दर्य बड़ा ही आकर्षक होता है। गरमी के तीन–चार महीने छोड़कर बाकी प्रायः सब महीनों में गाँवों के चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई पड़ती है। तालाब और कुएँ बनवा देना देहात में बड़े पुण्य और प्रतिष्ठा का काम समझा जाता है। जिसके पास कुछ भी धन बचता है, वह ये तीन काम अवश्यक करता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि चारों ओर आम के बाग ही बाग नजर आते हैं। पहले इन बागों के फल भी लोगों को मुफ्त मिला करते थे। पर पैसे की आवश्यकता बढ़ जाने से अब इनके फल नीलाम होने लगे हैं। पहले जमीदार लोग ऊसर और जंगल गायों के लिए छोड़ देते थे। पर अब उनका जाती खर्च इतना बढ़ गया है कि वे एक–एक बीता जमीन बेंचकर पैसे बना रहे है, फिर भी कर्जदार बने रहते हैं। जमीदारों ने नदी–नालों तक के पेट बेंच लिये है। उन्हें मनुष्यों के पेट की चिंता क्या है?''[4] अच्छा तो तब लगता है जब इन विपरीत संवेदनाओं में सुख का प्रकाश होता है। उस सुख को हम आँख से नहीं कान से देखते हैं, क्योंकि उनकी संवेदनाएँ दिखाई नहीं, सुनाई पड़ती है। बरसती हुई रात में रात–रात भर बेचारे सो नहीं सकते। किसी चारपाई के कोने में ऊकरू–मुकरू बैठकर रात बीता देते है, या ऐसे जैसे जगह बैठे या खड़े होते है। जहाँ छप्पर से पानी न टपक रहा हो और खड़े–खड़े ही सो लेते हैं। अथवा बैठे–बैठे रात बिता देते है, और सुबह से पुनः रात गयी बात गयी। सुबह उठकर पुनः पेट के धंधे में लग जाते हैं।

वर्षा ऋतु आषाढ़ से लेकर क्वार तक चार महीने चौमासा नाम से भी जानी जाती है। जिसमें सावन का महीना बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। चाहे कोई स्त्री अपने गीतों में सावन की घटा की तुलना उमड़ती जवानी से करे अथवा सावन में जो हिडोले (झूले) है। उनको अपने हृदय से जोड़े कभी–कभी ऐसा भी देखने में आता है कि जिनके पास रात्रि में सोने के लिए घर नहीं है वे भी ऊँचे स्वर में विरहा गाकर सामने उपस्थित दुःख को तुच्छ समझते हैं–

^^eu rkjk vngu ru rkjk pkmj] u;u eax d nkfyA
viu cye d touk tofrm] fcu ydMh fcu vkfxAA
Lkdy fpj;k mfM mfM tx] viuh viuh tuA
e rk ikfifu ifjm fitMok] ejm fcljj fcljAA
tkcu x;k rk D;k gvk j] ru l xbxyk;A
tu tu dk #Buk j] ge l lgk u tk;AA**[5]

यही नहीं कजरी आल्हा ये इस महीने का लोकप्रिय गीत भी है। कजरी का गान पेड़ों पर हिलेडे पड़ने से शुरू होता है। जिन पर दिन में लड़के तथा रात्रि में लड़कियाँ तथा बहुएँ झूलती तथा गाती है, चाहे देवरानी–जेठारी का झगड़ा होना सास–बहू का झगड़ा हो, ननद, भौजाई का झगड़ा हो सबसे रूबरू होने के बाद भी हिंडोले पर बैठने पर स्त्री प्रसन्न मन से गाती हैं–

^^ite fifjr jl fcjok j re fi; py yxk;A
lkpu dh lf/k yhtk n[km ejf> u tk;AA
ite fifjr jl fcjokAA**[6]

इसी महीने से त्योहारों का दौर शुरू होता है और त्यौहारों को मनाने के लिए मेले भी लगते हैं। सावन में नाग–पंचमी, सप्तमी, तेरस (त्रयोदशी) पूर्णमासी (गुरुपूर्णिमा) ऐसे अवसर है जहाँ मेले लगते हैं

और स्त्रियाँ अलग–अलग झुंडों में शामिल होकर मेलों में जाती हैं। यहाँ मेले पहुँचने की जल्दी नहीं है अपितु मिल–जुलकर गीत गाते हुए खुशी–खुशी जाते हैं। इनके गीतों में शांत या श्रृंगार रस प्रधान हैं–

^^j?kcj lx tkc] ge u vo/k ek jgcAA
tk j?koj jFk ij tbg] Hkb,s pyh tkcAAge0AA1A
tk j?koj cu Qy [kbg] Qkdyh fcfu [kkcAAge0AA2A
tk j?koj ikr fcNg] Hkb;k ifj tkcAAge0AA3A**[7]

ऐसा नहीं है कि वर्षा माह भर या सप्ताह भर लगातार होती है, लेकिन जब वर्षा होती है या लोक खाली होते है। तब गाँवों की चौपाल में फुरसत के वक्त आस–पास के मुहल्ले से लोग आकर बैठते है, जहाँ पर गाँ जवार की चर्चा होती है। चाहे वह कृषि कार्य की चर्चा हो, या किस्सा कहानी अथवा बीच–बीच में कहावत भी लगती है। इन कहावतों में घाघ और भड्डरी भी उपस्थित रहते है जो दृष्टांत भी देते हैं–

Ykfjdk Bkdqj c<+ fnokuA Ekfeyk foxqj+ lk> fcgkuAA

राजा बालक हो और उसका दीवान पुराना हो तो उन दोनों में नहीं पटेगी।

कोई कह रहा है–

vkyl uhn fdlku ukl] pkj ukl [kklhA vf[k;k yhcj clo ukl] ckc ukl nkslhAA

आलस्य और नींद से किसान, खासी से चोर, कीचड़वाली आँखों से वेश्या और दासी की संगति से बाबा (साधू) का नाश होता है। कोई कह रहा है–

^^tcjk dh egjk:] xko Hkj dh dkdhA vcjk dh egjk:] xko Hkj dh Hkkthas**[8]

जबरदस्त की स्त्री को सब काकी कहते हैं। पर निर्बल की स्त्री को सब भौजाई समझते हैं। कुछ लोगों के नजरों में देहात के लोग बहुत बेकार रहते हैं। कुछ लोग खेती के समय के बावजूद भी दोपहर के बाद का सारा वक्त गप्पे हाँकने, बड़ी–बड़ी बातें कहने एक–दूसरे की निंदा करने, तम्बाकू खाने या पीने में बिताते हैं। बड़े–बड़े गाँवों में अकसर हर वर्ष कोई न कोई कथा सुनाने वाले आते रहते हैं और गाँव वालों को उनकी रुचि के अनुसार धार्मिक कथाएँ जैसे– रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत की कथाएँ सुनाते हैं। गाँव का प्रत्येक स्त्री–पुरुष बड़ी ही आत्मीयता से कथा सुनते है और अपनी शक्ति और श्रद्धा के अनुसार कथा समाप्ति पर दानस्वरूप कथावाचक को द्रव्य जैसे पैसा–रुपया, वस्त्र और अन्न आदि देकर संतुष्ट करते हैं। प्रायः देखा जाता है कि कथा सुनाने वाले लोग मूल कथाओं के साथ और भी समसामयिक घटनाओं से जुड़ी कहानियाँ कहते रहते हैं। वे अपने कथाओं में बुराइयों की कड़ी आलोचना करते हैं, इससे गाँव के स्त्री–पुरुषों को अपने गुणों और दोषों की जानकारी होती रहती है, और वे कथा सुनाने वाले के थोड़े परिश्रम से, थोड़े समय में, अधिक से अधिक ज्ञान पा जाते हैं। इतना अधिक ज्ञान शायद वे गाँव की किसी बड़े पाठशाला या स्कूल से न प्राप्त कर पाते।

यदि भारतीय शिक्षा प्रणाली की बात की जाए तो भारत में पुरानी और नयी शिक्षा प्रणाली में एक अन्तर है, पुरानी शिक्षा प्रणाली का माध्यम कान है और नयी शिक्षा प्रणाली आँख। पहले लोग सुनकर अधिक सीखते थे। अब पढ़कर। वेद को श्रुति इसीलिए कहा जाता है। क्योंकि वह सुना जाता है, स्मृति को स्मरण रखना पड़ता है। कान द्वारा ग्रहण की गयी शिक्षा प्रणाली के लिए किसी कलम और काफी की आवश्यकता नहीं पड़ती। बल्कि खेलों कहानियों लोरियों के द्वारा यह प्रणाली चलती रहती है। बालक को माँ की गोद में लोरी का जो ज्ञान कराया जाता है। वह बच्चे के नैतिक शिक्षा के साथ–साथ व्यवहारिक ज्ञान भी प्रदान किया जाता है। एक गीत प्रायः सभी माँ अपने बच्चों को सुनाती है–

^^[krk erk yks Fk(,d dkfM;k ikbs Fk] xxk e cgkbs Fk]
Xkxk ekbs cky ge Hktok d nhu] Hktok gEe ykbs fng;s]
Å ykbs ?kfldjo nh fng;s] ?kfldjok gEe fng;s]
Å ?kfl;k ge x;k d nhu] x;k gEe n/k fng;s]
Okfg n/kok dk [kkj idk;m] f[kfj;k x tMkb] Hk;k x dkgkbs]
cfguh x euko] pyk Hk;k [kkb yk] Hk;k ekjs u nb rkyA**[9]

बच्चों के शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के विकास आवश्यक होता है। शारीरिक विकास के लिए वे शरीर की स्वस्थता के साथ अपनी खेती किसानी का ध्यान रखते हैं। क्वार या कार्तिक महीने में जब खरीफ की फसल कट जाती है रबी की फसल की तैयारी होती है तब खेतों को जाता है। बड़े–बड़े ढेलों को फोड़ने के लिए लड़के तथा नौजवान रात्रि में ही एक खेल खेलते हैं, जिससे उनके खेत के सारे ढ़ेले भी फूट जाते हैं। शारीरिक और बौद्धिक दोनों की मजबूतियाँ विकास के लिए, कबड्डी, पेड़ पर चढ़कर छूना, तालाब पर नदी में तैरना, बरसात में अखाड़ो में कुस्ती लड़ना, लम्बी कूद का का खेल ऐसे खेल हैं जिनसे शारीरिक विकास के साथ बौद्धिक विकास प्रमुख है। इसके लिए उन्हें कोई शुल्क नहीं देना पड़ता। शारीरिक विकास में पौष्टिक आहार सात्विक भोजन महत्वपूर्ण है। लोमड़ी और कौवे की कहानी से एक नैतिक शिक्षा भी मिलती है। भेड़िए की कहानी से धोखा, चतुराई, धूर्तता के प्रति लोगों को आगाह किया जाता है। कहानियाँ मन–मस्तिष्क और शरीर विकास का एक सरल माध्यम है। ऐसी कहानियाँ गद्य और पद्य दोनों में होती है। इन कहानियों में सभी प्रकार की क्षमता, बौद्धिकता को महत्व मिलता है। पुरुषों स्त्रियों का अलग–अलग साहित्य भी होता है। स्त्रियों का साहित्य गुड़ियों के खेल से शुरू होकर वैवाहिक जीवन तक की शिक्षा दे दी जाती है। विवाह के पश्चात बच्चों के लालन–पालन, देवरानी–जेठानी, ननद के प्रति कर्तव्यों की नैतिक शिक्षा दी जाती है।

पुरुषों का साहित्य स्त्री के साहित्य से कम समृद्ध नहीं है, जहाँ स्त्री का साहित्य घर के अन्दर है, वही पुरुष का साहित्य घर के बाहर है। पुरुषों के गीतों में वीरता, नीति, कर्तव्य, समर्पण की भावना और स्त्रियों के प्रति आकर्षण, त्याग, वैराग्य के भाव भरे होते हैं। इनमें आल्हा–ऊदल, लोरिक चंदा, हीर–रांझा, राजा भरथरी के गीत महत्वपूर्ण है। बड़े बुजुर्गों में बुझौवल कहावतें भी चलती है। यथा–

पाजामे का बुझौवल सुनिये–

nb eg NkV ,d eg cMkA vk/kk eub yhy [kMkA
chpk chp yxko Qk lhA uke lu vkor g gk lhAA

इसी तरह कढ़ाई और तवे पर भी बुझौवल है–

^^pkph d nb dku pkpk d dku uA
pkph prj l ;kfu] pkpk dN tku uAA**[10]

स्वास्थ्य और सफाई के लिए जिस ज्ञान की आवश्यकता होती है। वह ज्ञान ग्रामीणों में व्याप्त है ऐसा नहीं है कि उनके पास साफ–सफाई नहीं है, जो ज्ञान की कमी उनमें बताई जाती है। वह ज्ञान की कमी न होकर उनकी गरीबी है, और इसी गरीबी को ही उनकी अज्ञानता का प्रतीक बताया जाता है। उनकी कहावतों से प्रमाणित होता है कि उनमें पर्याप्त ज्ञान है। शादी, विवाह, मेले, तिथि, त्योहार आदि में नौजवान जिन वस्त्रों को धारण करके निकलते है। उन्हें देखकर कौन कह सकता है कि उनमें श्रृंगार के प्रति उदासीनता का भाव है, वे जिन फलों, बेरो को खाते हैं वे रोग का वर्धन नहीं करते बल्कि रोगों का नाश करते हैं। गूलर की तरकारी खाने से डायबटीज समाप्त हो जाता है। कोढ़, क्षय, दमा, ब्लड प्रेसर आदि बीमारी को समाप्त करने के नुक्से गाँव वालों के पास हैं। लहसुन के सेवन करने से क्षय रोग समाप्त हो जाता है, और बेल की पत्तियों का रस शहद में मिलाकर रोज सबेरे लेने से डायबटीज रोग मिट जाता है। मूली के पत्तों का अर्क गुड के साथ लेने से पीलियाँ रोग समाप्त हो जाता है। इसी तरह तांबे के पैसे को कांसे की थाली में दही के साथ घिसकर लगाने से एक्जिमा रोग समाप्त हो जाता है। हिन्दू परिवारों में लड़कों के कान छेदे जाते है इसका कारण है कि आँख की ज्योति बढ़ती है और पेशाब करते समय एड़ी उठाकर करने से अण्डवृद्धि नहीं होती। स्पष्ट है कि ये जो नुस्के हैं, इनका प्रयोग जीवन को सकारात्मक रूप में ले जाने के लिए किए जाते हैं।

गाँवों में वर्ष में दो बार घरों की सफाई की जाती है, एक दीपावली दूसरा होली। दीवाली में दीप जलाने के लिए घर को गाय के गोबर से लीपते हैं, होली में भी यही कार्य करते हैं। मनुष्य ही नहीं पशुओं की भी सफाई होती है। गाय, भैंस, बैल को नदी पोखर में स्नान करना, सींगों में तेल लगाना, उन्हें भी आकर्षक बनाना, ग्राम्य जनों की विशेषता है। खेती किसानी में एक दूसरे का सहयोग करना प्रमुख है।

ग्राम्य संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता उनके मानसिक संवेदनाओं के साथ उनका जुड़ाव है। वे प्रायः सभी संस्कारों, दैनिक जीवन के आचार विचार में संगीत को प्रधानता देते हैं। रामनरेश त्रिपाठी ने 'हामरा ग्राम्य साहित्य, कविता कौमुदी ग्राम्य साहित्य, संस्कृति का वर्णन किया है। उनके अनुसार– ''राह चलते हुए स्त्री–पुरुष गीत गा–गाकर थकान मिटाते चलते है, पालकी लिये हुए कहार गीत गा–गाकर काटते हैं, चरवाहा सुनसान जंगल में अपने गीतों से पेड़–पत्तों तक को जगाता रहता है, रात में किसान कोल्हू चलाकर ईख का रस निकालने के साथ अपने सरल और सरस ह्रदय का मधुर रस भी निकालकर जीवन के अनेक कष्टों से पीड़ित सहकर्मियों और दूर जाने वाले बटोहियों को बाँटता है। यही नहीं– ''ग्राम–गीतों ने गाँव के अन्तः पुरो, चौपालो, बाग–बगीचों, खेतों और खलिहानों में कहीं श्रृंगार रस का, कहीं करुण रस का, कहीं हास्य रस का और कहीं वीर रस का स्रोत खोल दिया है। सहृदय नर–नारी उसमें डुबकी ले रहे है, रसपान कर रहे है, मुग्ध हो रहे है और थोड़ी देर के लिये संसार के मायाजाल से मुक्त होकर स्वर्गीय सुख का रसास्वादन कर रहे हैं। नागरिक कवियों की कविता का ऐसा प्रभाव कहीं देखा नहीं गया।''[11]

रामनरेश त्रिपाठी 'ग्राम–जीवन' के कुशल चितेरे हैं। उनका बचपन व जीवन का अधिकांश समय अपने गाँव कोईरीपुर (सुल्तानपुर) में व्यतीत हुआ है। जिसके कारण उनके अन्तरमन में ग्रामीण संस्कृति, ग्रामीण संस्कार, रीति–रिवाज, रहन –सहन, प्राकृतिक चित्रण सभी कुछ उन्हें संस्कार के रूप में मिला था। त्रिपाठी जी 'ग्राम–गीत' को प्रकृति का उद्‌गार मानते है। उनका मानना है कि इन गीतों में ग्रामीणों के विभिन्न तरह की संस्कृति का भान (आभास) होता हैं। ये गीत विभिन्न अवसरों पर गाये जाते है। इनमें सभी तरह के गीत होते है– चाहे वह शादी–विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले हो अथवा फसलों की बुआई, निराई–गोडाई अथवा फसलों के कटाई के समय गाये जाने वाले गीत हो।

स्पष्टतः कहा जा सकता है कि इन ग्राम गीतों के लिए ग्रामीण लोगों ने कोई शब्द कोष नहीं बनाया, बल्कि गाँव के कारखानों में नये–नये शब्द ढ़ालते रहे। पुराने शब्दों को खरादते रहे। जो शब्द उन्हें सहज लगा उसे सहज स्वीकार किया। जो शब्द दुरुह लगा उसे भी सहज बनाकर अपने अनुकूल ढ़ाला। जैसे– लैन्टर्ा को हिन्दी में लालटेन कहा, हार्न को हारन कहा। इसी तरह ग्राम्य शब्दों को भी गढ़ा और पू को मिलाकर भोपू बनाया। इसी तरह कुछ शब्दों में प्रत्यय जोड़कर अपने अनुकूल बनाया। जैसे साठ से सठियाना बदल से बदलना। अरबी–फारसी, तत्सम, तद्‌भव, देसज, विदेशी सभी शब्दों को अपने अनुकूल ढ़ालकर भाषा से कहलवाना इनकी प्रमुख विशेषता बनी।

रामनरेश त्रिपाठी ने प्रायः भारत के सभी भागों में भ्रमण किया, उन्होंने ग्राम्य संवेदना, संस्कृति को प्रस्तुत करने के लिए अनेक काव्यों का सृजन किया। जिनमें मिलन (खण्डकाव्य–1917), पथिक (खण्डकाव्य–1920), स्वप्न (खण्डकाव्य–1927), मानसी (काव्यसंग्रह–1927), जयंत, प्रेमलोक, कन्या का तपोवन, वफाती चाचा, पैसा, परमेश्वर बा और बापू शीर्षक नाटक और एकांकी लिखा। यद्यपि उपन्यास, कहानी, आलोचना, जीवनी सभी क्षेत्रों में व्यापकता के साथ रचनाएँ की। उनमें द्विवेदी युगीन संस्कार और छायावादी संसार में अपनी ग्राम्य चेतना और साहित्य के साथ लोकप्रिय रहे।

1. ग्राम–साहित्य पहला भाग, संपा0 रामनरेश त्रिपाठी, पृ0 1–2, हिंदी मंदिर प्रयाग, प्रथम संस्करण–जनवरी 1951
2. वही, पृ0 3–4
3. वही, पृ0 8
4. वही, पृ0 11
5. वही, पृ0 13
6. वही, पृ0 14
7. ग्राम–साहित्य पहला भाग, संपा0 रामनरेश त्रिपाठी, पृ0 15, हिंदी मंदिर प्रयाग, प्रथम संस्करण–जनवरी 1951
8. वही, पृ0 16–17
9. कविता–कौमुदी, तीसरा–भाग, रामनरेश त्रिपाठी, पृ0 42, नवगीत प्रकाशन लिमिटेड, बंबई, दूसरा संस्करण–1955
10. वही, पृ0 52
11. वही, पृ0 65

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 51-53

lQh izek[;kud dkO;k esa ykdkRlo

MkO Kku idk'k exye*

lkjk'k % हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन काव्य में प्रेम मार्गी सूफी संतों के लोकोन्नमुखी काव्य संसार का महत्व विश्व में अविस्मरणीय है। परिवेश से विदेशी होते हुए भी प्रेम के इन अमर साधकों ने भारतीय समाज एवं संस्कृति को बहुत गहराई के साथ उसकी सम्पूर्णता में जुड़कर उसका अनुशीलन करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। इन सूफी संतों ने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित प्रेम कथाओं को अपने रचना संसार में स्थान प्रदान किया और अपने रचना संसार में स्थान प्रदान किया और अपने रचना संसार को जीवन्त और प्राणवन्त बनाया एवं भारतीय समाज एवं संस्कृति के अनछुये पहलुओं को सहज में उद्घाटित करने का गम्भीर प्रयास भी किया है। इन सूफी कवियों का भारतीय समाज और लोक संस्कृति के साथ बहुत गहरा जुड़ाव है। आश्चर्य होता है कि ये कवि भारतीय सामाजिक संरचना एवं लोक संस्कृति के साथ इस तरह जुड़े हुए हैं कि इनको यहाँ तक ज्ञात है कि किस समय और किस ऋतु में यहाँ के लोकोत्सव मनाये जाते है और उनके मनाने की विधियाँ क्या है? शायद यही कारण है कि ये सूफी प्रेममार्गी काव्य भारतीय समाज और संस्कृति के लिये प्रेरणा स्रोत का कार्य कर रहे हैं।

dqath 'kCn % सूफी, कवि, काव्य, समाज, संस्कृति, प्रेम उत्सव, श्रृंगार, प्रेमाख्यान, प्रस्ताव, सामूहिक, उल्लेख, जीवन, पर्व, नृत्य, स्नान।

ykdkRlo % जन्म से ही हिन्दू जीवन में उत्सवों का प्रारम्भ हो जाता है। संतानोप्तति के मांगलिक उत्सव में माता–पिता प्रसन्नता से दान लुटाते थे। 'मृगावती' में इस अवसर पर अद्भुत दान का वर्णन मिलता है। राजा ने भण्डार खोलकर दान देना प्रारम्भ किया। दान लेने वालों की दरिद्रता दूर हो गई है। भूखों को भोजन, प्यासों को पानी और नेगियों को कपड़ा दान दिया गया।[1]

'मधुमालती' में मनोहर के जन्म पर आनन्द–बधाइयां बनजे का उल्लेख है। प्रजा को पहनने के वस्त्र दान दिए गए। किसानों का एक वर्ष के लगान की छूट दे दी गई। वजावट में सारा हाट रेशमी वस्त्रों से छा गया। कस्तूरी, अगर और कर्पूर की सुगंधि से वातावरण अनुपूरित हो गया।[2] 'हंसजवाहिर' में हंस के जन्म पर सुल्तान के अत्यधिक दान का उत्साह देखने योग्य है। राजा ने भाण्डार खोल दिया, सोने की वर्षा की और थाल भर–भर कर मोती लुटाया। हाथी और घोड़े दान में दिये गए। सभी को वस्त्र पहनाया गया तथा सारे प्रजा को भोजन कराया गया। धर्मस्थानों पर स्वयं जाकर राजा ने दान दिया और उसने सबके दुख–दरिद्रय को धो दिया।[3] हिन्दुओं में जन्म आदि के मांगलिक प्रसंगों पर पौनियों को कपड़ा देने, ब्राह्मणों तथा शाह और भिखारियों को दान देने की परम्परा बड़ी पुरानी है।

NBh % पुत्र–जन्म के छठें दिन छठी उत्सव मनाया जाता है। लोक–जीवन में यह उत्सव अत्यंत प्रचलित है तथा इसे बड़े उत्साह के साथ सम्पन्न किया जाता है। इस उत्सव का सम्बन्ध प्रसूतिगृह की स्वच्छता से प्रतीत होता है। इसमें प्रसूता और नवजात शिशु को स्नान कराया जाता है। छठी की रात्रि का विशेष महत्व है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसी रात्रि में ब्रह्मा नवजात शिशु की भाग्यरेखाओं को लिखते हैं। अतः घृतदीप जलाकर स्त्रियां रातभर जागती रहती हैं और नृत्य–गान तथा आमोद–प्रमोद में समय बिताती हैं। यह भी विश्वास किया जाता है कि छठी की रात्रि तक निर्विघ्न बीत जाने के उपरान्त शिशु संकट से मुक्त हो जाता है।

सूफी प्रेमाख्यानों में छठी के इस उत्सव का उल्लेख हुआ है। 'पद्मावत' में छठी की रात्रि को आनन्द मनाने और हर्षोत्सव में पूरी रात बिता देने का वर्णन हुआ है।[4] 'मधुमालती' में इस अवसर पर छठी के विशेष वाद्यों के बनजे, घर–घर बधाइयां बनजे छत्तीस पौनियों द्वारा बधाई देने तथा श्रृंगार करके युवतियों द्वारा

*अध्यक्ष, इतिहास विभाग, बुद्ध पी0जी0 कालेज, कुशीनगर

मांगलिक गान गाने का उल्लेख हुआ है।[5] 'चित्रावली' में भी छठी के अवसर पर बाजों के बनजे और स्त्रियों के गायन में सारी रात बिता देने का वर्णन हुआ है।[6] छठी के उत्सव में भोज की प्रथा भी थी। 'नलदमन' में छठी के उत्सव पर सभी लोगों को निमंत्रित करके भोजन कराने का उल्लेख हुआ है।[7]

cjgh % पुत्र जन्म के बारहवें दिन बरही मनायी जाती है। इस दिन से प्रसूता, शिशु के साथ प्रसूति–गृह से बाहर आती है। कहीं–कहीं बरहीं के दिन ही शिशु के नामकरण की प्रथा है किन्तु प्रेमाख्यानों में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है। नलदमन में जन्म को नये दिन नामकरण का उल्लेख हुआ है :

NBh jtu Hkkj NBh c/kkokA u;s fnol efu uke /kjk;kA
cnu :i nfr nkfefu dlA bUg rs uke ne rh /kjkAA[8]

सूफी प्रेमख्यानों में 'मधुमालती' में ही इस उत्सव का नाम लेकर उल्लेख हुआ है। 'चित्रावली' में अरही का उल्लेख न करके कवि ने बारहवें दिन भोज का वर्णन किया है :

cjgs fnu lHk dVc tokokA ?kj ?kjgh rs uofr iBkokA
vfHkfjr ikp jlkbl lkthA lurfg ukms Hk[k fru HkkxhAA[9]

उपरोक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं छठी और कहीं बरही के दिन भोज देने की प्रथा थी।

fookg % विवाह के लिए सर्वप्रथम वर की खोज की जाती है। ब्राह्मण बराबरी के कुल के योग्य वर ढूंढ़ते थे। प्रारम्भिक वार्ता तय हो जाने पर कन्यापक्ष की ओर से कुछ मुद्राओं के साथ पुंगीफल वरपक्ष को दिया जाता था, जिसे वरक्षा, बरोक, मंगनी या फलदान कहते थे। आलोच्य प्रेमाख्यानों में वर ढूंढ़ने की इस परम्परा का उल्लेख हमें प्राप्त होता है। 'चंदायन' में इस प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार हुआ है :

pkFk cfjfl ?kfjfl tl ikÅA tbr ckykok ckHku ukÅA
nhfUg likjh ekfrUg gk:A dfgg egj lk ekj tgk:A
vm vl dgg ekj rs HkkbA jktk ub db djg lxkbA[10]

'चित्ररेखा' में राजा चन्द्रभान अपनी रूपवती कन्या के निमित्त वर खोजने के लिए बिप्र को अगुआ बनाकर भेजते हैं और उसे निर्देश देते हैं कि किसी उच्च और श्रेष्ठ कुल को देखकर टीका (तिलक) चढ़ा देना।[11] 'मधुमालती' में राजा विक्रमराज मधुमालती का मनोहर के साथ विवाह तय करने के लिए बारी को पाती लिख कर भेजते हैं।[12] साधारणतः विवाह–प्रस्ताव लेकर कन्या पक्ष ही वरपक्ष के यहां जाता था, पर कभी–कभी वरपक्ष भी कन्यापक्ष के यहां सम्बन्ध स्थापना के लिये प्रस्ताव भेजता था। शुभलग्न और घड़ी में विवाह का मुहूर्त तय करते थे।[13] विवाह के लिए जाते समय अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार लोग बरात सजा–बजा कर जाते थे। इन प्रेमाख्यानों में बारात की तैयारी, उसकी शोभा और जनवासा आदि का वर्णन मिलता है।

बरात पहुंचने पर सर्वप्रथम अगुवानी होती थी। दो स्त्रियां मांगलिक कलशों को अपने शीश पर रखकर सज्जा के साथ आती थी जिसके बाद बारात कन्यापक्ष के द्वार पर चलने के लिये प्रस्थान करती थी और कन्यापक्ष वाले आगे बढ़कर बारात का स्वागत करते थे।[14]

द्वारचार के समय गीत तथा समधी और बारातियों के नाम से मधुर गालियां गायी जाती थीं, जिसका उल्लेख भी मधुमालती में हुआ है :

cgfj tuh nl ikN vkbA lujl dlB ekrfg xfj;kbA
fp=lu dg le/kh uk,A xkjh nfg gjf[k jl Hkk,A
vkj e/kekyfr pfj Fkkbl iekl dg xfj;kofg tkbA[15]

'चित्रावली' में चेरियां गाली गा रही हैं जिनमें समधी के साथ–साथ नाऊ को गाली गाई जा रही है।[16] अगुवानी हो जाने के उपरान्त बारात पुनः पड़ाव पर लैट जाती थी।

विभिन्न वैवाहिक कृत्यों में वर को दायज के रूप में विविध वस्तुएं और सम्पत्ति प्राप्त होने की प्रथा मिलती है। बरात विदा होने पर दायज में मिली हुई वस्तुओं को सजाकर ले जाया जाता था। 'पद्मावत' में रत्नसेन जब कुछ दिन सिंहल द्वीप में रहकर चित्तै के लिए प्रस्थान करता है तब उसे दहेज में सुसज्जित पालकियों में एक सहस्त्र चेरियाँ, चार लाख पेटियों में रत्न, माणिक्य और मोती, असंख्य घोड़े

और सिंहली हाथी प्राप्त होते हैं।[17] विवाह के अवसर पर उसे दायज में इतनी वस्तुएँ प्राप्त हुई थीं कि कवि उनके वर्णन में ही अपने को समर्थ नहीं पाता है :

Hk Hkkofj uoNkofj] jktpkj lc dhUgA
Nkbt dgk dgk yfx] fyf[k u tkb rr nhUgAA[18]

lrh i:Fkk vkj tkgj % यह प्रथा विशेष रूप से राजपूतों में प्रचलित थी। सूफी प्रेमाख्यानों मे इसके उल्लेख मिलते हैं। 'चित्ररेखा' में जब नायिका का पति अपनी आयु समाप्त समझकर काशीलाा लेने चला जाता है तो वो सती होने की पूरी तैयारी कर लेती है। इस अवसर पर वह उसी प्रकार श्रृंगार करती है जैसा विवाह के समय होता है।[19]

'मृगावती' में राजा जब शिकार खेलते समय दिवंगत हो जाते हैं तब इस समाचार को पाकर उनकी दोनों प्रमुख रानियां–मृगावती और रूपमिनी तथा अन्य चौरासी रानियां गंगा के तट पर चिता सजाकर अपने पति के शव के साथ सती हो जाती हैं।[20]

सती प्रथा का ही दूसरा रूप जौहर है। राजपूताने में यह प्रथा विशेष रूप से प्रचलित रही है। युद्धकाल में जब राजा युद्ध के लिये प्रयाण कर जाता था तब गढ़ के रनिवास में पहले से चिता सजा कर रखी जाती थी। राजा की मृत्यु का विश्वास हो जाने पर रानियां सामूहिक रूप से अग्नि की लपटों का आलिंगन करती हुई भस्म हो जाया करती थी। इस सम्बन्ध में लिखा गया है कि जौहर राजपूतों के उस सामूहिक आत्महनन को कहते हैं जिसे वे विजेता के सामने हार स्वीकार करने से श्रेष्ठ समझते थे। पुरूष अपने प्राण विसर्जन तक युद्ध करते रहते थे और स्त्रियां अग्नि की लपटों में कूद पड़ती थी।[21]

हिन्दू इतिहास में चित्तौड़गढ़ का जौहर विशेष प्रसिद्ध है जिसमें पद्मिनी अपने सखियों के साथ जल मरी थी। 'पद्मावत' में इसका वर्णन मिलता है। सती प्रथा की भांति ही इसमें भी रच–रच कर चिता सजाई जाती है और विवाह के समान ही श्रृंगार करके तथा चिता की सात भांवरि लेकर रानियाँ चितारोहण करती है।[22]

इस प्रकार जीवन के विभिन्न उल्लासपूर्ण अवसरों का जो लोक सम्मत चित्र सूफी प्रेमाख्यानों में मिलता है उससे तत्कालीन हिन्दू लोकजीवन जीवंत हो उठता है।

lUnHk

1. वासुदेवशरण अग्रवाल : पद्मावत, छन्द 299
2. माता प्रसाद गुप्त : चांदायन, छन्द 85
3. मोतीचन्द्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ0 185–190
4. वासुदेवशरण अग्रवाल : पद्मावत, छन्द 47
5. माता प्रसाद गुप्त : मृगावती, छन्द 7, वासुदेवशरण अग्रवाल : पद्मावत, छन्द 47
6. माता प्रसाद गुप्त : मृगावती, छन्द 243
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी : नाथ संप्रदाय, पृ0 14
8. माता प्रसाद गुप्त : चंदायन, छन्द 20
9. वही, छन्द 164
10. वही, छन्द 126
11. माता प्रसाद गुप्त : मृगावती, छन्द 106
12. माता प्रसाद गुप्त : मधुमालती, छन्द 172, 173
13. वही, छन्द 172
14. वासुदेवशरण अग्रवाल : पद्मावत, छन्द 499
15. वही, पद्मावत, छन्द 512
16. वही, पद्मावत (टिप्पणी), छन्द 512
17. वही, छन्द 512
18. वासुदेवशरण अग्रवाल : पद्मावत (टिप्पणी), छन्द 513
19. वासुदेवशरण अग्रवाल : नलदमन, प0 100
20. वासुदेवशरण अग्रवाल : पद्मावत, छन्द 297
21. वासुदेवशरण अग्रवाल : पद्मावत, प0 101
22. उदयशंकर शास्त्री : भाषा प्रेमरस, छन्द 205

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 54-58

Hkkjrh; jk"Vªh; vkUnksyu esa efgykvksa dh fLFkfr

¼fo'k"k lanHkZ % efgyk lxBu vkj mudh miyfC/k;k½

txekgu dqekj*

अब तक विश्व के इतिहास प्रसिद्ध राष्ट्रीय आन्दोलनों में भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन सर्वथा अलग एवं विशिष्ट है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उद्देश्य से आहुत और संचालित आन्दोलनों में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन सर्वथा अपनी अहिंसकता के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है और इतिहास प्रसिद्ध है। भारत के हर वासी ने इसमें अपनी–अपनी भूमिका निभाई। महिलाओं ने पूर्व की भाँति ही इसमें अपना सार्थक एवं महत्वपूर्ण योगदान सिद्ध ही नहीं किया वरन् उसे दिशा और गति देने में भी भूमिका निभाई। घरेलू स्तर से लेकर राजधानी के स्तर तक महिलाओं ने अपना बहुमूल्य योगदान सिद्ध किया। सन् 1885 ई० में काँग्रेस की स्थापना के साथ जो राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हुआ, वह आन्दोलन विभिन्न पड़ावों को पार करते हुए 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त ही समाप्त हुआ।

सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन की विफलता के कारणों पर विचार करने के बाद यह पाया गया कि यह आन्दोलन असंगठित रूप से किया गया। लेकिन इस प्रयास ने यह बता दिया कि सम्पूर्ण भारत में गुलामी से मुक्ति की भावना प्रबल होती जा रही है। संपूर्ण भारतीय जनमानस संगठित रूप से एक और प्रयास करने की सोच रहा था। इसमें व्यक्तिगत और सांगठनिक दोनों स्तर से प्रयास किया जा रहा था।

उपर्युक्त के साथ–साथ ही जनमानस में शिक्षा का अभाव महसूस किया जा रहा था। क्योंकि अशिक्षित व्यक्ति न तो अपने अधिकारों को समझ सकता है न उनकी प्राप्ति के लिए समुचित प्रयास ही कर सकता है।इस क्रम में सुधार आन्दोलनों की बड़ी भूमिका दिखाई देती है। जहाँ एक ओर इन आन्दोलनों ने मानवीय समानता का भाव जागृत किया अर्थात् स्त्री पुरूष समानता पर बल दिया, महिलाओं एवं उनके अधिकारों की स्वीकृति दिलाने हेतु अति महत्वपूर्ण योगदान किया वहीं महिलाओं को अपने महत्व का ज्ञान करा कर जीवन के हर क्षेत्र में पुरूषों के साथ आगे आने की प्रेरणा भी दी। इन प्रयासों की पूर्व पीठिका का निर्माण आरम्भ हो गया था। ''महात्मा ज्योतिबा फूले ने सशक्त संघर्ष के बाद (1848 में पूणे में) लड़कियों के लिए एक विद्यालय की स्थापना की। भारतीय लड़कियाँ शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़ी हुई थीं। उनकी समाज में भी स्थिति अत्यंत दयनीय थी। भारतीय समाज नानाविध रूढ़ांधताओं का घर था। यह मानना पड़ेगा कि अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा भारतीयों को पाश्चात्य जगत की विचारधारा और जीवन पद्धति का अवबोध हुआ। उन्हें निःसन्देह जीवन–अस्तित्व की बात ने काफी झकझोरा।''[1]

नवजागरण काल के इस पहले चरण में विभिन्न संस्थाओं व तत्कालीन प्रसिद्ध समाज सुधारकों ने सामाजिक सुधार एवं राष्ट्रीय चेतना के विकास का संयुक्त आन्दोलन चलाया। इन संस्थाओं और राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, गोपाल कृष्ण गोखले, महादेव गोविन्द रानाडे, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा फूले, महर्षि कर्वे, मालाबारी, भंडारकर आदि पुरूषों की प्रेरणा से महिलाओं की प्रारंभिक भूमिका एवं उनकी भागीदारी भले ही स्थानीय शाखाओं तक सीमित रही हो लेकिन इसी जागृति ने स्थानीय, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तरों पर महिलाओं के अगले नेतृत्व को एक नयी राह भी दी।

अंग्रेजी शासन से भारत की मुक्ति वस्तुतः एक राजनैतिक सत्ता परिवर्त्तन की प्रक्रिया थी। इसके लिए समाज को संगठित कर उसमें राष्ट्रीय एवं राजनैतिक जागरूकता का विकास परम आवश्यक था। जागरूकता के छिट–पुट प्रयास आरम्भ हो गये थे।एक ऐसा संगठन जिसमें सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व हो और जो राजनैतिक रूप से शासन का विरोध तो करे ही विकल्प भी प्रस्तुत करे, की तीव्र

*शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफरपुर, बिहार

आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। अंग्रेजों के विरूद्ध विभिन्न तबकों, वर्गों, संस्थाओं, समूहों और इनके द्वारा प्रतिपादित राजनैतिक विचारों को एक साझा स्वरूप और सशक्त मंच देने का प्रयास ही कांग्रेस के गठन की पृष्ठभूमि बनी।

कांग्रेस के नेतृत्व के केन्द्र–बिन्दु में कलकत्ता और बम्बई के वे लोग थे जो 1860 के दशक के अंतिम और 1870 के दशक के आरंभिक वर्षो में आई०सी०एस० के लिए अथवा कानून पढ़ने के सिलसिले में लंदन गए थे, और व्यापारी एवं प्रचारक का काम कर रहे थे। ये थे– फीरोजशाह मेहता, बदरूद्दीन तैयबजी, डब्ल्यू०सी० बनर्जी, मनमोहन और लालमोहन घोष, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आनन्द मोहन बोस और रमेशचन्द्र दत्त। उस समय कई संगठन कार्यरत थे। उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण संगठन थे– पूना सार्वजनिक सभा (1870), इंडियन एसोसिएशन (1876) जिसने प्रशासनिक सेवा और प्रेस एक्ट के मुद्दों को लेकर 1877–78 में सर्वप्रथम अखिल भारतीय आंदोलन किया, मद्रास महाजन सभा (1884) और बॉम्बे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन (1885)। 1880 के आरम्भ से ही इन संस्थाओं को अखिल भारतीय स्तर पर साथ लाने के चर्चे और प्रयास होने लगे थे। इंडियन एसोसिएशन ने तो कलकत्ता में 1883 और 1885 में दो राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन भी किया था। किन्तु अंततः एलन ऑक्टेवियन ह्यूम की पहल कदमी पर किया गया प्रयास ही स्थायी आधार पर सफल हुआ और (28) दिसम्बर, 1885 में बहुत सीमा तक स्व–नियुक्त 72 प्रतिनिधि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन के लिए एकत्र हुए।[2]

कांग्रेस की स्थापना के बाद संगठित रूप से सब को साथ लेकर आजादी के प्रयास किये जाने लगे। सब को साथ लेकर विभिन्न वर्गों के साथ महिलाओं को भी शामिल करने की आवश्यकता अनुभव की गई। भारत की आधी आबादी की भागीदारी के बिना उद्देश्य प्राप्त करना असंभव माना गया। इसी मानसिकता के तहत कांग्रेस की स्थापना और विकास के साथ उद्देश्य प्राप्ति में महिलाओं का योगदान उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण होता गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सदस्यता स्त्रियों के लिए खुली थी। ''बम्बई में आयोजित कांग्रेस के पंचम अधिवेशन में छः महिला प्रतिनिधियों ने भाग लिया था– रमाबाई रानाडे, स्वर्ण कुमारी घोषाल, निकम्ब, रमाबाई पंडित, विद्यागौरी नीलकण्ठ व कादम्बिनी गांगुली।''[3] इसके पहले स्वर्ण कुमारी देवी ने सखी समिति की स्थापना की। बंगाल–विभाजन विरोधी आन्दोलन में भी स्त्रियों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। गाँधीजी ने स्त्रियों से स्वराज प्राप्ति के संघर्ष में पुरुषों के समान भाग लेने की अपील की। हजारों की संख्या में विभिन्न वर्गों, जातियों, धर्मों की स्त्रियों ने उनके नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया। इसके साथ–साथ क्रान्तिकारी आन्दोलन भी स्त्रियों की भागीदारी से अछूते नहीं रहे।[4]

1917 का वर्ष भारतीय नारी–प्रगति के इतिहास में मील का पत्थर माना जाता है। कांग्रेस के तैंतीसवें अधिवेशन (कलकत्ता, 1917) की अध्यक्षता डॉ० एनी बेसेन्ट ने की जो पहली महिला कांग्रेस अध्यक्ष बनीं। इसके बाद कांग्रेस का इकतालीसवाँ अधिवेशन श्रीमती सरोजिनी नायडू की अध्यक्षता में सन् 1925 में कानपुर में हुआ था। अड़तालीसवाँ अधिवेशन श्रीमती नीली सेन गुप्ता की अध्यक्षता में सन् 1933 में कलकत्ता में सम्पन्न हुआ। स्त्रियों की राजनीतिक भूमिका पर टिप्पणी करते हुए तनिका सरकार लिखती हैं कि ''घर–परिवार के दबाव ही उनको अपनी भूमिका तय करने में मजबूर करते रहे हैं। कभी–कभी अपवादस्वरूप ही यह उनका स्वतंत्र निर्णय हो सकता था। मसलन भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान, गाँधीजी के नेतृत्व में चलाए गए असहयोग आन्दोलनों में स्त्रियों की भूमिका भी परिवार, जाति, वर्ग और धर्म पर पड़ रहे दबावों के कारण ही बढ़ी। मध्यवर्गीय स्त्रियों की भागीदारी पुरूषों को अंग्रेजी सरकार के जेलों में बंद कर दिए जाने से ही बढ़ी। नेहरू अपनी पुस्तक 'भारत एक खोज' में मानते हैं कि महिलाओं की इस सक्रियता ने अंग्रेजी सरकार को ही अचंभित नहीं किया वरना कांग्रेसी नेता भी भौचक्के रह गए। हालांकि मोतीलाल नेहरू को अपने घर की स्त्रियों का इस तरह गरम दुपहरियों में, सड़क पर आकर पुलिस का अत्याचार झेलना पसंद नहीं था पिफर भी गाँधी के नेतृत्व में उनकी पत्नी, बेटियाँ, बहू सड़क पर आन्दोलन करने आ गयीं।''[5]

efgyk lxBu vkj mudh miyfC/k;k¡ % बीसवीं सदी का दूसरा दशक नवजागरण काल के दूसरे चरण के रूप में जाना है, जहाँ नारी–आन्दोलन केवल पुरुष–प्रेरक और पुरुष–संचालित नहीं रहा, बल्कि स्वयं

स्त्रियों ने भी आगे बढ़कर उसका नेतृत्व किया। समाज–सुधार, स्त्री–शिक्षा, स्त्री अधिकारों के लिए स्वयं संघर्ष और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा चलाए जा रहे स्वतंत्रता–संग्राम में स्त्री भागीदारी ने महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को और उजागर और सशक्त किया। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाएँ भी पुरुषों के साथ काटों भरी राह पर चलीं, लहूलुहान हुयीं। इन्हीं त्याग–बलिदान से आगे की राह खुली और स्वतंत्र भारत के समानाधिकार वाले संविधान की मंजिल तक पहुँची। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हमारे देश में जो नारी–जागृति की लहर आयी, उसने दूसरे दशक को बल प्रदान किया। इसमें एनी बेसेन्ट, मार्गरेट कजिंस, सरोजिनी नायडू जैसी अग्रणी सामाजिक–राजनैतिक नेत्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस क्रम में तत्कालीन और आधुनिक विश्लेषकों ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की विस्तृत चर्चा ही नहीं की है वरन् उसका सूक्ष्म विश्लेषण भी किया है। उनमें कुछ प्रमुख द्रष्टव्य और विचारणीय हैं।

मार्गरेट कजिंस एक आयरिश महिला थीं। भारत आने से पहले आयरलैण्ड में 'स्त्री–मताधिकार आन्दोलन' चला चुकी थीं। भारत में भी कांग्रेस–अध्यक्ष पद पर एक महिला को विराजमान देखकर महिला मताधिकार आन्दोलन के लिए उन्होंने यही उपयुक्त अवसर समझा और देशभर में बिखरी कई महिला संस्थाओं को एकत्र करके 1917 में 'वीमेन्स इंडियन एसोसिएशन' की स्थापना की, फिर इस संस्था के माध्यम से महिला–मताधिकार आन्दोलन का सफल संचालन किया।[6]

गाँधीजी की प्रेरणा से एनी बेसेन्ट की अध्यक्षता में एक प्रस्ताव पास कर माँग की गयी कि स्त्रियों को भी पुरूषों के समान ही मताधिकार प्रदान किया जाये। फिर 18 दिसंबर, 1917 को श्रीमती सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में 14 प्रमुख महिलाओं का एक शिष्टमंडल मिस्टर मांटेग्यू, सेक्रेटरी ऑपफ स्टेट फॉर इंडिया और वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड से मिला। पहलकर्त्ता और संगठनकर्त्ता थीं, मार्गरेट कजिंस। यद्यपि, महिलाओं की सामाजिक निर्योग्यताओं की आड़ में, 'माउंट फोर्ड रिफॉर्म्स स्कीम' के अनुसार ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने उस समय भारतीय स्त्रियों को मत देने का अधिकार प्रदान नहीं किया, किन्तु उसने प्रांतीय विधान सभाओं को यह अधिकार दे दिया कि वे चाहें तो इस मामले पर विचार कर सकती हैं। 'वीमेन्स इंडियन एसोसिएशन' तथा उससे संबंधित अन्य संस्थाओं– महिला सेवा समाज, वीमेन्स होम रूल लीग, इंडियन वीमेन्स यूनिवर्सिटी ने मिलकर ब्रिटिश सरकार के इस रवैये का कड़ा विरोध किया और अपनी गतिविधियाँ तेज कर दीं। तब ब्रिटिश सरकार को यह मामला प्रांतीय विधान परिषदों को सौंप देना पड़ा।

सर्वप्रथम 1919 में मद्रास विधान परिषद ने एक प्रस्ताव पास करके महिलाओं को सीमित मताधिकार दे दिया। 1926 तक लगभग सभी प्रांतों में स्त्रियों को उन्हीं शर्तों पर मत देने का अधिकार मिल गया था, जो कि उन प्रांतों में पुरुषों के लिए लागू था। अप्रैल, 1926 में भारत सरकार ने एक कदम और उठाकर महिलाओं को प्रांतीय विधान सभाओं के चुनाव लड़ने का अधिकार भी प्रदान कर दिया। मद्रास, बम्बई, पंजाब और केन्द्रीय प्रांतों ने इस दिशा में शीघ्र कदम उठाये और भारतीय महिला परिषद ने तुरंत श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय को दक्षिण कनारा चुनाव क्षेत्र से मद्रास विधान परिषद के लिए खड़ा कर दिया। प्रथम बार चुनाव लड़ने वाली अकेली महिला श्रीमती चट्टोपाध्याय यद्यपि उस समय 4976 वोटों के मुकाबले 4461 वोट प्राप्त कर हार गयीं, पर प्रतिद्वंदी को प्राप्त वोटों का यह न्यून अंतर राजनैतिक क्षेत्र में उस युग की महिलाओं की एक महान नैतिक विजय माना गया। इससे प्रेरित हो, भारतीय प्रतिनिधि को विधान सभा में भाग लेने के लिए राजी कर लिया गया। फलस्वरूप डॉ. मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी 'पहली महिला विधायक' के रूप में विधान सभा में पहुँची और शीघ्र ही विधान सभा की उपाध्यक्ष चुन ली गयीं।[7]

इसके पूर्व 1925 में श्रीमती सरोजिनी नायडू कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर सुशोभित हो चुकी थीं। 1927 में 'ऑल इंडिया वीमेन्स कांफ्रेन्स' की स्थापना हुई। यह अखिल भारतीय महिला संगठन यद्यपि प्रकृति में गैर–राजनीतिक था, पर स्त्रियों में सामाजिक सुधारों के साथ राजनैतिक जागृति लाने में प्रारंभ से ही गतिशील रहा। महिलाओं के सभी क्षेत्रों में समान अधिकारों के लिए इसने जमकर संघर्ष किया और अनेक सफलताएँ प्राप्त कीं। आज भी यह संगठन महिलाओं की उन्नति के लिए सक्रिय सबसे बड़ा व सशक्त संगठन है। इस संगठन का नारा रहा, 'समान अधिकार (विशेष अधिकार नहीं) और समान दायित्व'। किसी तरह की कोई रियायत या आरक्षण–सुविधा पाने के पक्ष में किये जाने वाले प्रयत्नों का इसने सदा खुलकर विरोध किया था।[8]

1927 के 'कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल' में महिला परिषद के प्रतिनिधित्व ने 'बिना लिंग–भेदभाव के समान अधिकार व समान कर्त्तव्य' की धारा जोड़ने पर बल दिया। पहली 'राउंड टेबुल कांफ्रेन्स' में बेगम शाहनवाज और श्रीमती राधबाई सुब्रायन ने भाग लेकर महिला मतदाता–संख्या में वृद्धि करने की माँग की। दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने 1931 में जब महात्मा गाँधी लंदन गये तो सरोजिनी नायडू ने उनके साथ जाकर महिलाओं का प्रतिनिधित्व किया। 1935 में ब्रिटिश संसद द्वारा जब 'भारत सरकार अधिनियम' पास कर केवल मतदाताओं की पत्नियों को ही मत देने का अधिकार प्रदान किया गया तो विधानसभाओं के लिए लार्ड लुदियन की अध्यक्षता में बनायी गयी कमिटी में राजकुमारी अमृतकौर, श्रीमती लक्ष्मी मेनन, श्रीमती राममूर्ति तथा श्रीमती माणिकलाल ने महिलाओं का प्रतिनिधित्व कर लिंग, जाति, संप्रदाय के भेदभाव पर आधारित इस मतदान अधिकार का खुलकर विरोध किया। किन्तु 1920 के अधिनियम की अपेक्षा इसमें कुछ अधिक सुधारात्मक उपाय निहित होने से राष्ट्रीय कांग्रेस ने सरकार से कुछ स्पष्टीकरण प्राप्त कर इसे एक प्रयोग के तौर पर स्वीकार कर लिया। 1937 में जब 6 प्रान्तों में कांग्रेस–मंत्रिमंडल बने तो एक अच्छी संख्या में महिलाएँ विधानसभाओं की सदस्य चुनी गयीं और कुछ मंत्री व उपाध्यक्ष भी बनीं। उत्तर प्रदेश के मंत्रिमंडल में सम्मिलित श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित, 'पहली महिला मंत्री' थीं। श्रीमती अनुसूइया बाई काले केन्द्रीय प्रान्त की और श्रीमती अम्मू स्वामीनाथन, श्रीमती राधबाई सुब्रायन केन्द्रीय विधान सभा की सदस्य बनीं। सन् 1937 में कुल 80 स्त्रियाँ विधानसभाओं में चुनकर गयीं। यह संख्या उस समय विश्व में तीसरा स्थान रखती थी।[9]

मुस्लिम स्त्रियाँ भी इन गतिविधियों से अछूती नहीं रहीं। अपने संप्रदाय के आधार पर बने संगठनों के अलावा वे ऑल इंडिया वीमेन्स कांफ्रेन्स में भी सक्रिय हुईं। दो संप्रदायों की स्त्रियों ने साथ–साथ मताधिकार, शिक्षा तथा कानूनी अधिकारों के लिए काम किया। दोनों संप्रदायों की महिला संगठनों ने पर्दे का विरोध किया।[10] संभ्रान्त मुस्लिम महिला आदि संगठनों ने भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को गति देने में प्रभावी एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1901–1902 में हैदराबाद लेडिज एसोसिएशन की स्थापना हुई। 1913 में बेगम खेदिव जंग ने अंजुमन–इ–खवातीन–इ–इस्लाम (मुस्लिम लेडिज एसोसिएशन)एवं 1919 में श्रीमती हुमायूँ मिर्जा ने अंजुमन–इ–खवातीन–इ (दक्कन लेडिज एसोसिएशन) की स्थापना की। इसका लक्ष्य भी शिक्षा तथा मुसलमान स्त्रियों के वाजिब अधिकारों को प्राप्त करना था। इसमें लड़कियों के विवाह की न्यूनतम आयु 16 साल करने का भी सुझाव दिया गया। इन महिला संगठनों की बैठकों में पर्दा व्यवस्था बनाए रखने पर खास ध्यान दिया जाता था। इसके बावजूद बैठकों में उपस्थित संभ्रान्त स्त्रियों का मानना था कि शरियत कानून में निर्धारित पर्दा भारत में प्रचलित पर्दा व्यवस्था से उदार है। अतः वे पर्दा के नियंत्रण को कम करने की समर्थक थीं। इसके बाद इसकी शाखाएँ अन्य शहरों में स्थापित की गई। 1918 में इसकी अगली बैठक लाहौर में हुई, उसमें 500 स्त्रियों ने भाग लिया। इसमें बहुविवाह की कुप्रथा के विरूद्ध प्रस्ताव पास किया गया। परन्तु यह कागजों में ही सिमट कर रह गया।[11] इस क्रम में भोपाल की बेगम, बम्बई की अतिया बेगम, बेगम शाहनवाज का नाम भी उल्लेखनीय है।

विभिन्न महिला संगठनों में निःसंदेह भारत में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (AIWC) द्वारा संचालित नारी आंदोलन एवं राष्ट्रीय आन्दोलन में महती भूमिका चिरस्मरणीय है। कालान्तर में इस संस्था का संपर्क विदेश की नारी और प्रमुख अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से भी जुड़ गया और तब के राष्ट्र संघ (लीग ऑफ नेशन्स) एवं बाद में संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रमुख एजेन्सियों से भी इसे मान्यता मिली, प्रतिनिधित्व मिला। भारत में महिलाओं के अधिकारों, उनके उत्थान एवं राष्ट्र हित को समर्पित इस संगठन ने अपनी अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों, भागीदारी से भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रभावित किया। इसमें प्रमुख हैं– सरोजिनी नायडू और मार्गरेट कजिंस का 'इंटरनेशनल कांग्रेस ऑफ वीमेन्स' के बर्लिन अधिवेशन (1930) में भाग लेना। संस्था के प्रतिनिधि के रूप में रामेश्वरी नेहरू को लंदन में 'ब्रिटिश कॉमनवेल्थ एज्यूकेशन कांफ्रेन्स में भाग लेना। श्रीमती एस. सी. मुखर्जी ने 'लीग ऑफ नेशन्स कांफ्रेन्स(1937) में सरकार का प्रतिनिधित्व किया। 1938 में 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन' में भी महिला–प्रतिनिधि पहुँच गयी। इसी वर्ष संस्था की पत्रिका 'रोशनी' का प्रकाशन भी प्रारंभ किया गया। 1946 में श्रीमती हंसा मेहता बड़ौदा विश्वविद्यालय की 'प्रथम महिला उपकुलपति बनी थीं। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकार आयोग' में भारत

का प्रतिनिधित्व किया और बेगम हमीद अली ने संयुक्त राष्ट्र संघ के 'महिलाओं की स्थिति संबंधी आयोग' में। राजकुमारी अमृतकौर 'यूनेस्को' की उपाध्यक्ष चुनी गयीं।

भारतीय राष्ट्रीय (स्वतंत्रता) आन्दोलन के क्रम में समय–समय पर कई आन्दोलन हुए। बहिष्कार एवं स्वदेशी आन्दोलन, होमरूल आन्दोलन, चम्पारण सत्याग्रह आन्दोलन, नमक सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन व भारत छोड़ो आन्दोलन आदि में छात्र–छात्रा, पुरूष–महिला सभी की सक्रिय भागीदारी देखने को मिलती है। ''बीसवीं सदी के चौथे दशक में किसानों, लेखकों, छात्रों, मजदूरों के अनेक संगठन बनें जिसने जन आन्दोलनों को नया मोड़ दिया।''[12]

10 फरवरी से 03 मार्च, 1943 के महात्मा गाँधी के 21 दिवसीय भूख हड़ताल ने देश की महिलाओं को प्रभावित किया और इन महिलाओं ने गाँधी के समर्थन में उपवास रखें। देशभर की महिलाओं, छात्र–छात्राओं ने गाँधी के उस उपवास की सफलता की प्रार्थना सभाएँ की। इसी समय ''बिहार में सन् 1943 के बाढ़ एवं महामारी में हजारों लोग मरे एवं जान–माल की क्षति हुई। सरकार इस पर काबू न पा सकी। (बिहार) सरकार की इस विफलता के विरोध में बिहार के विभिन्न जिलों में हड़ताल एवं प्रदर्शन हुए।''[13] इसमें छात्र–छात्राओं और महिलाओं ने बढ़–चढ़कर भाग लिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व द्वारा सभी प्रदेशों एवं जिला शाखाओं को 2 से 9 अक्टूबर 1943 को गाँधी जयन्ती समारोह को निम्नलिखित दिवसों के रूप में मनाने का निर्देश जारी किया गया जो निम्नवत है– ''प्रार्थना दिवस (02 अक्टूबर), विद्यार्थी दिवस (03 अक्टूबर), ब्रिटिश बहिष्कार दिवस (04 अक्टूबर), महिला दिवस (05 अक्टूबर), भोजन के लिए संघर्ष दिवस (06 अक्टूबर), रचनात्मक कार्यक्रम दिवस (07 अक्टूबर), ऑल इंडिया कांग्रेस कमिटी दिवस (08 अक्टूबर), हड़ताल दिवस (09 अक्टूबर)।''[14] उपर्युक्त सभी कार्यक्रमों को सफल बनाने में तन–मन–धन से सम्पूर्ण राष्ट्र की छात्राओं, महिलाओं ने अपना योगदान दिया।

भारतीय स्वतंत्राता संग्राम के अंतिम वर्षों में वेवेल योजना (1945 ई०), शिखर सम्मेलन (1945 ई०), कैबनेट मिशन (1946 ई०), ब्रिटिश प्रधनमंत्री एटली की घोषणा (1947 ई०), माउंटबेटन योजना (1947 ई०) से होते हुए आखिरकार भारतीयों ने ब्रिटिशों से 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र भारत प्राप्त किया। त्याग, बलिदान, राष्ट्र–प्रेम, एकता, संघर्ष आदि की बदौलत हासिल भारतीय स्वतंत्रता में भारत एवं भारतवर्ष की महिलाओं के विशिष्ट योगदान इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं जो आने वाली पीढ़ियों के लिए सर्वदा मार्गदर्शिका हैं, उदाहरण हैं, प्रेरणा–स्त्रोत हैं।

I UnHk; %

1. राजेन्द्र मोहन भटनागर, भारतीय कांग्रेस का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1986, पृ. 40–41
2. सुशीला डोभाल, आधुनिक भारत (अनुवाद), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ.106
3. राजेन्द्र मोहन भटनागर, उपर्युक्त, पृ. 63
4. बी.आर. नंदा (संपादक), भारतीय नारीः पर्दा से आधुनिकता तक, रेडिएन्ट पब्लिकेशन नईदिल्ली, 1976, पृ. 16 से 40 के विभिन्न अंश
5. तनिका सरकार, पॉलिटिक्स एण्ड वूमेन इन बंगाल, कृष्णमूर्ति, पृ. 231–41
6. आशारानी व्होरा, नारी विद्रोह के भारतीय मंच, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1991 पृ. 53
7. उपर्युक्त, पृ. 53, 54
8. उपर्युक्त, पृ. 54
9. उपर्युक्त, पृ. 54, 55
10. डॉ. आशा गुप्ता/ डॉ. गोपा जोशी, भारत में स्त्री असमानताः एक विमर्श, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिसम्बर 2011, पृ. 100
11. उपर्युक्त, पृ. 110, 111
12. आजकल, मई 2016, पृष्ठ–15
13. कनक सिंह, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन बिहार, जानकी प्रकाशन, पटना, 1991,पृष्ठ–144
14. सुधा कुमारी सिन्हा, वूमेन एंड द फ्रीडम मूवमेन्ट इन बिहार (1920–1947), जानकी प्रकाशन, पटना, 2000, पृष्ठ–150

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 59-61

ehjk dk thou la?k"k vkj dk0;

mn; fl g ;kno*

भक्ति आंदोलन अखिल भारतीय आंदोलन था। भारतीय साहित्य के इतिहास में भक्ति आंदोलन के साथ पहली बार कविता के क्षेत्र में सशक्त स्त्री–स्वर सुनाई पड़ता है। भक्तिकाल में पहली बार बड़ी संख्या में स्त्रियों की आत्माभिव्यक्ति के रूप में काव्य रचना का विकास दिखाई देता है। इस काल में भारत की प्रत्येक भाषा में अनेक महत्वपूर्ण कवयित्रियाँ पैदा हुई जिसमें से कुछ ने अपनी भाषा की नयी परम्परा के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और साथ ही स्त्री की रचनाशीलता के विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया। हिन्दी में ऐसी ही भक्त कवयित्री है– मीराबाई। हिन्दी में मीरा का वही स्थान है जो तमिल में अंडाल का, कन्नड़ में अक्क महादेवी का, कश्मीर में ललद्य का और मराठी में बहिणाबाई और मुक्ताबाई का। हिन्दी के वास्तविक और सशक्त स्त्री काव्य का आरम्भ मीराबाई की कविता से होता है। मीरा की कविता में स्त्री की आत्मा की ऐसी आवाज सुनाई पड़ती है जो पराधीनता के बोध से बेचैन और स्वाधीनता की आकांक्षा से प्रेरित स्त्री की आवाज है। ''मीरा की कविता केवल भक्ति की कविता नहीं है यह भक्ति से पहले, सामंती मर्यादा और दमन के विरूद्ध एक सामान्य स्त्री के विद्रोह की लौकिक अभिव्यक्ति है।[1] मीरा ने अपने जीवन संघर्ष और काव्य रचना के माध्यम से हिन्दी में स्त्री काव्य परम्परा का मार्ग निर्मित किया है तथा उसे गहरे स्तर पर प्रेरित और प्रभावित भी किया है। निश्चय ही मीरा को सूर्य की एक विद्रोही किरण कहा जा सकता है। किरण का विद्रोह अंधकार के प्रति ही हो सकता है। मीरा भी समाज में व्याप्त रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और मिथ्याचार के प्रति विद्रोहिणी थी। मीरा उन दीवारों को हिलाकर धराशयी कर देना चाहती थी जो मनुष्य को मनुष्य से अलग कर देती हैं और उसे मनुष्य नहीं, कुछ और बना देती है। निरर्थक मान–मर्यादा के नाम पर समाज के शरीर पलता हुआ कोढ़ जितना मीरा हटा सकती थी, उन्होंने हटाया। मीरा के जीवन ने मानव संबंधों और परम्परागत राजनीतिक–सांस्कृतिक मान्यताओं के अमानवीय समीकरणों के विरूद्ध कुछ ऐसे सवाल उठाए जो व्यक्ति क्या युग के बाहर भी आकर प्रासंगिक बने हुए हैं मीरा ने जो जीवन जिया और जिस ढंग से जिया, उसने उन्हें महत्वपूर्ण मूल्यों का प्रतीक बना दिया।

मीरा का प्रथम विद्रोह विवाहोपरान्त जब मीरा ससुराल पहुँचती है तो सास द्वारा अपने कुल–देवता के सामने सिर झुकाने की आज्ञा देने पर मीरा द्वारा यह कह कर मना कर देना। ''मीरा विवाह के बाद जैसे ही ससुराल में पहुँचती है, वैसे ही यह घटना घटती है। माँ (मीरा की सास) अपने सुत से माता (देवी) की पूजा कराती हैं, फिर बहू से पूजा के लिए कहती है, मगर बहू का उत्तर है– सास नवै मम श्री गिरिधारिहि आनन मृत्योपरान्त ही होता है।[2]

मीरा ने अपनी कविताओं के माध्यम से साफ तौर पर कहती हैं कि राणा उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। राणा के हाथों में शासन की पूरी बाग–डोर थी। सीसेद्यों रूढ़यों, म्हारो काई कर लेसी, राणों जी रूढ़्या वारों देश रखांसी। हरि रूढ़्या कुम्हलास्याँ, हो माई।[3]

मीरा कृष्ण के प्रेम का सहारा लेती है और अपनी आत्माभिव्यक्ति करती हैं। जिस मध्ययुगीन समाज में पुरुष वर्ग अपनी बातों को व्यक्त करने के लिए रूपक, प्रतीकों को सहारा लेता था। मीरा उसी समाज में नारी होकर प्रेमाभिव्यक्ति को बिना किसी लाग–लपेट बिना किसी आवरण के व्यक्त करती है। ''भक्तिकाल के कवियों में मीराबाई का प्रेम सबसे अधिक सहज, उत्कट और विद्रोही है। उनको प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए किसी विचवाई की जरूरत नहीं है, न कबीर की तरह रूपक की न जायसी की तरह

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

लोक–कथा की और न ही सूर की तरह गोपियों की। वहाँ सीधा और प्रत्यक्ष प्रेम–निवेदन है, निर्भय और निर्द्वन्द आत्माभिव्यक्ति।''[4]

मीरा ने सामन्ती प्रधान समाज में रहते हुए स्वयं के दुःख और विरोधियों के दंश की खुली अभिव्यक्ति करती थी मीरा परम्पराओं को वहन करने वाली नारी नहीं थी। वे अपनी बाकी जिन्दगी अपनी शर्तों पर जीना चाहती थी, न तो किसी के हाथों को कठपुतली बनकर। मीरा उन आदर्श नारियों की श्रेणियों में नहीं आना चाहती थी जिनको परम्पराओं, रीति–रिवाजों के नाम पर उनके जीवन को अग्नि कुण्ड में समर्पित कर 'देवी' रूप में प्रतिष्ठित किया जाता था। मीरा कुलनासिनी मर्यादाहीन, पागल इत्यादि नामों के साथ जीने के लिए तैयार थी। लेकिन झूठी परम्पराओं के नाम पर अपने बहुमूल्य जीवन को समर्पित नहीं कर सकती थी। मीरा ने स्पष्ट कहा है कि उन्हें बदनामी मीठी लगती है–

''राणा जी म्हाने बदनामी लगे मीठी कोई निंदो कोई विंदो मैं चलूँगी चाल अनूठी[5] मीरा को बदनामी मीठी लगना इस बात का संकेत देता है कि उन्होंने दर्द रूपी आग के दरिया से होकर गुजरा होगा, जहाँ जब उन्हें लोगों के ताने तो क्या राणा द्वारा दिया गया विष भी कुछ नहीं कर सकता। जिस प्रकार मीरा को बदनामी मीठी लगने लगती है उसी प्रकार विष भी उनके जीवन के लिए अमृत का कार्य करता है। विष मीरा के संघर्ष में तपकर अमृत बन जाता है जिसे अन्य विष समझते हैं वह मीरा के लिए अमृत बन जाता है। मीरा की कविता में अमृत और विष के जो इतने उल्लेख हैं, वे निश्चित रूप से उनकी भावना और जीवन आचरण के संघर्ष से बहुत गहरे तौर पर जुड़े हैं।''[6]

मीरा को कुछ फर्क नहीं पड़ता कि सारी दुनिया उन्हें किस नाम से पुकार रही है। वे कहती हैं अगर मैं पागल कुल बोरन हूँ, तुम्हें मुझे देखने से कष्ट होता है तो तुम अपने घर और आँखों पर पर्दा डाल लो। मुझे जहाँ–जहाँ कृष्ण की बाँसुरी की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ेगी मैं वहाँ–वहाँ दौड़ कर जाऊँगी और बासुरी की धुन पर नाचूँगी।

''लोक लाज कुल कानि जगत की दइ वहाँ जस पानी, अपने घर का परदा कर ले मैं अबला बौरानी।[7]

मीरा एक राजकुल की वधू थी और कुल वधू को साधु–संगति में बैठना राजकुल मर्यादा के खिलाफ था। राणा द्वारा मीरा पर किये गये अत्याचारों का प्रमुख कारण यही साधु–संगति रही होगी।

'मीरा भक्त थीं। भक्त होना न तो बुरी बात है, न आपत्तिजनक। यदि वह सभी लोगों की तरह घर में रहकर पूजा–पाठ करके, भक्ति करके अपना वैधव्य काटती रहती तो राणा को क्या आपत्ति होती। आपत्ति का कारण साधु–संगति ही ज्ञात होता है।[8]

राणा ने मीरा की आवाज को दबाने, उन्हें अपने वश में रखने तथा उन्हें खत्म करने के लिए क्या–क्या नहीं किया। विष का प्याला भेजा, पिटारी में सांप भिजवाया और उनकी सेज पर काटे बिछवाये। परन्तु राणा मीरा का बाल बांका भी नहीं कर पाया। वह दृढ़शक्ति की प्रतिमूर्ति निकली। मीरा ने राणा के सारे दंश सहकर उसे निष्फल कर दिया। मीरा ने राणा को ही मजबूर नहीं किया बल्कि वैकुण्ठ में बैठे भगवान को भी मानव बनने के लिए मजबूर किया है। ''साहित्य भी उन्हें इसलिए स्वीकार करता है कि उन्होंने मनुष्य को ही नहीं, भगवान को भी मानवीय बना दिया है।[9]

मध्यकाल में स्त्री वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हुई मीरा आती है। मीरा ने ईश्वर को पति रूप में वरण किया। मीरा आदि से अन्त तक विद्रोहिणी थी। मीरा राजसत्ता, समाजसत्ता, धर्मसत्ता का खुलकर विरोध किया। राणा ने चाहा कि मीरा महल के भीतर ही शान्तभाव से अर्चना करे, परन्तु मीरा को– सन्तन ढिग बैठि–बैठि लोकलाज खोयी। अब तो बेलि फैलि गयी कहा करि है कोई।[10]

कहकर एक साथ समर्पण, विद्रोह, उदासीनता और दृढ़ता का परिचय दिया। पगबांध घुघरूया णाच्यांरी[11] कहकर मीरा ने एक ओर विवाहिता स्त्री की मर्यादा को खिजाया तो दूसरी ओर राजसत्ता को ललकारा। राण रूसै राज लेसी[12] तीसरी ओर धर्म की सत्ता में जो पुरुष की प्रधानता थी उसे हिलाया जीवगोस्वामी से यह कहकर 'हम तो समझते थे एक ही पुरुष है कृष्ण, यह दूसरा पुरुष कौन पैदा हो गया'[13] मध्ययुगीन साहित्य में मीरा का जीवन और साहित्य नारी विद्रोह का रचनात्मक आगाज है। कृष्ण के प्रति

अटूट प्रेम और विश्वास के कारण मीरा का विद्रोह एक अद्भुत और विरल संयोग है। विवाह नामक संस्था का विरोध और डंके की चोट पर मीरा ने कहा 'जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई'[14] पति सत्ता का तिरस्कार करते हुए मीरा कहती है कि 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।[15] पति की मृत्यु के बाद 'सती' होने से इनकार–परिवार सत्ता से विद्रोह।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मीरा का जीवन संघर्ष से भरा हुआ था। पुरुषों द्वारा स्त्रियों के प्रति होने वाले अत्याचारों और उपेक्षाओं के प्रति गहरा असंतोष था जिन्हें वह अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त करती हैं। मीरा हिन्दी साहित्य में स्त्री चेतना को अभिव्यक्ति देने वाली प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

l UnHk

1. पल्लव : मीरा : एक पूनर्मूल्यांकन, आधार प्रकाशन, पंचकूला हरियाणा, संस्करण 2015, पृ0 186
2. प्रभात : मीरा जीवन और काव्य, पष्0 136
3. परशुराम चतुर्वेदी : मीराबाई की पदावली, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, संस्करण–2008, पृ0 110
4. मैनेजर पाण्डेय : भक्ति आंदोलन और सूर का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2011, पृ0 40
5. परशुराम चतुर्वेदी : मीराबाई की पदावली, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, संस्करण–2008, पृ0 110
6. विश्वनाथ त्रिपाठी : मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2014, पृ0 70
7. परशुराम चतुर्वेदी : मीराबाई की पदावली, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, संस्करण–2008, पृ0 11
8. विश्वनाथ त्रिपाठी : मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1998, पृ0 57
9. सीए0ल0 प्रभात : मीरा का जीवन और काव्य, पष्0 दो शब्द (ii) राजस्थानी ग्रंथागार, जयपुर, संस्करण–2005, पृ0 5
10. मीरा का काव्य– विश्वनाथ त्रिपाठी– संस्करण–1998, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 82
11. वही, पृ0 83
12. वही, पृ0 84
13. हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास– सुमन राजे भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण–2010, पृ0 110
14. मीरा का काव्य– विश्वनाथ त्रिपाठी– संस्करण, 1998, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 88
15. वही, पृ0 89

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 62-64

fgUnh lkfgR; e lkekftd ;FkkFk vkj ckck ukxktqu

j'k flg*

उपन्यास आधुनिक हिन्दी गद्य की सर्वथा नवीनतम् एवं सशक्त विधा है। गद्य साहित्य की अन्य विधाओं– नाटक, कहानी एवं निबन्ध आदि से उपन्यास को अधिक लोकप्रियता मिली है। अन्य विधाओं में जहाँ मानव–जीवन के किसी एक पक्ष को प्रस्तुत करने का अवसर रहता है, वही उपन्यास में मानव जीवन के विविध पक्षों को उद्घाटित करने की छूट रहती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुल्क के अनुसार – "उपन्यास मानव जीवन के अनेक रुपों का परिचय कराता है। इस अनेक रुप में जीवन के वे सभी पक्ष आते हैं। जिससे वह निर्धारित होता है– उसके अन्तर्विरोध, उसके संघर्ष, उसकी जड़ता, उसकी सक्रियता और समाज में उसकी भूमिका का कोई कोना उससे अछूता नहीं हो सकता।[1] भारत में उपन्यास का जन्म उन्नसवीं सदी के मध्य में तब हुआ जब देश में अंग्रेजी राज था। उपनिवेशवाद के कारण भारतीय समाज के यथार्थ और भारतीय जनता की चेतना में ऐसे अन्तर्विरोध थे, जो उपन्यास के स्वाभाविक विकास में बाधक थे। फ्रांस की मादाम स्तेल ने लिखा है कि– "उन्हीं समाजों में उपन्यास का विकास होता है जहाँ स्त्रियों का स्थान ऊँचा हो और व्यक्तिगत जिन्दगी में लोगों की गहरी दिलचस्पी हो। ऐसे ही समाज में उपन्यास वैयक्तिक अनुभवों का माध्यम और वैयक्तिक स्वंत्रता का वाहक बनता है।"[2]

भारत में उपन्यास का जब उदय हुआ तब भारतीय समाज में स्त्री रूढ़ियों मे जकड़ी , आदर्शों से घिरी और यातनाओं में जी रही थी, इसलिए आरम्भिक भारतीय उपन्यासों में वह कहीं भारतीय और पाश्चात्य मूल्यों द्वन्द्व में पीसती हुई दिखायी देती है, तो कहीं आदर्श की प्रतिमा और वीरागंना के रुप में चित्रित्र हुई है। वह कहीं पतिता है तो कहीं पतिव्रता कहीं–कहीं उपन्यासकार की पुरानी मूल्य चेतना और नयी सुधारवादी दृष्टि के बीच द्वन्द्व भी स्त्री के माध्यम से व्यक्त हुआ है। अनेक उपन्यासकारों ने भारतीय परिवार में स्त्री के उत्पीड़न की करुण कथा कही है। जिस पुरूष–प्रधान समाज में स्त्री के अस्तित्व का रूप और उसके व्यक्तित्व की पहचान का आधार पुरुष के साथ उसका सम्बन्ध हो, वहाँ स्त्री की वैयक्तिक स्वतन्त्रता और निजी अनुभवों के लिए उपन्यास में कैसी और कितनी जगह होगी, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। अधिकांश आरम्भिक भारतीय उपन्यासों में स्त्री सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं और आकांक्षाओं का केवल माध्यम ही है। उन्नसवीं सदी के अन्त में लिखा गया 'उमराव जान अदा' उस समय का अकेला ऐसा उपन्यास है, जिसे स्त्री–जीवन की यथार्थवादी रचना कहा जा सकता हैं।

उपन्यास में उन्नसवीं सदी के अन्तिम दिनों के लखनऊ के सामन्ती समाज में एक वेश्या की जिन्दगी की वास्तविक स्थिति का यथार्थपरक चित्रण है। उसमें स्त्री के प्रति गहरी मानवीय संवेदनशीलता भी है। बाद के दिनों मेंं भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति के बदलने और उसके प्रति दृष्टिकोण के परिवर्तन के कारण स्त्री के अस्तित्व, व्यक्तित्व, अनुभवों और आकांक्षाओं की स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति रवीन्द्रनाथ टेगौर, शरत्, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और नागार्जुन के उपन्यासों में हुई हैं। जो भारतीय साहित्य में यथार्थवाद के विकास के मूल में स्वाधीनता आन्दोलन की अभिव्यक्ति देखते है। डॉ0 रामविलास शर्मा के अनुसार "वास्तव में पाश्चात्य और भारतीय साहित्य में स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद की विकास–प्रक्रियाओं के अन्तर के मूल में ऐतिहासिक और समाजवादी सन्दर्भों का अन्तर है। भारत के औपनिवेशिक समाज के

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, श्री गणेश राय पी0जी0 कालेज, डोभी, जौनपुर, उ0प्र0

साहित्य का स्वरुप जनजीवन की वास्तविकता और आकांक्षा दोनों से निर्मित हुआ है। उसमें दोनों की अभिव्यक्ति भी हुई है। गुलामी, शोषण और दमन की वास्तविकता साथ–साथ स्वाधीनता की आकांक्षा संघर्ष के लिए प्रेरित कर रही थी। यथार्थवाद भारतीय समाज की वास्तविकताओं को व्यक्त कर रहा था। तो स्वच्छन्दतावाद में मुक्ति की आंकाक्षा प्रकट हो रही थी। इसीलिए भारतीय साहित्य में यथार्थवाद के साथ–साथ स्वच्छन्दतावाद विकसित हो रहा था। यह सही है कि उपन्यास में यथार्थवाद की प्रवृत्ति प्रधान थी और कविता में स्वच्छन्दतावाद की।"[3] नागार्जुन ने मिथिला के अपने परिचित क्षेत्र को अपनी कथा –भूमि बनाया है। और उस अतिपरिचत यथार्थ को विश्वसनीयता और संवेदना के साथ 'रतिनाथ की चाची' में प्रस्तुत किया है। राहुल सांकृत्यायन की तरह यायावरी और ब–रास्ता बौद्ध धर्म मार्क्सवाद की ओर आए। उन्होंने मिथिला की कथा– भूमि पर अपनी अधिकतर रचनाएँ की, आंचलिक उपन्यास के आन्दोलन से भी उन्हें जोड़कर देखा गया। लेकिन उनके उपन्यास आंचलिकता के तत्वों का प्रचुरमात्रा में उपयोग करते हुए भी उस अर्थ में आंचलिक नहीं हैं। अंचल से अधिक महत्व उनके यहाँ पात्रों और उनके संघर्ष का है। उनका संघर्ष अपनी प्रकृति में क्षेत्रीय है और उसकी प्रेरणा उन्हें दर्शन और विचारधारा से अधिक जीवन और उसकी रोजमर्रा की समस्याओं से ही मिलती है। नागार्जुन की रचनात्मक ऊर्जा की ओर संकेत करते हुए प्रकाश चंद्र गुप्त ने लिखा है– "उनके कठोर अनुभवों की ज्वाला में तपकर उनकी प्रतिभा सोने के समान चमकी हैं। नागार्जुन की प्रेरणा शिल्प और कौशल से नहीं वरन् जीवन अनुभवों की गहराई और तिक्तता से शक्ति पाती है। नागार्जुन जन–मन के साथ गहरी आत्मीयता और तादात्म्य स्थापित करते हैं, उनकी साहित्यिक शक्ति का यही आधार हैं।"[4] 'रतिनाथ की चाची' एक मैथिल विधवा के विडबंनापूर्ण जीवन पर केंद्रित है। अपने देवर के पुत्र रतिनाथ से उसे अगाध स्नेह है। अपने देवर जयनाथ की बर्बरता का शिकार होकर 'चाची' को सामाजिक अपमान और बहिष्कार का शिकार होना पड़ता है। उपन्यास मैथिल ब्राह्मण समाज के अंतर्विरोधों को गहराई से दर्शाता गया है।

'बलचनमा' और 'बाबा बटेसरनाथ' भाषा एवं शैली की दृष्टि से अपनी प्रयोगधर्मिता के कारण भी उल्लेखनीय हैं। और अपनी अंतवर्स्तु के प्रति गहरी संवेदनाशीलता के कारण भी। 'बलचनमा' शताब्दी के चौथे दशक के उत्तरार्ध में दरभंगा को केंद्र में रखकर विकसित होता है। 'बलचनमा' एक दलित युवक है। जमींदार की सेवा के बाद भी प्रताड़ना और अत्याचार के कारण ही जब उसके पिता की मृत्यु हुई, वह सिर्फ बारह साल का था। यह गुलामी ही उसे विरासत में मिली है। मालकिन के भतीजे फूलबाबू के साथ पटना आकर एक नए जीवन की संभावनाओं का द्वार आगे खुल जाता है 'बलचनमा' अपने जीवनानुभव को अपनी भाषा में व्यक्त करता हैं। फूलबाबू के संपर्क और पटना में जाने के बाद जीवन और राजनीति की अपनी समझ विकसित करता है। उसकी वर्गचेतना उसके अनुभव जगत से उपजी है। उसकी यह वर्ग चेतना एक ओर उसे सामंती –समाज की सच्चाई से परिचित कराती है तो दूसरी ओर राजनीति में वह कांग्रेस के वर्ग चरित्र और पाखंड को समझने में भी सहायक होती है। नागार्जुन साधारण जनता के परिवेश के बीच से ही संघर्ष के मुद्दे उठाते है। 'बलचनमा'का लक्ष्य उसके इन्हीं अनुभवों की भट्टी में तपकर ढला है। "सच जानो भैया, उस वक्त मेरे मन में यह बात बैठ गयी कि जैसे अंग्रेज बहादुर से सोराज लेने के लिए बाबू भैया लोग एक हो रहे है, हल्ला–गुल्ला और झगड़ा–झंझट मचा रहे हैं, उसी तरह जन–बनिहार ,कुली–मजूर और बहिया – खवास लोगों को अपने हक के लिए बाबू भैया से लड़ना होगा।"[5] नागार्जुन–इसी तरह 'वरुण के बेटे' में एक ओर बाढ़ पीड़ित क्षेत्र में सहायता का अभियान है तो दूसरी ओर सतधरा के जमींदार से गढ़पोखर की मछलियों के कारण व्यापक संघर्ष की भूमिका भी उपस्थित है। 'दुखमोचन' में स्वतंत्रता के बाद किसानों में आत्म निर्भरता का आह्वान और किसान आन्दोलनों की अनुगूजों को साफ सुना जा सकता है। नागार्जुन युवावर्ग की भूमि को 'नईपौध' के रूप में गहरी आश्वस्ति के साथ रेखाकिंत करते हैं। समाज की जड़ता और रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष में वे एक जुट है। और अपने प्रयासों की इस एक जुटता के कारण ही एक नये समाज की स्थापना करने में सफल भी होते हैं। 'वरुण के बेटे' में होने वाले राहत कार्य में विश्वविद्यालय की पढ़ी लिखी लड़किया

भी शामिल है, मधुरी की सामाजिक राजनीतिक समक्ष को वे प्रभावित भी करती हैं। फिर नागार्जुन के स्त्री पात्र सामाजिक रूढ़ियों और सामन्ती आत्याचारों के शिकार हैं । नागार्जुन के इन स्त्री पात्रों की समस्याओं पढ़ी– लिखी मध्यवर्गीय शहरी स्त्रियों की समस्याओं से भिन्न है। 'उग्रतारा की उगनी अपने कथित विवाह के बावजूद अपने प्रेमी कामेश्वर से जा मिलती है। 'इमरतिया' भी हरद्वार में मस्तराम के लिए प्रतिक्षा की बात करती है। 'उग्रतारा' में नागार्जुन एक ओर यदि पुलिस की बर्बरता को उद्घाटित करते है। वहीं वे स्त्री के यौन शुचिता के मिथक को भी तोड़ते हैं। पुलिस उगनी को कामेश्वर से अलग करके आंतकवाद के झुठे मुकदमे में फंसाती है। सिपाही भभीखन सिंह उसे कुछ नशीला पदार्थ खिलाकर उससे विवाह का नाटक करता है । लेकिन फिर भी कामेश्वर के प्रति उगनी के प्यार को वह समाप्त नहीं कर पाता है। सारी विडम्बनापूर्ण स्थितियों के बावजूद कामेश्वर उसे स्वीकारता हैं। नागार्जुन विवाह के झूठ पर प्रेम के सच को स्थापित करते हैं। 'जमनिया के बाबा' के माध्यम से नागार्जुन भारतीय समाज में व्याप्त धर्मान्धता अंधविश्वासों, अनैतिकता और अनाचारों पर प्रभावशाली ढ़ंग से चित्रण किया हैं।

यह उपन्यास सामाजिक, धार्मिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। आज भी भ्रष्ट नेता, प्रशासक और जेल अधिकारी बाबाओं–तांत्रिकों के जाल में फँसे हुए हैं, अपराधी जेल में रहकर भी भोग विलास का जीवन जी रहे हैं। देश रसातल को जाये, पर पूँजीपतियों,नेताओं आदि को कोई चिन्ता नहीं। नागार्जुन ने इस उपन्यास में भारतीय समाज को खोखला करने वाले तत्त्वों पर बड़ा ही प्रभावशाली चित्रण किया है।

इन उपन्यासों के आधार पर कहा जा सकता है कि नागार्जुन आंचलिक कथाकार ही नहीं, सामाजिक–राजनीतिक चेतना के सूक्ष्म विश्लेषक भी हैं। लेखक ने मिथिलांचल के ग्रामों, यहाँ के निवासियों, लोकजीवन और उभरती हुई राजनीतिक–सामाजिक चेतना का ज्वलंत रूप में प्रस्तुत किया है। नागार्जुन दलित–शोषित समाज और सर्वहारा वर्ग के पक्षधर हैं।उन्होंने सामंती प्रवृत्तियों, जमींदारों और पूँजीवाद के शोषक चरित्र पर तीव्र कुठाराघात किया है। नागार्जुन हिन्दी के ऐसे उपन्यासकार है, जिन्होंने आंचलिक परिवेश में समकालीन समाज और राजनीति को मर्मस्पर्शी रूप में जीवंत किया है।

I UnHk%

1. ज्योतिष जोशी, उपन्यास की समकालीनता, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ नई–दिल्ली पहला–संस्करण–2007, पृ0 18
2. मैनेजर पाण्डेय, आलोचना की माजिकता, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2005, पृ0 272
3. वही पृ0 274
4. मधुरेश, हिन्दी उपन्यास का विकाश, सुमित प्रकाश–संस्करण–2016 जिला–कैमूर (भभुआ) बिहार, पृ0 125

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 65-71

HkfDrdkO; dh lkekftd mikn;rk

MkO fi;;onk 'kek*

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाव्य भारतीय साधना का वह अक्षय, अनन्त और अतल रत्नाकर है, जिससे निकली संस्कृति, साहित्य, धर्म और मंगल की परमोज्ज्वल रत्नराशि न केवल भारतीय जीवन को जगमगाती रहेगी, बल्कि विश्व मानव कल्याण के पथ को भी आलोकित करती रहेगी। भक्तिकाव्य में जहाँ एक तो साधना और सिद्धि का कुबेर–कोश भरा पड़ा है तो वही दूसरी ओर विविध भावानुभूतियों का अक्षुण्ण भण्डार और कर्म प्रेरणा का व्यापक क्षेत्र भी। इसीलिए भक्तिकाव्य हिन्दी साहित्य का स्वर्णकाल माना गया। भक्ति आन्दोलन भारतीय जीवनाकाश में सहसा बिजली की तरह कौंध उठने वाला आन्दोलन न था बल्कि अतीत के उत्स से निकलकर बहने वाली पीयूष पयस्विनी थी, जिसने मध्यकाल में विशाल नद का रूप धारण कर लिया था।

भक्तिकाव्य भारतीय आत्मा की अखण्डता, प्रतिकूलताओं में एकता और विभिन्नताओं में सामंजस्य का काव्य है। राष्ट्रीय अखण्डता और भावात्मक एकता का सर्वाधिक समृद्धशाली और प्राणप्रेरक पुंज है भक्तिकाव्य। वैयक्तिक मतभेद या विचार स्वातंत्र्य, आचार स्वातंत्र्य और कर्म स्वातंत्र्य के साथ ही समष्टिगत या सामूहिक विचार साम्य, कर्मसाम्य और आचार साम्य भक्तिकाव्य में दिखाई देता है।

भक्तिकाव्य मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन से निकला हुआ रत्न है। भक्तिआन्दोलन, मध्ययुग में रूढ़ होती हुई अनेक सामाजिक मान्यताओं, रूढ़ियों परम्पराओं आदि के विरूद्ध उत्पन्न हुआ था। भक्ति आन्दोलन कोई धार्मिक बगावत नहीं था। वरन् वह मानव को मानव बनाने व उसका पूर्ण मानवीय संस्कार करने वाला एक सांस्कृतिक आन्दोलन था या यूं कहें कि जनता का जनता के अधिकारों के लिए एक जन आन्दोलन था जिसकी सबसे बड़ी विशिष्टता थी, ऐसे हाशिए के लोग जिनके अस्तित्व को एक विशिष्ट वर्ग द्वारा नकार दिया गया था या अति संकुचित कर दिया गया था। इस आन्दोलन में उनकी आवाज उभर कर सामने आयी। जिसमें उन्होंने अपनी पीड़ाओं को अभिव्यक्ति दी। सामाजिक जीवन के बीच पहली बार वर्ग, जाति, वर्ण, नस्ल, धर्म और सम्प्रदाय के बंधनों को दरकिनार करते हुए मानव हृदय के एकात्म तथा भक्ति के सन्दर्भ में मानव–मात्र की समानता पर बल दिया गया। यह काम भले ही भक्ति और ईश्वरोपासना के सीमित क्षेत्र में हुआ हो, परन्तु उसका प्रभाव भेदभाव बरतने वाली सामाजिक संरचना और उस संरचना को उचित ठहराने वाली सोच पर भी पड़ा, तथा साथ ही साथ उस साधारण जनता पर पड़ा जो सामाजिक भेदभाव का षिकार बनती हुई सदियों से एक अमानवीय जिंदगी जीने के लिए अभिशप्त थी।

इस आन्दोलन का अंकुरण तो दक्षिण भारत में अवश्य हुआ था। मगर शीघ्र ही इसने समस्त भारत को अपनी चपेट में ले लिया और इसका स्वर्णिम रूप पूर्णतः उत्तर प्रदेश में प्रस्फुटित हुई। इस आन्दोलन को ओजस्वी रूप देते हुए समाज की अव्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाने वाले महान व्यक्तियों की यह कर्मस्थली हो गयी। कबीर, रैदास, जायसी, सूर एवं तुलसी जैसे प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों ने अपनी बहुआयामी प्रतिभा से इसे मण्डित किया। ये जाति, वर्ग, कर्म आदि की दृष्टि से भिन्न होते हुए भी मानव कल्याण व प्रेम के विस्तृत धरातल पर इन सभी व्यक्तित्वों में पूर्णतया एकमेवता थी। इनकी यह परस्पर भिन्नता रुकावट न होकर उन अलग–अलग तीवग्रामी धाराओं के रूप में सामने आयी जिसने भक्ति आन्दोलन रूपी नदी को परिपूर्ण कर तीव्र प्रवाह प्रदान किया।

*पूर्व शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, छत्रपति शाहू जी महराज विश्वविद्यालय, कानपुर

''काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती हैं, कबीर का जन्म भी समय की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ था।''[1] क्योंकि कबीर के जन्म के समय समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था। छुआछूत, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्याचार, पाखण्ड का बोलबाला था और हिन्दू मुसलमान आपस में झगड़ते रहते थे। धार्मिक पाखण्ड अपनी चरम सीमा पर था और धर्म के ठेकेदार अपने स्वार्थ की रोटियां धार्मिक उन्माद के चूल्हे पर सेंक रहे थे। धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता के कारण समाज का संतुलन बिगड़ रहा था, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं का बोलबाला था तथा सामाजिक विषमता बढ़ती जा रही थी। उस समय किसी ऐसे महात्मा या समाज सुधारक की आवश्यकता थी जो समाज में व्याप्त इन बुराइयों पर निर्भीकता से प्रहार कर सके और सदाचरण का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना कर सके और कबीरदास इस आवश्यकता पर पूरी तरह खरा उतरते थे वे जब कहते हैं–

ekd"k dgk <k< cUn e r" rjk ikl eA uk efnj e uk efLtn e uk dkc dYkk l eAA

या

no ift fgUn e;k rjd e;k gt tkbA tVk ckf/k ;"xh e,] jke fdug ufg ikbAA

तो वे कहीं न कहीं इन धार्मिक बाह्याडम्बरों एवं धार्मिक पाखण्डों का ही खण्डन करते हैं। वास्तव में कबीर लीक छोड़कर चलने वाले एक ऐसे भक्त कवि थे जिन्हें मिथ्याचार एवं पाखण्ड से घृणा थी। इसीलिए उन्होंने जाँति–पाँति एवं ऊँच–नीच मानने वाले के लिए कहा कि–

Åp dYk dk tufe;k djuh Åp u g";A lcju dYkl ljk Òjk lk/k fufUnr l";AA

कबीरदास सत्य के बेलाग प्रवक्ता थे। एक स्वस्थ समाज के लिए उन्हें जो उचित लगा उसे कहने में उन्होंने कोई संकोच नहीं किया। वस्तुतः वे जन्म से ही विद्रोही, प्रकृति से समाज सुधारक एवं हृदय से लोक कल्याण के आकांक्षी महामानव थे। उनके व्यक्तित्व का पूरा प्रतिबिम्ब उनके साहित्य में विद्यमान है। कबीर का प्रतिपाद्य दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–रचनात्मक तथा आलोचनात्मक। रचनात्मक भाग में जहाँ वे एक उपदेशक की भूमिका में होते हैं जिसमें वे मानव मात्र को सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, दया, क्षमा, संतोष, उदारता जैसे गुणों को धारणकरने का उपदेश देते हैं तो वहीं आलोचक के रूप में वे समाज में व्याप्त धार्मिक पाखण्ड, जातिप्रथा, मिथ्याचार, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का खण्डन करते हैं यथा–

t" r ckÒu cÒuh tk;k] vku ckV à D;k ugÈ vk;k\
t" r rjd rjfduh tk;k] Òhrj [kruk D;k u djk;k\

उनकी दृष्टि में एक सच्चा हिन्दू और मुसलमान वही है जिसका ईमान सही है–

l" fgUn l" e lYkeku tkdk n#l jg bekuA*

कबीरदास के अतिरिक्त संतकाव्य धारा के और भी महत्त्वपूर्ण संत, समाज सुधार और लोककल्याणर्थ आजीवन जुटे रहे जिनमें नानक, दादू, नामदेव एवं रैदास आदि प्रमुख हैं। वास्तव में इन संतों का योगदान एक बड़ी सामाजिक–सांस्कृति उपलब्धि है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में–'इसमें कोई सन्देह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को सँभाला, जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्तिरस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था। उनके द्वारा यह बहुत ही आवश्यक कार्य हुआ। इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भाव को आगे करके निम्नश्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे से ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया। उनका 'निर्गुणपंथ' चल निकला, जिसमें नानक, दादू, मलूकदास आदि अनेक संत हुए।''[2] यहाँ यह भी ध्यान में रखना उचित होगा कि ''केवल हिन्दू–मुस्लिम एकता इन संतों का लक्ष्य नहीं था वरन् भक्ति का एक ऐसा मार्ग निकालना, उसका ऐसा संदेश देना इनका लक्ष्य था, जिस पर किसी भी प्रकार की भेद बुद्धि से रहित मनुष्य सात्विक अंतःकरण से चल सके, उसे बिना किसी हिचक के सुन और सहेज सके।''[3]

यहाँ यह भी कहना उचित होगा कि आज वर्तमान समय में हमारे सामने जो विश्रृंखलता दिखाई दे रही है तथा हम लोग जिस धार्मिक विद्वेश के माहौल में जीवन यापन कर रहे हैं, उनमें कबीर आदि निर्गुण संतों की शिक्षाएं अधिक प्रभावी भूमिका का निर्वहन कर सकती है। समाज में नैतिक मूल्यों का क्षरण

आज जिस तीव्रता से हो रहा है तथा मानवीय मूल्यों का जो विघटन समाज में दिखाई दे रहा है, उसके विशाक्त प्रभाव को कम करने के लिए इन संतों के अमृतवाणी की आवश्यकता बराबर अनुभव की जा रही है। ऐसी स्थिति में कबीर आदि संतों की प्रासंगिकता पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता बल्कि तत्कालीन युग की अपेक्षा उनकी शिक्षायें आज के समय में और भी अधिक प्रासंगिक है।

भक्ति काव्य की सामाजिक उपादेयता में अगर हम सूफी संतों एवं कवियों की रचनाओं को शामिल करते हैं तो इसमें सबसे पहला नाम आता है जायसी का। सूफी कवि मलिक मोहममद जायसी द्वारा रचित पद्मावत एक ऐसा महाकाव्य है जिसमें कवि की सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। हालाँकि यह बात भी सही है कि लगभग सभी सूफ़ी काव्य ग्रंथों का मूल उद्देश्य हिन्दू घरों में प्रचलित प्रेमकथाओं का काव्यात्मक वर्णन करते हुए सूफ़ी मत का प्रचार–प्रसार करना तथा हिन्दुओं और मुसलमानों में सांस्कृतिक एकता स्थापित करना था। एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि मुसलमान होते हुए भी जायसी ने पद्मावत में न तो मुस्लिम त्योहारों का वर्णन किया है और न ही मुस्लिम पृष्ठभूमि का एवं उनसे जुड़ी कहानियों का कोई सन्दर्भ ही दूसरी ओर इमसें हिन्दुओं के त्योहारों जैसे होली, दीवाली आदि का सुन्दर उल्लेख हुआ है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में– ''सूफ़ी कवियों ने जो कहानियाँ ली हैं, वे सब हिन्दुओं के घरों में बहुत दिनों से चली आती कहानियाँ हैं, जिनमें अवश्यकतानुसार उन्होंने हेर–फेर किया है। कहानियों का मार्मिक आधार हिन्दू है। मनुष्य के साथ पशु–पक्षी और पेड़–पौधों को भी सहानुभूति के सूत्र में बद्ध दिखाकर एक अखण्ड जीवन समष्टि का आभास देना हिन्दू प्रेम–कहानियों की विशेषता है। मनुष्य के घोर दुःख पर वन के वृक्ष भी रोते हैं। पक्षी भी संदेश पहुँचाते हैं। यह बात इन कहानियों में मिलती है।

कुल मिलाकर हिन्दी में प्रेमाख्यानक काव्य सूफ़ियों की देन है जिसमें कोई न कोई प्रेमकथा होती है। इन कथाओं का एक लौकिक अर्थ के साथ ही साथ एक अलौकिक अर्थ भी लिया जा सकता है। चाहे वह मुल्लादाउद का चन्दायन हो या कुतबन की मृगावती, जायसी का पद्मावत हो या फिर उसमान की चित्रावली या फिर नूर मोहम्मद की इन्द्रावती इन सभी ग्रंथों में प्रेमकथा है तथा प्रेम की महत्ता प्रदर्शित की गयी है। इन सूफी कवियों का मत है कि संसार में जो कुछ भी है प्रेम के कारण है। प्रेम ही सब कुछ है, वहीं लक्ष्य है और वही कल्याण का मार्ग भी है। इन सूफी संतों के योगदान को रेखांकित करते हुए आचार्य शुक्ल ने कहा है कि– ''कबीर ने अपनी झाड़–फटकार के द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों के कदृरपन को दूर करने का जो प्रयास किया, वह अधिकतर चिढ़ाने वाला सिद्ध हुआ, हृदय को स्पर्श करने वाला नही। मनुष्य–मनुष्य के बीच जो रागात्मक सम्बन्ध है, वह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ। अपने नित्य के जीवन में जिस हृदयाभास का अनुभव मनुष्य कभी–कभी किया करता है उसकी अभिव्यंजना उससे न हुई। कुतबन, जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिसका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक–सा प्रभाव दिखायी पड़ता है हिन्दू हृदय और मुसलमान हृदय आमने सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बची थी। यह जायसी द्वारा पूरी हुई।'[5]

भक्तिकाव्य मूलतः लोकजीवन की पीठिका पर उपजा काव्य है और मध्यकालीन सामंती समाज से टकराते हुए अग्रसर होता है। भक्त कवियों ने अपनी दृष्टि और चेतना के अनुसार उसे अपनी रचना में प्रक्षेपित किया है, उनके मार्ग अलग–अलग हो सकते हैं पर गन्तव्य में अधिक अन्तर प्रतीत नहीं होता क्योंकि लोक से लोकोत्तर अथवा उच्चतर मूल्य संसार की कामना सब कवियों में समान है। इस दृष्टि से सूर के काव्य में विद्यमान लोकतत्व, लोक चेतना, भी मानव मात्र के लिए कल्याणकारी है। सूर की कविता अपने समय के समाज के पीछे चलने या उसकी आलोचना करने के स्थान पर उस सामन्ती समाज की व्यवस्थाओं, संस्थाओं और रूढ़ियों के दमनकारी प्रभावों का निषेध करती हुई एक ऐसे समाज की रचना

करती है जिसमें लोक एवं शास्त्र के बन्धनों से स्वतंत्र मानवीय भावों और मानवीय सम्बन्धों का सहज स्वाभाविक विकास हुआ है। उनके काव्य में किसान जीवन की अभिव्यक्ति यथार्थ और सांकेतिक दोनों रूपों में हुई है। विनय के पदों में कृषक जीवन की अभिव्यक्ति जहाँ यथार्थ रूप में हुई है तो वहीं भ्रमरगीत में सांकेतिक रूप में यथा–

ÁÒ| th ;© fdUgÉ ge ["rh @ c|tj Òfe xkm| gj t¨r] v# t|rh dh r|rh
dke Ø¨/k n¨m cYk cYkh fefYk] j t rkel lc dhUg©A
vfr d|cf) eu gkdu gkj] ek;k t|vk nhUg©A

सूर के काव्य में खेती के साथ–साथ पशुपालन का भी सुन्दर वर्णन हुआ है–

1) माधौ जू, यह इक मेरी गाई। अब आज तै आप आगै दई, लै आइयै चराई।
2) चरावत वृंदावन हरि धेनु ग्वाल सखा, सब संग लगाए खेलत है, करि चैनु।

सामन्ती व्यवस्था में लगान की लूट के साथ–साथ सूदखोरी की प्रथा भी किसानों को तबाह करती रहती है। सूरदास ऋण प्रथा की बुराई से बखूबी परिचित है। इसीलिए अपनी रचनाओं में उन्होंने आमजन की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है–

lc| d|j e¨l¨ _.k pkgr] dg© dgk fru nh t|A
fcuk fn;s| n‰[k n|r n;kfuf/k] dg© d©u fof/k dh t|A

यही नहीं सूर के काव्य में राजनीतिक छल, छद्म का भी सुन्दर उल्लेख हुआ है–

gfj g| jktuhfr if< vk;|A lef> ckr dgr e/kdj t¨\ lekpkj d|N ik;|\
bd vfr p|rj n|r| ifgY¨ gh] v# dfj ug fn[kk,
tkuh of) cMh t|ofru d¨ t¨x ln|'k iBk,AA

सूरदास जी के काव्य में गाँव एवं शहर के द्वन्द्व की अभिव्यक्ति भी हुई है। जिसमें गाँव और शहर के बीच का द्वन्द्व अनेक स्तरों पर है। ज्ञान और योग को शहर का तथा प्रेम और भक्ति को गाँव का प्रतीक माना गया है। गोपियां उद्धव से कहती हैं–

x¨d|Yk lc| x¨ikYk mikl h @ t¨x vx lk/kr t| Å/k¨ r| lcclr b|li|j dkl hAA

सूरदास जी यह मानते हैं कि गाँव के लोग ईमानदार एवं हृदय के सच्चे होते हैं जबकि शहर के लोग कपटी एवं स्वार्थी होते हैं। भ्रमरगीत में गोपियां कहती हैं–

og eFkjk dk t j dh d¨Bfj t| vkofg r| dkjA re dkj| l|QYkd l|r dkj] dkj| e/ki Òokj|AA

इस प्रकार सूरदास जी के काव्य में लोकतत्व, लोकचेतना एवं मानव मूल्यों का समग्रता के साथ वर्णन हुआ है। भक्तमाल में नाभादास ने सूरदास के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि–

fceYk cf) xu| v©j dh t¨ ;g x|u Joufu /kj|A
l|j dfcr l|fu d©u dfo t¨ ufg fl j pkYku dj|AA[6]

आचार्य शुक्ल ने सूरदास जी के साहित्यिक महत्व को रेखांकित करते हुए कहा है– ''जिस प्रकार रामचरित का गान करने वाले भक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास जी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार कृष्णचरित गाने वाले भक्त कवियों में महात्मा सूरदास जी का। वास्तव में ये हिन्दी काव्य गगन के सूर्य और चन्द्र हैं। जो तन्मयता इन दोनों भक्त–शिरोमणि कवियों की वाणी में पायी जाती है। वह अन्य कवियों में कहाँ? हिन्दी काव्य इन्हीं के प्रभाव से अमर हुआ, इन्हीं की सरसता से उनका स्रोत सूखने न पाया सूर की स्तुति में यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है–

fd/k© l|j d¨ l|j YkX;¨] fd/k© l|j d¨ ih|jA
fd/k© l|j d¨ in YkX;¨] c/;¨ ldYk lj|h|jAA**[7]

भक्तिकाव्य की सामाजिक उपादेयता की अगली कड़ी के रूप में महत्मा तुलसीदास के साहित्यिक एवं सामाजिक अवदान को देखें तो हम पाते हैं कि अपने जीवन काल में मुगलशासन काल के चार सोपानों (हुँमायु, शेरशाह, अकबर एवं जहाँगीर के शासन काल) के दौरान तुलसी ने जन सामान्य के प्रति भीषण त्रासदी, गहरी पीड़ा व आर्थिक संकट से भलीभाँति परिचित हो चुके थे। भूख से पीड़ित

व्यक्ति का नैतिक भ्रष्ट होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। तुलसीयुगीन समाज, संस्कारों से च्युत व रूढ़ परम्पराओं को ढ़ोने वाला था। समाज को व्यवस्था देने वाली व्यवस्थाएं बाधित हो रहीं थी। सम्पन्नता के स्तर पर समाज दो वर्गों में बटा था। पूर्ण रूप से साधन सम्पन्न शाही वर्ग तथा अभावों का जीवन जीने के लिए अभिशप्त जनसामान्य वर्ग। जनसामान्य में भी बाल–विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा जैसी कुरीतियों का शिकार स्त्री वर्ग तथा धार्मिक, सामाजिक अस्पृश्यता की मार सहते हुए घृणित जीवन जीने को बाध्य शूद्र वर्ग की दयनीय स्थिति थी इन समस्याओं को देखते हुए प्राकृतजनों की स्तुति को नकारते हुए तुलसी ने जन सामान्य के बीच अपनी गहरी पैठ बनायी तथा उनके दुःख दर्द को गहराई से समझा यदि कबीर ने युगीन जुलाहों एवं निचले तबके के व्यक्तियों की पीड़ा को समझा तो तुलसी ने किसानों की दयनीय स्थिति व अकाल तथा भुखमरी से बेहाल जनता की त्रासदी के साथ खड़े होकर संवेदात्मक एकात्म स्थापित किया एवं उस समय की तत्कालीन स्थिति को अपनी रचनाओं में स्थान दिया–

[¨rh u fdlku d¨ fÒ[kkjh d¨ u Òh[k ÒfYkA
cfud d¨ cfut u pkdj d¨ pkdjhAA
thfodk foghu Yk¨x lh?keku l¨p clA
dgq ,d ,du l© dgk tkb dk djhAA

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में तुलसीदास ने तत्कालीन सामाजिक स्थिति का भी अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है कि किस प्रकार समाज में धर्म लुप्त हो रहा है एवं अधर्म का बोलबाला है ब्राह्मण वेद बेच रहे हैं और राजा प्रजा का शोषण कर रहा है तथा वेद शास्त्रों की आज्ञा कोई नहीं मान रहा है–

f}t Jfr cpd Òi Átklu @ d¨Å ufg eku fuxe vu¡'kklu A

अशुभ वेशभूषा धारण करने वाले, भक्ष–अभक्ष खाने वाले ही कलियुग में योगी समझे जा रहे हैं। तपस्वी धनवान है और गृहस्थ दरिद्र जीवन जी रहे हैं–

rilh /kuoar nfjæ xgh A dfYk d©rid rkr· u tkr dgh AA

माता–पिता की आज्ञा पुत्र केवल तभी तक मानते हैं जब तक उनका विवाह नहीं हो जाता पत्नी का मुख देखते ही उन्हें ससुराल एवं ससुरालीजन प्रिय लगने लगते हैं और अपने कुटुम्बीजन शत्रु प्रतीत होने लगते हैं–

l¡r ekufg ekr¡ firk rc yk A vcykuu nh[k ugh tc yk A
l¡ljkfj fivkjh yxh tcr¡A fji¡ :i dVEc Hk, rcr¡AA

इतना ही नहीं लोगों में इतना अहंकार बढ़ गया है कि वे अपने आगे किसी को कुछ नहीं समझते। इस कलियुग में कोई बेटी–बहन की मर्यादा को नहीं मानता–यथा

y?k¡ thou l¡or¡ i¡p nlk A dyikr u ukl x¡eku v lk A
dfydky fcgkYk fd;¡ eu¡tk A ufg ekur Dok vu¡tk ru¡tk AA

इस प्रकार तुलसीदास ने रामचरितमानस में कलियुग का वर्णन करते हुए तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथातथ्य चित्रण किया है। मुस्लिम शासन में फैली अव्यवस्था एवं अधार्मिकता का चित्रण करने का कोई अन्य तरीका उस समय सम्भव ही न था।

तुलसीदास अपने युग का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए टुकड़े–टुकड़े में बंटे समाज को एकजुट करने हेतु प्रयासरत थे। इसके लिए उन्होंने समन्वय का रास्ता अपनाया सगुण का निर्गुण से तथा शैव का वैष्णव से आदि। तुलसीदास यह जानते थे कि किसी एक वर्ग की स्तुति और दूसरे की निन्दा से समाज में सामन्जस्य स्थापित नहीं हो सकता। इसीलिए उन्होंने एक ऐसे रामराज्य की परिकल्पना प्रस्तुत की जिसमें सभी प्रजाजन मिल–जुलकर रह सकें एवं उन्हें किसी प्रकार का कोई कष्ट न हो–

nfgd nfod Hkkfrd rkik] jkejkT; ufg dkgq fg 0;kik A
lcuj djfg ijLij ihrh% pyfg Lo/ke¡ fujr Jfruhrh A

राम के राज्य में सभी लोग परस्पर प्रेम से रहते हैं एवं अपने–अपने धर्म, कर्त्तव्य का पालन लोकशास्त्र एवं वेद मर्यादा के अनुरूप करते हैं किसी को भी किसी प्रकार का दुःख नहीं है–

ufg nfjn dkÅ n[kh u nhuk] ufg d¨Å vc/k u YkPNu ghukA
lc funÒ /keZjr i|uh] uj v# ufj pr|j lc x|uhAA

तुलसीदास जी की अवधारणा थी कि एक आदर्श राजा की स्थिति शरीर में मुख के समान होती है–

ef[k;k e|[k l¨ pkfg, [kku&iku d¨ ,dA
ikYkb i¨lb ldYk vx r|Yk lh lfgr foodAA

तुलसीदास जी ने व्यक्ति के लिए आवश्यक मानवीय गुणों का भी उल्लेख किया है। क्षमा, दया, परोपकार, करुणा, प्रेम, सहिष्णुता आदि गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही एक अच्छे समाज का निर्माण करते हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं कि मंत्री, वैद्य और गुरु यदि किसी लोभ, लालच या भय के वशीभूत होकर चापलूसी करते हैं और सत्य वचन नहीं बोलते हैं तो उस राजा का राज्य, रोगी का शरीर, और व्यक्ति का धर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाता है–

lfpo] o|| x# rhfu t¨ fÁ; c¨Ykfg Ò; vklA
jkt] /keZ] ru rhfu dj g¨b| cxgh uklAA

इस प्रकार तुलसीदास बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी एक ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने एक भक्त कवि, उपदेशक, मनीषी, विद्वान एवं समाज सुधारक के रूप में भारतीय समाज पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। तुलसी ने मानस के माध्यम से युगीन यथार्थ को प्रस्तुत करने वाले पात्रों को प्रस्तुत किया है, तो उसके आदर्श रूप की परिकल्पना कर आदर्श पात्रों को भी गढ़ा तथा क्या उचित है क्या अनुचित है यह पाठकवर्ग पर छोड़ दिया कि वे रामत्व को अपनाएं या रावणत्व को। अतीत से सीख लेते हुए वर्तमान में उज्ज्वल भविष्य के निर्माणार्थ प्रेरित करने का भाव तुलसी के युगबोध में है जो उन्हें कालजयी रचनाकार के रूप में स्थापित करता है, उनके साहित्यिक अवदान को देखते हुए ही आचार्य हजारी द्विवेदी ने उन्हें लोकनायक की संज्ञा दी है–''लोक नायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, तुलसीदास महात्मा बुद्ध के बाद भारत के सबसे बड़े लोकनायक थे, उनका सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। उसमें केवल लोक एवं शास्त्र का ही समन्वय नहीं है अपितु गार्हस्थ्य और वैराग्य का भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिंता का, समन्वय 'रामचरितमानस' के आदि से अन्त तक दो छोरों पर जाने वाली पराकोटियों को मिलाने का प्रयत्न है।''[8]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार ''तुलसीदास जी उत्तरी भारत की समग्र जनता के हृदय–मंदिर में पूर्ण प्रेम प्रतिष्ठा के साथ विराज रहे हैं भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कहा जा सकता है तो इन्हीं महानुभाव को इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवद्भक्ति का उपदेश करती है, दूसरी ओर लोक पक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का सौन्दर्य दिखाकर मुग्ध भी करती है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की अत्यन्त उज्ज्वल छटा उसमें वर्तमान है।''[9]

भक्तिकाव्य की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है उसका लोक की भाषा में रचा जाना जिसके नाते उसकी पहुँच साधारण जन तक हो सकी है। पहली बार कविता जनता की भाषा में जनता को संबोधित होती है एवं उनकी आशाओं, आकांक्षाओं को वाणी देती है। भक्ति काव्य का लोकभाषा में रचा जाना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि यह आगे के रचनाकारों के पथ प्रदर्शन का काम करती हैं कि वे जो कुछ भी समाज एवं लोककल्यार्थ लिखें उसे जनता की भाषा में ही लिखें जिससे वह बात जनता के हृदय में उतर सके एवं जनता उनका अनुसरण कर सके, क्योंकि लोकजीवन और आम जनता से जुड़े होने की बात तो लगभग सभी करते हैं लेकिन वास्तव में लोक हृदय में कितने उतर पाते हैं यह कहने की बात नहीं है। ''ये भक्त और संत मानक हैं आज की उस रचनाशीलता के लिए और रचनाकारों के लिए जो वस्तुतः साधारण जन के हित में प्रतिश्रुत हैं। जनता के दिल–दिमाग में गहरे उतरना और सदियों के अन्तराल के बावजूद स्थायी बने रहना इन संतों और भक्तों की अपनी रचना की बहुत बड़ी उपलब्धि है। यह केवल धर्म और भक्ति का जादू या नशा नहीं है, जनमानस की उनकी गहरी पहचान और उससे उनका

एकात्म है जिसके चलते अपनी बात को वे बिना किन्ही चमत्कारों का सहारा लिए सरल, किन्तु प्रभावी ढ़ंग से, कह सके हैं। उनके पाठकों का दायरा भी इतना बड़ा है कि शिक्षित–अशिक्षित स्त्री–पुरुष, आबाल–वृद्ध सब उसमें आ गये हैं।''[10]

भक्तिकाव्य का एक अन्य महत्त्वपूर्ण आयाम है इन भक्त संतों द्वारा लोक संस्कृति का उद्घाटन और वे ऐसा इसलिए कर पाये हैं क्योंकि वे स्वतः उस संस्कृति के उपज थे। उनकी संवेदना ग्रामीण संवेदना है जो मूलतः किसान जीवन से जुड़ी हुई है। चाहे वह तुलसीदास हो सूरदास हो या फिर जायसी हो। तुलसीदास एवं जायसी के काव्य में जहाँ अवध की लोकसंस्कृति बसी हुई है तो वहीं सूरदास में ब्रज की लोक संस्कृति जबकि मीराबाई में राजस्थान की लोकसंस्कृति के स्वर गूँजे है। इन सभी भक्त कवियों के काव्य में लोकमन की सहज अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि भक्तिकाल ही एकमात्र ऐसा काल रहा है जहां इतने विषम परिस्थितियों में भी इतने बड़े पैमाने पर शूद्र और अंत्यज कहे जाने वाले भक्त कवि उत्पन्न हुए। उनमें आण्डाल, मीरा एवं संत राबिया जैसे महिला भक्तों की भी एक पूरी जमात थी जिन्होंने अपने आचरण एवं वचनों द्वारा पूरे देश एवं समाज को झंकृत किया। कुल मिलाकर भक्तिकाव्य में मनुष्य के इन्द्रियबोध और भाव–जगत की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति हुई है चाहे वह मीरा का काव्य रहा हो या जायसी का, कबीर का रहा हो या फिर तुलसी या सूर का। ये भक्त कवि मानव मन के अतल गहराइयों को छूने में समर्थ हुए हैं एवं उसे उद्घाटित भी कर सके हैं। मानव जीवन के सारे पक्षों पर इन्होंने अपनी लेखनी चलाई तथा जीवन के सारे कार्य व्यापार इनके लेखन की परिधि में आये व्यक्ति, परिवार तथा समाज सबके अंतरंग को इन्होंने देखा और उनका मार्गदर्षन किया। इन्होंने प्राणिमात्र से प्रेम का संदेश दिया तथा इनके इन संदेशों ने तमाम पीड़ित हृदयों को शांति पहुचाई। शिवकुमार मिश्र के शब्दों में– ''रचना वही महत्त्वपूर्ण होती है जो अपने समय के लिए तो जरूरी हो ही, आने वाले समय के लिए भी उतनी ही प्रासंगिक हो। भक्ति–कविता ऐसी ही कविता है, जो अपने समय में तो महत्त्वपूर्ण थी ही आज के समय के लिए भी अर्थवान है। वही हमारी ऐसी विरासत है, जिसे हमें कृतज्ञता के साथ स्वीकार करना है और संरक्षण देना है।''[11]

lUnHkZ %

1. कबीर ग्रंथावली : श्यामसुन्दर दास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2008 ई0, पृ0 13
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2013 ई0, पृ0 41
3. भक्ति आन्दोलन और भक्तिकाव्य : शिवकुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2012 ई0, पृ0 291
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल, पृ0 46
5. वही, पृ0 64
6. वही, पृ0 103
7. वही, पृ0 107
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ0 नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ0 177
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य शुक्ल, पृ0 88
10. भक्ति आन्दोलन और भक्तिकाव्य : शिवकुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012 ई0, पृ0 294
11. वही, पृ0 298

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 72-74

dey'oj d mlkU;klk e lkfgfR;d ikfjof'kd puruk

MkW l'khy dekj flg*

साहित्य का जीवन के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जीवन का अर्थ है सामाजिक जीवन और समाज का निर्माण जो विभिन्न वर्गों के द्वारा होता है। साहित्य समाज का पथ–प्रदर्शन करता है, उसके नैतिक धरातल को दृष्टिगत करता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। डॉ0 रामकुमार वर्मा के अनुसार– ''समाज की व्यवस्था के लिए लक्ष्य रहा है कि वह मानव–मात्र के लिए कल्याणकर हो, उसमें शिवत्व की भावना सर्वोपरि हो।''[1]

अपने परिवेश का यथार्थ चित्रण ही साहित्य का सहज धर्म माना गया है। सहज धर्म से अभिप्राय यह है कि साहित्यकार सिद्धान्त या कर्त्तव्य–भावना से प्रेरित होकर अपने परिवेश का यथार्थ चित्रण नहीं करता, ऐसा करना उसके लिए एक प्रकार की अनिवार्यता हो जाती है। डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में–''जिस प्रकार उद्‌भिज पदार्थों का विकास सर्वथा भौतिक वातावरण पर निर्भर करता है, इसी प्रकार साहित्यकार की चेतना का विकास भी पूर्णतः उसके परिवेश पर ही आधारित रहता है।''[2]

साहित्यकार की कृति के पीछे उसके कर्त्ता का व्यक्तित्व रहता है। लेकिन साथ ही यह भी पूरे आग्रह के साथ प्रतिपादित करता है कि कर्त्ता के व्यक्तित्व के पीछे उसका देशकाल विद्यमान रहता है अर्थात साहित्कार देशकाल की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों का ही प्राधान्य रहता है। डॉ0 नगेन्द्र ने साहित्य को इन शब्दों में स्पष्ट किया है– ''साहित्य समाज–व्यवस्था के विविध, पक्षों पारिवारिक सम्बन्धों, वर्ग–संघर्ष और संभवतः पृथक्करण की प्रवृत्तियों एवं आबादी की संघटना का प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब होता है।''[3]

हमारा समाज, हमारी भाषा और हमारी अभिव्यक्ति की परिपाटियाँ इतनी तेजी से बदल रही है कि साहित्यकार के कामों में साहित्य के लिए समाज तैयार करने का नया कार्य भी जुड़ गया है। परिवेश की चेतना आज की एक प्रबल आवश्यकता है। साहित्य के संदर्भ में परिवेश के आयाम और भी व्यापक हो जाते हैं, क्योंकि साहित्य हमारे समूचे संवेदना से जुड़ा होता है। प्राकृतिक परिवेश से लेकर यन्त्रोंद्योगी सभ्यता तक का पूरा क्षेत्र हमारे साहित्यिक परिवेश में शामिल है।

''साहित्य के माध्यम से हम सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक और भाषिक परिवेश का उल्लेख विस्तार से कर सकते हैं। कहीं न कहीं साहित्यकार भी रचना करते समय स्वयं भी अपना परिवेश हो जाता है।''[4] साहित्यकार समाज को बदलता है जिससे वह संवेदना हो नया विस्तार और नयी गहराई देकर उसमें एक लक्ष्यबोध, एक संकल्प पैदा कर सके। साहित्यकार की चेतना इन सभी बिन्दुओं से टकराये बिना नहीं रह सकती है।

प्रत्येक साहित्यकार अपनी कुशाग्र बुद्धि साहित्यिक प्रतिभा और सयम–सन्दर्भ के अनुसार अपनी साहित्यक पृष्ठभूमि तैयार करता है। कमलेश्वर ने कथ्य और शिल्प दोनों में परंपरा के स्थान पर नवीनता (आधुनिकता) को अधिक प्रश्रय दिया है। उनकी रचनाओं में आदर्श के स्थान पर यथार्थ है। कमलेश्वर का साहित्यिक दृष्टिकोण उनके 'कहानी–संग्रहों की भूमिका' तथा 'नई कहानी की भूमिका' में स्पष्ट रुप से उभर कर आया है। किसी भी साहित्यिक विधा के नये होने का प्रमाण ही यह है कि अपने से पूर्ववर्ती लेखन के सामने एक प्रश्न–चिन्ह लगा देती है और परिभाषा का संकट उत्पन्न कर देती है–''जो कुछ भी

*असि0प्रो0, हिन्दी विभाग, लोकनाथ पी0जी0 कालेज, रामगढ़, चंदौली

नया आता है। वह आलोचना को चौंकाता है उसे निस्तेज करता है जो कुछ भी नया आता है, वह न तो स्वीकृति से आता है और न अस्वीकृति से, उसमें सहज साहस होता है।''[5]

लेखक साहित्य के माध्यम से युगीन यथार्थ का अंकन करता है। वह अपनी युगीन परिस्थितियाँ और व्यक्तिगत राग–द्वेष अनुभवों को आधार बनाकर युग–सत्य का चित्रण अपने साहित्य में करके नये युग का सूत्रपात करता है। कमलेश्वर ने व्यक्तिगत जीवन की इन्हीं परिस्थितियों के आधार पर साहित्य–रचना की है। उन्होंने अपने उपन्यास 'समुन्द्र में खोया हुआ आदमी' की रचना के सन्दर्भ में लिखा है कि–''जब बाबू जी इतने निर्दयी हो गए तो मैंने वंश बदल लिया और उनके बारे में कभी कुछ नहीं लिखा। एक बार लिखा तो उनसे पूरा बदला लिया 'समुन्द्र में खोया हुआ आदमी' में मैंने' उन्हें अपने बेटे का इन्तजार करते और तड़पते उसी तरह देखा, जिस तरह मैं जिन्दगी में उनका इन्तजार करता और तड़पता रहा हूँ, पर यह तो बहुत बाद की बात हैं।''[6]

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास में साहित्यिक पारिवेशिक चेतना साहित्य–साधना, साहित्यकार के लिए केवल अभिव्यक्ति का साधन मात्र नहीं होती, अपितु साहित्य, साहित्यकार की भावनाओं से जुड़ी अनुपम एवं हृदयग्राही पूँजी होती है। साहित्य में कटने के पश्चात साहित्यकार की स्थिति बिना पानी के पड़पती मछली की भांति हो जाती है। कमलेश्वर अपने पहले उपन्यास की भूमिका में लिखा है– ''मेरे लिए यह उपन्यास उतना ही प्रिय है, जितनी प्रिय मेरे लिए मेरी माँ और मेरी जन्म भूमि मैनपुरी रही थी। इसे बेचकर करीब बीस साल मेरी आत्मा दुखती रही। लगता रहा, जैसे मैंने अपनी जन्मभूमि या माँ बेच दी हो।''[7]

साहित्य से इतना जुड़ाव–लगाव होने पर ही साहित्य–साधना का कोई औचित्य ठहरता है, अन्यथा ज्ञानार्जन, धनार्जन या यशार्जन के अनके साधन है, यह आवश्यक नहीं कि साहित्य रचना से यह सब सम्भव हो। साहित्यकार अपने युग, परिस्थितियाँ और समाज से कटकर साहित्य–साधना नहीं कर सकता। युग सापेक्षता की साहित्य की भूमिका होती है। कमलेश्वर ने प्रथम उपन्यास में साहित्यिक भाषा को अंकित किया है– ''छतनार इमली के पेड़ों से पानी झरता रहता,उसी के नीचे भुट्टे भूजते। बरसते पानी की पेंगों पर किसी अल्हैत का पौरुष भरा स्वर आता–बांधा सिरोही दोनों भिरि गए, खट–खट चलने लगी तलवार और बादलों की सेना गड़गड़ाकर जूझ जाती है।''[8] उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से लेखक यह कहना चाहता है कि साहित्यिक भाषा के द्वारा ही हम पूर्व युग की चित्रमयी झाँकी आज भी देख सकते हैं।

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास में कमलेश्वर ने अपनी भावाभिव्यक्तियों को इस प्रकार व्यक्त किया है– ''तुम लिखों और इन बुराईयों से लड़ो। मैं पैर तले से जमीन नहीं खिसकने दूँगा–स्टेज की जमीन।''[9] इस उदाहरण के माध्यम से कमलेश्वर कहना चाहते है कि साहित्य लेखन केवल अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं अपितु विभिन्न बुराईयों को खत्म कर समाज में जागरुकता लाने का भी काम करता है। 'समुन्द्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास में साहित्य आम आदमी के राग–द्वेष की अभिव्यक्ति तो करता ही है अपितु उसे मुक्ति का मार्ग भी सुझाता है। रज्जन समीरा से हमेशा कहता था कि– ''कविताएँ पढ़ो समीरा, क्योंकि कविताओं के बाद बहुत गहरी खामोशी पीछा लेकिन कविताओं के बाद की खामोशी बहुत खूबसुरत होती है समीरा। और यही तो वह चीज है जिसे जिन्दगीभर आदमी खोजता है''[10] इस उदाहरण में रचनाकार साहित्यकार, साहित्य द्वारा व्यक्तिगत दुश्चिन्ताओं से ऊपर उठने की प्रेरणा भी देता है।

'रेगिस्तान' उपन्यास से साहित्यिक पारिवेशिक चेतना द्वारा राष्ट्रीयता का सन्देश जन–जन तक पहुँचाना है। साहित्य का आधार मातृभाषा हो तो और अधिक राष्ट्रीयता का प्रचार–प्रसार होता है 'रेगिस्तान' उपन्यास का विश्वनाथ भी राष्ट्रभाषा का प्रचार करता है–''बाकर मिस्त्री ने तस्वीर के लिए कार्निस बना दी होगी, जिस पर बीचो–बीच वह रखी जाएगी। हिन्दी–मन्दिर में पूजा होगी और अब इतने, अपने ही गाँव में राष्ट्रभाषा प्रचार शुरु हो जाएगा।''[11] इससे स्पष्ट होता है कि साहित्य राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का पुनीत कार्य भी करता है।

कमलेश्वर ने अपने कथा साहित्य में युग–सत्यों का स्पष्ट चित्रांकन किया है। कमलेश्वर के समकालीन साहित्यकार मार्कण्डेय ने इनके उपन्यास 'लौटे हुए मुसाफिर' की भूमिका में लिखा है–''जीवन से इन पात्रों का लगाव इनकी क्षुद्रता और इनकी महानता के अनेक ऐसे वर्णन कमलेश्वर की रचनाओं में देखने को मिलते हैं, जिन्हें इसके पूर्व हिन्दी साहित्य में नहीं पाया जा सकता।''[12] लेखक रचनाधार्मिता के साथ न्याय नहीं कर सकता। इसीलिए सार्थक लेखन हेतु सर्वाधिक आवश्यक तत्व है कि रचनाकार समय सापेक्षता को दृष्टिगोचर रखे। मार्कण्डेय के अनुसार–कमलेश्वर समय सापेक्षिकता के प्रबल समर्थक रहे हैं। उन्होंने सामाजिक संदर्भों एवं देश विभाजन को उपन्यास में वर्णित किया है।

समाहार रुप में हम कह सकते हैं कि वैयक्तिक, सामाजिक, अद्वितीय दृष्टिकोण एवं परम्परा का निर्वाह कमलेश्वर के लेखकीय स्वरुप में मिलता है विगत तीन दशकों से हिन्दी तथा साहित्यकारों की श्रृंखला में कमलेश्वर एक सशक्त हस्ताक्षर रहे हैं। उनकी प्रतिभा कड़वे–अनुभवों के आधार पर एक नवीन–किन्तु मौलिक और विलक्षण साहित्यिक दृष्टि देने में सफल रही है।

सन्दर्भ :

1. रामकुमार वर्मा–साहित्य शास्त्र, पृ0–48
2. डॉ0 नगेन्द्र–साहित्य का समाजशास्त्र, पृ0–13
3. वही–पृ0–13
4. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'–साहित्य का परिवेश, पृ0–06
5. कमलेश्वर–खोई हुई दिखाएँ पृ0–06
6. कमलेश्वर–अपनी निगाह में, पृ0–67
7. कमलेश्वर–एक सड़क सत्तावन गलियाँ की भूमिका
8. वही–पृ0–08
9. वही–पृ0–96
10. कमलेश्वर–समुन्द्र में खोया हुआ आदमी, पृ0–06
11. कमलेश्वर–रेगिस्तान–पृ0–49
12. मारकण्डेय, लौटे हुए मुसाफिर, पृ0 6–7

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 75-77

;FkkFkkokn dh nf"V ls Hkqou'oj feJ d miU;klk dk of'k"V;

jkt'k dekj pUnu*

यथार्थवाद की अवधारणा हमारे लिए कोई नयी नहीं है। सामान्य तौर पर माना जाता है, कि जो कुछ भी सृष्टि में हमारी इन्द्रियों को महसूस होता है वह सब यथार्थ है। लेकिन यह वास्तव में पूरा सच नहीं है। जो सृष्टि में ज्ञात है वो तो यथार्थ है हीं लेकिन जो अज्ञात है वह भी यथार्थ है। यह अलग बात है कि हमारा बौद्धिक विकास यथार्थ के परिपेक्ष्य में अभी प्रारंभिक अवस्था मे हीं है।

साहित्य के संदर्भ में खासकर हिन्दी उपन्यास साहित्य की बात की जाय तो यथार्थ वर्णन ही इसका मूल आधार है। भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली से सुसज्जित हिन्दी साहित्य अपने आरंभ के दिनों में एक दायरे से बाहर नहीं जा पाया लेकिन समय, काल, परिस्थतियों के बदलाव ने साहित्य के स्वरूप को परिवर्तित किया और अपनी तमाम वर्जनाओं को तोड़ते हुए इसने अपने भीतर सामान्य जगत के सरोकारों को भी स्थान देना प्रारंभ किया जो यथार्थ का हीं मानवीय पक्ष था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "कविता यथार्थवाद की उपेक्षा करती है, संगीत यथार्थ को छोड़कर भी जी सकता है, पर यथार्थ कथा साहित्य का प्राण है"।[1] डॉ0 त्रिभुवन सिंह के अनुसार –"जो साहित्य और साहित्यकार मानव जीवन एवं समाज का संपूर्ण वास्तविक चित्र उपस्थित करता है और अपने साहित्य का विषय वस्तु काल्पनिक संसार से नहीं लेकर वास्तविक संसार से लेता है उसे हीं हम यथार्थवादी लेखक कहते हैं। यथार्थवादी लेखक अपनी कल्पना और प्रतिभा के बल पर बाह्य पदार्थों का यथा–तथ्य चित्र उपस्थित करने का प्रयास करता है, अथवा भौतिक तत्वों का चित्रण करते समय अपनी भावुकता और अपनी अनुभूतियों को बाधक नहीं होने देता है।"'[2] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''कालक्षेत्र में यथार्थवाद एक ऐसी मानसिक प्रवृति है जो निरंतर परिवर्तित और रूपायित होती रहती है।"[3]

तात्पर्य यह है कि सारी सृष्टि यथार्थ है और उसे समग्रता से ग्रहण करना यथार्थबोध है और इसी यथार्थबोध को बिना लाग–लपेट और जोड़–घटाव के प्रस्तुत करना यथार्थवाद है। इससे साहित्य की विश्वसनीयता बढ़ती है और पाठक वर्ग इससे जुड़ाव महसूस करता है। हिन्दी उपन्यास साहित्य अपने प्रारंभिक अवस्था में अनुवादित, उपदेशात्मक और मनोरंजक रूप में दिखाई देते हैं। हिन्दी साहित्य का प्रथम उपन्यास 'परीक्षागुरू' भी सुधारात्मक उपन्यास ही है। हिन्दी उपन्यास को मनोरंजक और रोमांचकारी और लोकप्रिय बनाने का कार्य करने वाले उपन्यासकार देवकीनन्दन खत्री, गोपाल राम गहमरी और किशोरी लाल गोस्वामी ने भी अपने उपन्यासों में यथार्थ की जगह कल्पना को भरपूर स्थान दिया। लेकिन सृजन प्रक्रिया की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह अपने भीतर सभी प्रकार के दृष्टिकोणों को संजोये रखता है। उसे समय–समय पर ऐसे व्यक्ति की तालाश होती है जो उसके भीतर पड़ी हुई शैशव अवस्था वाली प्रवृतियों को उभारकर राज और समाज को एक नई दिशा देने का कार्य करे। यही कारण है कि तिलस्म, ऐयारी, आदर्श और कल्पना के बीच से हीं उभरकर भुवनेश्वर मिश्र के रूप में एक ऐसा उपन्यासकार सामने आया जिसे अपने यथार्थवादी प्रयोगधर्मिता के कारण एक अर्धशिक्षित पाठक वर्ग और अविकसित एवं आडम्बर युक्त समाज से लोहा लेना पड़ा। उनकी लेखनी में तीव्र यथार्थबोध के कारण उन्हें अपने व्यक्तिगत जीवन में जिन चुनौतियों से दो चार होना पड़ा वह भुवनेश्वर मिश्र जी के रचना कर्म की तीव्रता और उसके प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाने के लिये काफी है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार –"उस काल के केवल एक उपन्यासकार भुवनेश्वर मिश्र की रचना–दृष्टि अपने समकालीनों

*शोध छात्र, हिन्दी साहित्य, बी0आर0ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

से भिन्न थी। मनोरंजन और प्रचार से उपर उठकर उन्होंने उपन्यास को जीवन की अभित्यक्ति के साधन के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। घराऊ घटना (1893) आश्रै बलवंत भूमिहार (1901) ऐसी ही कृतियाँ थीं।"[4]

यदि संख्या के आधार पर देखा जाय तो भुवनेश्वर मिश्र जी ने मात्र दो उपन्यासों की ही रचना की घराऊ घटना (1893) और 'बलवंत भूमिहार' (1901) लेकिन इन दो उपन्यासों में तीव्र यथार्थ के प्रस्तुति के कारण हीं अपने समकालीन समय में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा। भुवनेश्वर मिश्र के उपन्यासों की प्रमाणिकता उनके यथार्थबोध के कारण ही है। उनके उपन्यास हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा में नहीं आ पाते यदि डॉ0 रानिरंजन परिमलेन्दु उनके दोनों उपन्यासों को एक जिल्द में प्रकाशित कराकर पाठकों को उपलब्ध नहीं कराया होता।

आत्मकथात्मक पद्धति का उपन्यास घराऊ घटना उन्नीसवीं शताब्दी के संपूर्ण हिन्दी उपन्यास–साहित्य में पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व का निर्विवाद अधिकारी है। वह उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासों से सर्वथा भिन्न है। यह तिलिस्मी या ऐयारी उपन्यास नहीं है। 'घराऊ घटना' उपन्यास में हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास में सबसे पहली बार संस्कारबद्ध हिन्दू परिवार के चित्र मार्मिक अनुभूतियों और गहरी विश्वसनीयता के साथ आए हैं। हिन्दू परिवार के परंपरानुमोदित संस्कार, संस्कृति, धार्मिक आवेष्टन, दाम्पत्य जीवन, रीति–रिवाज, अंधविश्वास आदि का प्रमाणिक चित्रण 'घराऊ घटना' में हुआ है। इस उपन्यास के महत्व को उद्घाटित करते हुए डॉ0 परिमलेन्दु जी का कथन है –"हिन्दी में उन्नीसवी शती के उपन्यासों में 'घराऊ घटना' सर्वाधिक मौलिक उपन्यासों में से एक है। भुवनेश्वर मिश्र के उपन्यासों की अकाट्य मौलिकता बहुत महत्वपूर्ण है। अपने युग या उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासों से बिलकुल अलग हटकर लिखा गया उपन्यास 'घराऊ घटना' पारिवारिक अनुभवों से समृद्ध है। इसका घरेलूपन उपन्यास–साहित्य की विशेषता है। कथा–विकास के क्रम में परिवार और समाज की अनेक समस्याओं, रूढ़ियों आदि का चित्रण ईमानदारी के साथ यहाँ लेखक करता रहा है। जैसे बाल–विवाह की झाँकी, घर की बड़ी–बूढ़ी महिलाओं की पुत्रवधू लालसा, विवाह के बाद द्विरागमन में वर्षों का विलंब, परिणय पूर्व वधू दर्शन का परंपरानुगत निषेध आदि का अच्छा चित्रण यहाँ हुआ है। स्त्रियाँ बरसाइत का व्रत करती हैं। हिन्दी उपन्यास–साहित्य में बरसाइत का चित्रण पहली बार 'घराऊ घटना' में हुआ है। लेखक ने बरसाइत ओर अन्य सांस्कृतिक रीति–परिवेशों में सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि का परिचय दिया है।निर्भीक ईमानदारी लेखक की एक विशिष्ट उपलब्धि है। जैसे उपन्यास का लेखक नायक रिश्वतखोरी की अपनी प्रवृत्ति और तत्कालीन दुर्गुणों में शुमार तंबाकू पीने की बात नहीं छिपाता।

भुवनेश्वर मिश्र को मानव–चरित्र की गहरी पकड़ थी। नारी की आभूषण–लिप्सा के फलस्वरूप अपने बच्चे के लिए भी आभूषण, पत्नी का मानिनी रूप, पत्नी में मधुर शासिका और समर्पित सेविका का सम्मिलित रूप, नए वस्त्रों के प्रति नारी के आकार्षण, तीज की सरगही के आयोजन और सरगही का अतिप्रामाणिक चित्रण आदि 'घराऊ घटना' में सुंदर रूप में है।"[5]

सन 1896 में लिखित और 1901 में प्रकाशित यथार्थवादी उपन्यास 'बलवंत भूमिहार' के नायक बलवंत में स्वाभिमान है, आत्मविश्वास है, पौरूष है, किन्तु दर्प नहीं है। बलवंत भाग्यवादी है, किन्तु अकर्मण्य नहीं। अपने पर हुए अत्याचारों के लिए वह किसी पर दोषारोपण नहीं करना या किसी को उत्तरदायी नहीं मानता। ऐसा कहर वह अपने ह्रदय की विशालता का ही परिचय देता है।कथा के इस लघु वृत्त पर लेखक ने विभिन्न सामाजिक और चारित्रिक आयामों के वृहत संसार की रचना की है। यही लेखक की सफलता है। विभन्न जमींदारों में व्याप्त ईर्ष्या या किसी तुच्छ कारणवश पारस्परिक शत्रुता, जमींदारी, अत्याचार, जमींदारी, रहन–सहन, जमींदारी, वातावरण, उनके रीति–रिवाज, उनके संस्कार, उनकी परंपरा, उनके नाना प्रकार के झूठे मुकदमों की भीड़, उनके खुशामदी दरबारी लोगों आदि का अच्छा और सच्चा चित्रण लेखक ने निर्भीक्तापूर्वक किया है। चित्रण में लेखक ने विलक्षण ईमानदारी का परिचय दिया है। प्रत्येक दृष्टि से जमींदार वर्ग का गहरा अनुभव लेखक को है।

'बलवंत भूमिहार' हिन्दी का प्रथम उपन्यास है, जिसमें जमींदारों के अत्याचारों और उनकी मनोवृतियों का चित्रण बड़ी ईमानदारी और निर्भीकता के साथ किया गया है। इसमें आँचलिकता के बीज हैं। यह प्रतिकूल परिस्थितियों के चढ़ाव–उतार की महान् गाथा है। यह कि एक सुखांत उपन्यास है। 'बलवंत भूमिहार' के प्रत्येक पात्र का स्वंतत्र व्यक्तित्व है। इसके प्रत्येक पात्र के जीवंत यथार्थ का सफल चित्रण हुआ है। इसमें प्रकृति वर्णन भी है, जिसमें पूर्ववर्ती अथवा तत्कालीन प्रकृति वर्णन से सर्वथा भिन्न अभूतपूर्व स्वाभाविक यथार्थ–चेतना और अति दुर्लभ वाणी–संयम का सन्निवेश है।

इस उपन्यास में मुजफ्फरपुर जिले के दो भूमिहार जमींदार परिवारों के संघर्ष तथा बलवंत एवं यमुना की प्रेम कहानी की दो धाराएँ समानांतर रूप से अत्यंत यथार्थवादी और स्वाभाविक रूप से प्रवाहित हुई है। इसकी कथा के दायरे में विभिन्न सामाजिक और चारित्रिक आयामों का संसार संगुंफित है। यह जमींदारों के अंतर्जीवन और बहिर्जीवन के कलुष की महागाथा है। इसमें जीवन संघर्ष की अखंड ज्वाला है। यह प्रेमचन्द–पूर्व हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि ही है। यह सामाजिक यथार्थ की जलती हुई मशाल है। तीव्र यथार्थवाद के बावजूद जनहित की दृष्टि से इसकी परिसमाप्ति आदर्शोन्मुख यथार्थवाद में हुई है। भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी के अभ्युदय के अनेक दशक पूर्ण इसकी परिसमाप्ति में गाँधीवादी हृदय–परिवर्तन है, नायक द्वारा साधन एवं साध्य की शृद्धि का अनुष्ठान है।मिश्र जी के उपन्यासों का शिल्पगत वैशिष्ट्य प्रेमचन्द्र–पूर्व उपन्यास साहित्य की उपलब्धि हीं है। उनमें आँचलिकता का सफल अंकुरण है, आँचलिकता की आभा है, लोकतत्वों की मार्मिकता है।'घराऊ घटना' और 'बलवंत भूमिहार' के आधार पर उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के हिन्दी भाषी भारतीय समाज का समाज–शास्त्रीय अध्ययन सफलतापूर्वक किया जा सकता है।"[6]

संभव है कि भुवनेश्वर मिश्र के उपन्यासों में धार्मिक सुधार आंदोलन और महात्मा गाँधी के भारतीय राजनीति में आगमन के साथ ही भविष्य के बेहतर होने की उम्मीद ने हीं यथार्थ का दामन पकड़ने की प्रेरणा दी हो लेकिन जो भी हो उन्होंने बाद के उपन्यासकारों के लिये एक नये रास्ते के निर्माण का आरंभ कर हीं दिया। प्रेमचन्द युग या प्रेमचन्द्रोत्तर युग के सारे उपन्यासकारों ने यथार्थ का दामन इस कदर पकड़ा की आज उपन्यास लेखन का आधार हीं यथार्थ बन गया है। एक यथार्थवादी उपन्यासकार के रूप में हिन्दी साहित्य में उन्होंने जो अमिट छाप छोड़ी वह अविस्मरणीय है।

l UnHkl %

1. हजारी प्रसाद ग्रंथावली – संपादक मुकुन्द द्विवेदी, भाग – 10, पृ0 सं0–147
2. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद – त्रिभुवन सिंह, पृं0 सं0–7
3. हजारी प्रसाद ग्रंथावली – संपादक मुकुन्द द्विवेदी, भाग – 10, पृ0 सं0–147
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 सं0 – 573 –74
5. बलवंत भूमिहार / घराऊ घटना, भुवनेश्वर मिश्र, प्रस्तुति – रामनिरंजन परिमलेन्दु, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2005, पृ0 सं0 – 7
6. उपरिवत् – पृ0 सं0 – 9 एवं 10

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 78-82

ifjokj e L=h % LFkkfir vFkok foLFkkfir ¼Hkkjr d ifji{; e½

jpu ;kno*

इतिहास और साहित्य (वोल्गा से गंगा, मानव–समाज आदि) के माध्यम से ज्ञात होता है कि पितृसत्ता से पूर्व मातृसत्तात्मक व्यवस्था थी। 'करतल–भिक्षा तरूतल–वासः' (सांकृत्यायन, राहुल. मानव–समाज. पृ.13) जैसे समय में मातृसत्ता बहुत अधिक विकसित समाज तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन विकासशील समाज से इंकार भी नहीं किया जा सकता है। मातृसत्तात्मक व्यवस्था में भी परिवार व्यवस्था का उदाहरण दिखायी देता है, जिसमें स्त्रियाँ घर की मुखिया हुआ करती थीं। किंतु समय बदला, ''भारत में ईसा पूर्व 5500 वर्ष से पितृसत्ता का आगमन हुआ'' (चर्तुवेदी, जगदीश्वर, सुधा सिंह. संपा. स्त्री अस्मिता–साहित्य और विचारधारा.पृ. 258.)

ई. पू. 5500 के पहले मातृसत्तात्मक व्यवस्था की कोई पुस्तक या साहित्यिक प्रमाण का ज्ञान मुझे प्राप्त नहीं है और जिसे ब्रह्मवाणी माना जाता है यानि वेद... उसमें योगदान देने वाली ऋषिकाओं रोमशा, लोपामुद्रा, अदिति, विश्ववारा आत्रेयी, अपाला आत्रेयी, घोषा, इन्द्राणी, सर्पराज्ञी आदि की ऋचाओं से पितृसत्ता का हो बोध होता है।

जैसा कि मिथकों से ज्ञात होता है गौतम ऋषि के वंशज उद्दालक और आरूणि के पुत्र तत्वाज्ञानी आचार्य श्वेतकेतु ने अपनी माता के साथ पारिव्राजकों द्वारा किए जाने वाले दुर्व्यवहार को देखकर दुखी हो गये और विवाह संस्था की स्थापना कर दी। विवाह संस्था को मजबूत किया और परिवार समाज और समाज ने राष्ट्र को मजबूत बनाने में सहयोग प्रदान किया। -(https://hindi.webdunia.com/sanatan-dharma-history/husband-and-wife-118051200016_1.html)

परिवार का उल्लेख वेदों (ऋग्वेद, अथर्ववेद) और पुराणों (पद्मपुराण, नारद पुराण, स्कन्द पुराण) में भी प्राप्त होता है, लेकिन परिवार संस्था उस समय अधिक सुचारु रूप से सुदृढ़ हुआ जब महर्षि मनु ने मनुस्मृति (मेरे विचारानुसार मनुस्मृति उस समय का संविधान था) के गृहस्थाश्रम के अंतर्गत नियमबद्ध किया और परिवार के सभी सदस्यों खासकर पति–पत्नी दोनों के कर्तव्यों का निर्धारण किया।
समाजशास्त्रियों ने परिवार को ''नागरिकता की प्रथम पाठशाला'' (मुकर्जी, आर. एन. भरत अग्रवाल. प्रारम्भिक समाजशास्त्र. पृ. 97) माना जाता है। परिवार ''अंग्रेजी शब्द 'Family' लैटिन शब्द 'Famulus' से निकला है। इस लैटिन शब्द से एक ऐसे समूह का बोध होता है जिसके अंतर्गत माता और पिता, अविवाहित बच्चे नौकर और यहाँ तक कि दास (Slaves) भी आ जाते हैं''। (मुकर्जी, आर. एन., भरत अग्रवाल. प्रारम्भिक समाजशास्त्र. पृ.90)

इसे समाजीकरण प्रक्रिया की पहली कड़ी मानते हुए सर्वश्री मैकाइवर और पेज (Maclver & Page) लिखते हैं, ''परिवार पर्याप्त निश्चित यौन–संबंध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है जो बच्चों को पैदा करने तथा उनका लालन–पालन करने की व्यवस्था करता है''। (मुकर्जी, आर. एन., भरत अग्रवाल. प्रारम्भिक समाजशास्त्र. पृ.91)

*रिसर्च/फैकल्टी असोसिएट, हिन्दी विभाग, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, यमुना एक्सप्रेस–वे, ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर, पिन–201312 (उ.प्र)

डॉ. डी. एन. मजूमदार, ''परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो एक मकान में रहते हैं, रक्त संबंधित हैं और स्थान, स्वार्थ तथा पारस्परिक कर्तव्य–बोध के आधार पर समान होने की चेतनता या भावना रखते हैं''। (मुकर्जी, आर. एन., भरत अग्रवाल. प्रारम्भिक समाजशास्त्र. पृ.91)

परिवार को सुचारु रूप से संचालन के लिए निर्धारित कर्तव्यबोध ऋग्वेद में वर्णित जीवन की सात मर्यादाएँ परिवार में अहम् भूमिका निभाती हैं– ''सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यंहुरोघ्गात्। आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरूणेषु तस्थौ'' ।। (ऋग्वेद 4/1/6) – (प्रकाश, भगवती. परिवार और हम. पृ49)

'परिवार और हम' पुस्तक में प्रो. भगवती प्रकाश पारिवारिक सौहार्द के लिए भावात्मक प्रज्ञा (Emotional Intelligence) तथा परिवार में साझा दृष्टिकोण विकसित करने के लिए भावनात्मक लब्धि अर्थात् इमोशनल कोशेण्ट (Emotional Quotient) को आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार EQ यानि Emotional Quotient से हम दूसरों की भावनाओं को ठीक से समझ सकते हैं और उन्हें ध्यान में रखकर व्यवहार करते हैं। जिससे रिश्तों में सौहार्द बना रहता है। (प्रकाश, भगवती. परिवार और हम. पृ.68)

वे आगे लिखते है, "Emotional Intelligence" की अवधारणा जब सबसे पहले 1995 में goleman ने दी। उनके अनुसार जिन्दगी में 20 प्रतिशत सफलता IQ के कारण मिलती है जबकि 80 प्रतिशत सफलता Emotional Intelligence के कारण मिलती है। जहाँ प्फ आपके ज्ञान को दर्शाता है। वहीं Emotional Quotient व्यक्ति को स्वयं की एवं दूसरों की भावनाओं (Feelings & Emotions) को समझने और उन्हें manage या समायोजित करने की योग्यता है। जिनका Emotional Quotient बेहतर होता है वे लोग बदलते परिवेश या Environment के साथ पारिवारिक एवं सामूहिक कार्यों एवं व्यवहारों में बेहतर सफलता अर्जित करते हैं'' (प्रकाश, भगवती. परिवार और हम. पृ. 69)

अर्थात् EQ के बिना परिवार को लम्बे समय बनाए रखना मुश्किल है। अतः परिवार निर्माण दो स्तरों पर देखा जा सकता है– संरचनात्मक स्तर तथा भावनात्मक स्तर पर

1- lajpukRed Lrj ij % संरचनात्मक स्तर पर समाजशास्त्रियों ने परिवार को दो भागों में विभाजित किया है–

,dkdh ifjokj % ''पति–पत्नी और अधिक से अधिक उनके अविवाहित बच्चों से बने परिवार के सबसे छोटे और आधारभूत स्वरूप को ही मूल या एकाकी परिवार कहते हैं''। (मुकर्जी, आर एन., भरत अग्रवाल, प्रारम्भिक समाजशास्त्र. पृ. 280)

l;qDr ifjokj % डॉ. आई. पी. देसाई ''हम उस परिवार को संयुक्त परिवार कहते हैं जिसमें मूल परिवार से अधिक पीढ़ियों के सदस्य (अर्थात् तीन पीढ़ियों के सदस्य) सम्मिलित हों तथा उसके सदस्य एक–दूसरे से सम्पत्ति, आय तथा पारस्परिक अधिकारों एवं कर्तव्यों के द्वारा सम्बद्ध हों''। (मुकर्जी, आर एन., भरत अग्रवाल, प्रारम्भिक समाजशास्त्र. पृ. 279)

2- Hkkoukred Lrj ij % सर्वश्री आगबर्न और निमकॉफ (Ogburn and Nimkaff), बच्चों सहित अथवा बच्चों रहित एक पति–पत्नी के या बच्चों वाले किसी अकेले पुरूष या अकेले स्त्री के, लगभग स्थायी संघ परिवार को परिवार कहते हैं।''। (मुकर्जी, आर. एन., भरत अग्रवाल, प्रारम्भिक समाजशास्त्र. पृ. 91)

यदि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समाजशास्त्रियों द्वारा निर्धारित परिभाषा से हटकर देखा जाय तो लीक से हटकर चलने वाले अर्थात् स्वेच्छा से भी भावनात्मक स्तर पर पारिवारिक रिश्ते बनते हैं, जैसे समलैंगिक, थर्ड जेंडर, लिविंग रिलेशनशिप आदि। जिसे अप्राकृतिक यौन संबंधों के अंतर्गत रखा जाता है तथा उसे परिवार संस्था समझाा ही नहीं जाता।

किंतु प्राकृतिक यौन संबंधों के अंतर्गत तथा परिवार संस्था के भीतर भी स्त्री का पूरा संसार भावनात्मक स्तर पर ही टिका होता है और उसे बचपन से ही इस प्रकार संस्कारित किया जाता है कि जो उसका है यानी मायका अथवा पीहर, उस घर में वह परायी है तथा जो उसका नहीं है यानी ससुराल, वह घर उसका अपना परिवार और घर है। होने और न होने के बीच अपने अस्तित्व को वह संभावित

परिवार के स्तम्भ से खुद को बाँधकर अपना होना साबित करने के जद्दोजहद में वह पूरे जीवन असुरक्षा की भावना से ग्रसित रहती है। इन सबमें एक ही चीज उसे बाँधती है–भावना... अर्थात् बिना भावना के स्त्री के संदर्भ में परिवार की कल्पना नहीं की जा सकती। इस संदर्भ में प्रश्न उठता है कि क्या पुरुष के अंदर परिवार के लिए कोई भावना नहीं होती? होती हैं किंतु पुरुष को विस्थापित नहीं होना पड़ता उसका जो है वह है। वह संभावना अथवा कल्पना के बल पर घर और परिवार नहीं बसाता।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में परिवार में स्त्री को एक ही समय में स्थापित और विस्थापित दोनों समानांतर रूप से होना पड़ता है, जिसके निम्नलिखित कारण हैं–

1. धर्म नैतिकता द्वारा प्रदत्त शिक्षा
2. रक्त–संबंध तथा यौन–संबंध के दोहरे मापदण्ड
3. संस्कारों द्वारा स्त्री को नज़रबन्द किया जाना
4. शिक्षा और अर्थ में असमान भागीदारी
5. मनोसामाजिक संरचना

वेद, पुराण, मनुस्मृति एवं संहिताओं से लेकर अब तक के जितने भी नैतिक–आचरण अथवा कर्तव्य–बोध की शिक्षा देने वाले ग्रंथ हैं वे सभी स्त्री को अपने रक्त–संबंधियों से विस्थापित होकर पति के रक्त–संबंधियों के साथ स्थापित होने के लिए आचरण की शिक्षा देते हैं। जबकि पुरुष का रक्त संबंध यथावथ बना रहता है, उन्हें स्त्री के रक्त–संबंधियों के साथ स्त्री के समान आचरण करने की शिक्षा नहीं दी जाती। यह ध्यातव्य है कि यह प्रक्रिया बचपन से ही संस्कारों द्वारा भावनात्मक स्तर पर प्रांरभ कर दी जाती है।

पितृसत्ता में नारी का अपना अस्तित्व स्थापित करने के लिए 'नर' का ही सहारा लेना पड़ता है। विवाह के समय कन्यादान, पाणिग्रहण के समय नारी शब्द का प्रयोग सबसे पहले किया जाता है। नारी नर के संसर्ग में आने पर ही नारीत्व को प्राप्त करती है। ''नारीत्व' को प्राप्त करते ही वह दो आदर्श अपने सामने अपने ही वचन में जीवन के लिए रखती है–1. 'आयुष्मानस्तु में पतिः' 2. 'एधन्तां ज्ञातयो मम'। मेरा पति पूर्ण आयुसम्पन्न हो और मेरी जाति(समाज) की अभिवृद्धि हो। नारी होने के बाद ही उसे 'सौभाग्य' की प्राप्ति होती है (अ.14/1/38,पा.गृ.1/8/9)''। –(गीता प्रेस. कल्याण वेद–कथांक़. गोरखपुर. पृ.484 (नारी और वेद))

सौभाग्य प्राप्ति से पहले 'कन्या' अपने पिता और भाई के संरक्षण में जन्म लेकर 'पराया धन' बनकर जीवन निर्वाह कर रही होती है। पराया धन, कन्या जिसे दान में देना है, पराये घर की बर्तन, चिट्ठी–पतरी लिखने तक की शिक्षा, प्रेम करने की मनाही, भाई–बहन को अलग–अलग संस्कारित करना, ससुराल में 'परफेक्ट' बहू बनकर जाने के लिए घर के काम–काज की शिक्षा देना आदि के नाम पर उसकी नज़रबन्दी करना उसे विस्थापन के लिए मानसिक रूप तैयार किया जाना है। दूसरी तरफ जिन्हें वह जानती भी नहीं ऐसे पति और परिवार का क्षीरसागर में बैठकर चरण दबाने हेतु 'लक्ष्मी' बनाकर भेजा जाना, पति के परिवार और उसके समस्त रक्त संबंधियों का हित एवं स्वर्ग जैसा समृद्ध बनाने की जिम्मेदारी उसके कंधों पर होना, यदि वह ऐसा न कर पाये अथवा कहीं चूक हो जाये तो उसे आलोचनाओं ('दूसरे घर से आयी हुई' कहकर उसके अस्तित्व को खारिज करना) का शिकार बनना आदि उसे स्थापित परिवार में विस्थापित होने के बोध से भरे होते हैं–

^^viuh txg lq fxjdj
dgh d ugh jgr
d'k] vkjr vkj uk[ku** (कवि ने कहाः अनामिका, पृ. 11)

जबकि पुरुष के लिए अपने ससुराल को स्वर्ग बनाने की कोई जिम्मेदारी निर्धारित नहीं होती। भारत में ऐसे असंख्य पति हैं जो विवाह के पश्चात् अपने ससुराल जाने से हिचकते हैं और अपनी पत्नी को भी नहीं जाने देतें। यदि कोई पुरुष स्वेच्छा से अपनी पत्नी और उसके परिवार के हित के विषय में

सोचता है तो उसे 'जोरू का गुलाम' कहकर अपमानित किया जाता है किंतु स्त्री के लिए पति और उसके परिवार की सेवा करना 'पतिव्रता' कहलाता है।

'पतिव्रताओं'! से यह उम्मीद की जाती है कि वह विवाह के पश्चात् (जहॉ उसका अपना कोई नहीं है) असहज महसूस किए बिना 'तत्काल प्रभाव से एडजेस्ट' कर ले। सास–ससुर, ननद–ननदोई, जेठ–जिठानी, देवर–देवरानी सबको अपने रक्त–संबंधियों से भी अधिक अपनापन देने लगे। ये ध्यान रखने योग्य बात है कि देवरानी, जिठानी सब दूसरे घर की होकर ननद या बेटी जैसे महत्वपूर्ण 'उपेक्षित प्रजाति' को अलग कर एक घर में परिवार का निर्माण करने के लिए नियमबद्ध हैं। अतः कहा जा सकता है कि परायेपन में अपनेपन की खुशबू भरने का नाम ही स्त्री है। परायेपन के बोध के साथ हँसकर लड़कर रोकर ताउम्र आँगन में चहलकदमी कर यह दिखाना कि यह उसका घर है, उसकी जमीन है, ऐसी प्रजाति का नाम ही स्त्री है। ऐसे दोहरे मापदण्डों से उभरा आक्रोश कवयित्रियों में स्पष्ट दिखायी देता है, सुनीता बुद्धिराजा लिखती है–

^^og D;k le>sxk
ijk; d uhp d tehu d
vpkud jr cu tku dk nn
ft ld ijk; d uhp dh tehu tehu g**A

–(बुद्धिराजा, सुनीता. अनुत्तर. पृ.80.)

मनोसामाजिक संरचना के कारण उसका बधियाकरण, शिक्षा एवं अर्थ में असमानता, उसके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार उसे लगातार विस्थापन के लिए विवश करते हैं। जबकि समाज द्वारा प्रदत्त संस्कारों के विपरीत उसके अंदर एक बुनियादी घर एवं परिवार का निर्माण हो चुका होता है कि विवाहोपरांत एक स्त्री का घर सबसे पहले उसके पति से बनता है उसके बाद उसके बच्चे तथा बाद में कोई और। लगातार स्थापित होने की जद्दोजहद में वह अपने अस्तित्व के प्रति आश्वस्त नहीं हो पाती। 'स्त्री स्त्री की दुश्मन होती है' जैसी अवधारणा के पीछे स्त्री के असुरक्षात्मक भावना का पूरा इतिहास है, जो उसे हाशिए पर ढकेलने के लिए गढ़े जाते हैं और लड़ने के लिए भी। जिसका कारण मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड एडलर के ''वैयक्तिक मनोविज्ञान'' के अंतर्गत अधिकार भावना के माध्यम से समझा जा सकता है। ''एडलर बार–बार यह समझाते हैं कि हीनता की भावना ही अतिवादी स्थिति में हीनता ग्रंथि (इनफिरियारिटी कॉम्पलेक्स) का रूप धारण करती है। अपने को प्रत्येक से श्रेष्ठ समझने की भावना अतिचार श्रेष्ठता ग्रंथि (सुपीरिआरिटी कॉम्पलेक्स) को जन्म देता है। हीनता–ग्रंथि अथवा श्रेष्ठता–ग्रंथि विरोधी दृष्टिगत होने पर भी विरोधी नहीं होतीं – वे एक दूसरे की पूरक होती हैं। एक ही व्यक्ति में ये दोनों ग्रंथियॉ पाई जाती हैं। हीनता की ग्रंथि को व्यक्ति श्रेष्ठता भावना में बदलना चाहता है''।
(https://books.google.co.in/books?id=d9UWaKmVfiQC&pg=PA23&lpg=PA23&dq= एडलर+का+अधिकार+भावना&source=bl&ots=Yo8-E6kme6&sig=ACfU3U39pVVGvJp CwyR6u49J0juXjwbzyg&hl=en&sa=X&ved=2ahUKEwjPmoWr4JnoAhU0zjgGHcC0C_gQ6AEwAHoECAcQAQ#v=onepage&q=,,Myj%20dk%20vf/kdkj%20Hkkouk&f=false)

उदाहरण के लिए देख सकते हैं कि परिवार में सास स्वयं अपनी सास के संजोये घर में हस्तक्षेप करके अनेक संघर्षों के फलस्वरूप उस परिवार में स्थापित होने का भ्रम पालती है और जब बहू आती है तब बहू उसके बनाये गए घर, परिवार और सृजन पुत्र पर धीरे–धीरे अधिकार जमाने लगती है। यह अधिकार बचपन से उसके मन में भरी हुई समस्त हीनता–बोध का प्रतिशोध होता है जिसे वह अपनी पूरी ताकत लगाकर श्रेष्ठ बनाने की कोशिश करती है ताकि परिवार में स्वतः ही उसकी जगह बन जाये। किंतु इससे सास की भावना पुनः आहत होती है और विस्थापित होने के डर से बहू पर रोक टोक लगाने लगती है तथा EQ के सारे हथकण्डे अपनाने के बावजूद वह स्वयं धीरे–धीरे विस्थापित होती जाती है।

अतः परिवार में व्यक्तियों की संख्या (संरचना या ढाँचा) मात्र शरीर है और प्रेम, विश्वास, सौहार्द आदि भावना आत्मा के समान है। अर्थहीन परिवार को अर्थ प्रदान करती स्त्री को पूरे जीवन लगातार समान

रूप से स्थापन और विस्थापन के अंतर्द्वन्द्व में जूझना पडता है। विस्थापन की टूटन और स्थापन में जुड़ने का भ्रम उसे आजीवन भावनात्मक स्तर पर असुरक्षित बनाए रखता है। वह अन्या, दोयम दर्जे की स्थिति को समझते हुए भी प्रथम दर्जे की चाहत आँखों में संजोये उस परिवार को गले लगाये रखती है जिस पर उसका अधिकार न कभी था और न ही भविष्य में होने की संभावना होती है। अंततः स्थापन और विस्थापन के समानांतर रेखा में जूझते हुए अपनी जीजिविषा को कायम रखते हुए वह परिवार को ऊर्जा प्रदान करती है परंतु उसकी ऊर्जाएँ इस सत्ता के आकाश में समानता की माँग के साथ अनेक प्रश्न चिन्ह खड़े करते हैं।

I UnHk%

1. सांकृत्यायन, राहुल. मानव–समाज. लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद.सं.2016.
2. कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियॉ. राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली. सं. पहला, 2006.
3. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, सुधा सिंह. संपा. स्त्री अस्मिता– साहित्य और विचारधारा. आनंद प्राकशन, कोलकाता. प्रथम, 2004.
4. राजे, सुमन. हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली. स. तीसरा, 2006.
5. मुकर्जी, आर.एन. भारत अग्रवाल. प्रारम्भिक समाजशास्त्र. शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा. सं. पहला 1971, अटठाइसवॉ 1999.
6. प्रकाश, भगवती. परिवार और हम. प्रकाशन विभाग, पेसिफिक उच्चतर शिक्षा व अनुसंधान अकादमी विश्वविद्यालय , उदयपुर, सं. 2017.
7. बुद्धि राजा, सुनीता. अनुत्तर. राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली. पृ. प्रथम, 2008.
8. अनामिका. कवि ने कहाः अनामिका. किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली. सं. प्रथम, 2008.
9. https://hindi.webdunia.com/sanatan-dharma-history/husband-and-wife-118051200016_1.html
10. https://books.google.co.in/books?id=d9UWaKmVfiQC&pg=PA23&lpg=PA23&dq=,Myj+dk+ vf/kdkj+Hkkouk&source=bl&ots=Yo8E6kme6&sig=ACfU 3U39pVVGvJpCwyR6u49J0juXjwbzyg&hl=en&sa=X&ved=2ahU KEwjPmoWr4JnoAhU0zjgGHcC0C_gQ6AEwAHoECAcQAQ#v=onepage&q=,डलर:20का:20अधिकार:20भावना–f=false
पालीवाल, डॉ. कृष्णदत्त. हिन्दी आलोचना के नए वैचारिक सरोकार. वाणी प्रकाशन)

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 83-87

miU;kl esa ^milgkj* % feFkd l; FkkFk thou dh ;k=k

d0 lk/kuk ;kno*

हिन्दी वाङ्मय में पुराण कथा, देवकथा, पुराख्यान आदि शब्दों का प्रयोग, जिस कथा के लिए किया जाता है; उसे अंग्रेजी में 'मिथ' कहा जाता है। इसका अर्थ है– 'मुँह से निकला हुआ' अर्थात् आदिम मानव ने प्रकृति की शक्तियों और रहस्यों को समझ पाने में असमर्थता के कारण अपनी कल्पना से उन्हें विभिन्न देवी–देवताओं का रूप देता रहा, जिससे धार्मिक विश्वास, कर्मकाण्ड दर्शन आदि मिथक बनते चले गए। इन धार्मिक आख्यानों के द्वारा समाज में व्याप्त बुराईयों एवं अनेक विसंगतियों से जन सामान्य की रक्षा करने के उद्देश्य प्रबल दिखते हैं, फिर भी इसमें अनेक बुराइयाँ हैं। मनुष्य अपने समय और स्थिति के अनुसार इन मिथकों को अलग–अलग रूप देता रहा और सामयिक विसंगतियों को दूर करने का प्रयत्न भी करता रहा है। कहा जा सकता है कि मिथक सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए गढ़े गये हैं और इनका सम्बन्ध व्यक्ति से नहीं अपितु समूह के मानस से होता है– 'वह भी चेतन की अपेक्षा अचेतन मन में'। डॉ. नगेन्द्र ने मिथक को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''सामान्य रूप में मिथक का अर्थ है ऐसी परम्परागत कथा जिसका सम्बन्ध अतिप्राकृत घटनाओं और भावों से होता है। मिथक मूलतः आदिम मानव के समष्टि मन की सृष्टि है, जिसमें चेतन की अपेक्षा अचेतन प्रक्रिया का प्राधान्य रहता है।''[1] अचेतन मन में देवी–देवता, प्राकृतिक शक्तियाँ, स्वर्ग–नरक, जादू–टोना आदि गहराई में स्थित होते हैं तथा समाज के अचेतन से जुड़े होने के कारण विभिन्न अभिव्यक्तियों में विविध रूपों में आते हैं, जिसमें कुछ कथाओं को लोकमान्यता प्रमुखता से प्राप्त होती है। यह भी मान्यता है कि, 'धर्म और साहित्य का सम्बन्ध अनूठा है, इसलिए धार्मिक प्रवृत्तियों के परिवर्तन–स्वरूप साहित्य में भी परिवर्तन होता रहता है।' मिथकों के द्वारा किसी भी संस्कृति का अध्ययन करना सरल होता है– ''मिथक किसी भी संस्कृति की समझ और पहचान के लिए उपादेय हो सकते हैं, क्योंकि इनमें ज्ञानेन्द्रियों के जटिल और वैविध्यपूर्ण आद्य अनुभव–पुंज निहित हैं। मानव समाज और उसके संस्थागत विकास रूपों के अध्ययन में मिथकों का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है।''[2]

भारतीय साहित्य मीमांसा में 'रामायण' और 'महाभारत' अद्भुत ग्रन्थ हैं, जिसमें प्रत्येक समय–समाज के प्रश्नों की आहट सुनाई पड़ती है और उनके समयानुरूप उत्तरों की तलाश भी साहित्य के माध्यम से की गई है। ''मिथक का धर्म के साथ अत्यन्त पुरातन, एक प्रकार से आदिम संबंध है।''[3] ऐसा कहते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के धर्म और साहित्य के संबंधों के विचारों का समर्थन करते हैं कि, ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। ...जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है।''[4] मिथक का धर्म और धर्म का साहित्य से अनूठा सम्बन्ध होने के कारण एक दूसरे को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकते। धर्म और साहित्य का सम्बन्ध आज एक नया रूप ले रहा है। परिणामस्वरूप मिथकीय कथाओं पर आधारित नवीन रचनाओं में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। ये रचनाएँ काल्पनिक होते हुए भी वर्तमान समय से संवाद करते हुए अपनी लोकप्रियता को बनाए रखने में सक्षम हैं। मूल रूप से मिथकीय कथाओं को पुराण कथा के नाम से जाना जाता है। पुराण का अर्थ– '' 'पुराणं कस्मात् पुरा नवं भवति' अर्थात् जिसमें पुराना नया हो जाए वही पुराण है।''[5] कहा जा सकता है कि आधुनिक समाज

*शोध अध्येता, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

की समस्याओं का चित्रण मिथकीय कथाओं की आड़ में बड़ी कुशलता के साथ किया जा रहा है तथा परम्परागत ईश्वरीय रूप से बाहर निकलकर मानवता की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित करने का कार्य साहित्य के द्वारा किया जा रहा है।

ज्ञान–विज्ञान के विविध क्षेत्रों में मिथकों का अत्यधिक महत्व है। मानव समाज की एकता, जीवन और जगत के प्रति आस्था तथा सभ्यता और संस्कृति के विकास में मिथकों का अप्रतिम योगदान है। आज समाज में जिस तरह से जातिवाद, धार्मिक कट्टरता, छुआछूत, स्त्री–समस्या, दलित समस्या आदि विसंगतियों का बोलबाला बढ़ता जा रहा है, निश्चित रूप से उनकी नींव कहीं–न–कहीं इन मिथकीय कथाओं में हमें देखने को मिलती है, जिसे आदर्श का चोंगा पहनाकर खड़ा किया गया है। चाहे वह सीता, द्रौपदी, अम्बा आदि स्त्री पात्रों का जीवन संघर्ष हो या जाति और कुल के नाम पर कर्ण, एकलव्य जैसे युवकों का सामाजिक शोषण हो। यह सभी समस्याएं वर्तमान समय में व्याप्त हैं– ''आज की यांत्रिक और उपभोगवादी संस्कृति ने जीवन–मूल्यों में जो बदलाव उपस्थित किया है, वे मानवता के लिए कल्याणकारी नहीं हैं। स्थिति जटिल है। इस जटिलता को समझना और उसका विश्लेषण करना प्रत्येक रचनाकार का धर्म है।''[6] इन्हीं जटिलताओं को मिथकीय चरित्रों के माध्यम से भी समझने की कोशिश की गई है।

हिन्दी साहित्य में मिथक चरित्र प्रधान कथाओं का विकास आदिकाल से अब तक चला आ रहा है। उन्नीसवीं सदीं में गद्य का प्रवर्तन होता है जिसमें अधिकांश नाटक मिथक केन्द्रित होते हुए अपने समाज की विद्रूपताओं को उजागर करते हैं। मिथकीय उपन्यास बीसवीं सदी में अधिकांशतः लिखे गए। नरेन्द्र कोहली, बच्चन सिंह, मनु शर्मा, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, आदि लेखकों ने मिथकीय चरित्रों को औपन्यासिक विधा में ढालने का कार्य किया। इन उपन्यासों की प्रमुख विशेषता है कि मिथकीय चरित्रों को आधार बनाकर वर्तमान समाज से संवाद कराने की कोशिश की गई है, जिसमें वर्तमान समय की अनेक समस्याओं को निरुपित किया गया है। 'रामायण' और 'महाभारत' से संबंधित चरित्रों पर अधिकांश लेखन कार्य हुआ है। जिनमें काशीनाथ सिंह का 'उपसंहार' उपन्यास महाभारत युद्ध के पश्चात् समाज में आई विद्रूपताओं का अनूठा चित्रण करता है।

21वीं सदी में काशीनाथ सिंह का 'उपसंहार' उपन्यास महाभारत की उत्तर कथा को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। काशीनाथ सिंह की लेखनी की विशेषता है कि अपने बनाए प्रतिमान को अपनी ही अगली रचना में तोड़ देते हैं। वे कहते भी हैं कि, 'जिस रास्ते पर जमाना जा रहा हो, उस रास्ते पर जाने से मैं बचता हूँ; क्योंकि उस रास्ते पर धूल–धक्कड़ बहुत होती है। उपन्यास मिथक के बहाने आधुनिक समय से संवाद करता दिखलाई पड़ रहा है। देखा जाय तो युद्ध प्रत्येक युग में दुखदायी रहा है, जिसका का मूल भाव इस उपन्यास में चित्रित है। महाभारत के प्रथम पर्व के एक श्लोक से ग्रन्थ की विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है, जिसका आशय यह है कि, ''जो यहाँ (महाभारत में) है, वह आपको संसार में कहीं–न–कहीं अवश्य मिल जाएगा; किन्तु जो महाभारत में नहीं है, वह संसार में आपको अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा।''[7]

बहरहाल, भारतीय साहित्य मीमांसा में रामायण और महाभारत अद्भुत ग्रन्थ हैं, जिसमें प्रत्येक समय–समाज के प्रश्नों की आहट सुनाई पड़ती है। लेखक वर्ग ने मिथकीय चरित्रों के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन करते हुए इन कथाओं को नवीन अर्थगरिमा प्रदान करने की कोशिश की है।

महाभारत के युद्ध के पश्चात् क्या अधर्म का विनाश हो गया? अधर्म पर धर्म की जीत के नायक कृष्ण ने क्या अधर्म से युद्ध नहीं जीता? इतने लोगों की लाशों पर चलकर जीता हुआ युद्ध क्या विश्व में शान्ति प्रदान कर पाया। ऐसे अनेकों प्रश्नों के जवाब देता हुआ 'उपसंहार' उपन्यास पाठक को द्वापर की बात करता हुआ अपने युग की विसंगतियों से परिचित कराता है। युद्ध के समय होने वाली विशाल जन–धन हानि से प्रजा में असन्तोष व्याप्त हो गया, रण में छोड़े गए शस्त्रों से नदियाँ सूख गई, धरा बंजर हो गई, प्रजा महामारी, भूखमरी, अकाल का सामना कर रही थी। राज्य में शान्ति के बजाय बलात्कार, अपराध, शराबखोरी, वेश्यावृत्ति जन्म लेने लगती है। ऐसे समय में पाण्डवों के ज्येष्ठ युधिष्ठिर का अपने

कर्तव्य से च्युत हो मानसरोवर और केदारनाथ के लिए प्रस्थान करने का प्रस्ताव असंगत प्रतीत होता है, ऐसे राजा के लिए इतना भीषण संहार हुआ था। दुर्योधन को पाण्डवों से रोष भले था, लेकिन प्रजाहित के कार्यों में संलग्न था। श्रीकृष्ण के रासलीला रूप को दृष्टव्य न कर लेखक ने अनेक उपलब्धियों के बावजूद एक असफल योद्धा के रूप में दिखाया है। युद्ध पश्चात् पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन सभी जगह से कृष्ण को उलाहने आने लगते हैं। द्वारका को एक लोकतन्त्रात्मक राज्य बनाने का सपना टूटने लगा, अब उनके स्वजन ही बात नहीं सुनते, सभी में द्वेष की भावना पैदा हो गई है। युद्ध पश्चात् बढ़े अपराधों को विश्व युद्ध और स्वतंत्रता प्राप्ति के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। जहाँ वेश्यावृत्ति, भूखमरी, अकाल आदि समस्याओं से जनता को जूझना पड़ा है। युद्ध नायक कृष्ण अब एक निरीह मनुष्य रह गए थे, जो समुद्र उनके पाँव पखारता था तथा उसकी लहरें अब धक्का देकर गिरा देना चाहती है। युद्ध में नियमों के उल्लंघन से बलराम भी कृष्ण पर खिझे रहते हैं। इसीलिए कहा गया है कि युद्ध की कीमत सबको चुकानी पड़ती है, चाहे वह युद्ध नायक ही क्यों न हो। कृष्ण के अपने पुत्र प्रद्युम्न उनसे चिढ़े रहते हैं। कहने का आशय यह है कि यह उपन्यास आधुनिक समय से संवाद करता है, जो पिता–पुत्र सम्बन्धों में आती कड़वाहट, वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, अन्तर्जातीय विवाह आदि विषयों को समेटे हुए मिथकीय सन्दर्भों से आधुनिक समस्याओं को उजागर करता है। जब कृष्ण, रुक्मिणी से अपने पुत्र प्रद्युम्न के विषय में पूछते हैं तो वह कहती हैं– ''प्रद्युम्न के दिमाग से यह बात निकल नहीं रही है कि आपने बाप का कर्तव्य नहीं निभाया ....उन्हें जब मेरी फिक्र नहीं तो मैं क्यों करु उनकी फिक्र? मैं जो कुछ हूँ अपने बलबूते हूँ, किसी का अहसान नहीं मेरे ऊपर!''[8]

इतना ही नहीं, उनके अपने पुत्र राज्य के लिए लड़ने को उद्धत भी हैं, तब कृष्ण को युद्ध में अर्जुन को दिया उपदेश याद आता है कि कैसे उपदेश देना आसान है लेकिन अमल करना कठिन। महाभारत कालीन कृष्ण पुत्र के साथ–साथ आधुनिक पिता–पुत्र सम्बन्धों को बखूबी देखा जा सकता है, रिश्तों में कड़वाहट उनकी खूबसूरती छीन लेती है। अमन और शान्ति के बजाय एक ऐसे समाज का निर्माण हुआ है जहाँ पिता–पुत्र, भाई–भाई एक–दूसरे के जान के प्यासे हैं। आधुनिक समय के सम्बन्धों में दरार तो आई है किन्तु इसकी नींव बहुत पुरानी है, जो मिथकीय चरित्रों में कहीं–न–कहीं देखने को मिलती है।

हम सभी जानते हैं कि वर्तमान समय में वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था एक कोढ़ के रूप में व्याप्त है, जो समाज को अन्दर ही अन्दर खोखला किए जा रहा है और यह मानवीय सम्बन्धों को निम्नतर बनाते जा रहा है। यह समस्या महाभारत काल में भी व्याप्त है। विदर्भ नरेश भीष्मक अपनी पुत्री के स्वयंवर में सभी नरेशों को आमंत्रण देते हैं, परन्तु क्षत्रियोचित गुण होने के बावजूद कृष्ण को यादव होने के कारण नहीं बुलाया जाता– ''जितने भी क्षत्रियों के स्वयंवर होते हैं, हमें बुलाया जाता है– देखने के लिए, शोभा के लिए, भाग लेने के लिए नहीं।''[9] कृष्ण जानते हैं कि रुक्मिणी उनका वरण करना चाहती है, इसलिए क्षत्रियोचित गुण अपनाते हुए उनका हरण कर ब्याह रचाते हैं। वर्णों में विभक्त समाज से खिन्न कृष्ण अपने दाऊ से कहते भी हैं कि, ''एक प्रश्न मेरे मन में बराबर गूंजता रहता है, तब भी और अब भी कि क्या मनुष्य का मनुष्य होना काफी नहीं है? फिर उसे वर्णों में क्यों बाँटा गया? क्यों कहा गया कि वह क्षत्रिय है, यह ब्राह्मण है, यह वैश्य, यह शूद्र।'[10] समय की सबसे बड़ी मांग की तरफ इशारा किया गया है, जब मनुष्य को मनुष्य समझा जाए; न कि वर्णों में बांटकर भेद किया जाए। वर्ण व्यवस्था के इन बन्धनों को रोटी–बेटी के सम्बन्धों द्वारा ही खत्म किया जा सकता है। मिथकीय कथाओं में अनेकों अन्तर्जातीय विवाह देखने को मिलते हैं, शान्तनु–सत्यवती, कृष्ण–रुक्मिणी, सुभद्रा–अर्जुन आदि चरित्र जातीय बन्धनों को तोड़ते है और नवीन संदेश प्रदान करते हैं, जिससे लौकिक समाज में सदियों से चले आ रहे जातीय बन्धनों को ध्वस्त कर नये समाज का निर्माण किया जा सके। इस संदर्भ में कृष्ण जाति व्यवस्था के दंश के कारण ही देवत्व ग्रहण करना चाहते थे। वे कहते हैं कि मैं ईश्वर नहीं, वासुदेव होना चाहता हूँ– ''क्योंकि उसकी कोई जाति नहीं होती, वर्ण नहीं होता, गोत्र नहीं होता अकेला वही है, जो वर्णाश्रमों के बन्धनों से मुक्त है।''[11] व्यक्ति अपने गुण एवं कार्यों के द्वारा ईश्वरत्व प्राप्त करता है। महाभारत युद्ध से पूर्व कृष्ण भी

ईश्वरत्व प्राप्त किए गए थे, लेकिन इतने बड़े नरसंहार के पश्चात् देवत्व का लोप होने लगता है। यह प्रश्न उठता है कि क्या भगवत् सत्ता बरकरार रहेगी। कृष्ण धर्म–अधर्म के इस युद्ध में नये अधर्म की रचना, नहीं कर रहे थे। दुर्योधन, जयद्रथ, कर्ण आदि महारथियों का वध छल के द्वारा हुआ, यह अधर्म का ही हिस्सा रहा फिर भगवत् सत्ता का लोप होना तो निश्चित है। ऐसे में कृष्ण एक निरीह मनुष्य बनकर रह जाते हैं। यहाँ योगी कृष्ण की निद्रा भी गायब हो जाती है, वह अपने हाथों से यादवों का नाश करते हैं। ईश्वर से मनुष्य बने कृष्ण जब जरा को यादव कुल में जन्मा जानते हैं तो जाति व्यवस्था को लेकर उनकी धारणा भी गलत सिद्ध होती है। वह जातीय बोध के कारण ही जरा से कहते हैं कि, ''मैंने तो यदुवंशियों का नाश ही कर दिया था जरा, लेकिन अब सन्तोष और खुशी है कि तुम बचे रह गए।''[12] मृत्यु के निकट जाकर कृष्ण का ऐसा जाति बोध उन्हें सामान्य मनुष्य के धरातल पर खड़ा कर देता है।

समाज में आज भी हम जाति व्यवस्था के निषेध के बजाय उससे ग्रसित हैं, इस जाति बोध ने एक नए ब्राह्मणवाद की नींव रखी है; जिसमें कोई भी जाति केन्द्र में रहे उसके सिद्धान्त वही रहेंगे जो समाज को विभक्त करने का कार्य करेंगे। लेखक ने मिथकीय चरित्रों के बहाने वर्तमान समाज की विसंगतियों को बखूबी चित्रित किया है। कृष्ण के ईश्वरीय रूप से दूर उनके मनुष्य बनने एवं अनेक उपलब्धियों के पीछे खड़ी विफलताओं से परिचित कराया है। साथ ही जीवन के शाश्वत सवालों से जूझ रहे एक मनुष्य का चित्र है। नंदगांव की याद आते ही कृष्ण उदास हो जाते हैं। कृष्ण के कार्यों ने उन्हें ईश्वरीय गरिमा प्रदान की। आर्यावर्त के जिस यज्ञ में कृष्ण न हों जैसे पूर्ण ही न हुआ हो आज वही कृष्ण कह रहे हैं– ''देखो, यह वही समुद्र है जो मेरे श्याम शिला पर बैठते ही पाँव पखारने के लिए दौड़ पड़ता था– आज कैसा दहाड़ रहा है, ऐश्वर्य की भी एक मियाद होती है और वह पूरी हो गई, और वह कब पूरी हुई मुझे पता ही नहीं चला।''[13]

सफलता की ऊँचाइयों से अकेलेपन के लिए अभिशप्त कृष्ण प्राग्ज्योतिषपुर (असम) से बचाकर जिन कन्याओं को लाकर द्वारका में शरण देते हैं और उनके अपने राज्य के लड़के ही उनसे छेड़छाड़ करते हैं। कृष्ण इनकी सुरक्षा हेतु अपने नाम का मंगलसूत्र बटवाते हैं, किन्तु लड़कों का तर्क है कि बंटवाया है, शादी करके पहनाया नहीं है और ना ही कभी देखने आते हैं। ऐसे में वेश्यावृत्ति, शराबखोरी, बलात्कार की घटनाएँ होने लगती हैं, द्वारिका को लोकतन्त्रात्मक राज्य बनाने का सपना बिखरने लगता है। आज भी बलात्कार, वेश्यावृत्ति आदि घटनाओं से समाचार–पत्र भरे पड़े रहते हैं। ऐसे में नायक के पास लोकतन्त्रात्मक राज्य की अपेक्षा अपने मूल्यों को बचाना जरुरी हो जाता है, जिससे आने वाला समय उस पर अंगुली न उठा सके। इसीलिए कृष्ण अपने ही हाथों बसाई द्वारका का संहार करते हैं।

उपन्यास में स्वगत और वर्णन दोनों के लिए कवितानुमा शैली का प्रयोग किया गया है। काशीनाथ सिंह हमेशा कोशिश करते हैं कि वर्णन का पारम्परिक ढंग बदल सकें। भाषा प्रयोग में अनेक लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिससे उपन्यास रोचक और मजेदार बनता चला जाता है। इसमें राज–काज, खटिया, अंजोरिया आदि शब्दों का प्रयोग लोक के भीतर से करते हैं, किस्सागोई का प्रयोग बखूबी प्रयोग किया गया है। उपन्यास को पढ़ते हुए पाठक स्वयं उसका पात्र बनता चला जाता है। जैसे मिथकीय कथाओं की समस्याएं उसके स्वयं के समाज की है। किसी लेखक के द्वारा मिथकीय चरित्रों से ऐसा परिचय करवाना कला का ही कौशल है, जिसमें काशीनाथ सिंह को पूर्ण सफलता मिली है। मिथकीय पृष्ठभूमि पर समाज की अनेक विसंगतियों से परिचित कराता हुआ यथार्थ जीवन के धरातल पर लाकर सामान्य मनुष्य के संघर्ष, उसकी पीड़ा और उसके अकेलेपन को अभिव्यक्त करता हुआ यह उपन्यास लौकिक मानवीय प्रश्नों और मूल्यों को बड़ी ही सहजता से रेखांकित करता है।

I UnHk' k

1. डॉ. नगेन्द्र, मिथक और साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1979, पृ. 07
2. डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला छात्र संस्करण : 2012, पृ. 282

3. डॉ. नगेन्द्र, मिथक और साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1979, पृ. 10
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, नवीन संस्करण, पृ. 15
5. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य–साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सातवाँ संस्करण : 2009, पृ. 359
6. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य–साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सातवाँ संस्करण : 2009, पृ. 365
7. आशुतोष गर्ग, अश्वत्थामा महाभारत का शापित योद्धा, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण : 2017, पृ. प
8. काशीनाथ सिंह, उपसंहार : उत्तर महाभारत की कृष्णकथा, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2014, पृ. 81
9. काशीनाथ सिंह, उपसंहार : उत्तर महाभारत की कृष्णकथा, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2014, पृ. 66
10. काशीनाथ सिंह, उपसंहार : उत्तर महाभारत की कृष्णकथा, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2014, पृ. 66
11. काशीनाथ सिंह, उपसंहार : उत्तर महाभारत की कृष्णकथा, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2014, पृ. 67
12. काशीनाथ सिंह, उपसंहार : उत्तर महाभारत की कृष्णकथा, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2014, पृ. 126
13. काशीनाथ सिंह, उपसंहार : उत्तर महाभारत की कृष्णकथा, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2014, पृ. 49

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 88-93

ledkyhu fgUnh mi U;kl k e fpf=r o)k d thou dh =klnh

l t ; d ekj*

भूमंडलीकरण के आगमन से भारतीय जीवन मूल्यों पर व्यापक असर पड़ा है। भूमंडलीकरण ने देश में चिर प्राचीन काल से चली आ रही संस्कृति, संस्कार, परोपकार, सेवा–सुश्रवा, सहयोग, 'सर्वजन हिताय–सर्वजन सुखाय, सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया' को समाप्त कर अमेरिकी संस्कृति को जन्म दिया है। जिसका मूल उद्देश्य एकांत जीवन जीना, स्वार्थपरक बनना, मानवता से अलग रहना आदि आदि। भूमंडलीकरण के प्रभाव में आए जनसमुदाय के लिए अब न तो संस्कार रह गया और न ही वह विचार, परम्परा व परोपकार रह गया। मानव, मानव की सेवा का भाव तो दूर अब स्वयं संवेदनहीन बनता चला जा रहा है। इस संवेदनहीनता का मुख्य कारण 'पूँजी' है जिसे पाने के लिए मनुष्य, मानवता का गला घोंटने तक के लिए तैयार हो जाता है। आज अमेरिकी चका चौंध में ही हर कोई अपना जीवन जीना अपने को गौरवान्वित समझता है। उसी से अपनी कद, पद, प्रतिष्ठा का मूल्यांकन भी करता है। हर कोई पूँजी की प्राप्ति के लिये आज भागमभाग करते हुये नजर आते हैं। इस भाग दौड़ और आपा–धापी की जिंदगी को साहित्यकार बड़ी सूक्ष्मता से अवलोकन कर अपनी लेखनी चलाता है। जीवन के इस भागमभाग और आपा–धापी ने समाज के जिस समुदाय को सबसे ज्यादा प्रभावित किया वह 'वृद्ध' है जिसे उपेक्षित नजरों से देखा जाता है और आज वह हाशिये पर है, किसी तरह घुट–घुट कर जीवन जीने को मजबूर है।

वैश्वीकरण ने हमें इस कदर प्रभावित किया है कि पाश्चात्य जीवन शैली और एकल परिवार को ही सब कुछ मान बैठे हैं। सच्चाई यह है की जिन बुजुर्गों ने हमें अपनी उँगली पकड़ कर हमारी नन्ही सी हाथों को थामकर हमें चलना सिखाया उन्हीं को आज हम दुत्कार और नकार रहे हैं। यहाँ तक की उनके बुढ़ापे में लाठी बनने की अपेक्षा हम उन्हें बोझ समझने लगे हैं। आज की युवा पीढ़ी इस बुजुर्गों से नफरत करने लगा है। उनसे बात करने से कतराता है। उन्हें अपना बोझ समझकर या तो अपने से हमेशा के लिए उसे अलग कर देते हैं या स्वयं ही बेगाना बनकर उन्हें अकेला छोड़कर निकल पड़ते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप इन वृद्धों को एकांत जीवन जीने को मजबूर होना पड़ता है। भौतिक युग में जीवन यापन कर रहे आज की यह सोच हमारी मानसिकता के साथ–साथ हमारे स्वार्थी जीवन प्रणाली को दर्शाने लगा है। जिसके चलते संयुक्त परिवार विघटित होने लगा है। इसके साथ ही गांवों से शहर की ओर पलायन बढ़ा, खेत–खलिहान के स्थान पर सीमेंट बालू ने धारण कर लिया और रेत की फसलें आज लहलहाने लगी। आज सबसे अधिक यह पाया जा रहा है की खेत की कमी आ गयी और खेत का स्थान कल–कारखानों ने ले लिया है।

बृद्ध बुजुर्ग समाज को संरचनात्मक स्वरूप प्रदान करने वाला होता है और वही बुजुर्ग जीवन सुरक्षा और संरक्षण पाने और देने के प्रयासों में बीत जाता है और जीवन की इस संध्या बेला में आकर हम पाते हैं कि सबकुछ इस बंद मुट्ठियों से फिसल चुका है। जिंदगी भर मरते–खपते रहो, कमाते–जोड़ते रहो, संजोते .बनाते रहो, दूसरों के लिए हर पल क्रियाशील रहो और जीवन के अंतिम दिनों में इंद्रियों के दुर्बल, निष्क्रिय पड़ जाने पर जंगलों मे धकेल दिये जाओ। जबकि एक माता–पिता अपने बच्चों से यह चाहत रखता है कि बुढ़ापे में उसका बच्चा उसके साथ रहे। प्राचीन काल से ही यह माना जाता रहा है कि– Þ;|fi ik"k ekrj i=: çHkfnrk /;kuA brnx vruk HkokE;grk ihrjk eekAAß[1]

हिन्दी उपन्यासों में उपेक्षित, तिरस्कृत जीवन जी रहे वृद्धों बुजुर्गों की अनगिनत समस्याओं को उपन्यासकार ने अपनी लेखनी के माध्यम से उजागर की है। 'अंतिम अरण्य' (निर्मल वर्मा) 'गिलिगडु' (चित्रा

*शोधार्थी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा, बिहार

मुद्गल), 'दौड़' (ममता कालिया), 'रेहन पर रग्घू' (काशीनाथ सिंह), 'जीने की राह' (विजय शंकर राही), 'अपने–अपने अजनवी' (अज्ञेय), 'समय सरगम' (कृष्ण सोबती) आदि उपन्यास वृद्ध जीवन पर केन्द्रित प्रमुख उपन्यास है।

इन सभी रचनाओं के माध्यम से वृद्ध जीवन और आज के पीढ़ी के बदलते सम्बन्धों के सहारे सांस्कृतिक मूल्यों के परिवर्तन को आसानी से समझा जा सकता है। 'अंतिम अरण्य' उपन्यास वृद्धों की स्थिति एवं उसकी नियति से संबन्धित है। साथ ही साथ व्यक्ति की असीम कल्पनाओं एवं अपेक्षाओं से युक्त है। क्योंकि उम्र का यह पड़ाव अपनों से अधिक अपनी अगली पीढ़ी से अपेक्षाएँ कर बैठता है परंतु जब इनकी अपेक्षाएँ की कसौटी पर नयी पीढ़ी नहीं उतर पाती है तभी यह मानसिक टकराहट की स्थिति उत्पन्न होती है। इसमे ऐसे चरित्र भी है जो अंधेरे की यातना से घिरे इस धरती के अधूरे आत्मखंडित व्यक्तित्व है जिसकी पूर्णता को कलाकृति अपने सत्य से निर्मित करती है। मेहरा साहब एक ऐसे ही पात्र है जो कि इंद्रात्मक परिस्थितियों से घिरा हुआ है। वे औरों की तरह कमजोर खाँसते हुये चरित्र वाले व्यक्ति नहीं है बल्कि उस सघन यात्री के समान है जिनके जीवन में स्मृतियाँ उनका पीछा नहीं छोडती। इसके बावजूद भी अनकही यातनाओं उन्हें स्पर्श कर ही जाती। अतः मूल रूप से इसमे वृद्ध जीवन की स्मृति, इतिहास, प्रकृति, जीवन, प्रतीक, मिथक आदि जैसे शांत भाव है। निर्मल वर्मा कहते हैं– "जानते हो, इस दुनिया में कितनी दुनियाएँ खाली पड़ी रहती है, जबकि लोग गलत जगह पर रहकर सारी जिंदगी गंवा देते हैं।"[2]

मानवीय विकास से जुड़े मसलों पर अपने रचनात्मक लेखन और सांस्कृतिक सहभागिता निभाने वाले लोगों में चर्चित चित्रा मुद्गल ने 'गिलिगडु' के माध्यम से उपेक्षित और तिरस्कृत बुजुर्गों की समस्या को उठाते हैं। 'गिलिगडु' उपन्यास की कहानी ऐसे दो बुजुर्गों की है जो घर–परिवार और आर्थिक रूप से समर्थ होते हुये भी अकेले हैं। हमारे समाज में बुजुर्गों की तीन श्रेणियाँ हैं– एक वे हैं जिनका कोई परिवार नहीं हैं, इसीलिए अकेले रहने को अभिशप्त है, दूसरे वो जो भरा पूरा परिवार होते हुए भी अकेले रहने को बाध्य है, और तीसरे वो है जो परिवार में रहते हुये भी अकेले है। इस उपन्यास में तीनों तरह के पात्र मौजूद हैं। उपन्यास के पात्र मिस्टर एंड मिसेज श्री वास्तव जिनका जिक्र उपन्यास के अंत में बहुत ही कम समय के लिए कर्नल स्वामी के पड़ोसी के रूप में हुआ है, वे दोनों दंपत्ति इसीलिए अकेले रहते हैं क्योंकि उनकी अपनी कोई औलाद नहीं है। लेकिन कर्नल स्वामी की स्थिति देख कर उनको इसका कोई मलाल नहीं है। मिसेज श्री वास्तव कहती हैं– "ऐसी कसाई औलादों से तो आदमी निपूता भला। हमें इस बात का कोई गम नहीं कि हमारी कोई अपनी औलाद नहीं।"[3]

वहीं उपन्यास के दूसरे पात्र कर्नल स्वामी जिनका भरा पूरा परिवार है, आर्थिक रूप से समर्थ है फिर भी पत्नी की मौत के बाद निपट अकेले रहने को अभिशप्त है, हालांकि वो स्वयं इस बात को कभी किसी के सामने जाहिर नहीं होने देते हैं। इस बात का खुलासा उनकी मौत के बाद उनके पड़ोसी जसवंत सिंह से करते हैं। इसी तरह उपन्यास के तीसरे पात्र बाबू जसवंत सिंह है जो कि परिवार मे रहते हुए भी अकेले है क्योंकि परिवार के लिए वो अब अतिरिक्त हो चुके हैं, उनकी कोई उपादेयता अब नहीं रही।

हमारी समाज की कितनी बड़ी त्रासदी है कि वह व्यक्ति जो जीवन भर काम करते हुए परिवार का भरण–पोषण एवं नेतृत्व करता था, वृद्ध हो जाने पर तथा काम छुट जाने पर उसी परिवार के वही लोग जो एक समय उस पर आश्रित रहते थे, अब उसपर अपमानजनक टिप्पणियाँ करने से नहीं चूकते हैं। बाबू जसवंत सिंह के माध्यम से वृद्धावस्था में प्रवास की समस्या चित्रित हुई है। व्यक्ति समाज मे रहते रहते उससे जुड़ जाता है और जब समाज से अलग होने के बारे में सोचता भी है तो उसी क्षण उसकी सामाजिक मृत्यु हो जाती है। ऐसे में बुजुर्गों को भाय रहता है कि नई जगह पर वे मानसिक और संवेदी स्तर पर किसी से कितना जुड़ पाएँगे। यही समस्या बाबू जसवंत सिंह के साथ भी थी। वे पत्नी कि मृत्यु के बाद कानपुर छोड़कर दिल्ली नहीं जाना चाहते थे, लेकिन परिस्थिति से मजबूर होकर उन्हें जाना पड़ता है। इस संदर्भ में लेखिका कहती है– "दिल्ली बाबू जसवंत सिंह ने न कभी आना चाहा न आने के बाद कोई दिन गुजरा कि वे चिहुँक–चिहुँक दिल्ली से उचाट न हुए हों।"[4]

समकालीन समय का यह कैसी विडम्बना है कि एक बाप को अपने ही घर में अपने बेटे–बहू से भय लग रहा है और वह भी इतना कि वे अपने दोस्त कर्नल स्वामी को एक कप कॉफी पर भी नहीं बुला पाते। बाबू जसवंत सिंह को भय रहता है कि कहीं बहू सुनयना चाय–कॉफी तो दूर कहीं उनका तिरस्कार न कर दे। "गेट के निकट पहुँच कर बाबू जसवंत सिंह कि इच्छा हुई कि अजनबी को घर चलकर एक कप कॉफी पीने का न्योता दें। लेकिन न्योता देने का साहस नहीं जुटा।... कानपुर से दिल्ली आए उन्हे अरसा हो गया। घर कि चौखट में दाखिल होते ही वे स्वंय को अपरिचितों कि भांति प्रवेश करता हुआ अनुभव करते है। कैसे कहें।"[5]

नींबू चाय पीने वाले ससुर के सामने बिना नींबू के कत्थई चाय का गिलास रखते हुए उनसे पूछा जाता है– "दलिये का डिब्बा खाली पड़ा हुआ है। सांझ से पहले नहीं आ सकता। नाश्ते में क्या बाबूजी चीला खाना पसंद करेंगे?"[6]

इस तरह बात बात पर उपेक्षित होने पर बाबू जसवंत सिंह को कभी भी ये नहीं लगता है कि ये उनका स्वयं का घर है। वे स्वयं कि तुलना घर कि कुत्ते से करते हुए कहते है "इस घर में एक नहीं दो कुत्ते है एक टॉमी और दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह!– टॉमी की स्थिति निःसन्देह उनकी तुलना में मजबूत है। उसकी इक्षा अनिक्षा कि परवाह में बिछा रहता है पूरा घर। उनके लिए किसी को बिछे रहना जरूरी नहीं लगता। टॉमी अच्छी नस्ल का कुत्ता है। सोसाइटी में उनके घर का रुतबा बढ़ाता है। उनके चलते उनका रुतबा कलंकित हुआ है। कलंकित होकर अक्षत .चन्दन क्यूँ चढ़ाएँ?"[7]

बाबू जसवंत सिंह की इस दारुण स्थिति को देखने से ऐसा लगता है की निदा फाजली ने ठीक ही कहा है– ^igyh gj pht Fkh viuh] exj vc yxrk gS]
viuh gh ?kj esa fdlh @ nljs ds ?kj ds ge gSA*

बुढ़ापे में व्यक्ति अकेला निर्बल और असहाय हो जाता है। उनकी कार्यकरने की क्षमता कमजोर होने लगती है जिसके कारण भरण–पोषण के लिए दूसरे पर आश्रित होना पड़ता है। यही निर्भरता उनकी समस्या का कारण बनती है। बाबू जसवंत सिंह को बीमारी के चलते पायजामे में खून लग जाने पर बहू सुनयना उलहाना देते हुए कहती है "उनके पायजामे और चड्डी मे लगे खून के धब्बे वॉशिंग मशीन में नहीं छुटते। उनके बाथरूम में टीन की बट्टी रख दी गयी है। कपड़े धोने डालने से पहले वे स्वयं धब्बों को तनिक रगड़ दिया करें।"[8]

कहा जाता है कि जीवन में भरोसा बहुत बड़ी चीज होती है। अगर व्यक्ति पर अपनों का भरोसा नहीं रहता है तो वह पूरी तरह टूट जाता है और अगर अपनों का साथ हो तो व्यक्ति हर बाधा से पार पा जाता है। उपन्यास के पात्र बाबू जसवंत सिंह को बवासीर कि पुरानी शिकायत थी और पायजामा को खोल कर मस्सों में हडिंसा ट्यूब लगा रहे थे तो गलती से खिड़की खुली रह जाती है, जिसके चलते पड़ोस में रहने वाली औरत को गलतफहमी होती है की बाबू जसवंत सिंह उनकी बेटी को देख कर पायजामा खोलते है, इस पर वह उनकी शिकायत उसकी बहू सुनयना से करती है। बहू सुनयना उन पर आग के गोले के तरह बरस पड़ती है– "आखिर बाबूजी इस संभ्रांत सोसाइटी में उनकी इज्जत खाक में मिलाने पर क्यों उतारू है? अपनी उम्र का लिहाज किया होता। अभी भी जवानी का जोश बाकी हो तो दिक्कत कैसी? चले जाया करें रेड लाइट एरिया। कौन पेंशन कम मिलती है उन्हे मौज मस्ती में हांथ बंधे हों? कम से कम अड़ोस– पड़ोस की किशोरियों पर तो नजर न डालें। मुंह दिखने लायक रखें उन्हें सोसाइटी में।"[9]

बहू सुनयना का कहा सुना तो बाबू जसवंत सिंह कैसे–कैसे सहन कर लेते हैं लेकिन अपने बेटे नरेंद्र द्वारा रोकना–टोकना उनको बहुत चुभता है। अपने माले की लिट खुली छोड़कर भूल जाने पर जब नरेंद्र उन्हें टोकता है तो खिन्न होकर वे कहते हैं– "इस घर में बच्चों कि शिकायतें नहीं आती है। बुड्ढों की आती है। इस सोसायटी के लोग शायद कभी बूढ़े नहीं होंगे। न उनकी शक्ति क्षीण होगी न उसकी स्मृति। ऐसे अजर अमर जन्मे है न कभी कष्ट व्यापेगा न हारी–बीमारी।"[10]

समकालीन परिवेश में वृद्धों के इस लाचारी विवशता के संदर्भ में लेखिका क्षमा शर्मा लिखती हैं– "अपनों द्वारा ठुकराए जाने का जो मलाल होता है, उसका कोई इलाज है? उस अकेलेपन और अपमान

के अहसास का क्या जो उनके करीबी जन उन्हें कराते हैं? वे बार–बार यह एहसास दिलाते हैं कि उनकी जरूरत अब घर में तो क्या इस धरती पर ही नही रही। उन्होंने जिनके लिए अपनी सारी उम्र और अपने सारे संसाधन लगा दिये, वे ही दो जून कि रोटी के लिए दुत्कारते हैं।"[11]

समकालीन परिवेश में बच्चे भी इस प्रवृत्ति से बच नहीं पाए है। पहले एक समय ऐसा था जो आर्थिक तंगी के कारण लोग कमाने खाने के उद्देश्य से विदेश में जाकर बस जाते थे परंतु आज का यह दौर कमाने–खाने के लिए अकेले ही जाते हैं और वृद्धों, पत्नी और बच्चों को छोड़ जाते है। वृद्ध को दर–दर भटकने के लिए छोड़ देते हैं– "UNPF के आकलन के मुताबिक देश के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में कुल मिलाकर 20 फीसदी बुजुर्ग अकेले या फिर अपने जीवन साथी के सहारे अपना जीवन काटने को विवश है। तमिलनाडु में यह स्थिति 50 फीसदी से अधिक आ चुकी है जबकि गोवा, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, केरल मे यहा दर काफी ज्यादा है।"[12]

मुख्य रूप से वृद्धो कि तीन विशेषताएँ है, वह है– अनुभव, धैर्य, प्रदाय। इन सभी विशेषताओं में सबसे उत्तम और महत्वपूर्ण विशेषता है– प्रदाय या प्रदायनी बुजुर्ग अपनी संतान को सब कुछ देना चाहती हैं परंतु अब यह उस युवा पीढ़ी पर निर्भर करता है कि वह संतान के रूप में कितना ग्रहण करते है। इन सबके बीच ढलती उम्र चिंता का विषय बन गया है। अतः 60 के पार जीवन के बाद कि यह ढलती उम्र चाहे आम मानव हो या लेखक सभी के लिए चिंता का विषय बन जाता है। इसी संदर्भ में यह शायरी प्रासांगिक जान पड़ता है–

Þc<ksa dk lkFk ykx dgk rd oQk dj]] c<ksa dk Hkh tk ekr u vk, rks D;k dj\Aß[13]

समाज में वृद्धों के समक्ष जो समस्याएँ उभर कर आ रही है, वह है– शारीरिक एवं मानसिक तनाव, परिवार से अलगाव, बेगानापन का भाव, आर्थिक असमर्थता, दो पीढ़ियों के बीच मानसिक टकराहट इत्यादि। यद्यपि यह समस्या उतनी ही गंभीर है जितनी वृद्धों के समाज में समन्वय कि समस्या है। वृद्धों के समाज में समन्वय न होने के दो मुख्य कारण है– पहला यह कि उम्र बढ़ने से व्यक्तिगत परिवर्तन एवं दूसरा यह कि वर्तमान औद्योगिक समाज का अपने वृद्धों से व्यवहार का तरीका। जैसे–जैसे व्यक्ति वृद्ध होता जाता है, समाज में उसका स्थान एवं रोल यूँ कहे कि उसकी भूमिका बदलने लगता है।

'दौड़' उपन्यास में ममता कालिया ने उपभोक्तावादी संस्कृति को दर्शाया है। जिसमें आज का युवा वर्ग पूरी तरह उससे ग्रसित होता चला जा रहा है, जिसके चलते माँ–बाप को भी भूल बैठता हैं। यही कारण है कि आज मानवीय मूल्यों कि क्षति होती जा रही है और व्यक्ति काल के गाल में फँसता हुआ चला जा रहा है। ममता कालिया ने पवन, स्टेला और सघन के जरिए एक ओर जहाँ पारिवारिक सम्बन्धों में आए विवशता को दर्शाया है तो वहीं दूसरी ओर एक ऐसे कटु सत्य के भी दर्शन कराए हैं जिनका परिणाम प्रायः वे सभी परिवार भुगत रहे हैं जिनके बच्चे प्रवासियों कि तरह हो गए हैं। जिनके लिए पराया देश और वहाँ कि सुख सुविधा तथा नौकड़ी के अमेलों में फंसे हुए है। मिस्टर और मिसेज सोनी ऐसे ही दो मजबूर, विवश, लाचार, माता–पिता है, उनका बेटा सिद्धार्थ विदेश में जाकर बसा है। मिस्टर सोनी को अचानक दिल का दौड़ा पड़ता है और वे गुजर जाते है। जब सिद्धार्थ को फर्ज कि विधि के लिए बुलाया जाता है तो बहाने बनाता है कि उसके घर तक आने में हते भर से अधिक समय लगेगा। अतः वह अपनी माँ को समझाते हुये कहता है– "हम सब तो आज लूट गए ममा। लोग बता रहे हैं मेरे आने तक डैडी को रखा नहीं जा सकता। आप ऐसा कीजिये इस काम के लिए किसी को बेटा बनाकर 'दाह–संस्कार' क्रिया–कर्म करवाइए। मेरे लिए तेरह दिन रुकना मुश्किल होगा।"[14]

यह आज के युवा वर्ग की सोच एवं अपने माता–पिता के प्रति कर्तव्यबोध जिसे देख सोचने पर विवश होना स्वाभाविक है।

भूमंडलीकरण के जंजाल मे पड़ने वाले आदमियों में अधिकांश हर प्रकार की सामाजिक सम्बन्धों को अनावश्यक और अनर्थ समझने वाले रिश्ते हैं। जो कि पश्चिम देशों के व्यापार ने लोगों के मन मस्तिष्क से उपज कर आया है। भूमंडलीकरण के पीछे यहाँ के युवा आँखें मूंदकर तन–मन–धन देकर

एवं अपनी संस्कृतियों को भूल कर यहाँ तक अपने माता–पिता की भी परवाह किए बिना आज का युवा वर्ग "दौड़" लगा रही है।

साहित्य के भिन्न भिन्न विधाओं में वृद्धों की दारुण स्थिति का वर्णन साहित्यकार ने अपने अंदाज में किया है। छायावादी कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने जीवन के इस सांध्यबेला का वर्णन इस रूप में किया है–

Þe vdyk @ n[krk g] vk jgh
ejs fnol dh lk/; cykA
id vk/k cky ejs
g;s fu"çHk xky ejs @ pky ejh en gkrh vk jgh]
gV jgk eykA
tkurk g] unh >ju @ tk e>s Fk ikj dju
dj pdk g] gl jgk ;g n[k @ dkbZ ugh Hkyk Aß[15]

सच्चे अर्थों में अगर कहा जाये तो सांध्यबेला में आकर मनुष्य अनुभव के क्षेत्र में जितना परिपूर्ण हो जाते हैं वहीं दूसरी ओर अपने घर, परिवार, समाज से तिरस्त होते रहने का दंश झेलते रहते हैं। इसी क्रम में 'समय सरगम' उपन्यास में कृष्णा सोबती ने कामिनी व दमयंती जैसी स्त्रियँ के माध्यम से यह दर्शाया है कि उसके पास सब होते हुये भी परिवार से दूर हो गयी है। दमयंती अकेली रहती है और अरण्या से अपने मनोभाव को व्यक्त करते हुये कहती है– "बच्चे साथ रह रहे हैं मेरा घर मेरा किचन चल रहा है। खर्चा मैं कर रही हूँ और मैं अकेली पड़ी हूँ। बिना इजाजत के मेरा समान इधर से उधर करते रहते हैं। पीछे आश्रम गयी तो माधव को धमकाते रहते है। बताओ ममा लॉकर कि चाभी कहाँ है ... कुछ कहो अरण्या। बच्चों कि ऐसी हरकत से मेरा धीरज खत्म हो रहे हैं।"[16]

निश्चित ही अकेलापन तब बोझ बन जाता है जब व्यक्ति आपनों से दूर रहता है। तभी निरंतर अजीबों . गरीब खयालात मन मस्तिष्क पर हावी होने लगता है। ईशान और अरण्या के माध्यम से लेखिका ने कुछ और वृद्ध जीवन कि समस्याओं से मुखरित कराया है। अरण्या का यह जीवन उनके वृद्ध जीवन का भोगा हुआ यथार्थ है वह कहती भी है– "परिवार कि साझी श्री संपदा और सम्पन्न में निहित है। आप इस सांझेपन के हिस्सेदार हैं तो स्नेह ममता भी प्रचुर होंगी।"[17]

समकालीन समाज में वृद्ध लोगों को दोयम दर्जे के व्यवहार का सामना करना पड़ रहा है। देश में तेजी से सामाजिक परिवर्तनों का यह दौर जारी है और इस कारण वृद्धों कि समस्याएँ विकराल रूप धारण कर रही है। इसका मुख्य कारण देश में उत्पादन एवं मृत्यु दर में कमी आना या मृत्यु दर का घटना। जबकि राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय स्तर पर जनसंख्या कि गतिशीलता से है। विगत दशकों में स्वास्थ्य सुविधाओं में गंभीर बीमारियों के कारण मृत्यु दर में गिरावट आई है। साथ ही वृद्धों कि जनसंख्यां में वृद्धि पायी गयी है। "विश्व स्तर पर 7.1 प्रतिशत वृद्धों कि जनसंख्यां में वृद्धि हो रही है जबकि 55 वर्ष आयु वाले वृद्धों कि जनसंख्या में 2.2 प्रतिशत कि दर से वृद्धि हो रही है।"[18]

देश में बहुत ही जल्द ये विषमता आने वाली है कि वृद्धजन जो कि जनसंख्या का अनुत्पादन वर्ग है, वह शीघ्र ही उत्पादन वर्ग से बड़ा होने वाला है।

विगत पाँच दशकों में यहाँ देखा गया है कि वृद्धों को वेगानापन, अकेलापन आदि कि समस्याओं से गुजरना पड़ रहा है। यहाँ तक कि बुजुर्गों को हाशिये पर धकेलने का काम परिलक्षित किया गया है। वर्तमान समय में युवा और वृद्ध जनों के बीच संवेदनशीलता कि खाई इतनी गहरी हो गयी है कि वृद्धों को अनावश्यक तनाव का दंश झेलना पड़ रहा है। ''वृद्धावस्था प्रायः थकान, कार्यशीलता में कमी, रोगों कि प्रतिरोधक क्षमता कि कमी से संबन्धित है।''

यही कारण है कि अक्षमताएँ दैनिक जीवन के कार्य–कलापों को दुर्बल बनाती है।

वृद्धावस्था कि इसी दारुण स्थिति का वर्णन काशीनाथ सिंह 'रेहन पर रग्घू' में करते हैं। इस उपन्यास को बुढ़ौती के दंश पर केन्द्रित उपन्यास कहा जाता है। कथानायक रघुनाथ उर्फ रगघू का जीवन

विस्तार जो बनारस के समीपस्थ पहाड़पुर गाँव से अमेरिका तक फैला हुआ है। भूमंडलीकरण ने हमारी जीवन पद्धति और सोच को जिस रूप में बदल कर रख दिया है, जीवन मूल्यों और मान्यताओं में जो निर्ममता और ध्वंस कि स्थिति आई है, उसे उपन्यास बड़ी गहराई से उकेरता है। वृद्धावस्था का सबसे बड़ा दंश अकेलापन होता है। रग्घू मास्टर अपने अकेलापन को भोगते हुये अपनी लड़ाई दो स्तरों पर लड़ते है– एक सम्बन्धों के स्तर पर जहां पत्नी, बेटी, बेटे कोई भी उनकी पीड़ा को समझकर उनके साथ चलने को तैयार नहीं। सम्बन्धों कि ऊष्मा शेष हो जाने की स्थिति से वे बार बार जूझते हैं यही उनकी नियति है जिसे वह बेबसी से स्वीकार कर लेते हैं। दूसरी तरफ शासन प्रशासन और सामाजिक स्तर पर भी उन्हें संघर्ष करना पड़ता है। इसी संघर्ष में एक समय ऐसा भी आता है जब बेटा, बेटी, बहू, पत्नी सब से अलग जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है और कष्टकारी जीवन जीता भी है। इसी क्रम में वह दुनिया को अलविदा भी कह देता है।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य कि सभी विधाओं में वृद्धों कि समस्या को आधार बनाकर लेखनी चलायी गयी है। खासकर उपन्यास में तो वृद्धों कि जीवन कि जो त्रासदीपूर्ण स्थितियाँ है उन्हें पूरी संजीदगी से चित्रित करने का कार्य प्रायः समकालीन परिवेश के प्रमुख उपन्यासकारों ने किया है। वृद्ध विमर्श भी इसी का एक अभिन्न रूप है जो आज के उपभोक्तावादी, विज्ञापन वादी संस्कृति में ज्यादा प्रबल व प्रखर रूप में साहित्य जगत में होता दिख रहा है। आज जगह–जगह वृद्धाश्रम का खुलना, उस वृद्धाश्रम में भी अब बेड के लिए आवेदन करना होता है उस आवेदन पर संस्था प्रधान द्वारा अंतिम निर्णयालोक में जिस वृद्ध को योग्य घोषित किया जाता है वही आश्रम में रहने के लिए आते हैं।

वैश्वीकरण ने वृद्धों को इस कदर प्रभावित किया है कि वह स्वयं को उपेक्षित एवं तिरस्कृत महसूस कर रहे हैं। आज हर एक समाज में दुःख, पीड़ा, वेदना सहकार जीवन घुट–घुट कर जीना विज्ञापन संस्कृति का ही देन है अर्थात भौतिक चकाचौंध ने मनुष्य को संवेदनात्मक पट्टी को आँख से हटा दिया है जहां रिश्ता–नाता सब का सब तार–तार हो रहे हैं जिसे उपन्यासकार पूरी संवेदनात्मक तरीके से उपन्यास में दिखाने कि पुरजोर कोशिश किया है।

lUnHkZ %

1. http://www-hindisamay-com
2. अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा, पृ० 179, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013
3. गिलिगडु, चित्रा मुद्गल, पृ० 138, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002
4. वही, पृ० 36
5. वही, पृ० 14
6. वही, पृ० 39
7. वही, पृ० 96
8. वही, पृ० 71
9. वही, पृ० 59
10. वही, पृ० 65
11. संपादक संजय गुप्त, दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण), दैनिक हिन्दी समाचार पत्र, रविवारीय अंतराल के अंतर्गत ' अपनों की अनदेखी का दर्द', क्षमा शर्मा, नयी दिल्ली, 11 जून 2017
12. हर्ष मंदर, बोझ नहीं जिम्मेदारी है बुजुर्ग, डॉ कमलेश सिंह, दैनिक भास्कर, हिन्दी समाचार पत्र, पृ०–4
13. अकबर इलाहाबादी
14. दौड़, ममता कालिया, पृ० 65
15. अणिमा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
16. कृष्णा सोबती, समय सरगम, पृ० 74
17. वही, पृ० 74
18. हर्ष मंदर, बोझ नही जिम्मेदारी है बुजुर्ग, डॉ कमलेश सिंह, दैनिक भास्कर

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 94-99

in foHkkx % ik'pkR; vkj Hkkjrh; ijEijkvksa dk fo'ys"k.k rFkk mfpr ekxZ dk funsZ'k

MkO dqekjh lq"kek*

भाषावैज्ञानिक संरचना की सबसे बड़ी इकाई होकर भी 'वाक्य' सम्प्रेषण–व्यवस्था की लघुतम इकाई है। भाषा का स्वरूप मूलतः वाक्यात्मक ही होती है। भले कभी–कभी वाक्य एक ही पद का क्यों न हो। वाक्यों के स्वरूप का इतना विस्तार है कि उनके सारे रूपों का संग्रह न कोशों से संभव है, न ही भाषा विज्ञान में उसका विवेचन सम्भव है।

प्रायः 'शब्द' और 'पद' दोनों ही वाक्य–संरचना का मूलाधार है लेकिन कठिनाई यह है कि शब्द जब 'पद' या 'रूप' बनकर वाक्य में प्रयुक्त होता है तो यह आवश्यक नहीं कि उसका भाव स्पष्ट हो ही जाय। यह कार्य 'अर्थ' के द्वारा सम्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में अर्थ और कार्य के आधार पर रूपिम के दो भेद हैं अर्थदर्शी रूपिम एवं सम्बन्धदर्शी रूपिम।

भाषाविज्ञान की संरचनावादी धारा ने अपने सिद्धांत में भाषा की लघुतम सार्थक इकाई के रूप में 'रूपिम' को न केवल स्वीकार किया अपितु रूपिम को केन्द्र में रखकर अपने सैद्धांतिक और संक्रियात्मक भवन का निर्माण किया।[1] रूपिम केन्द्रित भाषाविज्ञान की प्रारंभिक सफलता के प्रकाश में परम्परा से चले आए 'शब्द' जैसी इकाई को न केवल नकारा गया बल्कि चिन्तन के इस दौर में उसे सैद्धांतिक–दृष्टि से अग्राह्य और व्यावहारिक दृष्टि से अयथार्थ भी बताया गया। संकेत देने की कोशिश की गई कि 'शब्द' भाषा विज्ञान की कोई सैद्धांतिक इकाई नहीं हो सकती। अगर यह कोई इकाई है तो उसका स्थान लोकभाषा विज्ञान (Folk Linguistics) में है जो भाषा प्रयोक्ताओं की रूढ़गत संकल्पनाओं को अपने अध्ययन का आधार बनाता है।[2] यही कारण है कि इस धारा के विभिन्न विद्वान 'शब्द' की संक्ल्पना को उसकी प्रकृति में विविधरूपी मानते हुए भाषायी–विश्लेषण की दृष्टि से इसे पूर्णतः अनुप्रयुक्त सिद्ध करते हैं।[3] भारतीय व्याकरण–सिद्धांत में 'शब्द' को आधारभूत एवं सर्वोपरि इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है। इस शब्द–सापेक्ष चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में ही वहाँ भाषा के सामान्य सिद्धांत, व्याकरण की आभ्यंतर प्रकृति और शब्दकोश के बाह्य रूप की चर्चा मिलती है। यहाँ यह भी स्वीकार किया गया कि भाषा की सर्जनात्मक बुनावट की आधारभूत सामग्री शब्द है क्योंकि 'शब्द' भाषा के वे पूर्व निर्मित (फ्रि–फैब्रिकेटेड) तत्व है जिनके आधार पर क्रमशः बड़े भाषिक–खंड जैसे–पदबंध, उपवाक्य, वाक्य इत्यादि निर्मित होते हैं। व्याकरण और कुछ नहीं बल्कि इन भाषिक–खंडों की बुनावट प्रक्रिया और उसके संरचना–विधान के अध्ययन का नाम है। भाषा की पूर्वनिर्मित इकाईयाँ को शब्द नाम दिया गया।

वाक्य में प्रयुक्त शब्द (पद) मात्र शब्द न होकर शब्द–रूप भी होते हैं जो रूप–वाक्यात्मक (व्याकरणिक) गुणों से युक्त होते हैं। यहाँ पर आवश्यक है कि सैद्धांतिक धरातल पर भाषिक इकाईयों के आर्थी और व्याकरणिक पक्ष को रखते हुए अर्थगत वैशिष्ट्य का प्रतिपादन किया जाय। भाषा के परिप्रेक्ष्य में वाक्य में प्रयोग क्षमता लाने के लिए परसर्ग और प्रत्यय का प्रयोग अपेक्षित है तभी वाक्य का अर्थ–वैशिष्टय का उदघाटन सम्भव है। रूप वैज्ञानिक गठन अथवा वाक्य–रचना में प्रयोग के अनुसार भाषा–विशेष के शब्दों को अलग–अलग वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। इस विभाजन को वैयाकरणों ने 'पद विभाग' की संज्ञा दी है।[4]

*उच्चतर माध्यमिक परियोजना बालिका विद्यालय, हिरनी, दरभंगा

भारतीय व्याकरणिक परम्परा में 'मगही' और 'मैथिली' भाषाओं में पद–विभाग के विभाजन का आधार पाश्चात्य–परम्परा अर्थात् अंग्रेजी भाषा है। अंग्रेजी की तरह 'मगही' और 'मैथिली' भाषाओं में भी शब्दों के आठ विभाग सुनिश्चित किये गये हैं। पदों की संख्या भाषा–विशेष की निजी प्रकृति और उसकी स्थापना पर ही निर्धारित की जा सकती है। पद–विभाग का निर्धारण से पूर्व उसकी परम्परा पर दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है। ज्ञान–विज्ञान के सभी विभाग, अपवादों को छोड़कर परम्परा से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। न्यूनाधिक मात्र में दुनिया के सभी देशों में व्याकरण का अध्ययन हुआ है। फिर भी, निष्पक्ष रूप से विचार करने पर आज के भाषा विज्ञानी यह मानते हैं कि ग्रीस और भारत में जो व्याकरणिक अध्ययन हुआ है, उससे विश्व को एक नयी दिशा मिली है।[5]

पद–विभाजन को लेकर पाश्चात्य जगत में जो प्रयास हुए हैं उनमें सर्वप्रथम नाम ग्रीस दार्शनिक सुकरात (469–399) का आता है। 'सुकरात' ने सर्वप्रथम व्याकरणिक विश्लेषण में रुचि दिखलाई। दुर्भाग्य से 'सुकरात' की कोई रचना उपलब्ध नहीं है। ग्रीस के परवर्ती चिन्तकों के संदर्भ में 'सुकरात' का नाम आता रहा है। सुकरात के पश्चात् युनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो (429–347) का नाम आता है जिन्होंने पद विभाग के औचित्य को स्वीकार करते हुए पंद विभाग के लिए सर्वप्रथम 'मेरोस लोगस' (Meros Logous) शब्द का प्रयोग किया। 'मेरोस लोगस' आज अंगरेजी में पद विभाग का पर्याय है। प्लेटो ने पद विभाग का विभाजन दो रूपों में किया–1. ओनोमा (ONOMA) तथा 'रेमा' (RHEMA)। 'आनोमा' और 'रेमा' का प्रयोग प्लेटो ने क्रमशः 'नाम' और 'क्रिया' के लिए किया है। पश्चात् इसके अगला प्रयास प्लेटों के शिष्य 'अरस्तू' (384–322 BC) के द्वारा किया गया। अरस्तू के द्वारा प्लेटों के दोनों पद विभाग को स्वीकार तो किया ही गया साथ ही उसने एक नया विभाजन "सिंडेसम्यॉय' पद विभाग में रखा। इस प्रकार अरस्तू के अनुसार पदों के तीन विभाग उचित है.–'ओनोमा', 'रेमा' और 'सिंडेस्मयॉय'। 'सोनोमा' और 'रेमा' के लिए अपने गुरु–(प्लेटो) की तरह क्रमशः 'नाम' और 'क्रिया' के लिए प्रयोग में रखा, जबकि तीसरे वर्ग का प्रयोग अरस्तू ने संभवतः 'सम्बन्धसूचक संयोजक' तथा 'सर्वनाम' जैसे शब्द के लिए किया। अरस्तू ने शब्द को भाषा शास्त्रीय इकाई के रूप में परिभाषित किया। उन्होंने शब्द को वाक्य का अवयव माना है। साथ ही यह भी कहा कि शब्द स्वतः अर्थवान होता है किन्तु अर्थवान इकाईयों में अर्थ का पुनर्विभाजन सम्भव है।

पदविभाग के विभाजन के क्रम में 'स्टोइक वर्ग' के अवदान का विश्लेषण अपेक्षित प्रतीत होता है। 'स्टोइक वर्ग' के दार्शनिकों ने भी प्रचलित 'नाम' और 'क्रिया' के साथ संयोजक के दो भेद (संयोजक तथा आर्टिकल) करके पदों की संख्या चार कर दी।[7] भाषावैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से 'अलेक्जेन्डर युग' (300–150 ई. पूर्व) का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस युग के विद्वान अरिस्टार्चस (Aristarchu) ने वैज्ञानिक ढंग से भाषा के अध्ययन में विशेष रुचि दिखलाई दी। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में सभी विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि ग्रीक भाषा के वैज्ञानिक विवरणात्मक व्याकरण के सम्बन्ध में सुव्यवस्थित विचार प्रस्तुत करने का श्रेय 'अस्टिार्चस' को ही है। इनके शिष्य डायोनिसियस भैक्स (Dionysin Thra) ने दूसरी शताब्दी ई. पूर्व व्याकरण की रचना की। अपने ग्रीक–व्याकरण में उसने पदों की संख्या आठ स्वीकार किया है। डायोनिसियस थैक्स द्वारा प्रस्तुत पदों के आठ विभाग[8] निम्नवत् है–

gxhd	vxjth vuokn	fgUnh vuokn
1.	ओनोमा (ONOMA)	NOUN (संज्ञा)
2.	रेमा (RHEMA)	VERB (क्रिया)
3.	मेटोक (METOCHE)	Participle (.दन्त)
4.	आर्थ्रान (Arthkron)	Article (आर्टिकल)
5.	ऐनटोनिमिया (Anitonymia)	Pronoun (सर्वनाम)
6.	प्रोथीसिस (Prothesis)	Preposition (सम्बन्ध सूचक)
7.	एपिरेमा (Epirrhema)	Adverb (क्रिया विशेषण)
8.	सिन्डेस्मास (Syndesm)	Conjunction (संयोजक)

'थ्रैक्स' का यह पद–विभाजन यूरोपीय जगत में अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। इसकी सार्थकता को देखते हुए यूरोप की अन्य भाषाओं में इसे अपनाने का प्रयास किया गया। उस समय यूरोप में ग्रीक के साथ लैटिन का भी प्रबल प्रभाव रहा है। दसवीं शताब्दी तक तो लैटिन को चर्च की छत्रछाया प्राप्त थी इसलिए– प्रथम सहस्राब्दी तक यूरोप में अभिव्यक्ति की सबसे प्रमुख भाषा थी तो वह लैटिन ही थी।[9] लैटिन भाषा के विश्लेषकों से यह ज्ञात होता है कि रोम में जिन भाषा शास्त्रियों ने व्याकरण के अध्ययन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए उनमें 'वारो', 'डोनारस' तथा 'प्रिसियन' महत्वपूर्ण थे।

पाश्चात्य जगत् के ऐतिहासिक विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि रोम में 'वारो' (116–27 ई. पूर्व) प्रथम चिन्तक थे जिन्होंने लैटिन व्याकरण में पद विभाग पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। लैटिन भाषा की आकृति प्रकृति का ध्यान रखकर व्याकरणिक संरचनाओं पर उन्होंने मौलिक रूप से विचार किया है। भाषा–सम्बन्धी उनके विचार लिंगुआ, लैटिना में अभिव्यक्त है। वारो ने पदों के चार विभाग[10] सुनिश्चित किए– 1. संज्ञा (विशेषण सहित), 2. क्रिया, 3. दन्त, 4. क्रिया विशेषण।

छठी शताब्दी में रोम में 'प्रीसियन' (Priscian) नामक प्रसिद्ध विद्वान ने लैटिन व्याकरण की रचना की। व्याकरणिक कोटियों के अध्ययन के क्रम में 'प्रीसियन' ने पद विभाग के आठ भेद सुनिश्चित किए। यह पद–विभाग थ्रैक्स का अनुकरण तो नहीं है लेकिन 'थ्रैक्स' की परिपाटी पर आधारित है। प्रीसियन महोदय द्वारा प्रस्तुत पद विभाग[11] निम्नवत् है।

1.	नौमेन (NOMEN)	NOUN (संज्ञा)
2.	भर्वन (VERBUM)	VKERB (क्रिया)
3.	पार्टिसिपियम (PARKTICIPIUM)	Participle (दन्त)
4.	प्रोनौमेन (Pronomen)	Pronoun (सर्वनाम)
5.	एडर्वियम (ADVERBIUM)	Adverb (क्रिया विशेषण)
6.	प्रीपोजीशियो (PRAEPOSITIO)	Preposition (सम्बन्ध सूचक)
7.	इंटरेक्शियो (INTERIECTIO)	Interjection (विस्मयादिबोधक)
8.	कनिक्शियो (CONIUNCTIO)	Conjunction (संयोजक)

'वारो' द्वारा पदविभाग के चारों भेदों को 'प्रीसियन' महोदय ने स्वीकार करते हुए 'थ्रैक्स' के आधार पर ही पद विभाग के आठ भेद सुनिश्चित किए।

अंगरेजी भाषा में आठ पद विभाग प्रचलित है। इनके नाम इस प्रकार है– 1. NOUN, 2. PRONOUN, 3. ADJECTIVE, 4. VERB, 5. ADVERB, 6. PREPOSITION, 7. CONJUNCTION, 8. INTERJECTION.

अंगरेजी भाषा में पदविभाग आज भी सम्भवतः ग्रीक के भाषा वैज्ञानिक 'डायोनिसियस थैक्स' तथा रोम के भाषाविद् 'प्रीसियन' के आधार पर चल पड़ा है। अंगरेजी में छह पदविभाग ऐसे हैं जो थैक्स महोदय के पद विभाग से समता रखते हैं। थैक्स महोदय ने मटोक एवं आर्ध्रान दो ऐसे पद विभाग दिए हैं जिनका पर्यायवाची रूप 'पार्टिसिप्ल' तथा 'आर्टिकल' को अंगरेजी के पद विभाग में स्थान नहीं है। हालाँकि इन दोनों को सम्मिलित कर अंगरेजी में भी पद के दस विभाग[12] करने का प्रयास किया गया। अठारहवीं शताब्दी में अंगरेजी में 'NOUN' और 'ADJECTIVE' अलग–अलग पद विभाग माने जाने लगे।[13] इस प्रकार अंगरेजी में प्रचलित 'इंटरजेक्शन' को छोड़कर शेष सात पद विभाग 'थ्रैक्स' महोदय पर आधारित प्रतीत होते हैं। 'प्रीसियन' महोदय ने पदों की संख्या आठ मानी है। उन्होंने आर्टिकल की सत्ता को स्वीकार किया है। प्रीसियन ने 'विस्मयादिबोधक' नामक एक नये पद विभाग की अवधारणा को मान्यता दी है। इस तरह अंगरेजी के पद विभाग 'बैंक्स' एवं प्रीसियन महोदय के पद विभागों से प्रभावित है।

20वीं शताब्दी में अंगरेजी के भाषाविदों ने पद के इस आठ विभाग की वैज्ञानिकता को चुनौती दी है। इन विद्वानों की स्पष्ट मान्यता है कि अंगरेजी की वाक्य रचना अथवा रूप वैज्ञानिक गठन को ध्यान में रखकर अंगरेजी भाषा के पदों का निर्धारण नहीं किया गया है। भाषा के स्वरूप को देखते हुए अंगरेजी के भाषविद्ों ने आठ से अधिक पद विभागों को मान्यता दी है। अमेरिकी भाषा विज्ञानी चार्ल्स प्रिज[14] तथा

ब्रिटिश भाषाशास्त्री फ्रैंक पामर[15] ने स्पष्ट मान्यता को स्थापित किया है कि अंगरेजी के चार पद विभाग हो सकते हैं और इसके साथ शब्द–रूप के पन्द्रह ग्रुप हो सकते हैं। चारों वर्गों का उन्होंने कोई नाम नहीं दिया है। चार्ल्स फ्रिज ने स्पष्ट किया कि परम्परागत वैयाकरण जिसे क्रिया–विशेषण कहकर मौन हो जाते हैं, सिर्फ उसी की अभिव्यक्ति के लिए पन्द्रह में से पाँच ग्रुप की आवश्यकता होगी।[16]

इस प्रकार अंगरेजी के आठ पद विभागों को पाश्चात्य भाषाविद् आलोचना तो करते हैं लेकिन अंगरेजी भाषा से इसे पूर्णतः अलग नहीं कर सके हैं। परम्परा से चले आ रहे आठ विभाग अंगरेजी व्याकरण में आज भी विद्यमान है।

हिन्दी में पद विभाग अंगरेजी के 'पार्ट्स ऑफ स्पीच' का सीधा अनुवाद है। हिन्दी व्याकरण ने अंगरेजी भाषा के प्रचलित आठ पदविभागों को शब्दशः अपनाया है। भारतीय भाषाविद् यह अनुभव करते हैं कि हिन्दी व्याकरण में प्रचलित आठ पद विभागों में मौलिक चिन्तन का सर्वथा अभाव है। पाश्चात्य भाषाविदों ने अंगरेजी भाषा में प्रचलित 'पार्ट्स ऑफ स्पीच' को अंगरेजी भाषा की आकृति प्रकृति के अनुकूल नहीं मानते हैं फिर भी, विकल्प नहीं होने के कारण परम्परा से चली आ रही व्यवस्था को मानने की विवशता के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। इसी परिप्रेक्ष्य में पाश्चात्य भाषाविदों की दृष्टि भारत की ओर गयी तो उन्हें व्याकरणिक ज्ञान का ऐसा उज्ज्वल प्रकाश मिला कि वे आश्चर्य चकित हुए और सम्पूर्ण यूरोपीय जगत् में भाषा–विषयक नयी क्रांति ला दी। भारत में अंगरेजी राज्य की स्थापना के पश्चात् अठारहवीं शताब्दी में जब उन्हें महर्षि पाणिनी रचित व्याकरण के अनुशीलन का अवसर मिला तो उनकी उपलब्धि से वे आश्चर्य चकित थे। परिणामस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही यूरोपीय विद्वानों के लिए संस्कृत–ज्ञान उनके भाषाशास्त्रीय अध्ययन का आवश्यक अंग बन गया।[17]

महर्षि पाणिनी के व्याकरण की रूप रचना, शब्द–साधन तथा वाक्य–विन्यास का इतना वैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है कि पाश्चात्य जगत भी यह स्वीकार करता है कि यह विश्व–साहित्य का प्रथम व्याकरण है जिसमें सूक्ष्मता के साथ व्याकरणिक आयामों का वैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है। अँगरेजी के सुप्रसिद्ध भाषा विज्ञानी 'ब्लूम फील्ड' ने मुक्त कंठ से इसकी सराहना करते हुए यह स्वीकारा है कि दुनिया की किसी भी भाषा में व्याकरण इतनी परिपूर्णता के साथ नहीं लिखा गया है। यूरोपीय विद्वानों ने दुनिया के अनेक देशों के व्याकरणों को देखा था किन्तु वे चकित हुए थे महर्षि पाणिनी रचित 'अष्टाध्यायी' को देखकर।[18] उन्होंने अनुभव किया था कि इस व्याकरण में भाषा का सम्पूर्ण और यथार्थ विवेचन है। आश्चर्य का विषय यह है कि यह व्याकरण मात्र सिद्धांत पर आधारित न होकर पर्यवेक्षण का दिशा–निर्देश भी करता है।[19]

महर्षि पाणिनि रचित व्याकरण यूरोपीय देशों में भले ही 18वीं शताब्दी में पहुँचा हो। लेकिन इसकी रचना तो 800 ई. पू. में हो चुकी थी। भारत में पदविभाग निर्धारित करने की एक स्वस्थ परम्परा है। विश्वविख्यात वैयाकरण महर्षि पाणिनि ने पद को दो विभाग किये हैं सुबन्त और तिङन्त। इनके अनुसार संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और अव्यय आदि सुबन्त में समाहित है। तिङन्त में क्रिया का विश्लेषण हुआ है। पाणिनि व्याकरण की सबसे बड़ी विशेषता उसकी संक्षिप्तता है। यही कारण है कि देश और विदेश के विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि महर्षि 'पाणिनि' के समान 'प्रतिभा और मनीषा' का भाषाविज्ञानी आज तक उत्पन्न नहीं हुआ। भारतीय भाषाविज्ञान पर तो महर्षि पाणिनी का ऐसा प्रभाव पड़ा की व्याकरण के दूसरे सम्प्रदाय लुप्त हो गये और जो भी उत्तरवर्ती व्याकरणाचार्य उत्पन्न हुए उन्होंने 'पाणिनि' की व्याख्या करने में अपना गौरव माना। 'पाणिनि' केवल वैयाकरण नहीं बल्कि महर्षि माने गये जो इस बात का प्रमाण है कि भारतीय लोकभावना ने उनको कितना ऊँचा स्थान दिया है।[20]

लेकिन पद विभाजन की भारतीय परम्परा में 'यास्क' पहले वैयाकरण है जिन्होंने पद विभाग का निर्धारण किया। 'यास्क' ने पदों को चार भागों में विभाजित किया है। नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात।[21]

'यास्क' के अनुसार नाम से संज्ञा का द्योतन होता है और 'आख्यात' से क्रिया का। 'उपसर्ग' और 'निपात' क्रमशः निर्बद्ध और स्वतंत्र अव्यय का द्योतन करते हैं। उनके द्वारा प्रस्तुत 'पद' के चार विभाग हिन्दी, मैथिली और मगही की आकृति–प्रकृति की दृष्टि से पूर्णतः संगत और व्यावहारिक प्रतीत होते हैं।

इन चारों विभागों को घटाकर 'पाणिनि' ने सुक्ति के रूप में 'सुबन्त' और 'तिङन्त' नामक दो ही विभागों में समाहित कर दिया है।

हिन्दी, मैथिली और मगही भाषाओं में मात्र जिन्हें संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण कहा जाता है उनका समावेश 'यास्क' द्वारा प्रस्तुत नाम में हो जाता है। संज्ञा से तो नाम कर द्योतन होता ही है, सर्वनाम में भी प्रत्यक्ष रूप से नाम है। विशेषण वह है जो 'संज्ञा' की विशेषता बतलाता है। संज्ञा से सम्बन्धित होने के कारण नाम से पृथक् उसकी भी कोई सत्ता नहीं है। अंगरेजी परम्परा से चले आते हुए उपयुक्त तीनों पद विभाग संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण महर्षि पाणिनि द्वारा प्रस्तुत 'सुबन्त' में समाहित है। क्रिया की पृथक् सत्ता है। यह आचार्य यास्क द्वारा पदविभाग 'आख्यात' में विश्लेषित है। महर्षि पाणिनि ने इसके लिए तिङन्त नाम दिया है। इसके अतिरिक्त क्रिया–विशेषण, सम्बन्ध सूचक, संयोजक तथा विस्मयादिबोधक पदविभाग को अव्यय के अन्तर्गत रखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में मगही और मैथिली भाषाओं के लिए तीन ही पदविभाग उचित है–नाम, आख्यात तथा अव्यय। यदि अंगरेजी परम्परा से चले आते हुए आठ पदविभाग को छोड़कर भारतीय मनीषियों द्वारा प्रस्तुत विचार के आलोक में उपर्युक्त तीन पद विभाग को हिन्दी व्याकरण में स्वीकार कर लिया जाए तो मौलिक होने के कारण यह विभाजन उपर्युक्त और व्यावहारिक सिद्ध हो सकता है।

हिन्दी और अंगरेजी के अन्तर्गत वर्गीकृत विभिन्न पदविभागों की जो परिभाषा मिलती है उनमें कई दोष परिलक्षित होते हैं। व्यावहारिक जगत् में बहुत सारे ऐसे शब्द हैं, जिसके सम्बन्ध में यह कठिनाई उपस्थित होती है कि उन्हें संज्ञा के अन्तर्गत रखा जाए अथवा विशेषण के। अंगरेजी व्याकरण में संज्ञा को इस प्रकार परिभाषित किया गया है–किसी वस्तु या व्यक्ति के नाम के लिए व्यवहृत शब्द को संज्ञा कहा जाता है।[22] कामता प्रसाद गुरु के अनुसार हिन्दी में संज्ञा उस विकारी शब्द को कहते हैं जिससे प्रकृति किंवा कल्पित सृष्टि की किसी वस्तु का नाम सूचित हो।[23] संज्ञा के सम्बन्ध में अंगरेजी और हिन्दी की परिभाषा में पूर्ण–साम्य है। पाश्चात्य भाषाविज्ञानी चार्ल्स फ्रिज ने संज्ञा की इस परिभाषा को दोषपूर्ण बताते हुए व्यावहारिक कठिनाइयों की ओर संकेत किया है। परिभाषा के अनुसार किसी वाद के नाम के लिए व्यवहृत शब्द संज्ञा है तो फिर नीला, पीला, हरा, गुलाबी आदि भी तो रंग–विशेष के नाम ही है। ऐसी स्थिति में इसे विशेषण के अन्तर्गत क्यों रखा जाता है? सिद्धांत और व्यवहार में प्रत्यक्ष अंतर है। यही स्थिति पद विभाग के अन्य वर्गों के साथ है। ऐसी स्थिति में अंगरेजी परम्परा से चले आ रहे पद विभागों के स्थान पर 'मगही' और 'मैथिली' भाषाओं में संस्कृत व्याकरणों द्वारा प्रस्तुत पद विभाजन को अपनाया जाना अत्यंत वैज्ञानिक एवं तर्क संगत होगा।

I UnHk%

1. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव–भाषाविज्ञान सैद्धांतिक चिंतन, संस्करण 2013 पृ0–94।
2. Green berg J-H- 1-Essays in Linguistics, Chicago University Press,1957 P- 27
3. Wells R-S-&-Immediatek Constituents Language p- 1947 p- 117 1
4. डॉ. लक्ष्मण. प्रसाद सिन्हा : रूपविज्ञान (सिद्धांत एवं विनियोग) संस्करण 2013, पृ0 55।
5. Of there, the Linguistic work of GreeceAnd of IndiaAre by for the most important in the history of linguistics in EuropeAndAmerica today- In the study of language]As in so many other fields of the intellect] one can traceA continuous line of development] virtually from the beginnings in Greek thought of the fifthAnd subsequent continies B-C-through its transmission by Rome] the MiddleAgesAnd the Renaissance] to the quitek remarkable work of theAncient Indian linguistic scholarsAnd their successors because known to the West and madeA profound contribution to the branch of Western leaning- R-H- Robins % GENERA LINGUISTICSAND INTRODUCTORY SURVEY P-381-
6. Aristotle maintained this distinction butAddedA third class of syntatic component] the syndesmoi]A class covering what were later to be distinguishAs conjuctions ¼and probably porepositions] though this is notApparent from this eÛample cited½] theArticleAnd pronoun- R.H. Robins:A SHORT HISTORY OF LINGUISTICK Edn- 1976 p- 26-

7. डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी : अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन, संस्करण 1951, पृ0–263
8. R-H- Robins :A SHORT HISTORY OF LINGUISTIC Edn- 1976 p- 33&34 1
9. David Gystal - LINGUISTICS Edn 1974, p- 51-
10. Tose with case inflextion-Nov (includingAdjection) Those with tensek inflextion-VERB.
Those with caseAnd tense inflexion-Pasrticles
Those with neither-Adverb
R.H. Robins :A SHORT HISTORY OF LINGUISTIC Edn. 1976, p. 50.
11. R.H. ROBINS:A SHORT HISTORY OF LINGUISTIC Edn. 1976,
p. 57-58.
12. Goold Brown : GRAMMER OF ENGLISH GRAMMERS Edn 1968, p. 29.
13. Harold B.Allen :APPLIED ENGLISH LINGUISTIC KEdn 1976k, p. 21.
14. We have given then no names except the numbers class one, class two, class three, class four. The reader familiar with the conventional grammer will probablyAttempt or hasAlready,Attempted to equat these class numbesa with the usual names, noun, verbs,AdjectivesAnd adverbs ... if he does, he will certainly find increasing difficulties.
Charles fries : The structure of ENGLISH Edn. 1952, p. 87.
15. Finally in this section, we should lookAt the traditionalApproach to the definition of the part of speech, since it too isA partlyAt leastr in national term. For intence, Nesfield definesA nounAs "A word used for namelyAnythingAnd holes that things in the definitions stands for person, place, quantity,Action, feeling, collectioin etc. For how do we know whatA thing isk. Is fireA thing ? Is peace ? Is hope or intention ? Moreover, can we not say that red is the name ofA colourAnd is not red thenA noun ?
-Frant Palmer : GRAMMAR Edn. 1971, p. 39.
16. A particularly striking point fries's classification is that what tradi
tional grammers callAdverbsAre treated is no less than five of his fifteen groupsAss wellAs providing the total membership of his class 4.-Frank Plamer : GRAMMAR Edn. 1975, p. 61.
17. डॉ0 लक्ष्मण प्रसाद सिन्हा : हिन्दी भाषा का रूपिमीय विश्लेषण, सं0–1983, पृ0–166
18. वही, पृ0–166।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 100-105

;'kiky vkj ekDlokn vkykpuk

Mk0 eukt dqekj ek;;*

यशपाल के 'देशद्रोही' (1943), 'दिव्या' (1945), 'झूठा सच' (दो भाग, 'वतन और देश' 1958 ई. और 'देश का भविष्य' 1960 ई.) और 'मेरी तेरी उसकी बात' (1974) उपन्यास विशेष रूप से मार्क्सवादी आलोचना के केन्द्र में रहे हैं। 'देशद्रोही' यथार्थ और कल्पना के ताने–बाने से बुना ऐसा उपन्यास है जिसमें लेखक ने जन–सामान्य में कम्युनिस्टों की कार्य पद्धति, लक्ष्य के प्रति समर्पण, शोषण के विरूद्ध संघर्ष और कांग्रेस की नीतियों पर कड़ा प्रहार किया है और साथ ही में समाज में व्याप्त धारणाओं तथा भ्रांतियों का निराकरण करने का प्रयास करते हुए सामाजिक परिवर्तन की दिशा का संकेत भी दिया है। 'देशद्रोही' में यशपाल सहज मानवीय आशाओं, आकांक्षाओं, दुर्बलताओं और विश्वासों का सजीव चित्रण करते हैं तथा परिस्थितियों से विवश, नारी हृदय की मनोदशा का चित्रण करके उसे भावुकता में बहने न देकर, एक तर्क सम्मत परिणति देते हैं।

राजेन्द्र यादव तथा कमलेश्वर जैसे नये कहानीकारों ने उन दिनों में यशपाल के उपन्यासों पर आरोप लगाया था (जैसा खुद यशपाल ने राहुल सांकृत्यायन पर) कि यशपाल अपने उपन्यासों में विचारधारा के नाम पर अप्रामाणिक अनुभवों का संसार रचते है। उनके चरित्र वास्तविक नहीं, विचारों के वाहक कठपुतले हैं जो लेखक के इशारे पर नाचते है।[1] रामविलास शर्मा तथा कुछ अन्य मार्क्सवादी आलोचकों का कहना था कि ''यशपाल की विचारधारा और उनके विलासी मन में द्वन्द्व है। वह स्वछन्द प्रेम की पूँजीवादी धारणा का प्रचार करते हैं। उनके पात्र पार्टी का काम करते हुए इश्क लड़ाया करते हैं।''[2] स्पष्ट है कि रामविलास जी को यशपाल के कम्युनिस्ट पात्रों का नैतिक पतन स्वीकार नहीं है। इसलिए उनकी नज़र में 'देशद्रोही' उपन्यास केवल रोमांटिक कृति बनकर रह गया है जिसमें 'खन्ना' (कम्युनिस्ट चरित्र) के रोमांसों की प्रधानता है। उनका यह भी मानना है कि जिस वर्ग के लिए खन्ना काम करता है, उस वर्ग का उपन्यास में उतना और वैसा चित्रण नहीं हुआ है जितना खन्ना के हृदय की प्रेम–संबन्धी उथल–पुथल का।[3] खन्ना के जीवन की यह कितनी बड़ी विडंबना है कि 'चन्दा' के प्रेम–संबन्धों की वजह से अपने ही देश में 'देशद्रोही' बन जाता है।

सुरेन्द्र चौधरी ने 'देशद्रोही' के सन्दर्भ में लिखा है कि ''निर्माण की दृष्टि से ऐसा उपन्यास यशपाल ने फिर कभी नहीं लिखा।''[4] रामविलास शर्मा (यशपाल के निन्दक आलोचक के रूप में जाने जाते हैं) 'देशद्रोही को श्रीकांत की कोटि का सामाजिक उपन्यास मानते है लेकिन डॉ. खन्ना को उपन्यास की सबसे कमजोर कड़ी भी मानते हैं क्योंकि वह बिना जाने ही आध्यात्मिक प्रेम में विश्वास करता है। वह अपनी प्रेमिका (चन्दा) की गोद में सुख लेना चाहता है लेकिन उसके दुष्ट पति से छुटकारा दिलाने के लिए वह कोई प्रयास नहीं करता।[5] वस्तुतः देखा जाय तो यशपाल वर्गहीन और शोषणमुक्त समाज के साथ–साथ स्त्री–पुरूष काम संबन्धों में स्वतंत्रता के भी हिमायती थे। स्त्री–पुरूष के बीच काम संबन्धों को लेकर यशपाल ने अपने उपन्यासों में कुछ ऐसी मान्यताएँ व्यक्त की हैं जिनकी काफी आलोचना हुई है। सामाजिक नैतिकता के बारे में यशपाल ने लिखा है कि ''यदि स्त्री किसी को धोखा देकर अपने हृदय की तृप्ति के लिए घण्टा भर प्रेम करना चाहती है तो वह कुलटा है और यदि वह अपने जीवन, अपनी संतान के जीव–निर्वाह का कोई दूसरा उपाय न देख या समाज के भय से अपना शरीर जन्मभर किसी पुरूष

*असि0प्रो0, हिन्दी विभाग, त्रिपुरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सूर्यमणिनगर, त्रिपुरा

की आवश्यकता पूर्ति के लिए देती है तो वह सती है।''[6] स्पष्ट है कि यशपाल उस भारतीय पितृसत्तात्मक समाज पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं जिसने सदियों से स्त्री जाति को शोषित–पीड़ित बनाए रखा, अपने स्वार्थ के लिए कुलटा या सती बनाता रहा है।

'दिव्या' उपन्यास के माध्यम से यशपाल ने नारी की विवशता को उसके समग्र सामाजिक, नैतिक, धार्मिक और व्यावहारिक जीवन–सन्दर्भों में उठाया है। 'दिव्या' में पौराणिक पृष्ठभूमि में नारी को रखकर देखते हैं और स्त्री–पुरूष संबंधों पर पुरूष सत्तात्मक और सामंती व्यवस्थाओं के दबाव का जायजा लेते हैं। यशपाल एक उपनिवेश के रूप में डाल दी गई स्त्री का, उसके शोषण का, विरोध करते हैं। विवाह को वे धार्मिक आडम्बर और कर्मकांड के रूप में देखते हैं। बल्कि इसे वे दो स्वतंत्र व्यक्तियों के परस्पर प्रेम, विवेक और समान अधिकार के रूप में देखते हैं। मधुरेश ने ठीक लिखा है कि ''यशपाल दिव्या के रूप में एक ओर यदि पितृसत्ता के वर्चस्व को चुनौती देते हैं, वहीं वे आज के नारीवादी आन्दोलन के सन्दर्भ में देह के माध्यम से मुक्ति की खोज पर प्रश्न चिन्ह लगाते दिखाई देते हैं।''[7] 'दिव्या' में स्त्री अपने सामाजिक सन्दर्भों के साथ प्रस्तुत तो होती है लेकिन वह नियतिवादी दर्शन से बँधी हुई नहीं है। यशपाल के अपने समय के गाँधी–दर्शन सरीखे नैतिक आग्रह भी उसकी प्रतिरोध क्षमता को रोक नहीं पाते। स्त्री–विमर्श की दृष्टि से पौराणिक पात्र होते हुए भी दिव्या 'मृणाल' (त्यागपत्र) और 'शशि' (शेखर : एक जीवनी) से होड़ लेती है। नायिका प्रधान उपन्यास 'दिव्या' में पुराकालीन अथवा इतिहास के भीतर जाकर कुछ संभावनामय तथ्यों को उभारने के लिए यशपाल अतीत में प्रवेश करते हैं। वे राहुल सांकृत्यायान की तरह 'राजतंत्र बनाम लोकतंत्र' की बहस उठाकर लोकतंत्र के सुरक्षित क्षेत्रों की तलाश नहीं करते बल्कि अपने वर्तमान समय की समस्या को अतीत के काल–प्रवाह से जोड़कर प्रस्तुत करने के लिए ऐसा करते हैं। उनका यह अतीत अलग से कोई स्वायत्त काल–खंड नहीं है बल्कि वर्तमान का ही संकेतगर्भी रूप है।[8]

यशपाल 'दिव्या' में वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्विरोधों को दिखाते हुए उसका विरोध करते हैं। यशपाल के प्रशंसक आलोचक मधुरेश ने लिखा है कि ''यशपाल की सांस्कृतिक दृष्टि वर्ण–व्यवस्था के विरोध की दृष्टि है। 'दिव्या' में एक ओर यदि वे विस्तारपूर्वक वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्विरोधों को उद्‌घाटित करते हैं वहीं बौद्ध धर्म और दर्शन की नियतिवादी दृष्टि की आलोचना भी करते हैं क्योंकि वह मनुष्य की संघर्ष–क्षमता का अवमूल्यन करती है। वर्ण–व्यवस्था के विरोध के कारण ही वे पितृसत्ता के वर्चस्व पर चोट करते हैं।''[9]

डॉ. रमेश कुन्तल मेघ 'दिव्या' में वैसी आधुनिक समस्याओं का भी साक्षात्कार करते हैं जो दासों तथा नारियों की मुक्ति से विशेष रूप से जुड़ा हुआ है। उन्होंने लिखा है कि ''दिव्या उपन्यास हमे ऐतिहासिकता के सामने ला खड़ा करता है। इसमें भी दासों तथा नारियों की मुक्ति–कथा है। 'दिव्या' ऐतिहासिक तथा समकालीन दोनों ही है। सागल की गण–व्यवस्था भी ऐतिहासिक तथा आधुनिक दोनों ही क्रमों का संयोजक है।''[10] डॉ. मेघ का 'ऐतिहासिक आधुनिकता' से तात्पर्य है ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति के वे चित्र आज भी किसी न किसी रूप में समाज में मौजूद हैं। डॉ. मेघ की राय में 'दिव्या' में राहुल सांकृत्यायन की सांस्कृतिक जीवन–दृष्टि अपनाते हुए यशपाल ने भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' के संपूर्ण जीवन की प्रत्यालोचना की है ताकि भारतीय इतिहास तथा समाज, भारतीय क्रांति और मानवीय संबन्धों की सही समझ विकसित हो सके। रमेशकुन्तल मेघ दिव्या को 'अतीत की मोहक उत्तेजक विलास गाथा' मानने के पक्ष में नहीं हैं; (जैसाकि कई आलोचकों ने माना है) 'दिव्या' उपन्यास की विचारधारा को स्पष्ट करते हुए मेघ ने लिखा है कि ''इतिहास में हर समाज के अन्तर्गत उत्थान और पतन की शक्तियाँ वर्ग–संघर्ष तथा वैचारिकी–संघर्ष रूप में टकराती हैं जिनसे समाज का विकास और परिवर्तन द्वन्द्वात्मक ढंग से होता है। चाहे विशाल सामाजिक उथल–पुथल हो चाहे सामूहिक अंतर्विरोध हो, चाहे वैयक्तिक अर्न्तद्वंद्व हो, इन सभी की परख सामाजिक जीवन और कलाकृति में विचारधारा की आँखों से होती है। 'दिव्या' ऐसा ही एक औपन्यासिक इतिहास है।''[11] स्पष्ट है कि

यशपाल व्यक्ति और समाज को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से देखते हैं और मनुष्य के विकासमान जीवन्त और स्रष्टा रूप को परखने के लिए इतिहास का विश्लेषण जरूरी मानते हैं। इससे अतीत का जुड़ाव आज के समय से होता है। उपन्यास में सामंती समाज और राज–व्यवस्था के अनेक दोषों–कुप्रवृत्तियों का यथार्थ अंकन हुआ है।

डॉ. गोपेश्वर सिंह 'दिव्या' की केन्द्रीय समस्या, समानता, धार्मिकता और आधुनिकता के निरन्तर कशमकश के बीच जीवन के सौन्दर्य और अर्थवत्ता की खोज में देखते हैं। 'दिव्या' के महत्व को बताते हुए वे लिखते हैं ''इसका महत्व मालती, मृणाल आदि स्त्री–चरित्रों की परंपरा को आगे बढ़ाने में है। इसका महत्व धर्मों के परे धरती के यथार्थ को अधिक महत्व देने में है। इसका महत्व सामाजिक यथार्थ की प्रतिष्ठा की दृष्टि से है।''[12] उपन्यास में पृथुसेन सत्वहीन होकर भिक्षु बन जाता है और दिव्या को भिक्षुणी बनने का उपदेश देता है। रूद्रधीर उसे कूलवधू बनाना चाहता है लेकिन 'दिव्या' दोनों को ठुकरा देती है और कलाकार मारिश को स्वीकार करती है जो सहज जीवन जीने का पक्षपाती है। वह संसार को छोड़ने का नहीं भोगने का पक्षपाती हैं। इस तरह यशपाल 'चित्रलेखा' वाले भगवतीचरण वर्मा के निष्कर्ष तक ही पहुँचते हैं।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय 'दिव्या' की भाषा और वाक्य विन्यासमें अनेक खामियाँ पाते हैं। 'दिव्या' की भाषा उन्हें सृजनात्मक नहीं लगती, वह उनकी नज़र में पंसारी के रोजनामचे की भाषा है। शब्दों की एक लम्बी सूची बनाते हुए उपाध्याय जी ने यशपाल द्वारा उनके सही प्रयोग पर शंका भी प्रकट की है। इसी तरह वे यशपाल–वर्णित आभूषणों और श्रृंगार प्रसाधनों के उल्लेख का भी उपहास करते हैं।[13] डॉ. रामविलास शर्मा तो यशपाल के एकांगी और दुराग्रह पूर्ण विवेचन के लिए जाने ही जाते हैं, यद्यपि उन्होंने यशपाल की महत्वपूर्ण रचनाओं पर या तो लिखा नहीं फिर उस पर बहुत संक्षिप्त व अधूरी टिप्पणियाँ–भर की हैं। लेकिन 'दिव्या' के सन्दर्भ में उनकी राय है कि ''यशपाल का सबसे प्रतिभाशाली उपन्यास 'दिव्या' है कारण कि यहाँ राजनीति की स्लिप लड़खड़ाती नहीं है।''[14] डॉ. शर्मा को 'दिव्या' प्रभावशाली इसलिए दिखी है क्योंकि यहाँ दिव्या की मुक्ति चार्वाक दर्शन में होती है जो अपने भौतिक विचार में उन्हें मार्क्सवाद के करीब जान पड़ता है। डॉ भगवतशरण उपाध्याय की तरह विश्वम्भरनाथ उपाध्याय को भी यशपाल की भाषा से शिकायत है। उनकी राय में यशपाल के उपन्यासों की भाषा, उपन्यास की कम, तथ्य कथन की अधिक लगती है।[15]

'झूठा सच' (यशपाल) दो भागों में लिखा गया है। इसमें भारत विभाजन की पूर्वपीठिका, विभाजन की विभीषिका और उसके उत्तर प्रभाव का बहुत विशद चित्र उभरा है। प्रकाशचन्द्र गुप्त की राय में 'झूठा सच' हिन्दी उपन्यास के विकास के क्रम में एक अद्वितीय प्रयास है। प्रेमचन्द की यथार्थवादी परंपरा का अभूतपूर्व विकास इस उपन्यास में हुआ है। पट की विशालता, सामाजिक यथार्थ का मार्मिक अंकन, असंख्य पात्र, कथानक का अविरल प्रवाह, भारत के आधुनिक जीवन की गहरी सूझ और अनुभूति आदि अनेक गुण हमें इस विराट कलाकृति में मिलते हैं''[16] इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए वे यह भी लिखते हैं कि ''हिन्दी उपन्यास के विकास–क्रम में 'झूठा सच' एक नवीन और दुर्लभ मंजिल है। हिन्दी उपन्यास के इतिहास में यह एक आगे बढ़ा हुआ कदम है। प्रेमचन्द की परंपरा का यह उपन्यास नई दिशाओं में प्रसार और परिष्कार है। इस अमूल्य उपलब्धि के लिए हिन्दी संसार लेखक का चिर ऋृणी रहेगा।''[17] गुप्त जी यशपाल को प्रेमचन्द की परंपरा में इसलिए रखते हैं क्योंकि उनके अनुसार यशपाल के यहाँ (झूठा सच में) औपन्यासिक तत्वों का निर्वाह हुआ है तथा आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शोषण से मुक्ति के भी प्रयास हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा की नज़र 'झूठा सच' के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों पर गई है। 'झूठा सच' के राजनीतिक महत्व को रेखांकित करते हुए डॉ. शर्मा ने लिखा है कि ''वह जनता को देश की प्रतिक्रियावादी शक्तियों का वास्तविक घृणित रूप दिखलाता है, उनसे जनता को सावधान रहना सिखाता है।''[18] यशपाल अपने उपन्यासों में जीवन का केवल निषेधात्मक चित्रण ही नहीं करते और न

ही झूठ का पर्दाफाश करके केवल यथार्थ की नग्न अभिव्यक्ति की तीव्र आलोचना मात्र करते हैं बल्कि वे वर्तमान से अलग एक बेहतर जीवन का स्वप्न भी देखते हैं। डॉ. शर्मा ने 'झूठा सच' के सामाजिक महत्व को स्थापित करते हुए लिखा है कि ''इस उपन्यास का सामाजिक महत्व यह है कि वर्तमान समाज में नारी की पराधीनता, उसकी घुटन और अपमान, व्यक्तिगत संपत्ति की तरह उसके क्रय–विक्रय की जघन्यता को स्पष्ट करता है। इस प्राचीन सांमती बंधनों से मुक्ति पाना कितना कठिन है, नारी किस वीरता से इनके प्रति विद्रोह करती है, स्वयं उसके संस्कार किस तरह उसकी मुक्ति में बाधक होते हैं इस सबका मार्मिक चित्रण उपन्यास में हुआ है।''[19] कहना न होगा कि यह उपन्यास कांग्रेस की अवसरवादी नीतियों का पर्दाफाश करता है। स्वाधीनता के पहले इस नेतृत्व (कांग्रेस) ने क्रांति के डर से समझौते का रास्ता आख्तिार किया जिससे देश का बँटवारा हुआ और इस बँटवारें में हजारों–हजार लोगों की जान गईं और और लाखों ही लोग बेघर हुए। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद बड़ी बहुमत के बावजूद कांग्रेस नेतृत्व वाली सरकार भारतीय जनता की आशाओं–आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर पाई बल्कि उसे अपने झूठे वादों से बहला–फुसलाकर अपना वर्ग–स्वार्थ साधती रहीं। लेकिन डॉ. शर्मा को यशपाल से शिकायतें भी हैं। जैसे–यशपाल 'झूठा सच' में सिखों के पारिवारिक जीवन का चित्रण नहीं किया है। मुसलमानों के घरों का भी चित्रण बहुत छोटे पैमाने पर किया है। वे किसानों और मजदूरों को दूर से ही देखते हैं। मध्यवर्ग के चित्रण में स्वयं यशपाल उस वर्ग के दृष्टिकोण से प्रभावित हो गये हैं और देश में जो सांप्रदायिक दंगे हुए उसके पीछे कार्य करने वाली शक्तियों की पहचान उन्हें नहीं है।[20] भले ही कोई डॉ. शर्मा के विचारों से पूरी तरह से सहमत नहीं भी फिर भी यह बात ठीक लगती है कि 'झूठा सच' में ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय सामंतवाद की प्रतिक्रियावादी भूमिका का वैसा चित्रण नहीं हो पाया है जैसा कि भारतीय पूँजीवाद के ढुलमुल का। कुल मिलाकर 'झूठा सच' को मानव–जीवन के विभिन्न कार्य–व्यापारों, घृणा–प्रेम तथा हिंसा–अहिंसा का ब्यौरा कहा जा सकता है।

नेमिचन्द्र जैन 'झूठा सच' की कलात्मकता को लेकर आश्वस्त नहीं हैं। उनको 'झूठा सच' 'अखबार की कतरनों का विशाल संग्रह' लगता है। उन्होंने लिखा है कि ''इस उपन्यास में संत्रस्त मानवों की आत्मा के आन्तरिक द्वन्द्व, उनके आत्ममंथन और उनकी भौतिक आध्यात्मिक पीड़ा का अभाव है, इसका विस्तार विशृंखल है।''[21] ऐसा लगता है, नेमिचन्द्र जैन कहीं–कहीं यशपाल के जीवन–दर्शन और इतिहास–दृष्टि से सहमत नहीं हो पाते हैं। 'झूठा सच' भारतीय समाज में स्त्री की नियति को बहुत व्यापक रूप में चित्रित करता है। आज स्त्री–सन्दर्भ में विवाह और परिवार जैसी संस्थाओं पर जो पुनर्विचार हो रहा है उस स्त्री–शोषण की झलक यशपाल भी दिखाते हैं। इस उपन्यास में ऐसे कई प्रसंग हैं जहाँ स्त्रियाँ कहीं विवाह के नाम पर तो कहीं परिवार, धर्म और राजनीति के नाम पर पितृसत्तात्मक भारतीय समाज में देह–शुद्धता की धारणा की वजह से सताई जाती हैं। प्रकाशचन्द्र गुप्त ने लिखा है कि ''राजनीति और यौन–संबन्ध यशपाल के उपन्यासों में परस्पर लिपटे रहते हैं। नारी के स्वतंत्र जीवन के प्रति यशपाल के विचार महत्व रखते हैं।''[22] लेकिन अपने इन्हीं विचारों की वजह से यशपाल आलोचकों के निशाने पर भी रहे हैं। यशपाल का मानना है कि स्त्री की पराधीनता सामंतवादी–पूँजीवादी संबन्धों की वजह से है, इसी ने पुरूष को स्त्री के मुकाबले श्रेष्ठ अधिकार दिये हैं। इन्हीं अधिकारों के कारण यौन–नैतिकता का एक पक्षीय आधार खड़ा हुआ है। खगेन्द्र ठाकुर यशपाल को 'इतिहास से आगे ले जाने वाला रचनाकार' मानते हैं। उन्होंने लिखा है ''यशपाल मनुष्य की वास्तविक मुक्ति के लेखक हैं। इस मनुष्य के दायरे में मजदूर, किसान, महिला, तमाम दलित शोषित–पीड़ित लोग आते हैं। हिन्दी में यथार्थवाद के विकास में यशपाल की विशिष्ट भूमिका रही है। इस माने वे साथ चलने वाले नहीं, इतिहास को आगे ले चलने वाले रचनाकार हैं।''[23] अपने समय की सामाजिक–राजनीतिक स्थितियों को यशपाल 'झूठा–सच' में चित्रित करते हैं। अतीत में जाकर वे परंपरा की जड़ों को बौद्ध–कालीन समाज में भी देखते हैं जिसके फलस्वरूप उन्होंने 'दिव्या' उपन्यास लिखा।

'झूठा सच' के बारे में नित्यानंद तिवारी की राय है कि ''यह उपन्यास इतिहास के अन्तर्जीवन की कथा कहता है लेकिन पात्रों के अन्तर्जीवन में पैठकर उनमें निहित गहराई के आयाम में उतरने की योग्यता भी 'झूठा सच' में कम नहीं है।''[24] लगता है कि तिवारी जी 'झूठा सच' को व्यक्ति के अन्तर्जीवन से अधिक इतिहास के अन्तर्जीवन की कथा मानते है। सुरेन्द्र चौधरी को 'झूठा सच' में एक अधूरापन नज़र आता है क्योंकि उनके अनुसार उपन्यास के भीतर जो संकटापन्न जीवन और व्यापाररत समाज है वह अपनी परिणति के लिए चीखता रहता है।[25] फिर भी यह उपन्यास महत्व रखता है क्योंकि ''विभाजन की पीड़ा, दो जातियों के घृणापूर्ण पारस्परिक संघर्ष, उच्छेदन, और विस्थापन के बाद की परिस्थिति और जीवन–प्रवाह का ऐसा सांग–चित्रण शायद किसी दूसरी रचना में हिन्दी या हिन्दीत्तर भाषा में नहीं मिलता।''[26] वीरेन्द्र यादव ने 'झूठा सच' को एक औपन्यासिक कृति के साथ–साथ विभाजन के दौर और उसके बाद के भारतीय समाज व राजनीति का कालजयी दस्तावेज मानते हुए लिखा है कि ''यशपाल ने विभाजन की विभीषिका के दौरान स्त्रियों पर हुए अत्याचारों को मात्र कथात्मकता ही नहीं प्रदान की बल्कि इसे स्त्री–परिप्रेक्ष्य भी प्रदान किया। स्त्रियों की दुर्दशा के रोंगटे खड़े कर देने वाले जो चित्र यशपाल ने 'झूठा सच' में प्रस्तुत किये हैं, वे अविस्मरणीय हैं।''[27] यशपाल ने उपन्यास के पहले भाग (वतन और देश') में लिखा है ''बाँस के सिरे पर एक स्त्री का नंगा शरीर था। स्त्री बाँस के सिरे पर टाँगे फैलाए अटकी हुई थी। दोनों टाँगों पर ताजा खून क्षितिज से झांकते सूर्य की किरणों में चमक रहा था। स्त्री की गर्दन और बाँहें निर्जीव, शिथिल लटकी हुई थीं।''[28] कहना चाहिए कि 'झूठा सच' भारतीय समाज में स्त्री की नियति का सवाल व्यापकता के साथ उठाता है। कनक,श्यामा, बंती सहित अनेक वर्गों की स्त्रियों के माध्यम से वह स्त्री प्रश्नों को अपने केन्द्र में रखकर चलता है। मधुरेश 'झूठा सच' को 'अपने समय का एक प्रामाणिक दस्तावेज' मानते हुए लिखते हैं ''पंजाबियों के विस्थापन की पीड़ा, सगे–संबन्धियों को खाने और उनसे बिछुड़ने का अवसाद, पुनर्वास के लिए उनका कठोर संघर्ष और पहले ब्रिटिश साम्राज्यवाद और बाद में कांग्रेसी सरकार की जन–विरोधी नीतियों के कारण जनता का व्यापक मोहभंग–ये सारी चीजें मिलकर ही 'झूठा सच' को अपने युग की एक प्रतिनिधि और प्रामाणिक रचना बनाती है।''[29] 'झूठा सच' के सन्दर्भ में अरूण कमल की राय है कि ''गोदान यदि भारतीय जीवन के एक अत्यन्त व्यापक परिदृश्य का सारांश था तो 'झूठा सच' भी भारतीय जीवन के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मोक्ष का साक्षी है।''[30] यशपाल के कथा–साहित्य के सन्दर्भ में शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं कि ''अपने उपन्यासों और कहानियों में उन्होंने युग–जीवन और उसके संघर्षों को आकलित करने का प्रयत्न किया है। उनका उद्देश्य वर्तमान समाज की मान्यताओं के खोखलेपन को उघाड़कर सामने रखना रहा, ताकि उस द्वैत और वैषम्य के प्रति सचेत हो सके।''[31]

भारत–विभाजन के मद्दे–नज़र हिन्दी में ज़्यादा रचनाएँ नहीं हुई। विभाजन की त्रासदी को जानने–समझने के लिए 'झूठा सच' का अध्ययन सहायक होता है। उपन्यास की परिधि बड़ी है। उसका पहला खंड (वतन और देश) लाहौर पर केन्द्रित है। और दूसरा खंड (देश का भविष्य) जालंधर और दिल्ली पर। उपन्यास की केन्द्रीयता को और पठनीयता को भी बेहद लम्बा (और उबाऊ) मध्यवर्गीय 'प्रेम वर्णन' वंचित करता है।

I UnHk%

1. क्रांतिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व, पृ. 79
2. क्रांतिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व, पृ 79
3. कथा विवेचन और गद्य शिल्प – डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 49
4. क्रांतिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व, पृ. 60
5. कथा विवेचन और गद्य शिल्प, पृ. 50
6. चक्कर क्लब – यशपाल, पृ. 89
7. यशपाल : रचनात्मक पुनर्वास की एक कोशिश – मधुरेश, पृ. 329

8. दिव्या का महत्व – मधुरेश (सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय सं. 2008) पृ. 135
9. यशपाल : रचनात्मक पुनर्वास की एक कोशिश, पृ. 328
10. क्रांतिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व, पृ. 108
11. वही, पृ. 101
12. वही, पृ. 108
13. साहित्य से संवाद – गोपेश्वर सिंह (मेघा बुक्स, नवीन शहदरा, दिल्ली, पृ. 169 तथा 176
14. दिव्या का महत्व, पृ. 34
15. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ – डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 118
16. क्रांतिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व, पृ. 85
17. वही, पृ. 76
18. वही, पृ. 77
19. कथा विवेचन और गद्य शिल्प, पृ. 75
20. वही, पृ. 76
21. वही, पृ. 77
22. हिन्दी वार्षिकी – नेमिचन्द्र जैन, पृ. 27
23. क्रांतिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व, पृ. 71
24. यशपाल : पुनर्मूल्यांकन – संपा. कुँवरपाल सिंह (शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली) में खगेन्द्र ठाकुर का लेख, पृ. 121
25. वही, पृ. 139
26. क्रांतिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व, पृ. 61
27. क्रांतिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व, पृ. 61
28. दिव्या का महत्व, पृ. 64
29. झूठा–सच, भाग : एक – यशपाल, (विप्लव प्रकाशन, लखनऊ पंचम सं. 1975) पृ. 481
30. दे. भारतीय लेखक, अंक 5–6 अक्टूबर 2003, मार्च 2004 (का यशपाल विशेषांक) में मधुरेश का लेख 'झूठा सच : उपन्यास में महाकाव्य, पृ. 286
31. गोलमेज – अरूण कमल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2009, पृ. 157

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 106-109

Hkkjr dh fon'k uhfr e fujUrjrk vkj cnyko

MkW ;'koUr iYlkn iVy*

वर्ष 1947 के पश्चात् अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत एक स्वतंत्र देश के रूप में उभरा। अपनी स्वतंत्रता के साथ ही भारत ने अपनी–अपनी स्वतंत्र विदेश नीति का निर्माण किया। भारत की विदेश नीति की मूल बातों का समावेश संविधान के अनुच्छेद–51 मे किया गया है, जिसके अनुसार राज्य अंतर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बढ़ावा देगा, राज्य राष्ट्रों के मध्य न्याय और सम्मानपूर्वक संबंधों को बनाए रखने का प्रयास करेगा, राज्य अंतर्राष्ट्रीय कानूनों, प्रथा संधियों का सम्मान करेगा तथा राज्य अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों एवं विवादों को पंच फैसलों द्वारा निबटाने की नीति को बढ़ावा देगा।

वर्ष 1991 में सोवियत संघ के विघटन तथा उदारीकरण की नीति के पश्चात् भारत का झुकाव प्रमुख पश्चिमी देशों की ओर बढ़ा, परंतु इसके बावजूद भारतीय विदेश नीति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया और यह कहना कि भारत का झुकाव पश्चिमी देशों की ओर रहा है यह पूरी तरह सही नही है, क्योंकि आज भी भारत और रूस का संबंध उतना ही मजबूत है, जितना पहले था।

Hkkjrh; fon'k uhfr d vk/kkjHkwr fl)kar xVfuji{krk fl)kar % द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद एक नए युग का सूत्रपात हुआ, जिसमें तनाव की स्थिति अपनी चरम अवस्था पर थी। इस तनाव को शीतयुद्ध का नाम दिया गया। विश्व परस्पर दो गुटों में बंट गया। एक गुट का नेतृत्वकर्ता अमेरिका था, तो दुसरे गुट का नेतृत्वकर्ता सोवियत संघ (रूस) था, परंतु भारत ने किसी भी शक्ति गुट में शामिल न होने का निर्णय लिया। वह सभी देशों के साथ मित्रता के आदर्श और विश्व शांति के नैतिक मूल्यों में विश्वास रखता था।

अतः इसने निर्णय किया कि वह अपनी क्षमता का प्रयोग देश के आर्थिक विकास के लिए ही करेगा। इस उद्येश्य की पूर्ति के लिए भारत को न केवल सभी देशों के साथ मित्रता की अपेक्षा थी वरन् वह यह भी चाहता था कि जहाँ से भी संभव हो, उसे आर्थिक सहायता प्राप्त हो।

अतः भारत ने स्पष्ट किया कि वह सभी अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र रहेगा। दूसरी ओर भारत की भौगोलिक स्थिति के अनुसार, भारत का दक्षिण पूर्वी एशिया के बीच में अवस्थित होना, महासागर में उसकी प्रस्थिति तथा उतर में चीन की मौजूदगी के कारण भारत के लिए यह अनिवार्य था कि वह सैन्य संधियों से दूर रहे। इस प्रकार गुटनिरपेक्षता की नीति भारत का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है, जो भारत के दर्शन तथा परम्परा को दिखलाता है।

iapkhy dk fl)kar % भारत दर्शन के अंतर्गत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की नीति एक विश्व की भावना को प्रोत्साहित करती है। इसका अर्थ यह है कि सभी देश एक–दूसरे की व्यवस्थाओं का आदर करें तथा सह–अस्तित्व में रहें। इस प्रकार विभिन्न विचारधाराओं के बीच शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व का आदर करना भी भारत की विदेश नीति का अन्य सिद्धांत है। इस सिद्धांत को वर्ष 1954 में भारत तथा चीन के बीच हुए 'पंचशील सिद्धांतों; की घोषणा' के साथ औपचारिक मान्यता मिली। इन सिद्धांतों में क्षेत्रीय अखण्डता और सम्प्रभुता, परस्पर अनाक्रमण का सिद्धांत, आंतरिक मामले में अहस्तक्षेप, परस्पर मित्रता की भावना तथा सह–अस्तित्व में विश्वास की भावना थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि अगर विश्व इस समस्याओं पर कार्य करे, तो विश्व की अनेक संस्थाओं का आसानी से निदान हो सकता है। कालान्तर में पंचशील सिद्धांत को नेहरू ने अंतर्राष्ट्रीय सिक्के का नाम दिया।

vkifuof'kd 'kk"k.k rU= dk fojks/k % भारत स्वयं लम्बे समय तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद से पीड़ित रहा था। इसलिए उसने उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद के प्रत्येक रूप का विरोध किया तथा एशिया व

*एम.ए., पीएच.डी, जेपीयू, छपरा

अफ्रीका के उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद का विरोध किया। स्वतंत्रता के बाद यह निर्णय लिया गया कि भारतीय सैनिकों को, जिन्हें अंग्रेज तथा फ्रांस सरकार ने उपनिवेशों में स्वतंत्रता आंदोलन का दमन करने के लिए भेजा था, वापस बुला लिया जाए। भारत का यह सिद्धांत उपनिवेशों की जनता के आत्म–निर्णय का अधिकार माना गया।

वर्तमान परिवेश में जबकि उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद धीरे–धीरे समाप्त हो चुका है, तो प्रश्न यह उठता है कि अब इसकी भारत की विदेश नीति में क्या प्रासंगिकता रह गयी है। भारत के दृष्टिकोण से यह आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि भारत, एशिया तथा अफ्रीका के अनेक देशों में नव–उपनिवेशवाद के नए हथियार का प्रयोग किया जा रहा है। अतः भारत सभी विकासशील देशों के हित में इन सिद्धांतों को अपनी विदेश नीति के प्रमुख पक्ष के रूप में रखता है।

u'tkrh; d fdlh Hkh foHkn dk fu"k/k % भारत की विदेश नीति जाति भेद तथा रंग भेद के प्रत्येक रूप का विरोध करती है, क्योंकि भारत समस्त मानव जाति को समानता के रूप में देखता है। दक्षिण अफ्रीका रंगभेद का सबसे घृणित उदाहरण है। रंगभेद के कारण शोषित जनता को भारत ने पूर्ण नैतिक समर्थन प्रदान किया। वर्ष 1949 में भारत ने दक्षिण अफ्रीका के साथ संबंध विच्छेद कर लिए। विश्व जनमत को रंगभेद की नीति के विरूद्ध तैयार करने में भारत ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

संयुक्त राष्ट्र के अंदर और बाहर भारत ने हमेशा ही रंगभेद की कड़ी निंदा और आलोचना की। भारत सभी जातियों एवं वर्गों के लोगों की समानता के सिद्धांत का पुरजोर समर्थन करता आया है। दशकों तक संघर्ष करने के बाद वर्ष 1994 के आरंभ में भारत को अपने प्रयत्नों में सफलता मिली।

रंगभेद को समाप्त करने का प्रयोजन सिद्ध होते ही भारत ने दक्षिण अफ्रीका के साथ पूर्ण राजनयिक संबंध फिर से कायम कर लिए। भारत का यह पूर्ण विश्वास है कि रंग और नस्ल भेद विश्व में संघर्ष का एक प्रमुख श्रोत है। अतः उसने हमेशा एक ऐसे समाज की स्थापना पर बल दिया है जहां रंग, जाति तथा वर्ग इत्यादि पर आधारित कोई भेदभाव नही हो।

Lk;qDr jk"V la?k dk leFkZu % भारत शुरू से ही संयुक्त राष्ट्र संघ की अनेक विशिष्ट एजेंसियों का सक्रिय सदस्य रहा है। वह इसके संस्थापक सदस्यों मे से एक है। अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिए भारत की प्रतिबता अतुलनीय है। परमाणु शस्त्रों का समर्थक होना तो दूर वह तो उनका पूर्ण विनाश चाहता है और उसकी यह इच्छा है कि पारंपकि अस्त्रों तथा सैन्य बलों में भी काफी कमी की जाए। भारत का ऐसा मानना है कि संयुक्त राष्ट्र को शक्तिशाली बनाकर ही इन उद्येश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। भारत संयुक्त राष्ट्र संघ में एशिया अफ्रीकी देशों के समूह का एक प्रमुख सदस्य है। भारत ने पिछले 50 वर्षों में संयुक्त राष्ट्र में अनेक प्रगतिशील उपाय करने के प्रस्ताव किए या उनका समर्थन किया। भारत कई बार सुरक्षा परिषद् का अस्थायी सदस्य भी रहा है और उसने विश्व शांति और सुरक्षा के हित में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जब कभी भी आवश्यकता पड़ी तो संयुक्त राष्ट्र के आह्वान पर भारत ने सामूहिक सुरक्षा और शांति स्थापना के प्रयासों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस प्रकार भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थक है।

यह भारतीय विदेश नीति का महत्वपूर्ण पहलू है। इस प्रकार भारत विदेश नीति के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत की प्रतिष्ठा इसकी विदेश नीति के कारण ही है क्योंकि इसमें विश्व शांति, सह–अस्तित्व और संयुक्त राष्ट्र संघ में एवं सिद्धांत है, जिन्होने अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत को एक नई पहचान दी है।

ijek.kq 'kfDr d fodYi dk iHkkoh mi;ksx % भारत ने हमेशा से ही 'शांति के लिए परमाण' सिद्धांत को अपनाया है अर्थात् केवल शांतिपूर्ण कार्यों के लिए परमाणु शक्ति का विकास किया जाए। वर्ष 1964 मे चीन ने अपना प्रथम परमाणु विस्फोट किया था वह परमाणु अस्त्र संपन्न देश बन गया।

चीन और अमेरिका के मध्य बढ़ते राजनीतिक संबंधों को देखते हुए भारत ने वर्ष 1974 में पहला परमाणु परीक्षण किया, परंतु विश्व समुदाय द्वारा इस विषय पर उठे प्रश्न के संदर्भ में भारत ने स्पष्ट किया कि यह मात्र उनका शांतिपूर्ण परमाणु विस्फोट ही था।

भारत वर्ष 1968 की परमाणु अप्रसार संधि को भेदभावपूर्ण मानता है इसलिए भारत ने उस पर आज तक हस्ताक्षर नही किए, क्योंकि इसमें सभी हस्ताक्षरकर्ता देशों को परमाणु प्रसार न करने के लिए

बाध्य किया गया है। वर्ष 1998 के दूसरे परमाणु परीक्षण के बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि भारत अब परमाणु संपन्न देश बन गया है।

उन्होने यह भी कहा कि भारत भविष्य में अब कोई परीक्षण नही करेगा और उसने स्वेच्छा से ही यह रोक लगाई है। साथ ही भारत ने यह भी स्पष्ट किया है कि अपने परमाणु शक्ति का कभी दुरूपयोग नही करेगा, किंतु यदि भारत को किसी तरह से मजबूर किया जाएगा तो वह अपनी सुरक्षा हेतु परमाणु हथियारों के प्रयोग से पीछे नही हटेगा।

Hkkjr dh fon'k uhfr d fu/kkjd rRo % भारत की विदेश नीति के प्रमुख निर्धारक तत्व निम्नलिखित हैं :—

Hkkxkfyd dkjd % भौगोलिक कारक जैसे कि देश की अवस्थिति, आकार तथा प्राकषतिक संसाधन एवं जनसंख्या आदि विदेश नीति के निर्णायक तत्व होते हैं, जो अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में किसी राष्ट्र की शक्ति का निर्धारण करके उसकी विदेश नीति को साकार रूप देते हैं। भारत एडेन से टोकियो तक फैले ग्रेट एशियन आर्क के मध्य में और हिंद महासागर के किनारे स्थित है।

हिंद महासागर में भारत की केंद्रीय स्थिति इसे वैश्विक महत्व की भूमिका निभाने में सहायता करती है। इसके अतिरिक्त भारत एक उपमहाद्विपीय देश है, जहां का प्रायद्वीप उतर में हिमालय द्वारा मुख्य भूमि एशिया से अलग होता है। पश्चिम में अरब सागर द्वारा तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी द्वारा और दक्षिण में हिंद महासागर इसे अलग करता है। भारत की केवल अफगानिस्तान को छोड़कर सार्क के सभी सदस्य देशों के साथ साझी सीमाएं हैं। यह अपने आकार एवं आबादी की दृष्टि से इन सभी देशों में अपनी प्रभावपूर्ण स्थिति का लाभ उठा रहा है। ये सभी विशेषताएं वैश्विक नीतियों के निर्माण में वैश्विक शक्तियों द्वारा भारत को भी इसमें शामिल करने के लिए उन्हें प्रभावित करती है।

lSfud 'kfDr % विदेश नीति के उद्येश्य को प्राप्त करने एवं नीति निर्माताओं की स्वतंत्रता को बनाए रखने में सैनिक शक्ति को किसी भी राष्ट्र की शासन प्रणाली का आधार माना जाता है। इस परमाणु युग मे जहां युद्ध को एक विनाशकारी संकट समझा जाता है, वहीं सैनिक शक्ति का अपना प्रभाव है। यदि किसी राज्य के पास शक्तिशाली सेना नही है तो वह अपने प्रतिद्वंद्वियों से सफलतापूर्वक समझौता नही कर सकता।

भारत विश्व में चौथी बड़ी सैनिक व्यवस्था है। इसकी सेनाएं दक्ष एवं नीतिकुशल है। भारतीय सैनिकों को विश्व में बहादुरी के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त है। भारत अपनी परमाणु सैन्य शक्ति का प्रयोग बाहरी खतरों के विरूद्ध भय निवारण के रूप में करता है। यही कारण है कि अन्य देश बाहरी खतरों से रहित टिकाऊ अर्थव्यवस्था के लिए भारत को लाभ की दृष्टि से देखते हैं।

सैनिक शक्ति की भूमिका विवेकसंगत राजनीतिक लक्ष्यों को पूरा करने में है। जैसे कि एक स्तर पर राज्य की सुरक्षा उसकी प्रभुता एवं प्रादेशिक अखण्डता की रक्षा करना एवं देश की विदेश नीति को बल प्रदान करना तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों द्वारा राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा व अस्तित्व को बनाए रखना है।

Hkkjrh; n'kkUrj % इस शब्दावली का प्रयोग उन लोगों के लिए होता है, जो भारत और अपने वंशज स्थान से प्रवास कर जाते हैं। इसमें अनिवासी भारतीय NRI (Non Resident of Indian) भारतीय मूल के लोग PIOs (Person of Indian Origin) शामिल हैं जिन्होने किसी अन्य देश की नागरिकता ग्रहण कर ली हो।

स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने उसकी नागरिकता का निर्णय प्रवासियों पर छोड़ा। आज भारतीय प्रवासी भूमंडल के हर भाग पर शामिल हैं और उनका विस्तार सभी महानगरों एवं महाद्वीपों के पार है। वे लोग जहां भी रहते हैं, देश के कानूनों की संरचना के अंतर्गत उनके कल्याण को सुनिश्चित करना भारत की विदेश नीति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसलिए भारत सरकार ने भारतीय प्रवासियों के लिए 'प्रवासी भारतीय कार्य मामले' नामक एक पृथक मंत्रालय का गठन किया है।

भारतीय प्रवासियों का योगदान भारत में वार्षिक रूप से धनराशि एनआरआई जमा तथा एनआरआई निष्पक्ष निवेश के रूप में प्राप्त होते हैं। अतः अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में भारत की विदेश नीति का व्यापक औचित्य है और भारतीय प्रवासियों के कारण आगामी वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के अंतर्गत इसके लिए विस्तृत संभावनाएं हैं।

jk"Vªh; n'kZu % विश्व शांति की स्थापना उपनिवेश–विरोधी संघर्ष, लोकतांत्रिक तथा धर्मनिरपेक्षता एवं शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के प्रति वचनबद्धता आदि दार्शनिक मूल्य है, जिसकी उत्पति भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हुई थी। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल से ही भारत के विश्व के साथ संबंध का महत्वपूर्ण विकास हुआ। वर्ष 1920 के दशक में वैश्विक मामले के रूचिकर जवाहरलाल नेहरू ने अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर भारत की अवस्थिति का नियमन किया। उपनिवेशवाद के विरूद्ध विश्वव्यापी सामुदायिक संघर्ष में भारत हमेशा अग्रणी रहा है। निःसंदेह भारत की स्वतंत्रता ने उपनिवेशवाद की जड़ों को समाप्त करने में एक उत्प्रेरक शक्ति की भूमिका निभाई है। 2 सितम्बर, 1946 को कांग्रेस द्वारा प्रारूपित प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से कहा था कि भारत विश्व शांति और स्वतंत्रता में सुधार के लिए अन्य देशों के साथ किस प्रकार के संबंध चाहता है तथा वह उपनिवेशवाद और रंगभेद तथा जातिगत भेदभाव की कड़ी आलोचना करता है।

jktuhfrd lajpuk % किसी देश की राजनीतिक संरचना उसके अंतर्राष्ट्रीय मामलों के प्रति दर्षष्टिकोंण को दिखाती है। एक लोकतांत्रिक संरचना अपने नागरिकों को घरेलू एवं वैदेशिक दोनो प्रकार की लोकनीतियों पर अपनी राय अभिव्यक्त करने का अवसर देती है। निर्वाचित संसद और राजनीतिक दल देश की विदेश नीति पर व्यापक प्रभाव डालते हैं। भारतीय लोकतंत्र में सरकार अपनी सभी गतिविधियों के लिए संसद व जनता के प्रति उतरदायी होती है। समझौतावादी संधियां और अंतर्राष्ट्रीय समझौते राज्य के लिए कानूनी रूप से बाध्यकारी हैं, परंतु यह घरेलू कानून का हिस्सा तब तक नही बन सकता जब तक इसे संसद के अधिनियम द्वारा स्वीकृति न मिल जाय। विदेश नीति के संबंध में बहुधा विपक्षी राजनीतिक दलों के विभिन्न विचार अधिक प्रभावी होते हैं।

संयुक्त राजनीति में NDA (National DemocraticAlliance) तथा UPA (United Progressive Alliance) जैसे शासकीय संबंधी समूह विदेश नीति से संबंधित सभी महत्वपूर्ण मामलों पर चर्चा करते हैं और उनमें सर्वसम्मति प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। समग्र रूप से बिना इस बात पर ध्यान दिए कि सत्ता में कौन–से राजनीतिक दल हैं, इससे विदेश नीति निर्माण में निरंतरता बनी रहती है।

vkfFkd fodkl % आज के इस वैश्वीकरण के युग में आर्थिक विकास से संबद्ध विदेश नीति एक सामान्य प्रक्रिया है, क्योंकि सभी राज्य प्रत्यक्ष विदेशी निवेश तथा विदेशी व्यापार के विस्तार की गति उसके बाहरी संबंधों को आकार देती है। शीतयुद्ध के दौरान भी हमारे नीति निर्माणकर्ताओं ने समाजवादियों के साथ आर्थिक विकास पर ध्यान दिया। इसका भारत की विदेश नीति पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। भारत ने अपनी आर्थिक सहायता को सुनिश्चित करने के लिए गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति अपनाई। एक बड़ी आर्थिक शक्ति के रूप में भारत का सफलतापूर्वक विकास अब नीति संस्थाओं एवं शासकीय व्यवहार मे इन सुधारों की गहराई पर निर्भर है। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के शब्दों में, स्पष्ट है क्योंकि उन्होने विदेश नीति को आर्थिक नीति का परिणाम माना है। अतः वैश्वीकरण के युग में आर्थिक विकास और व्यापार विदेश नीति का प्रमुख केंद्र बन गये हैं। इस प्रकार अब आर्थिक विकास की विदेश नीति का प्रमुख अंग है।

lUnHkZ %

1. जे. बंधोपाध्याय : दी मैंकिंग ऑफ इंडिया फॉरन पॉलिसी
2. डॉ. वी.पी.दत : इंडिया फॉरेन पॉलिसी, पृ0 3
3. प्रो. सच्चिदानंद मूर्ति : 'भारत की विदेश नीति'
4. वी.एन. खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा : ''भारत की विदेश नीति''
5. पुष्पेश पंत : 21वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय संबंध
6. डॉ0 सुरेश चंद सिंहल : भारत की विदेश नीति
7. प्रो0 बी.एल. फड़िया : अंतर्राष्ट्रीय राजनीति
8. तपन विस्वाल : अंतर्राष्ट्रीय संबंध
9. करूणाकरण गुप्ता : इंडियन फॉरेन पॉलिसी, पृ0 11
10. रोनाल्ड सेगल : क्रिस ऑफ इंडिया, पृ0 267
11. बेंस, जे.एस. : इंडियाज इंटरनेशनल डिस्प्यूटस

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 110-115

fgUnh fl uek e xk/kh

iVy lR;e dekj xkÇonHkkÃ*

आज बापु की मृत्यु के 72 साल बाद, गांधी के नाम सुनते ही हमारे दिमाग में क्या दृश्य आते हैं? यह कैसे है कि हम उसकी तस्वीर लें? गोल चश्मे के साथ बहुत ही परिचित व्यक्ति और खुद और दुनिया के साथ शांति से मुस्कुराता हुआ चेहरा, एक लुंगी में पहने कपड़े और लाठी (छड़ी) के साथ एक उग्र चाल, गति को बनाए रखने के लिए कड़ी मेहनत की कोशिश करना एक छवि है जो तस्वीरों, क्रोमोलिथोग्राफ के माध्यम से अच्छी तरह से जानी जाती है, बैंक नोट पर उनकी प्रतिमाएं और चेहरा। फिर भी, रंग की हमारी चलती दुनिया में, उनकी और उनके तौर–तरीकों की तस्वीर जो कि ज्यादातर लोग उन्हें अपने साथ जोड़ते हैं या होने वाली तस्वीर वह है, जो किसी ने परदे पर देखी है– फिल्मों में, सिनेमा में। गांधी की मेरी निजी यात्रा निःसंदेह स्मारकीय 1982 की बायोपिक है– गांधी– जहाँ बेन किंग्सले ने रिचर्ड एटनबरो द्वारा निर्देशित कई ऑस्कर विजेता फिल्म में एक जीवन समय की भूमिका निभाई है, जो कि संभवतः भारतीय में गांधी की भूमिका का सबसे व्यापक चित्रण है स्वतंत्रता आंदोलन।

xkèkh dk lY;ykbM dk Qyko % यह जानना काफी विडंबना है कि जिस आदमी को कई बार सेल्युलाइड बनाया गया है, उसने अपने पूरे जीवनकाल में सिर्फ एक फिल्म के कुछ रीलों को ही देखा– विजय भट्ट की रामराज्य (1943)। यह काफी पेचीदा है कि जिसने सत्य के मूल्यों को सुनिश्चित किया, उसे माध्यम द्वारा पर्याप्त रूप से कभी भी आसक्त नहीं किया गया था, जबकि पहली अखिल भारतीय फिल्म उसके एक रोल मॉडल पर थी, डी.जी. फाल्के पौराणिक महाकाव्य, राजा हरिश्चंद्र (1913)। वास्तव में, सिनेमा पर गांधी की कम राय भारतीय सिनेमैटोग्राफ समिति के साथ उनके साक्षात्कार में दर्ज की गई थी।

"यहाँ तक कि अगर मैं बहुत दिमाग वाला था, तो मुझे आपके प्रश्नावली का जवाब देने के लिए अयोग्य होना चाहिए, जैसा कि मैं कभी भी सिनेमा में नहीं रहा हूँ। लेकिन यहाँ तक कि एक बाहरी व्यक्ति के लिए, जो बुराई उसने की है और कर रही है वह पेटेंट है। अच्छा, अगर यह। किसी भी समय किया गया, सिद्ध किया जाना है।"

सिनेमा के लिए गांधी की नापसंदगी भी उनके द्वारा संपादित एक पेपर द हरिजन में कुछ समय के लिए

*शोध छात्र, हेमचंद्राचार्य युनिवर्सिटी, पाटन, गुजरात

दिखाई दी। गांधी ने 3 मई, 1942 को पत्र के एक अंक में प्रकाशित एक साक्षात्कार में कहाः "अगर मैंने उनके (सिनेमा की बुराई) के संबंध में पिकेटिंग का आयोजन करना शुरू कर दिया, तो मुझे अपनी जाति, मेरे महाश्मशिप को खोना चाहिए ...! कह सकते हैं! सिनेमा की फिल्में अक्सर खराब होती हैं। रेडियो के बारे में मुझे नहीं पता। "

मेरे लिए, यह कुछ हद तक अकथनीय और विचित्र लगता है, जो एक व्यक्ति ने समझा और रोजमर्रा की जिंदगी के प्रतीकों को बनाया और उन्हें शक्तिशाली कुलदेवता में बनाया, जैसे चरखा (चरखा) या उनका साधारण ड्रेसिंग, कभी भी ऐसे शक्तिशाली का उपयोग करने का प्रयास नहीं किया। उसका संदेश फैलाने का माध्यम। कोई यह मान सकता है कि संचार प्रौद्योगिकी के प्रगतिशील विकास के युग में पैदा होने के बावजूद यह आधुनिक और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अपने विरोधी दृष्टिकोण से उपजी है।

अपने समय में इतना अनोखा दृष्टिकोण, कि यह चार्ली चैपलिन को प्रभावित करता है जब दोनों लंदन में मिले जब गांधी ने दूसरे दौर के सम्मेलन में भाग लिया। चैप्लिन की फिल्म मॉर्डन टाइम्स, जो इस भावना को प्रतिध्वनित करती है कि मशीनरी को मानवता को लाभ पहुंचाना चाहिए और इसे काम से बाहर नहीं फेंकना चाहिए, अपने पुराने रुख से काफी हद तक हटा दिया गया जहां उनका मानना था कि मशीनरी मनुष्य को गुलामी के बंधन से मुक्त कर सकती है। गांधी के साथ अपनी बैठक के बाद, चैपलिन ने इन शब्दों के साथ बैठक को प्रसिद्ध किया–

"गांधी एक जबरदस्त व्यक्तित्व हैं, जबरदस्त! वह एक महान अंतरराष्ट्रीय हस्ती हैं! अधिक, वह एक महान नाटकीय व्यक्तित्व हैं।"

और वह वास्तव में था। और है। महाद्वीपों में उस पर कई मील के समाचार हैं। गांधी के पहले सेल्युलाइड चित्रण में से एक था, जो ए.के. चेटियर– एक चीन स्थित पत्रकार, जो गांधी के संदेश से बहुत प्रभावित था और गांधी पर उपलब्ध सभी अभिलेखीय सामग्रियों को इकट्ठा करने और ताजे शॉट फुटेज के साथ एक साथ स्ट्रिंग करने के बारे में गया। कुछ रिकॉर्ड्स से संकेत मिलता है कि चेट्टियर कुछ फुटेज का स्रोत बनाने में कामयाब रहा जो तब भी बहुत दुर्लभ था। दुर्भाग्य से, प्रिंट और नकारात्मक दोनों खो गए हैं।

Hkkjrh; fluek dh xkSjoiw.kZ mi{kk % 1953 में उनकी मृत्यु के पूरे पांच साल बाद, वह अमेरिकी फीचर डॉक्यूमेंट्री महात्मा गांधी– 20 वीं सदी के पैगंबर का विषय बने। यह उसी वर्ष में था जब उनके बारे में एक फिल्म के बारे में एक विचार भारत में मंगाई गई थी, लेकिन कांग्रेस सरकार ने उनके सबसे करीबी लोगों में से एक–नेहरू के नेतृत्व में रहते हुए भी फिजूलखर्ची की थी। यह अधिक दुखद है कि इसके 10 साल बाद, दिसंबर 1963 में, नेहरू ने राज्यसभा को संबोधित करते हुए गांधी पर फिल्म बनाने के लिए देश में अक्षमता की घोषणा की–

"गांधीजी के जीवन पर एक फिल्म का निर्माण एक सरकारी विभाग के लिए एक प्रस्ताव को ले जाना बहुत मुश्किल था। सरकार ऐसा करने के लिए उपयुक्त नहीं थी और उन्हें इसके लिए सक्षम लोग नहीं मिले थे।"

दिलचस्प बात यह है कि यह उसी वर्ष, 1963 की है जब नाइन ऑवर्स टू रामा नामक एक और फिल्म रिलीज़ हुई थी और यह नौ घंटे का एक काल्पनिक खाता था, जिसमें गांधी की हत्या तक की गई थी। फिल्म स्टेनली वोल्पर द्वारा इसी नाम की एक पुस्तक पर आधारित थी।

उनकी मृत्यु के वर्ष से पच्चीस वर्ष और उनके जन्म से सौ साल लग गए, उन पर बनने वाली एक भारतीय फिल्म के लिए–महात्माः गांधी का जीवन, द गांधी द्वारा निर्मित पांच घंटे की लंबी वृत्तचित्र राष्ट्रीय स्मारक कोष में थी।

महात्मा गांधी ने नेहरू को एक ताबीज या मंत्र दिया था। किसी भी निर्णय लेने से पहले इसका उपयोग करना वास्तव में एक समझदारी थी। उन्होंने नेहरू से कहा कि किसी भी काम को शुरू करने से पहले, सबसे गरीब आदमी के बारे में सोचें और उसे ध्यान में रखते हुए सोचें कि क्या आपके कार्यों से उसे कोई फायदा होने वाला है।

गांधी के इस विचार से गरीब से गरीब व्यक्ति को दुनिया में एक शांतिपूर्ण क्रांति लाने में मदद मिली। उन्होंने इस बेहद भौतिकवादी, अधिग्रहण, संकीर्णता और स्वार्थी दुनिया को एक रास्ता दिखाया है। आज गांधी भले ही हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन वे हमारे समाज में कई व्यक्तियों के माध्यम से खुद को प्रकट करते हैं। कट्टरपंथी पार्टी या ग्रीनपीस पार्टी जैसे संगठन खुले तौर पर स्वीकार करते हैं कि महात्मा गांधी उनके मार्गदर्शक हैं और वे उनके रास्ते पर चलते हैं। उनकी नीतियां गांधीवादी सिद्धांतों पर आधारित हैं। मार्टिन–लूथर–किंग–जूनियर जब हम गांधी विचार की अभिव्यक्ति के बारे में सोचते हैं, तो हम तुरंत मार्टिन लूथर किंग जूनियर के बारे में सोचते हैं। युवा राजा सत्याग्रह पर गांधीजी के विचारों से काफी प्रभावित थे। उन्होंने अपने देश में नस्लवाद से लड़ने के लिए इस उपकरण का प्रभावी ढंग से उपयोग किया। उस पर हमला किया गया जब उसने नस्लवाद के खिलाफ आवाज उठाने के लिए शांतिपूर्ण जुलूस का नेतृत्व किया, लेकिन वह स्थिर खड़ा था। अहिंसा एक जीवन शैली थी और असहयोग न्याय की लड़ाई का एक तरीका था। गांधी और राजा दोनों ने शांति की तलाश में अपना जीवन बिताया लेकिन वे खुद हिंसा के शिकार थे। गांधीजी की तरह, मार्टिन लूथर किंग की हत्या के कारण दुनिया भर में दुख हुआ था।

नेल्सन–मंडेला दक्षिण अफ्रीका में, नेल्सन मेंडेला ने अपनी आत्मकथा, लॉन्ग वॉक टू रीडम में गांधी के जीवन पर उनके प्रभाव का उल्लेख किया है। दलाई लामा, गांधी के दर्शन को भी बढ़ावा देते हैं। दुनिया भर में असंख्य लोग गांधीजी के विचारों की कसम खाते हैं। गांधीजी के दर्शन से प्रभावित मानवाधिकार कार्यकर्ता एडोल्फो पीएएएस ईक्वीवेल ने गांधीजी की ग्राम स्वराज्य की अवधारणा को लागू किया। 1991 में नोबेल लोरेटे आंग सान सू की ने गांधी की आत्मकथा पढ़ने के बाद उनके विचारों से प्रभावित होकर अपने देश म्यांमार में लोकतंत्र की लड़ाई लड़ने के लिए प्रेरित किया। 1961 में अपनी माँ के इलाज के लिए जब वह इस देश में थीं, तब दिल्ली में स्कूल गईं, गांधीजी के सभी तरह के अन्याय और बुराईयों से लड़ने के तरीकों के बारे में जानती थीं। पच्चीस साल बाद, जो नींव उसे कम उम्र में मिली, उसने उसे अपने देश में लोकतंत्र की स्थापना के लिए असहयोग और अहिंसक का उपयोग करने में सक्षम बनाया। गांधी जी की आत्मकथा को पढ़ने के बाद, 1921 में इंडोनेशिया में पैदा हुए, उन्हें दिलचस्पी हुई और उन्होंने गांधी जी पर और अन्य लेखन को पढ़ना शुरू किया। उन्होंने महसूस किया कि इंडोनेशिया के लोगों को गांधी के बारे में अधिक से अधिक सीखना चाहिए और केवल उनके सिद्धांतों का पालन करके ही इंडोनेशिया शांति से समृद्ध हो सकता है और दुनिया में अपना सही स्थान पा सकता है। ओका ने गांधीजी की आत्मकथा का अनुवाद किया और इसे पूरे देश में शिक्षकों, प्रोफेसरों, छात्रों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को वितरित किया। परिणामस्वरूप कई लोग उनकी खोज में शामिल हुए। उन्होंने बाली में गांधी आश्रम की स्थापना की, जिसका नाम 1970 में गेदोंग गांधी आश्रम रखा गया। (मूल रूप से आश्रम गाँधी का नाम चतवद एंटी दास (स्पष्ट शांति दासा जिसका अर्थ है सर्वेंट ऑफ़ पीस–गाँव के नाम, कैंडासा के शब्दों का एक नाटक) केवल उन्हीं के पास है गांधी के विचारों के प्रति शांतिपूर्ण प्रतिरोध के तरीकों को समझा और आश्रम में भर्ती कराया गया। उन्होंने लोगों में पवित्रता और शांति का जीवन जीने के लिए जागरूकता पैदा करने, एक की आत्मा पर आत्मनिरीक्षण करने और प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता पर काम किया है।

दूर दक्षिण फ्रांस में लैंगडोक के विंडसवेट पहाड़ों में, पेरिस से 1000 मील की दूरी पर, शांति का एक छोटा सा द्वीप है जिसे आर्क के समुदाय के रूप में जाना जाता है। इटली द्वारा स्थापित लांजा डेल वास्टोइ द्वारा स्थापित अक्सर जिसे महात्मा गांधी का "पहला" कहा जाता है। पश्चिम में शिष्य "एक" आर्क एक अहिंसक सामाजिक व्यवस्था का एक मॉडल है, जो हमारे समय की ओवरटेक और छिपी हिंसा का एक विकल्प है। जो लोग वहां जाते हैं, उन्हें गांधीजी के आश्रम के बारे में याद दिलाया जाता है क्योंकि इसमें कोई बिजली नहीं है और घोड़ों की मदद से ज़मीन मैन्युअल रूप से ली जाती है। एक समुदाय में लगभग 150 व्यक्ति एक बड़े परिवार के रूप में रहते हैं। सभी सदस्य शाकाहारी हैं। वे प्रार्थना के साथ दिन की शुरुआत करते हैं, फिर परिसर को साफ करते हैं, अपनी खेती में भाग लेते हैं, लकड़ी काटते हैं, रोटी बनाते हैं और अपने मवेशियों की देखभाल करते हैं। हर घंटे एक घंटी बजती है जो उनके लिए अपना काम छोड़ने का संकेत है, प्राकृतिक परिवेश में बाहर आते हैं, चुपचाप खड़े होते हैं और एक प्रार्थना कहते हैं जिसके बाद वे अपने काम पर वापस जाते हैं।

वास्तो को युवावस्था से ही सामाजिक परिवर्तन में रुचि थी। उन्होंने महसूस किया कि खूनी क्रांतियां बदलाव नहीं ला सकती हैं। गांधीजी की रीडिंग ने भी उन्हें यही संदेश दिया। वह अपने लक्ष्य में अधिक दृढ़ हो गया, गांधी का शिष्य बन गया और यहाँ तक कि उसने अपना नाम बदलकर शांतिदास रख लिया। जैसे ही उन्होंने एक आश्रम स्थापित करने का फैसला किया, उन्होंने भारत में आश्रमों का अध्ययन करने के लिए न केवल अपनी शारीरिक संरचनाओं के लिए यात्रा की और स्थापित किया, बल्कि उनकी आध्यात्मिक गतिविधियों को भी पूरा किया। वास्तु कोई और नहीं है; उसका आश्रम में एक पेड़ के नीचे रहता है। एक आश्रम का नाम पीटर, जो खुद को मोहनदास कहता है, ने वास्तु का मंत्र दान किया है। आज की कई पीढ़ी, भौतिक दुनिया, पोल से तंग आ चुकी है ।

डेविड एटनबरो की गांधी से लेकर लगे रहो मुन्नाभाई तक, बापू कई फिल्मों का विषय रहे हैं।

महात्मा गांधी की 150 वीं जयंती समारोह के एक हिस्से के रूप में, प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने शनिवार को अपने निवास पर कई फिल्म और टेलीविजन हस्तियों को एक नई पहल की शुरुआत की। राजधानी में इस कार्यक्रम में शाहरुख खान, आमिर खान, कंगना रनौत, सोनम कपूर, जैकलीन फर्नांडीज, इम्तियाज अली, राजकुमार हिरानी, अनुराग बसु सहित अन्य हस्तियों ने शिरकत की और फिल्मकार राजकुमार हिरानी द्वारा निर्देशित एक विशेष वीडियो भी जारी किया गया। प्रतिस्पर्धा। वीडियो में महात्मा गांधी के सिद्धांतों और शिक्षाओं के बारे में बात करते हुए कई बॉलीवुड सितारों को दिखाया गया है।

लेकिन यह पहली बार नहीं है जब गांधी ने सिनेमा निर्माताओं का ध्यान खींचा है। वास्तव में, दुनिया भर के फिल्म निर्माताओं ने गांधी और उनके विचारों पर आधारित परियोजनाएं बनाई हैं। रिचर्ड एटनबरो के गाँधी से लेकर राजकुमार हिरानी के लागे राव मुन्ना भाई तक, गांधी वास्तव में सिनेमा की दुनिया में काफी लोकप्रिय रहे हैं। यहां, हम आपके सामने ऐसी फिल्में पेश करते हैं, जिन्होंने अहिंसा और सच्चाई के व्यक्ति को दुनिया भर में अलग–अलग तरीकों से प्रस्तुत किया है।

xkèkh ¼1982½ % गांधी, रिचर्ड एटनबरो द्वारा निर्देशित, 1982 में रिलीज हुई थी। प्रतिष्ठित फिल्म ने महात्मा गांधी और अहिंसा के माध्यम से भारत के लिए स्वतंत्रता जीतने के उनके संघर्ष की कहानी प्रस्तुत की। आठ अकादमी पुरस्कार जीतने वाली फिल्म, महात्मा के जीवन के कालानुक्रमिक खाते में वापस आती है, जिसकी शुरुआत 1890 में 23 वर्ष की आयु में दक्षिण अफ्रीका आने से हुई थी। यह फिल्म गांधी के संघर्ष और निष्क्रिय प्रतिरोध के उनके विचारों पर केंद्रित है और अहिंसा। 2010 में, स्वतंत्र फिल्म और टेलीविजन एलायंस ने पिछले 30 वर्षों के 30 सबसे महत्वपूर्ण स्वतंत्र फिल्मों में से एक के रूप में फिल्म का चयन किया।

n e¿dx v,Q n egkRek ¼1996½ % श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित फिल्म गांधी के प्रारंभिक जीवन के बारे में बात करती है– दक्षिण अफ्रीका में उनके शुरुआती साल, ब्रिटेन में ब्रिटिश और नस्लीय भेदभाव के साथ उनका पहला प्रदर्शन और देश में उनकी वापसी, भारत की स्वतंत्रता संघर्ष में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका को चिह्नित करते हुए।

yx jgk eUuk HkkÃ ¼2006½ % जहाँ महात्मा गांधी की शिक्षाओं को कई फिल्मों में एक विषय के रूप में इस्तेमाल किया गया है, वहीं राजकुमार हिरानी की लगे रहो मुन्ना भाई देश भर के लोगों में से एक है। फिल्म ने समकालीन दुनिया में गांधी के विचारों को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया। फिल्म में, संजय दत्त द्वारा निभाई गई मुन्ना भाई, महात्मा गांधी की भावना को देखना शुरू करता है। गांधी के साथ उनकी बातचीत से उन्हें 'गांधीगिरी' का अभ्यास करने में मदद मिलती है क्योंकि वे अहिंसा और सत्य के सिद्धांतों के माध्यम से आम लोगों की मदद करना शुरू करते हैं। फिल्म बनाने में हिरानी का एक लक्ष्य महात्मा गांधी में एक रुचि को पुनर्जीवित करना था, एक आंकड़ा जो उन्होंने महसूस किया था कि वह समकालीन भारत में भूल गए थे।

xkèkh] ekÃ Qknj ¼2007½ % फिरोज अब्बास खान द्वारा निर्देशित इस फिल्म में महात्मा गांधी के अपने बेटे हरिलाल गांधी के साथ एक तनावपूर्ण रिश्ते को दर्शाया गया है। यह दिखाता है कि गांधी के जेठा

ने अपने पिता की प्रतिभा को कैसे विरासत में पाया, लेकिन अपने पिता की तरह अलग होने का प्रयास किया। फिल्म हरिलाल गांधी की जीवनी पर आधारित है, जिसका शीर्षक हरिलाल गांधीः ए लाइफ, चंदूलाल भागुभाई गाला है।

ok;l jk; gkml ¼2017½ % गुरिंदर चड्ढा द्वारा निर्देशित वायसराय हाउस, भारत के इंग्लैंड के आखिरी वायसराय लॉर्ड लुईस माउंटबेटन की कहानी का अनुसरण करता है, क्योंकि वह भारत के युद्ध के बाद की स्वतंत्रता की शुरुआत के लिए भारत आता है। फिल्म में दिखाया गया है कि कैसे माउंटबेटन ने जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी और मुहम्मद अली जिन्ना जैसे नेताओं के साथ काम करते हुए विभाजन का पर्यवेक्षण किया। फिल्म माउंटबेटन की आंखों के माध्यम से विभाजन प्रस्तुत करती है।

egkRek ¼2019½ euku d: 150 lky % राजकुमार हिरानी द्वारा निर्देशित यह विशेष वीडियो शनिवार को पीएम नरेंद्र मोदी द्वारा जारी किया गया था। वीडियो में महात्मा गांधी की शिक्षाओं के बारे में अहिंसा, सत्य और शांति के बारे में बात करने वाले कलाकार हैं। चूँकि राजकुमार हिरानी ने अपनी फिल्म लगे रहो मुन्ना भाई के माध्यम से गांधीगिरी के विचार को लोकप्रिय बनाया, इसलिए शायद वह इस वीडियो को बनाने का सबसे अच्छा विकल्प था।

xkèkhfxjh&'kyh dk fojkèk % गांधी ने नमक सत्याग्रह का नेतृत्व किया, जो सत्याग्रह का एक उल्लेखनीय उदाहरण है।

फिल्म की रिलीज़ के बाद, भारत में गांधीगिरी–शैली का विरोध शुरू हुआ। 2006 में, किसानों ने विदर्भ क्षेत्र में फूलों के साथ एक विरोध प्रदर्शन किया, और लखनऊ में विरोध प्रदर्शन करने वाले लोगों ने अपने संदेश को व्यक्त करने के लिए गुलाब राहु मुन्ना भाई से गुलाब का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया। लखनऊ में, छात्रों ने लेजे राहो मुन्ना भाई द्वारा स्वेच्छा से कार्य करने, वृक्ष लगाने के लिए प्रेरित किया "प्रकृति का संरक्षण करने के लिए जो सार्वजनिक स्वास्थ्य को लाभ पहुंचाने के लिए बाध्य है।" माफिया डॉन बबलू श्रीवास्तव ने दावा किया है कि वे लागो राहो मुन्ना से प्रेरित हैं। भई गुलाब को "प्रेम और शांति का संदेश" के रूप में वितरित करते हैं। 2008 में, इंडियन ग्रीनपीस के कार्यकर्ताओं ने ऑलिव रिडले समुद्री कछुओं के घोंसले के मैदान में एक बंदरगाह बनाने की अपनी योजना पर पुनर्विचार करने के लिए, टाटा मोटर्स के चेयरमैन रतन टाटा को हजारों गुलाब दिए। 2009 में "प्रमोद मुथालिक एक वेलेंटाइन दिवस कार्ड भेजें" अभियान फिल्म से प्रेरित था।

जुलाई 2007 के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका में, आव्रजन आवाज़ मंच के संस्थापक, अमन कपूर, ने लगे रहो मुन्ना भाई से प्रेरित एक गांधीगीरी विरोध शुरू किया। तीन दिनों की अवधि में, सैकड़ों फूलों के गुलदस्ते संयुक्त राज्य अमेरिका के नागरिकता और आव्रजन सेवा (यूएससीआईएस) के कार्यालय में भारतीयों द्वारा भेजे गए जो अमेरिका में कानूनी तौर पर थे, लेकिन ग्रीन कार्ड बैकलॉग में पकड़े गए थे। 17 जुलाई को, USCIS ने उस फैसले को पलट दिया जिससे विरोध हुआ।

çHkko % लगे रहो मुन्ना भाई ने गांधी के बारे में पुस्तकों में रुचि को पुनर्जीवित किया। विशेष रूप से, गांधी की आत्मकथा "माई एक्सपेरिमेंट्स विथ ट्रुथ" की मांग फिल्म की शुरुआत के बाद बढ़ गई, जिसमें जेल के कैदियों के अनुरोध भी शामिल थे। इसके अलावा, इसके प्रभाव के कारण, फिल्म को मुंबई में कर–मुक्त बनाया गया।

संयुक्त राष्ट्र के सभागार में 10 नवंबर 2006 को प्रदर्शित, लगे रहो मुन्ना भाई संयुक्त राष्ट्र में प्रदर्शित होने वाली पहली हिंदी फिल्म थी। फिल्म को संचार और सार्वजनिक सूचना के लिए संयुक्त राष्ट्र के अंडर महासचिव शशि थरूर द्वारा पेश किया गया था। बॉलीवुड हंगामा के तरण आदर्श ने देखा कि, "फिल्म के उच्च बिंदुओं पर तालियों की गड़गड़ाहट थी, जैसे पेंशनर अपने कपड़े बहा रहा था। स्क्रीनिंग के अंत में तालियाँ बज रही थीं। निर्देशक राजकुमार हिरानी के साथ एक जीवंत सवाल और जवाब का पालन किया गया। लेखक अभिजात जोशी और अभिनेता बोमन ईरानी, जिन्होंने स्क्रीनिंग के लिए अमेरिका

के लिए उड़ान भरी थी। "इंडो–एशियन न्यूज सर्विस (आईएएनएस) ने उल्लेख किया है कि," एक शाम जो कि बड़े पैमाने पर सुरक्षा व्यवस्था के साथ शुरू हुई थी। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना, फिल्म के लिए एक टोस्ट जुटाने में शामिल होने वाली अन्य तालिकाओं के राजनयिकों के साथ संयुक्त राष्ट्र के लाउंज में उत्सव के माहौल में संपन्न हुई। "संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 15 जून 2007 को घोषणा की कि 2 अक्टूबर, गांधी का दिन। जन्म (गांधी जयंती), "अहिंसा का अंतर्राष्ट्रीय दिवस" होना था।"

भारत के प्रधान मंत्री, मनमोहन सिंह को लगे रहो मुन्ना भाई की निजी स्क्रीनिंग दी गई। फिल्म देखने के बाद, उन्होंने कहा कि यह "सत्य और मानवतावाद की शक्ति के बारे में बापू के संदेश को पकड़ता है।" दक्षिण अफ्रीका की अपनी यात्रा के दौरान एक भाषण में, सिंह ने कहा, "मुझे हाल ही में भारत में घर वापस देखने के लिए खुशी हुई। सबसे लोकप्रिय फिल्म इस त्यौहारी सीज़न में महात्मा के संदेश के सार्वभौमिक और कालातीत प्रासंगिकता की खोज करने वाले एक युवा व्यक्ति के बारे में एक फिल्म है। "सिंह ने 1 Services नवंबर को जारी एक प्रेस विज्ञप्ति में भ्रष्टाचार से निपटने के लिए एक नए लोक सेवा विधेयक के निर्माण की घोषणा की। 2006 और इसके प्रभावों के रूप में लगे रहो मुन्ना भाई का उल्लेख किया।

दिसंबर 2006 में लखनऊ में एक वैश्विक न्यायपालिका शिखर सम्मेलन में लगे रहो मुन्ना भाई को प्रदर्शित किया गया। फिल्म देखने के बाद, दक्षिण अफ्रीका के न्यायमूर्ति केनेथ मिथेन ने टिप्पणी की, "फिल्म ने महात्मा गांधी द्वारा प्रचलित अहिंसा दर्शन को फिर से जीवंत किया है जो अभी भी जारी है दक्षिण अफ्रीकी लोगों के दिलों के करीब रहें। "दक्षिण अफ्रीकी संसद की एक युवा सदस्य फातिमा चौहान ने कहा, "दक्षिण अफ्रीका में 'मुन्नाभाई' व्यापक रूप से होगी। मैं अपने परिवार और दोस्तों के लिए कुछ वीडियो डिस्क ले जा रही हूँ।"

यह 2007 के कान फिल्म समारोह के टूस लेस सिनेमा डु मोंडे खंड का हिस्सा था। तिलाजी रहो मुन्ना भाई को दर्शकों ने खूब सराहा था क्योंकि फिल्म को पकड़ने के लिए दर्शकों ने लंबी कतारों में लग गए थे, जिन्हें त्यौहार की समीक्षाओं में जोरदार तरीके से सिफारिश की गई थी ।दो घंटे के अंत से पहले छोड़ी गई स्क्रीनिंग में प्रवेश करने वाला एक व्यक्ति नहीं–थर्टी मिनट्स की फिल्म। "इसके अलावा," फेस्टिवल में फिल्म की स्क्रीनिंग पर लोगों ने देखा कि लोग गलियारों में बैठे हैं क्योंकि थिएटर पूरी तरह से पैक था वहां फ्रांसीसी छात्रों का एक बड़ा समूह भी था, जो ताली बजाता था जब तक क्रेडिट्स खत्म नहीं हो जाते।"

कई विश्वविद्यालयों में प्रदर्शन हुए। यह 27 अक्टूबर 2006 को दक्षिणी कैलिफोर्निया स्कूल ऑफ सिनेमैटिक आर्ट्स विश्वविद्यालय में दिखाया गया था। स्क्रीनिंग के बाद विधु विनोद चोपड़ा, राजकुमार हिरानी और अभिजीत जोशी के साथ एक प्रश्न और उत्तर सत्र आयोजित किया गया। फिल्म निर्माता गुरिंदर चड्ढा ने भाग लिया और समापन पर बात की। अतः गांधी सिनेमा पर छाये रहे है ।

lUnHkZ %

1. इंटरनेट गुगल
2. फिल्मे : "गांधी" (1982)
   "लगे रहो मुन्ना भाइ " (2006)
   "गांधी एवं हिटलर " (2011)
   "महात्मा–गांधी का जीवन" (1968)
   "सरदार " (1993)
   "गांधी माय फाधर" (2007)
   "ध मकिंग ओफ महात्मा" (1996)
   "हे राम।" (2000)
   "NINE HOURS TO RAMA" (1963)
   "मैने गांधी को नहि मरा " (2005)

◆◆◆

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 116-119

ck) /ke n'ku ,o ekuookn i ofYk

Mk0 jkt Un dekj oek* o fi;k efyd**

एक राष्ट्रवादी अवधारणा सम्पूर्ण विश्व में सिर उठा रही थी। उससे बहुत समय पूर्व ही भारत में महात्मा बुद्ध ने अपने वचनों के माध्यम से मानववाद को आधार बनाकर सर्वकल्याण हेतु ऐसे मार्ग का प्रतिपादन किया जिसमें स्वयमेव राष्ट्र कल्याण की भावना निहित थी। गौतम बुद्ध की महत्ता आज सम्पूर्ण विश्व में मात्र उनके करुणा, मानवता और समता सम्बन्धी विचारों के कारण है। बौद्ध धर्म कोई आकस्तिक घटित घटना नहीं अपितु इसके उद्भव की पृष्ठभूमि में वैदिक यज्ञवाद, कर्मकाण्ड और निरन्तर हो रहे नैतिक पतन के साथ–साथ जटिल होती जा रही सामाजिक व्यवस्था एक महत्वपूर्ण कारण थी और इन कारणों के आलोक में उदूभूत बौद्ध संस्कृति बुद्ध के संकल्पों, आशाओं और आकांक्षाओं के अनुरूप समस्त मानवता की शांति तथा आत्मोत्न्नति की स्थापना करने में सफल सिद्ध हुई। बौद्ध धर्म मानव–मानव के अर्न्तद्वन्द्वों, विरोधों एवं संघर्षों की खाई पाटने और उनमें समन्वय, सौहार्द्र तथा विश्वजनित भ्रातृत्व की स्थापना करने में सफल रही।

प्रसिद्ध जर्मन मनोविज्ञानी और दार्शनिक कार्ल जैस्पर्स ने अपने एक अध्ययन के अन्तर्गत यह प्रतिपादित किया कि दुनिया में ई0पू0 800 से 200 के मध्य जाने अनजाने में ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुई कि सम्पूर्ण जगत में इसी समय महान मानवता के रक्षकों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों यथा, चीन में लाओत्से और कन्यूशियस, यूनान में पेरेमेनाइडीस और इंपेडोक्लस, ईरान में जरथुस्त्र और भारत में महावीर और बुद्ध अवतरित हुए।[1] इस समय के परिवेश में हम पाते हैं कि इस समय तक एकात्मवादी मानवता अपना स्थान बनाने लगी, सामाजिकता, आत्मीयता, राष्ट्र, संस्कृति सभी को दांव पर लगाकर लोग स्वयं को आगे बढ़ाने की फिराक में लगे थे। अतः वह समय बहुत कुछ वैसे ही था जैसे वर्तमान विश्व या भारत में घटित हो रहा। इस परिप्रेक्ष्य में बौद्ध धर्म, दर्शन, कला हमारा मार्गदर्शन करती है कि हम कैसे अपने को बेहतर ढंग से संचालित कर राष्ट्र, समाज और संस्कृति को सुरक्षित कर सकते हैं।

महात्मा बुद्ध ने मध्यम मार्ग का उपदेश देते हुए कहा कि मनुष्य को सभी के आकर्षण और काया–क्लेश से बचना चाहिए अर्थात् दीनाअतियों के बीच से दुःख निरोध हेतु प्रयास करना चाहिए।[2] यदि हम तथागत के इस कथन को वर्तमान सन्दर्भ में देखें तो हम पायेंगे कि आज सांसारिक जितने भी दुराग्रह हैं वो सभी मात्र एक कारण से घट रहे हैं और वह है 'आकर्षण'। यदि हम अपनी भावनाओं और जरूरतों का प्रसार वहीं तक करें जहां कि हमारी पहुंच हो और यदि हम अपनी सीमाओं के बाहर किसी व्यक्ति या वस्तु से आकर्षित होकर उसका अनुगमन करते हैं तो यह निश्चित है कि हमें अब बुराई के मार्ग पर आगे बढ़ना पड़ेगा और यह मार्ग हमारी राष्ट्र की भावना और हमारे समाज को नुकसान पहुँचा कर ही व्यक्तिगत लाभ देगा। महात्मा ने सामान्य जनमानस के लिए जिस धर्म को अपनाने को प्रेरित किया तो उसे उपासक धर्म[3] कहा गया जो भिक्षु धर्म से सर्वथा भिन्न था। दीघनिकाय के सिंगालोवादसुत्त में हमें इस धर्म का विवरण प्राप्त होता है जिसे बुद्धघोष ने गहिविनय की संज्ञा दी है। इस उपासक धर्म के अन्तर्गत गृहस्थाओं को अहिंसा, प्राणियों पर दया, सत्यभाषण, माता–पिता की सेवा, गुरुजनों का सम्मान, ब्राह्मणों और श्रमों को दान तथा मित्रों, सम्बन्धियों व परिचितों के साथ अच्छा व्यवहार प्रमुख रूप से बताये गये हैं। यदि आप उपरोक्त बातों को देखें तो हमें यह सभी धर्मों में समान रूप से मिलती है लेकिन महात्मा बुद्ध ने तत्समय इसे सिद्धान्त रूप में प्रतिपादित किया तो यह स्पष्ट है कि इस समय तक मानवीय संस्कारों का क्षरण हो गया रहा होगा। अहिंसा, प्राणियों पर दया और सत्य भाषण के द्वारा मनुष्य राष्ट्र निर्माण में

*शोध निर्देशक एवं सहायक प्राचार्य, दर्शन शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
**शोध छात्रा, दर्शन शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

अत्यन्त ही महती भूमिका निभाता है जिससे प्रथमतः तो यह कि यदि किसी राष्ट्र से अहिंसा को समाप्त कर दिया जाय तो वह स्वयमेव एक शान्तिप्रयि राष्ट्र की कोटि में आ जायेगा और जो मनुष्य शान्ति प्रिय होगा और प्राणियों पर दया दृष्टि रखने वाला होगा और सदैव सत्य का साथ देने वाला हो तो एक राष्ट्र अपने नागरिकों से यह तीन अपेक्षायें आवश्यक रूप से कर अपने आपको सर्वशक्तिमान बना सकता है। माता–पिता की सेवा, गुरुजन का सम्मान, दान–दक्षिणा व सबसे अच्छे बरताव की उम्मीद सिर्फ इसलिए की जाती है कि राष्ट्र का नागरिक प्रथमतः अपने आने वाली पीढ़ी को मानवता का पाठ पढ़ा सके और बिना कुछ कहे वह एक आदर्शवादी समाज की ओर अपने राष्ट्र को आगे बढ़ा सके।

भारत वैदिक समय से ही एक जनतांत्रिक देश रहा है और महात्मा बुद्ध भी एक जनतांत्रिक भारतीय गणराज्य में जन्म लिए थे। अतः व सदैव गणराज्यों और वैयक्तिक स्वतंत्रताओं की वकालत करते रहे। बुद्ध के धर्म में समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व और न्याय का बोलबाला था। उसमें किसी भी प्रकार की असमानता, शोषण व अन्याय नहीं था; बौद्ध धर्म में दीक्षित स्त्री–पुरुष सभी समान हो जाते थे। इस प्रकार इससे यह भी स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म का सर्वोत्तम लक्ष्य जनतांत्रक मूल्यों की स्थापना करना था। बुद्ध ने अपने युग की राजनीति को काफी हद तक प्रभावित किया था। कई राजा उनके भक्त भी थे। राज्य के सात अवयवों यथा–स्वामी, अमात्य, पुर, राष्ट्र कोष, दण्ड और मित्र (सुहत्) का उल्लेख हमें संस्कृत बौद्ध साहित्यों में भी प्राप्त होता है।[4] महावस्तु में विवरण प्राप्त होता है कि एक समय जब लोग एक दूसरे की खेतों में अन्न की चोरी करने लगे तब आपस में सभी लोगों ने मिलकर यह निर्णय किया कि उसमें से एक प्रधान को सर्वसम्मति से चुना जायेगा, बदले में उसे अपने सभी क्षेत्र के उपज का कुछ भाग देना स्वीकार किया।[5]

गौतम बुद्ध के उपदेशों का उद्देश्य उन लोगों को उत्तम मार्ग दिखाना था जो मार्ग से भटक गये थे। बुद्ध ने चार आर्य सत्यों दुःख, दुःख–समुदय, दुःख–निरोध और दुखनिरोधगामिनी प्रतिपदा[6] के द्वारा मानव जाति को सत्मार्ग पर लाने की चेष्टा की है। मानव शरीर दुःख से विरत नहीं हो सकता। यह उसका अभिन्न अंग है। अप्रियजनों से संयोग तथा प्रियजनों से वियोग एवं अभिलाषित वस्तु की अप्राप्ति भी दुःख है। अतः सर्वप्रथम हमें इसे पहचानना होगा कि आखिर हमारे दुःख का कारण क्या है? इसका मूल कारण तृष्णा रूप में हमारे समक्ष आता है क्योंकि हम जो भी करते हैं उसका प्रतिफल ही दुःख का कारण बनता है और इसे नष्ट कैसे किया जाय तो साधारण शब्दों में कहें तो तृष्णा सदैव त्याज्य है, इससे हमें बचना चाहिए। तृष्णा से यदि स्वयं को बचाने में सफल हुए तो हमारे अन्दर धैर्य, सरलता, संतोष, क्षमा जैसे गुण आसानी से पुष्पित–पल्लवित होकर हमें मानववादी दृष्टिकोण से एक कुशल मानव आसानी से प्राप्त हो जायेगा।

एक राष्ट्र अपने नागरिकों से सदैव अपेक्षा करता है कि उसका प्रत्येक नागरिक अपने राष्ट्र और उसके नागरिकों के प्रति संवेदनशील रहे और यह गुण स्वयंमेव प्रत्येक नागरिक में विकसित हो जायेगा यदि वह अष्टांगिक मार्गों[7] का ईमानदारी से अनुपालन करे, जो अधोलिखित हैं–

1- राष्ट्रहित और मानवता के लिए क्या उचित–अनुचित है–यदि इस तथ्य को ध्यान में रखकर कोई कार्य किया जाय तो सदैव यह सम्भावना बनी रहेगी कि किसी कार्य से मानवता को हानि नहीं होगी और यदि मानवता को क्षति नहीं पहुंचेगी तो यह तथ्य है कि वह राष्ट्र अपने अन्दर समस्त मूल्यों के लिए द्रुत गति से विकास पथ पर अग्रसर रहेगा। (सम्यक् दृष्टि)

2- प्रत्येक व्यक्ति या नागरिक सुमार्ग पर चलने का दृढ़ संकल्प ले कि किसी भी परिस्थिति में वह गलत रास्ते पर चलकर गलत तरीके से किसी भी कार्य को नहीं करेगा ऐसा प्रत्येक नागरिक दृढ़संकल्प कर ले तो कोई भी राष्ट्र आदर्शवादी रूप को प्राप्त कर सकता है। (सम्यक् संकल्प)

3- व्यक्ति अपने सम्बन्धों को सर्वाधिक क्षति अपनी वाणी पर नियन्त्रण न होने के कारण स्वयं पहुंचाता है जिससे वह कभी–कभी न चाहते हुए भी इस वाक्जाल में फंस जाता और फिर मानवीय गुणों के नाते स्वयं कही हुई बातों की सत्यता को सही साबित करने के लिए आगे भी वाणी का नियन्त्र खो देता है और क्षति अंतिम रूप से स्वयं को पहुंचाता है। (सम्यक् वाक्)

4- व्यक्ति को ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे दूसरों को कष्ट न पहुंचे। (सम्यक् कर्मान्त)

5- यदि प्रत्येक नागरिक अपने राष्ट्र के प्रति ईमानदार रहे और बिना किसी को हानि पहुंचा और बिना अन्याय किये अपनी आजीविका कमाये तो यह तय है कि वह स्वयं के साथ–साथ सम्पूर्ण मानवता के कल्याण में योगदान दे रहा है। (सम्यक् आजीव)

6- यदि हमारे आस–पास कुछ अच्छे कार्य अथवा सद्धर्म हो रहे हैं तो हमारा यह नैतिक दायित्व है कि हम उसका प्रसार करें। (सम्यक् व्यायाम)

7- हम सदैव चित्त, शरीर, वेदना आदि की सुचित व चित्त–सन्ताप को दूर रखें, यही वो कारण है जिससे मनुष्य इस सांसारिक कुचक्रों की मृगतृष्णा में अपने आपको उलझाकर समाप्त कर लेता है। (सम्यक् स्मृति)

8- चित्त की एकाग्रता। (सम्यक् समाधि)

शाक्य मुनि गौतम बुद्ध का शान्ति स्थापना के लिए प्रमुख सिद्धान्त मानव को महत्व प्रदान करना और मानवीय समता स्थापित करना था। उनकी स्थापना थी कि सभी मनुष्य समान हैं, मानव जाति एक है, उसमें ऊंच–नीच, छूत–अछूत, जातियों का विभेद करना उचित हीं है। जातियां पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों और कीड़े–मकोड़ों में होती हैं जिन्हें दूर से देखकर उनकी जाति–गाय, भेड़, बकरी, ऊंट, हाथी, बरगद, नीम, सांप, बिच्छूत आदि पहचान ली जाती है लेकिन मनुष्य समाज में ऐसा कोई पार्थक्य भेद नहीं है। इस प्रकार विश्व का मानव समाज एक है और उसकी एक ही मनुष्य जाति है दूसरी नहीं (एकैव जातिर्लोके सामान्या न पृथक्विद्या)।[8]

बुद्ध की दूसरी स्थापना करुणा की भावना पैदा करना था। मानव मात्र में ही नहीं, जीव–जन्तुओं के प्रति भी मनुष्य के मन में करुणा रहे तभी वह उन्हें संरक्षण और सुरक्षा प्रदान कर सकता है। इस संसार में जंगम, स्थावर, थलचर, नभचर जीव, जो छोटे अथवा बड़े, बलशाली या निर्बल हैं या मध्यम आकार के हैं, दिखाई पड़ने वाले अथवा दिखाई न पड़ने वाले हैं, दूरस्थ अथवा समीपस्थ हैं, उत्पन्न हो चुके हैं अथवा उत्पन्न होने वाले हैं, सभी के प्रति सुख–शान्ति की भावना, करुणा, उसी प्रकार रखनी चाहिए जैसे एक माता अपने इकलौते पुत्र की रक्षा और सुख–शान्ति के लिए अपना सब कुछ त्याग कर भी प्रयत्नशील रहती है। करुणा, प्रज्ञा से नियंत्रित होनी चाहिए। प्रज्ञा के अभाव में करुणा पराभव की ओर ले जा सकती है। इसके लिए तथागत ने 'मध्यम मार्ग' अपनाने का संदेश दिया है। यही सोच–विचार कर चलने वाला मार्ग, सम्यक् मार्ग है।

मनुष्य और पशु में केवल अन्तर यही है कि मनुष्य के पास बुद्धि है। वह करणीय और अकरणीय में भेद कर सकता है लेकिन जब वह अज्ञान के अन्धकार में डूब जाता है, अन्धविश्वासों और पाखण्डों और पाखण्डों तथा आडम्बरों में जकड़ जाता है अथवा मादक पदार्थों के सेवन से उसकी बुद्धि भ्रष्ट और विनष्ट हो जाती है, तब वह करणीय और अकरणीय में, खाद्य और अखाद्य में, शील और दुस्शील में अन्तर नहीं कर पाता और वह अपनी मानवीय गरिमा को खो बैठता है। इस विषय में बुद्ध द्वारा दिये गये दो उपदेश 'पराभव सुत्त' और 'वषल सुत्त'[9] विशेष रूप से पठनीय, मननीय और करणीय हैं। अनेक लोग अपने तथा अपने परिवार के सुख–शान्ति और कल्याण के लिए वृक्षों, नदी, नालों, पर्वतों, तीर्थों, देवी–देवलयों की शरण में जाते हैं लेकिन उनसे उन्हें सुख–शान्ति नहीं मिलती, कल्याण भी नहीं होता, क्योंकि वे उत्तम शरण नहीं है। सुख–शान्ति और कल्याण के लिए स्वयं प्रयास करना होगा।

अन्धविश्वास और अज्ञान में डूबे हुए लोगों को सचेत करते हुए बुद्ध ने कहा था कि ''उठो, उद्यम करो, यदि तुम्हें, तुम्हारे विचारों का उद्यमी साथी न मिले तो शेर की भांति अकेले ही विचरण करो लेकिन आलसी, दुस्शील व्यक्ति को साथी न बनाना।'' अपना दुःख, तुम्हें स्वयं ही दूर करना होगा क्योंकि तुम्हीं अपने मालिक हो दूसरा कोई (परा–अपरा शक्ति) तुम्हारा मालिक नहीं हो सकता। 'अत्ताहि अत्तनोनाथो कोहिनाथोपरोसिया'।[10] इसलिए हे मानव अपनी सुख–शान्ति और कल्याण प्रगति के लिए तुझे ही अपना मार्ग तय करना होगा, तुझे ही अपना प्रकाश स्तम्भ बनाना होगा।

बुद्ध ने यह भी कहा था कि ''प्रमाद या आलस्य मनुष्य की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है वह मनुष्य का, उसी के अन्दर बैठा हुआ सबसे बड़ा शत्रु है।''[11] शरीरधारी शत्रु तो दिखाई पड़ता है, उसे देखकर कोई भी सचेत और सतर्क हो सकता है लेकिन प्रमाद, आलस्य तो दिखाई भी नहीं पड़ता और सदैव साथ ही रहता है। इस आलसरूपी महाशत्रु पर, उद्यम, प्रयास से ही विजय प्राप्त की जा सकती है। अस्तु, प्रगति–शान्ति चाहने वाले व्यक्ति, समाज और देश के लिए उत्साह एवं उद्यम अत्यावश्यक है। आलस्य या प्रमाद की भांति अज्ञान भी मनुष्य की शान्ति और प्रगति की हानि करता है। इस अविद्या, अज्ञान से,

ज्ञान–प्रदीप का प्रकाश क्षीण हो जाता है। विश्व के जो देश–चीन, जापान, कोरिया आदि ने बुद्ध के इन सिद्धातों को जीवन में उतारा है उनका आचरण किया है, वे सुखी और धन–जन से सम्पन्न हैं। वहीं भारत जैसे देश जो उन सिद्धान्तों की अवहेलना करते रहे हैं, यदि हम आज तथागत के बताये सिद्धान्तों को पुनर्जीवित कर उसका अनुगमन करने लगें तो हमारा देश भी एक विकसित और सुसम्पन्न देशों की श्रेणी में अतिशीघ्र अपना स्थान बना लेगा।

विश्व शान्ति अथवा मानव मात्र की सुख–शान्ति के लिए बुद्ध ने 'जियो और जीने दो' का सिद्धान्त दिया है। जहां कोई भी व्यक्ति अथवा समाज या राष्ट्र, यह चाहता है कि वह तो जीवित रहे और आरामपूर्वक रहे लेकिन उसका पड़ोसी सुख–शान्ति से न रहने पाये, वहीं अशान्ति की चिन्गारी फूटती है। यही विद्वेष भाव के अलावा तृष्णा भी मनुष्य को अमन–चैन से नहीं बैठने देती। शान्ति के लिए तृष्णा–लोभ, मोह, द्वेष, ईर्ष्या भाव को त्यागना होगा तभी वास्तविक शान्ति या परम शान्ति, बुद्ध के शब्दों में निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है (तण्हक्खयो विरागो निब्बानों)। शान्ति स्थापना के लिए बुद्ध की यह भी स्थापना थी कि बैर, बैर से दूर नहीं होता। बैर को अबैर भाव (मैत्री भावना) से ही जीता जा सकता है। यही प्राचीनकाल से चला आ रहा सिद्धान्त–

^^u fg ojsu ojkfu lEeUrh/k dnkpuA
vojsu p lefUr ,l /kEeks luUrukAA**[12]

बुद्ध ने स्वयं अंगुलिमान डाकू, नीलगिरि नामक भयंकर और हिंसक हाथी, काश्यप बन्धुओं के यहां विषधर नागों, आलवक जैसे यक्षों को मैत्री बल से ही जाता था और उन्हें विनीत कर शिष्य बनाया था। बुद्ध धर्म ही दुनिया का एक ऐसा अनोखा धर्म है जो संसार के विभिन्न भूभागों, देशों और प्रदेशों में सम्पूर्ण दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया, मध्य एशिया, यूरोप और अमेरिका के देशों में फैला और फैल रहा है लेकिन कहीं भी खून की एक बूंद भी नहीं गिरी। उनके उपदेश लोगों के दिलों में बसते रहे हैं। क्यों? क्योंकि उनमें कोई आडम्बर नहीं है। वे शत्रुता को मिटाकर, मित्रता स्थापित करते हैं।

सामाजिक भेद–भाव, विषमतावादी विचार–जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, छुआछूत, ऊंच–नीच, वर्ण–अवर्ण–आदि मानवीय शान्ति और समृद्धि के शत्रु हैं। बुद्ध ने स्वयं अपने हाथों इस सामाजिक विषमता के जाल को ध्वस्त कर दिया था। मानवीय समता की स्थापना के लिए बुद्ध ने सुणीत भंगी, उपाली नाई, चाण्डालिका चण्डाल कन्या, आम्रपाली गणिका, रानी प्रजापति गौतमी को दीक्षा देकर भिक्षु–भिक्षुणी बनाया, उन्हें समाज में आदर–सम्मान दिया। ज्ञात ही है कि बौद्ध शासन संघ का संविधान (विनय पिटक) उपाली द्वारा बनवाकर मानवीय समानता ही नहीं, मानवीय गरिमा की भी प्रतिष्ठापना की गई थी।

lUnHk %

1. वी0पी0 बापट : बौद्ध धर्म 2500 वर्ष, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2010, पृ0 i-iii
2. निदान कथा जातक, गोतमस्स उप्पादों (राम अवध पाण्डेय, रविनाथ मिश्र), पालि प्राकृत अपभ्रंश संग्रह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1993, पृ0 42–46.
3. आनन्द कौसल्यायन : अंगुत्तर निकाय, हिन्दी, महाबोधि सभा, कलकत्ता, 1958–59.
4. द्वारिकादास शास्त्री : महावग्ग, वाराणसी, 1996.
5. वही : धम्मपद, वाराणसी, 2000.
6. वी0पी0 बापट : बौद्ध धर्म 2500 वर्ष, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2010.
7. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय : बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2010.
8. टी0डब्ल्यू0 रीजडेविड्स : बुद्धिस्ट इंडिया, मुंशीराम मनोहरलाल पब्शिशर्स, 1999.
9. वाचस्पति गैरोला : भारतीय संस्कृति और कला, उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2006.
10. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारत की मौलिक एकता, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2017.
11. शिवाकांत वाजपेयी : प्रारम्भिक बौद्ध धर्म संघ एवं समाज, ज्ञान भारती पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2002.
12. वी0पी0 बापट : बौद्ध धर्म 2500 वर्ष, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1956.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 120-123

Ekkd.M; d miU;kl esa xk/khokn dk izHkko

lrk"k dqekj*

भारत व भारतीय जनता को राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने बहुत करीब से देखा व समझा था। सम्पूर्ण भारत का परिभ्रमण कर जनता के दुःख–दर्द को महसूस किया। गाँधी जी सत्य अहिंसा के पुजारी थे। उन्होंने अहिंसा को एक साधन के रूप में अख्तियार किया व सत्य का सदैव साथ दिया। अरूंधति राय लिखती हैं ''गाँधी ने देश की चारों दिशाओं में, कोने–कोने की यात्रा की, देश को गहराई से समझने के लिए। उनका पहला सत्याग्रह चम्पारण बिहार में हुआ। गाँधी के आगमन से तीन वर्ष पहले से वहाँभूख–अकाल के कगार पर जीने वाले किसान, जो ब्रिटिश–स्वामित्व वाले नील बागानों में मजदूरी करते थे, अंग्रेजों की नई कर–व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह कर रहे थे, गाँधी ने चम्पारण की यात्रा की और वहीं एक आश्रम स्थापित करके किसानों के संघर्ष को अपना समर्थन देना शुरू कर दिया।''[1] जनवादी कथाकार मार्कण्डेय ने पूरे व मजदूरों, किसानों व मजलूमों के दुःख–दर्द को महसूस किया और अपने उपन्यासों में उनकी पीड़ा को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया।

कथाकार मार्कण्डेय ने 'सेमल के फूल' (1956) व 'अग्निबीज' (1981) नामक दो उपन्यास लिखें। वे प्रेमचंद की परम्परा के उपन्यासकार माने जाते हैं। इनके उपन्यासों में ग्राम्य जीवन का यथार्थ परक चित्रण मिलता है। पहले उपन्यास 'सेमल के फूल' में रोमांटिक भाव बोध स्पष्ट देखा जा सकता है लेकिन उपन्यास का नायक सुमंगल अंत में सामाजिक सेवा भाव में जुड़ जाता है, जिसके ऊपर कहीं न कहीं गाँधी जी की विचार धारा स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सुमंगल एक बड़े जमींदार का बेटा है जो राष्ट्र हित में, राष्ट्रीय आंदोलन में अपना सब कुछ समर्पित कर देता है। डॉ अमरनाथ का मानना है कि ''गांधीवाद की सबसे बड़ी देन उसकी यह विचार धारा है कि हमको साध्य के साथ–साथ साधन की पवित्रता का भी ध्यान रखना चाहिए। .....गाँधी के जीवन दर्शन में त्याग और तप का प्राधान्य है तथा भोग व आनन्द का तिरस्कार। कला में भी उन्होंने शिव और सत्य पर ही बल दिया है, सुन्दर को उन्होंने इन दोनों से या तो अभिन्न माना या अस्वीकार किया।''[2]

सुमंगल एक उदात्त प्रेमी बनकर समाज सेवा में लग जाता है। सुमंगल प्रेम को वासना से परे मानता है। वह अपनी प्रेयसी नीलिमा (जो उपन्यास की नायिका है) से कहता है– ''प्यार कोई सौदा नहीं नीलम! जो बार–बार किया जाय। सिर्फ वासना तो पशु में ही होती है, मनुष्य तो उससे आगे कुछ और भी चाहता है, कुछ और है उसके पास–एक चेतन हृदय, एक भक्ति, एक सब कुछ अर्पित कर देने की क्षमता जो उसकी अपनी है।''[3] सुमंगल, नीलिमा से प्रेम तो दिलो जान से करता है पर उसमें इतना साहस नहीं कि सामाजिक या कहें कि रूढिगत सामाजिक ताने–बाने का सामना कर सके। सुमंगल की त्याग की प्रवृत्ति के फलस्वरूप नीलिमा का प्रेम उपेक्षित रह जाता है। नीलिमा सामाजिक मर्यादा का पालन करने वाली भारतीय नारी है। वह भी सुमंगल की तरह सामाजिक मान्यताओं को तोड़ नहीं पाती। वह भी मध्य वर्गीय संस्कारों में जकड़ी हुई है।

महात्मा गाँधी महिलाओं को पुरूष की अपेक्षा अधिक नैतिक बताया है। उन्होंने एक स्त्री को प्रेम व स्नेह की प्रतिमूर्ति माना है–''पुरूषों को भली–भाँति जान लेना चाहिए कि स्त्रियाँ वही काम कर सकती हैं जो वे कर सकते हैं। वे तो यहाँ तक कहते थे कि स्त्री मातृ–स्वरूपा होने की वजह से मानव मूल्यों को अधिक अच्छी तरह से सँजो कर रख सकती है। वह प्रेम और स्नेह की प्रतिमूर्ति हैं और इस क्षमता

*असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एस. आर. के. पी. जी. कालेज, फिरोजाबाद

के आधार पर वह नैतिकता की संदेश–वाहिनी है।''[4] इसी नैतिकता व मर्यादा की रक्षा में नीलिमा आत्मार्सग कर देती है। वह अपनी वेदना को, पीड़ा को किसी और से कह नहीं पाती। उसके टीस को, दर्द को महसूस किया जा सकता है जब वह कहती है– ''मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि जख्म की सच्चाई का अहसास उसी को हो सकता है, जिसने जख्म का दर्द भुगता हो।''[5] नीलिमा अपने प्रेम के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर देने वाली भारतीय नारी का प्रतीक है।

'सेमल के फूल' उपन्यास में सुमंगल गाँधीवाद का प्रतिनिधित्व तो नहीं करता मगर वह एक आदर्श जीवन जीता है। मार्कण्ड़ेय ने इस उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक सच्चाई को रेखांकित किया है। सुमंगल के द्वारा वे उस समय की स्वार्थपूर्ण राजनीति पर व्यंग्य करते हैं। सुमंगल गाँधी जी को जाना है, समझा है और उनके सिद्धांतों का अध्ययन किया है। और अंत तक वह महसूस करता है कि गाँधीवाद हार रहा है। वह इन स्वार्थों के आगे लगातार कमजोर होता जा रहा है। एक दिन ऐसा आयेगा जब गाँधीवाद सिर्फ पन्नों में सिमट कर रह जायेगा। ताज्जुब होता है जिनको आधार बनाकर स्वतन्त्रता का संघर्ष किया गया वही लोग स्वतंत्रता मिलने के बाद, उसके कारण या कहें कि आधार को ही मार देते हैं। उनके सिद्धांतों, उनके विचारों को भूला देते हैं, अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए। गाँधी जी का सबसे महत्वपूर्ण बात कि जीवों पर दया करो, सभी लोग एक समान हैं, कोई ना हिन्दू है और ना मुसलमान, सभी मनुष्य हैं। इसे ही भुला दिया गया। उन्हें मारकर अपनी स्वार्थी इच्छाओं की पूर्ति की गयी। इसी स्वार्थ पूर्ण राजनीति को मार्कण्डेय स्पष्ट शब्दों में रेखांकित करते हैं–''क्रियात्मक राजनीति से भाग सड़ाँध को और भी सड़ने के लिए छोड़कर, अपने लिए एक पवित्र स्थान खोजने की बात नहीं थी?''[6]

देश को आजाद होने के बाद लोग तुरन्त इतने स्वार्थी हो जायेंगें किसी ने सोचा भी नहीं था। पर लोग तो धन एकत्रित करने में इतने मशगुल हो गये कि हन्दू, मुसलमान को मारकर और मुसलमान हिन्दू को मारकर उनकी जर जमीन पर आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। चारों ओर तवाही का मंजर था। ऐसे में गोड़से ने गाँधी जी की हत्या कर दी। अब भीड़ को सभांलने वाला कोई रह नहीं गया था। दंगाइयों ने खुलकर, बिना किसी रोक–टोक व डर के बेखौफ होकर खून–खराबा, बलात्कार किया। स्वतंत्र भारत ने यही देखा। पूँजीवादी सभ्यता में निम्न एवं मध्यम वर्ग निरन्तर गरीब व कमजोर होता जा रहा है। राजनीति के नाम पर उसे झूठे वादों व आश्वासनों द्वारा निरंतर छला गया और वही आज भी जारी है– ''लोग भूखों मर रहे हैं। बड़ी तकलीफ है चाची, लोगों को और हम स्थितियों को ठीक से देख भी नहीं पाते ... जो जितना झूठ बोल लेता है, जितनी बेईमानी कर लेता है, वही इस समय अच्छा बना हुआ है। ...दंग मैं इस बात से रह जाता हूँ कि वे लोग, जो संयम और तपस्या के साथ देश सेवा के लिए महात्मा जी के साथ आए थे वही आज नन्हे–नन्हे स्वार्थों के लिए इस तरह से मुँह काढे रहते हैं कि मैं उन्हें ठीक से पहचान भी नहीं पाता।''[7]

'अग्निबीज' भारतीय स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण संदर्भों को लेकर लिखा गया सामाजिक व राजनीतिक उपन्यास है, जो गाँधीवाद से प्रेरित है। इस उपन्यास में गाँधीवाद की सभी रस्मी–नैतिकता का पालन किया गया है। जैसे कि चरखा यज्ञ से लेकर हरिजन सुधार तक का विमर्श शामिल है। यही गाँधीवाद का मूल उत्स भी है। उपन्यास की शुरूवात तो गाँधी जी के कताई यज्ञ से ही होती है। भाई जी और भागो बहिन इस आश्रम से पूरी तन्मयता व ईमानदारी से जुड़े हैं और कुशलता पूर्वक संचालित भी करते हैं। स्वतंत्रता सेनानी गाँधीवादी साधो काका ने तो इस आश्रम में अपना सब कुछ त्यागकर पूरी श्रद्धा से जुड़कर सहयोग करते रहते हैं। इनका तो सम्पूर्ण जीवन ही गाँधीवाद के आदर्शों से सम्बद्ध है। गाँधीवाद ने हरिजन उद्धार का प्रश्न उठाया; किसानों, मजदूरों के अधिकारों के लिए आन्दोलन किया। आजादी के बाद गाँधीवादी विचारों की समाज में क्या भूमिका रहेगी! मार्कण्ड़ेय इसी प्रश्न को 'अग्निबीज' उपन्यास में मुख्य प्रश्न के रूप में उठाते हैं। जिसमें सबसे प्रमुख पात्र साधो काका हैं। साधो काका राष्ट्रीय आंदोलन में बहुत मनोभाव से जुड़े थे। ये गाँधी जी के विचारों से पूर्ण रूप से सहमत थे । कई बार इन्हें जेल की यातना भी सहनी पड़ी। साधो काका नई पीढ़ी के प्रेरणा स्रोत भी हैं –''आपका ही आशीर्वाद मुझे चाहिए। और तो आप जानते हैं कि हम राजनीतिक नहीं हैं। महात्मा की सुझाई राह पर सत्य और

अहिंसा के सहारे खादी का प्रचार करना और लोगों को आत्मनिर्भरता और स्वदेशी के लिए प्रेरित करना हमारा काम है। आप ही से मुझे प्रेरणा मिली है। वरना इस जवार में तो ऐसा अंधेरा था कि लोग गुलामी–आजादी का अर्थ ही नहीं जानते थे।''[8]

साधो काका आजादी के आंदोलन में जब जेल से छूटे तो असहनीय यातना के कारण उनकी आवाज ही चली गयी। उनके जीवन की एक मात्र प्रेरणा उनकी बेटी श्यामा है। श्यामा के सहारे ही वे लोगों से बातचीत करते क्योकि श्यामा ही उनके मनोभाव को समझती थी। मार्कण्डेय जी यहाँ साधो काका को गाँधी जी का प्रतीक मानते हुए यह समझाने की कोशिश कर रहे हैं कि गाँधीवाद जो लगातार कमजोर पड़ता जा रहा है उनकी कीमत को युवा वर्ग समझें और उनके महत्व को सजोंकर रखें।

भारतीय राजनीति में गाँधी जी के नाम पर राजनेता अपनी स्वार्थ की रोटियाँ सेंक रहे हैं। साधो काका का इस्तेमाल भी उनके छोटे भाई ज्वाला बाबू करते हैं। ज्वाला बाबू कभी गाँधीवाद को समझा ही नहीं, हाँ उनका इस्तेमाल करना बखूबी समझता था। भाई जी जब गाँव में पहला गाँधीवादी आश्रम खोलने का प्रस्ताव लाते हैं और उस आश्रम का उद्घाटन साधो काका के माध्यम से करवाना चाहते हैं तो स्वार्थ पूर्ण राजनीति में संलिप्त उनके छोटे भाई ने चालाकी से साधो काका को दूर भेज देता है और स्वयं ही उस गाँधी आश्रम का उद्घाटन कर श्रेय प्राप्त कर लेता है। साथ ही साथ एक पत्र कांग्रेस मुख्यालय भेजवाकर साधो काका को पागल करार कर दिया जाता है। बड़ी धूर्तता से साधो काका को पागल घोषित कराकर चुनाव में साधो काका के स्थान पर ज्वाला सिंह को चुनाव के लिए टिकट मिल जाता है। ज्वाला बाबू कांग्रेस के नये प्रतिनिधि के रूप में सामने आ जाते हैं।

गाँधी जी के विचारों के वाहक के रूप में भागो बहन व भाई जी प्रमुख हैं। ये दोनों गाँधीवादी पात्र गाँधी आश्रम में रहते हैं। डॉ0 एम0 सी0 जोशी ग्रामीण संस्कृति में चरखे व खादी के महत्व को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि ''हमारी मौलिक संस्कषति ग्रामीण–संस्कृति है इसलिए हमारे लिए चरखे का जो महत्व है वह बड़ी मशीनों का नहीं हो सकता, अगर भारत का हर व्यक्ति कुछ समय निकालकर सूत कातने का काम करे तो गाँव की बहुत अधिक समस्यायें अपने आप ही हल हो जायेंगी। चरखा गीता के कर्मयोग का एक प्रतीक है। दूसरी ओर गाँधी जानते थे कि भारत में बहुत लोग हैं जो भूखे–नंगे रहते हैं, उनके पास अपना तन ढकने को साधारण वस्त्र भी नहीं है इसलिए उन्होंने खादी के महत्व को स्वीकार किया।''[9] 'अग्निबीज' उपन्यास में भी मार्कण्डेय ने खादी व चरखे के महत्व को स्थापित करते हुए भागो बहिन के माध्यम से उपन्यास के शुरूआत में ही कहलवाते हैं–'' यही तो बात है, मुराद। बापू ने स्वदेशी को इसी कारण आदमी की पूरी चेतना से जोड़ा है। यह सिर्फ आर्थिक जीवन का आधार नहीं, बल्कि सत्य और अहिंसा का पूरा विचार ही इस पर टिका हुआ है। आधे मन से चरखा–करघा का काम नहीं हो सकता।''[10]

भाईजी व भागो बहिन एक स्कूल में बच्चों को पढाते हैं, जिसमें सभी जातियों को समान रूप से शिक्षित करने की वकालत करते हैं। मार्कण्डेय ने इन पात्रों को गाँधीवादी विचार धारा के विकास के रूप में रचा है। ये सब आपस में प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हैं। आर्थिक रूप से कमजोर दलित वर्ग के लोगों के सामने एक विकट समस्या यह है कि न तो उनके पास पेट भरने के लिए रोटी है और न ही चरखा चलाने के लिए समय। सारा श्रम व समय तो दो जून की रोटी कमाने में निकल जाता है तो उन्हें सूत कहाँ से मिलेगा जो चरखा चलाए। इसी संदर्भ में भागो बहिन द्वारा कही गई बात बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है–'' सच्चाई यह है कि किसी दूसरे काम का अवसर नहीं है, साधन ही नहीं है, उनके पास। रोटी और नमक जुटाने में ही जिसे सारा श्रम लगाना पड़ रहा हो, वह चरखा कब चलायेगा– उसे चरखा और रूई कहाँ मिलेगी! उसका सूत कौन लेगा और सबसे ऊपर उसके पास समय कहाँ है! उसका समय और श्रम इस समाज–व्यवस्था में शोषकों के यहाँ गिरवी है।''[11]

इस यक्ष प्रश्न का एक सकारात्मक पहल गाँधी जी के विचारों से प्रेरित भाई जी देते हुए लोगों को जागरूक करते हुए कहते हैं – ''सरकार ने हमें कुछ अधिकार दिये हैं, जिसे कोई भी हमसे नहीं छीन सकता। बोलने का अधिकार, बिना हथियार के एक जगह जमा होने का अधिकार, संघ बनाने का

अधिकार, देश में कहीं भी आने–जाने का अधिकार, देश में कहीं भी बसने का अधिकार, संपत्ति अर्जित करने तथा पेशा या व्यवसाय करने का अधिकार। लेकिन हम जहाँ के तहाँ हैं। अगर आप कुछ कहेंगे नहीं, जानेंगे नहीं, लड़ेंगे नहीं, तो इतने अधिकार पाकर भी इस तरह गुलाम बने रहेंगे।''[12]

इस प्रकार मार्कण्डेय के उपन्यास गाँधीवादी विचारधारा से पूर्णतः परिचालित तो नहीं वरन् उनकी प्रेरणा का प्रतिफल है। 'अग्निबीज' उपन्यास तो उस समय लिखा गया जब गाँधीवाद आजादी की लड़ाई में अपनी चुनौतीपूर्ण भूमिका निभाकर कमजोर पड़ गया था। गाँधीवादी दर्शन और उनके अनुशासन से संचालित भारतीय समाजिक, राजनीतिक गतिविधियाँ अंग्रेजों के लिए बड़ा खतरा बन गयी थी। गाँधीवाद ने देश को जाति, धर्म व क्षेत्र आदि के विभाजन से ऊपर उठकर बहुजन सुखाय की बात को तवज्जो दिया। गाँधीवाद की कितनी भी आलोचना कर ली जाय पर आजादी के आंदोलन में उसकी भूमिका अक्षुण्ण रहेगी। आजादी के बाद गाँधी जी के सिद्धान्तो की हमारे समाज में क्या भूमिका रहेगी! इसी मूल प्रश्न को मार्कण्डेय जी अपने उपन्यासों में उठाते हैं।

I UnHk

1. अरूंधति राय, एक था डॉक्टर एक था संत, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण– अप्रैल 2019, पृ0 87
2. डॉ0 अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण– दूसरा, 2015, पृ0 143
3. मार्कण्डेय, सेमल के फूल, नया साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण–1997, पृ0 39
4. डॉ0 एम0 सी0 जोशी, गाँधी, नेहरू, टैगोर तथा आम्बेडकर, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण– 2006, पृ0 40
5. मार्कण्डेय, सेमल के फूल, नया साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण– 1998, पृ0 54
6. मार्कण्डेय, सेमल के फूल, नया साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण–1997, पृ0 अ71
7. मार्कण्डेय, सेमल के फूल, नया साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण– 1997, पृ0 44
8. मार्कण्डेय, अग्निबीज, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण– 2010, पृ0 13
9. डॉ0 एम0 सी0 जोशी, गाँधी, नेहरू, टैगोर तथा आम्बेडकर, संस्करण– 2006, पृ0 35
10. मार्कण्डेय, अग्निबीज, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण – 2010, पृ0 09
11. मार्कण्डेय, अग्निबीज, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण – 2010, पृ0 78
12. मार्कण्डेय, अग्निबीज, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण – 2010, पृ0 49

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 124-127

dkxzl vkj jk"Vokn

Mk0 vjfoUn dekj*

हजारों वर्षों से विभिन्न जातियों के लोग भारत में आते रहे हैं। विभिन्न जातियों और विश्वासों के लोग कुछ समय बाद देश की विविध संस्कृति में खप गए। कांग्रेस प्रारंभ से ही मिश्रित भारतीय राष्ट्रीयता और धर्मनिरपेक्षता के विचारों की समर्थक थी। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई और पारसी इस संगठन के सदस्य हो सकते थे। कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन (1886 ई0) की रिपोर्ट में ही यह स्पष्ट कर दिया गया कि ''जहाँ तक कांग्रेस का सम्बन्ध है किसी भी धर्म को मानने वाला उसका सदस्य बन सकता है। कांग्रेस भौतिक हितों की रक्षा करने के लिए बनाई गई संस्था है। उसका उद्देश्य अध्यात्मिक नहीं है।'' रिपोर्ट में कहा गया कि सदस्यों के बीच मतभेद हो सकते हैं लेकिन वे धर्म के कारण नहीं बल्कि और कारणों से होंगे।

नरमदली, जो कांग्रेस के प्रारंभिक वर्षों में संगठन में प्रमुख स्थानों पर थे, राजनीति में धर्मनिरपेक्षता पर विश्वास करते थे। उनमें से कुछ धर्म–परायण थे और दूसरे अज्ञेयवादी थे। लेकिन जहॉ तक राजनीति का सम्बन्ध है वे धर्म को राजनीति से पृथक् रखना चाहते थे, जबकि कुछ उग्रपंथी राजनीति एवं धर्म को मिला देते थे। गाँधी ने, जो 1920 के बाद कांग्रेस के प्रमुख नेता हो गए, जीवन भर हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए प्रयास किया। कांग्रेस के अनेक नेता धर्म को राजनीति से एकदम पृथक् रखना चाहते थे। मोतीलाल नेहरू ने अपने कलकत्ता कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण में कहा ''धर्म मनुष्य–मनुष्य के बीच में कृत्रिम खाई पैदा करता है, राजनीति के साथ धर्म का मिलन इनमें से किसी के हित में भी नहीं है।''

पं0 नेहरू के भाषणों और लेखों में धर्म का कोई उल्लेख नहीं है ''मैं एक धार्मिक आदमी नहीं हूँ और रूढ़िवादी सिद्धांत मुझे अच्छे नहीं लगते हैं।''[1] नेहरू के लिए धर्म, जैसे वह आम तौर पर व्यवहार में था, घनिष्ठ रूप से रूढ़िवादी प्रथाओं और अंधविश्वास से जुड़ा हुआ था। उन्होंने शिकायत की कि धार्मिक विचारों के पीछे ''जीवन की समस्याओं के प्रति ऐसा दृष्टिकोण है जो निश्चय ही विज्ञान का नहीं है। इसमें एक तत्त्व जादू का है, एक अविवेकी भोलेपन का है और अलौकिक पर विश्वास का है।''[2] नेहरू मानते थे कि धर्म ने मानवता की गहरी आंतरिक अनुभूति की आवश्यकता को पूरा किया है, विश्वभर के अधिकांश लोग बिना किसी धार्मिक विश्वास के नहीं रह सकते है और नैतिकता एवं नीति शास्त्र धर्म से ही निकले हैं।[3] उन्होंने यह भी माना कि जीवन की मात्र धर्मनिरपेक्ष विचारधारा अपर्याप्त है और मनुष्य की जड़े किसी आध्यत्मिक आधार में होनी चाहिए। लेकिन वह किसी परंपरागत धर्म अथवा निजी ईश्वर में विश्वास करने को तैयार नहीं थे। नेहरू ने लिखा, ''मैं नहीं जानता रहस्यपूर्ण क्या है। मैं उसे ईश्वर नहीं कहता, क्योंकि ईश्वर का अर्थ कुछ ऐसी चीजों से लिया जाता है जिन पर मेरा विश्वास नहीं है। मैं किसी देवता अथवा सर्वशक्तिशाली सर्वोच्चशक्ति में विश्वास नहीं कर सकता।[4]

पराधीन भारत में धर्म के आधार पर से प्रमुख दल बनाए गऐ थे : मुसलमानों के लिए मुस्लिम लीग और हिन्दुओं के लिए हिन्दू महासभा। लेकिन भारतीय राष्ट्रवाद की प्रमुख धारा राजनीति में साम्प्रदायिक विचारों को लाने की विरोधी थी, और वास्तव में अनेक राष्ट्रवादी नेताओं ने आरोप लगाया कि ब्रिटिश शासक साम्प्रदायिकता की नीति को बढ़ावा दे रहे हैं। 1938 में सुभाष चन्द्र बोस ने कहाथा कि यद्यपि प्रत्येक साम्राज्य फूट डालो और राज करो की नीति पर आधारित होता है, ब्रिटिश साम्राज्य में इस नीति पर किसी भी अन्य साम्राज्य की अपेक्षा बहुत अधिक चतुराई और तरीके से चला जाता हे।

*सहायक प्राध्यापक (अतिथि), इतिहास विभाग, रामकृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी

सत्ता के हस्तांतरण को निष्प्रभाव करने के लिए एक आंतरिक विभाजन आवश्यक है। नये भारतीय संवधिान में भी विभाजन का यही सिद्धांन्त एक दूसरे रूप में मौजूद है। यहीं हम पाते हैं कि विभिन्न सम्प्रदायों को अलग करने और पृथक् कोष्ठों में विभक्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है।[5] इसी प्रकार नेहरू ने कहा कि साम्प्रदायिकता मुख्य रूप से सत्तारूढ़ विदेशी शक्ति की कृपा पाने का प्रयत्न है और इसीलिए साम्प्रदायवादी विदेशी प्रभुत्व बने रहने की बात करते हैं। नेहरू ने कहा, ''इस प्रकार साम्प्रदायिकता राजनीतिक और सामाजिक प्रतिक्रयावाद का दूसरा नाम है।''[6]

नेहरू के लिए मुस्लिम लीग की धर्म पर आधारित मांग एवं लोकतंत्र धर्मनिरपेक्षता से दूर थी और फासिस्टवाद के समीप थी। 1918 ई0 में यूरोप से लौटने के बाद नेहरू ने पाया कि फासिस्टों की तरह मुस्लिम लीग ने लोकतंत्रीय सरकार के विचार के विरूद्ध धुंआधार प्रचार करना शुरू किया है और एक नकारात्मक रवैये का अनुसरण कर रही है। मुस्लिम लीग भारत में बहुधर्मीय बहुजातीय राष्ट्रवाद के विरूद्ध थी। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में देश के मुस्लिम बुद्धिजीवियों की विचारधारा में दो प्रवृतियाँ प्रमुख थी। पहली प्रवृति का प्रतिनिधि था अलीगढ़ स्कूल, जो जहाँ तक पश्चिमी शिक्षा का सम्बन्ध था आधुनिक था, लेकिन अन्यथा संकीर्णपंथी और कुछ सीमा तक सामन्तवादी था। मुस्लिम बुद्धिजीवियों में दूसरी प्रवृति से पान–इस्लामी भावना का विकास हुआ, और संवैधानिक एवं समाज–सुधारों के उन आदर्शों को संजोया गया जो तुर्की राष्ट्रवादियों को प्रेरणा दे रहे थे। अलीगढ़ स्कूल के प्रमुख वक्ता सैयद अहमद ने भारत के मुसलमानों से कहा कि वे तुर्की की ओर न देखें। लेकिन फिर भी भारतीय मुसलमान बुद्धिजीवियों का एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा था जो प्रेरणा के लिए तुर्की की ओर देखता था और संवैधानिक एवं सामाजिक सुधारों के लिए उत्सुक था। इस नये आन्दोलन के नेताओं में से एक थे मौलाना अब्दुल कलाम आजाद। आजाद अरबी–फारसी के विद्वान थे। वह इस्लामी परंपरा से पूरी तौर पर प्रभावित थे लेकिन फिर भी वह इस्लामी धर्म–ग्रंथों की युक्तिसंगत दृष्टिकोण से व्याख्या करना चाहते थे और राष्ट्रवाद एवं प्रगति के आधुनिक विचारों का प्रचार करना चाहते थे।

आजाद ने तुर्की और अन्य इस्लामी देशों में राष्ट्रवाद को उदित होते देखा। उन्होंने अनुभव किया कि एक ओर इस्लाम और इस्लामी देशों के साथ सहानुभूति और दूसरी ओर भारतीय राष्ट्रवाद के बीच कोई संघर्ष नहीं है। 1905 ई0 में आजाद बंगाल के क्रांतिकारी आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुए। वह अरविन्द घोष से मिले और एक क्रांतिकारी दल में शामिल हो गए।[7] उस समय इतने कम मुसलमान राष्ट्रवादी आन्दोलन में शामिल हुए थे कि प्रारंभ में क्रांतिकारी आन्दोलन में आजाद की उपस्थिति को संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा। आजाद ने लिखा है, ''उन दिनों क्रांतिकारी दलों के सदस्य केवल मध्यवर्गी हिन्दू परिवारों से आते थे..... पूर्वी बंगाल को पृथक प्रान्त बनाया जा चुका था और बैमफाइल्ड फुलर, जो लेटिनेंट गवर्नर था, खुले आम कहता था कि सरकार मुसलमान सम्प्रदाय को अपनी चहेती पत्नी समझती है।''[8]

1908 ई0 में आजाद ने ईरान और मिस्र की यात्रा की। वहाँ अरब और तुर्की राष्ट्रवादियों ने इस बात पर अपना आश्चर्य प्रकट किया कि भारतीय मुसलमान राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल नहीं हो रहे हैं। आजाद ने लिखा, ''इससे मेरा यह विश्वास पक्का हो गया कि भारतीय मुसलमानों को देश के स्वाधीनता संघर्ष में अवश्य भाग लेना चाहिए।''[9] आजाद ने 1912 ई0 में भारत लौटने के बादअपने क्रांतिकारी विचारों का प्रचार करने के लिए अल–हिलाल समाचर–पत्र का प्रकाशन शुरू किया और उनके लेखन से युवा मुसलमानों में बड़ी हलचल पैदा हुई। लेकिन अलीगढ़ स्कूल के संकीर्ण पंथी मुसलमान नेताओं की इनकी ये बातें अच्छी नहीं लगी। आजाद ने भारत के स्वाधीनता संघर्ष में सक्रिय भाग लिया और अनेक बार जेल गए। वह अनेक वर्षो तक कांग्रेस अध्यक्ष भी रहे। वह मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग के कट्टर विरोधी थे। जिस समय क्रिब्स मिशन और बाद में कैबिनेट मिशन भारत आया उस समय वह कांग्रेस के अध्यक्ष थे। कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों के कारण ही अंततः भारत की स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त हुआ।

कांग्रेस हमेशा से ही मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग की विरोधी रही। लेकिन 1947 में अंतरिम सरकार के अनुभव से, जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों शामिल थे, सरदार पटेल को यह विश्वास हो गया कि मुस्लिम लीग के साथ काम करना असंभव है। नेहरू और दूसरे लोगों ने इस आशा के साथ पाकिस्तान को स्वीकार किया कि उससे साम्प्रदायिक दंगे समाप्त हो जाऐगें। लेकिन विभाजन

के बाद होने वाले दंगों के कारण उनकी यह आशा झूठी सिद्ध हुई। सीमा के दोनों ओर के लाखों लोग, विशेष रूप से अविभाजित पंजाब में, मारे गए फरवरी'1965 में नेहरू ने एक संवाददाता सम्मेलन में कहा, ''जब हम लोगों ने देश का विभाजन स्वीकार किया तो उस समय हम में से किसी ने यह नहीं सोचा कि विभाजन के बाद इतने भयानक साम्प्रदायिक दंगे होंगे। एक तरह से इसी को रोकने के लिए हमने विभाजन को स्वीकार किया था, इसलिए हमने एक दोहरी कीमत दी है।''[10] यद्यपि मुस्लिम लीग ने धर्म के आधार पर देश के विभाजन की मांग स्वीकार की, देश में मुसलमानों का एक शक्तिशाली वर्ग हमेशा से ऐसा रहा जिसने विभाजन की मांग का समर्थन नहीं किया।

अनेक मुसलमानों ने कांग्रेस में महत्वपूर्ण पद धारण किए। ये लोग बहुधर्मी राष्ट्रीय राज्य के आदर्श का समर्थन करते थे। अनेक मुसलमान कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इनमें प्रमुख थे : बदरूद्दीन तैयबाजी (1887), हकीम अजमल खॉ (1921), मौलाना अबुल कलाम आजाद (1923 व 1940) और एम0ए0 अंसारी (1927)। स्वतंत्र भारत में अनेक मुसलमानों ने देश के सर्वोच्च पदों को सुशोभित किया है। 1967 में जाकिर हुसैन भारत के राष्ट्रपति बनाए गए और 1968 में जी0एच0 हिदायतुल्ला भारत के मुख्य न्यायाधीश बने। बाद में 1947 में फखरूद्दीन अली अहमद, जो कांग्रेस के एक पुराने और सम्मानित नेता रहे हैं, भारत के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

भारत एक विशाल देश है और यहाँ अनेक धर्मों को मानने वाले विभिन्न जातियों के लोग रहते हैं। लेकिन भारतीय राष्ट्रवादियों का यह विश्वास था कि जिस प्रकार राष्ट्रवाद ने फ्रांस, जर्मनी अथवा इटली को एक किया है राष्ट्रवाद भारत को भी एकता के सूत्र में बाँधेगा। यह सच है कि भारत में अनेक भाषायें बोलने और धर्मों को मानने वाले रहते हैं। भारतीय राष्टवादी राजनीति के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप के पक्ष में थे। भारतीय संविधान में, जो 26 जनवरी'1950 को लागू हुआ, विभिन्न धर्मो के मतावलंबियों को धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी दी गई है। इसके अलावा संविधान द्वारा पृथक् मताधिकार की व्यवस्था भी, जो बहुधर्मी भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में बाधक थी, समाप्त कर दी गई।

1951 ई0 में डॉ0 श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने, जो हिन्दू महासभा छोड़ चुके थे, भारतीय जनसंघ की स्थापना की। प्रारंभ में जनसंघ के सदस्य केवल उत्तर भारत में फैले। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के रूढ़िवादी सदस्य थे। जनसंघ में डॉ0 मुखर्जी के कुछ व्यक्तिगत अनुयायी भी शामिल हुए। जवाहर लाल नेहरू ने, जो एक आधुनिक प्रगतिशील भारत का निर्माण करना चाहते थे, लगातार साम्प्रदायिकता का विरोध किया और वह जनसंघ के कट्टर आलोचक थे। उन्होंने इसकी नीतियों में धर्मनिरपेक्ष सिद्धान्तों के लिए एक वास्तविक खतरा अनुभव किया। इंदिरा गाँधी भी जनसंघ की साम्प्रदायिक नीतियों की उतनी ही कठोर आलोचक थी। उन्होंने अक्सर कहा कि धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के सिद्धान्त एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं और साम्प्रदायिकता का विष हमारे धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक आदर्शो को नष्ट कर देगा।''[11] इंदिरा गांधी ने बहुत साफ–साफ कहा है कि ''लोगों को जो बात एक रखती है वह धर्म, जाति, भाषा अथवा एक ही आर्थिक व्यवस्था के प्रति निष्ठा नहीं है। एक प्रकार से 'भारतीयता' की भावना है जो जाति भाषा और धर्म के अन्तर के बावजूद हमारी जनता को एकता के सूत्र में बाँधे हुए हैं।''[12]

कांग्रेस ने अपने प्रारंभिक वर्षों में राजनीतिक संगठन होने के कारण जाति, अस्पृश्यता अथवा अन्य सामाजिक विषयों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। लेकिन 1917 में कांग्रेस ने ऐनी बेसेन्ट की अध्यक्षता में अपनी इस पुरानी नीति को त्याग दिया तथा 1921 ई0 में उसने और भी आगे बढ़कर यह निश्चय किया कि वे किसी भी आदमी को जब तक कांग्रेस स्वंयसेवक के रूप में स्वीकार नहीं किया जायेगा तब तक वह प्रतिज्ञा–पत्र में यह लिखकर नहीं दे देगा कि वह अस्पृश्यता का विरोध करता है और उसके लिए कार्य करेगा।13 गांधी जी ने लगातार एवं अध्यवसाय के साथ अस्पृश्यता की बुराई की आलोचना की। जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है, ''लेकिन उन्होंने जाति समस्या को अति प्राचीन भारतीय तरीके से अप्रत्यक्ष ढ़ंग से हल करने का प्रयास किया। उन्होंने काफी आक्रामक रैवया अपनाया। लेकिन चार प्रमुख जातियों के मूल में निहित कार्यात्मक सिद्धान्त को चुनौती नहीं दी। उन्होंने यह जानते हुए कि इससे समस्त जाति व्यवस्था का ढ़ांचा छिन्न–भिन्न होगा। जाति–व्यवस्था से उत्पन्न कुरीतियो और उसकी वृद्धि की आलोचना की।''[14]

अन्य समाज–सुधारकों के विरूद्ध गांधीजी का दावा था कि वह एक सनातनी हिन्दू है।[15] लेकिन गाँधीजी अपने देशवासियों से कभी यह कहने से नहीं चूके कि जब तक भारतीय अपने अन्य देशवासियों के साथ बराबरी का व्यवहार नहीं करते तब तक वह अपने लिए आजादी की मांग नहीं कर सकते।[16] 1928 ई0 में कांग्रेस ने ऐलान किया, ''जितनी जल्दी यह स्वीकार कर लिया जाए कि हमारी बहुत सी सामाजिक बुराइयों स्वराज–प्राप्ति की गति में बाधक है, उतनी ही अधिक प्राप्ति हमें अपने प्रिय उद्देश्यों की दिशा में हासिल होगी। अगर समाज–सुधारों को स्थगित किया जाता है तो इसका अर्थ यह है कि स्वराज का अर्थ समझा नहीं गया है।''[17] अहमदाबाद में 1921 में दलित वर्ग सम्मेलन में भाषण करते हुए उन्होंने कहा कि अगर अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का आवश्यक अंग है तो मैं हिन्दू नहीं हूँ। उन्होंने कहा, '' मेरा विश्वास है कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का हिस्सा नहीं है और अगर है तो मैं हिन्दू नहीं हूँ।''[18] गाँधीजी ने अछूतों की, जिन्हें वह हरिजन कहते थे, दशा सुधारने का प्रयत्न किया और उन्होंने यह स्पष्ट किया कि मेरी समझ के अनुसार ''वर्ण व्यवस्था में छोटे–बड़े का कोई भेदभाव नहीं है।''[19]

यद्यपि विविधता के बीच भारत की बुनियादी एकता एक पूरी तरह से स्थापित वास्तविकता है, फिर भी ऐसे आलोचकों की कमी नहीं है जिनका कहना है कि भारत न तो कभी एक राष्ट्र था और न कभी होगा। यह तथ्य कि भारत अपने लंबे इतिहास के दौरान राजनैतिक दृष्टि से अनेक टुकड़ों में बंट गया जो तत्कालीन परिस्थितियों में आवश्यम्भावी था। लेकिन फिर भी भारत की राजनैतिक एकता का विचार हमेशा विद्यमान रहा। क्षेत्रीयतावाद, अलोकतांत्रिक जातिवाद और अविरत साम्प्रदायवाद की ताकतों के बावजूद जिन शक्तियों और जिन बातों ने भारत को राष्ट्रीयता के एक सूत्र में पिरोए रखने में मदद की, बेशुमार है। इस प्रकार की एकता की जड़े भारतीय भूगोल, इतिहास और परम्पराओं में गहरी घुसी हुई है। कांग्रेस के नेतृत्व में किसी शासन के खिलाफ बरसों तक चलने वाले संघर्ष ने राष्ट्रादी ताकतों को मजबूत किया और स्वाधीनता की स्थापना ने एक ऐसे राष्ट्रीय राज्य के जन्म दिया जिस पर भारतीयों को नाज हो सकता है।

lUnHkZ %

1. कन्वर्सेशन्स विद मि0 नेहरू, 1956, पृष्ठ–5
2. जवाहरलाल नेहरू, दि डिसकवरी ऑफ इंडिया, 1946 पृ0–76
3. वहीं,
4. वहीं, पृ0 16–17
5. सेलेक्टेड स्पीचेज ऑफ सुभाषचन्द्र बोस, 1962, पृ0–74
6. जवाहरलाल नेहरू, रीसेंट एसेज एंड राइटिंग्स, पृ0–76–77
7. मौलाना आजाद, इंडिया विन्स फ्रीडम, ओरियण्ट लांगमैन्स, जून 1967, पृ0–4
8. वहीं,
9. वहीं, पृ0 6
10. नार्मन डी0 पामर, दि इंडियन पोलिटिकल सिस्टम, 1961
11. सेलेक्टेड स्पीचेज ऑफ इंदिरा गॉधी, जनवरी, 1966–अगस्त1969, पृ0–77, 79
12. इंदिरा गॉधी, ऐस्पेक्ट्स ऑफ आवर फॉरेन पालिसी, 1973, पृ0–2
13. दि इंडियन नेशनल कांग्रेस, 1920–23, पृ0–150–51
14. जवाहरलाल नेहरू, दि डिस्कवरी ऑफ इंडिया, चतुर्थ संस्करण,1956
15. यंग इंडिया, 24 अप्रैल'1921
16. हरिजन, 20 अप्रैल'1940
17. यंग इंडिया, 28 जून'1928
18. डी0जी0 तेंदुलकर, महात्मा, खंड–2, 1961, पृ0–36
19. वहीं, पृ0 36–37

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 128-130

fcgkj i'FkDdj.k vkUnkyu

MkW fo?u'k pUnz >k*

1893 ई0 में सच्चिदानन्द सिंहा इंग्लैण्ड से वकालत की पढ़ाई करके वापस भारत आए। इंग्लैण्ड प्रवास के दौरान बिहार का एक प्रांत के रूप में पहचान नहीं होना, सच्चिदानन्द सिन्हा को बराबर चोट पहुँचाती थी। इंग्लैण्ड प्रवास के दौरान ही बिहार को एक राजनीतिक इकाई के रुप में स्थान दिलाने का उन्होंने संकल्प लिया।[1] स्वदेश आने के उपरान्त बिहार की आवाज को अंग्रेजों तक पहुँचाने के लिए 26 जनवरी 1894 को ''द बिहार टाइम्स'' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस पत्रिका का संपादक महेश नारायण को बनाया गया तथा सच्चिदानन्द सिन्हा, नंद किशोर लाल एवं कृष्ण सहाय इसके प्रचारक बने। इस पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही बिहार में राजनीतिक चेतना की नयी शुरुआत हुई और बिहार पृथक्करण आंदोलन का आरम्भ हुआ।[2]

1894 में बंगाल के अखबार में चर्चा हुई कि सरकार बंगाल के प्रशासन में सुधार हेतु बंगाल के पूर्वी क्षेत्रों के कुछ जिलों को काटकर असम प्रान्त में मिलाना चाहती है। ' द बिहार टाइम्स ' ने सरकार को दूसरे विकल्प की ओर ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने सुझाव दिया कि बंगाल का पूर्वी हिस्सा काटने से न तो बंगाल प्रशासन की समस्या हल हो पायेगा और न इस क्षेत्र को असम में मिलाना तर्कसंगत है। इससे बेहतर विकल्प है कि बिहार को बंगाल से काटकर अलग कर दिया जाय।[3]

1896 ई0 में अलेक्जेण्डर मैकेन्जी जो कि बंगाल का गवर्नर था, का बिहार दौरा हुआ। मैकेन्जी के सम्मान में गया शहर में समारोह का आयोजन हुआ। जिसमें बिहारवासियों ने बिहार पृथक्करण की माँग गवर्नर के समक्ष प्रस्तुत किया। किन्तु मैकेन्जी ने बिहारियों की इस माँग को पूरी तरह से खारिज कर दिया।[4] परन्तु बिहारी नेताओं ने इस प्रतिक्रिया से आंदोलन का रोका नहीं, केवल उचित समय की प्रतीक्षा करने लगे।

बंगाल के लेटीनेंट गवर्नर अलेक्जेण्डर मैकेन्जी की घोषणा से बिहारी चेतना के अग्रदूत काफी खिन्न थे।[5] इसके अलावा बंगाल के समाचार–पत्रों ने भी बिहारी नेताओं की आलोचना की। दुर्भाग्यवश सच्चिदानन्द सिन्हा भी बीमार पड़ गये और कुछ दिनों के लिए वे इस आन्दोलन से दूर रहे। साथ ही नये समर्थक भी इस आन्दोलन से अपने को अलग कर लिया। सच्चिदानन्द सिन्हा, महेश नारायण, नन्द किशोर लाल एवं कृष्ण सहाय को अगले सात वर्षों तक उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करनी पड़ी । इन सात वर्षों में वे आम बिहारी के बीच शिक्षा का प्रचार करने के प्रयास में लगे रहे।[6]

बिहार पृथक्करण आन्दोलन के समर्थकों के बीच 1903 में पुनः आशा की किरण जगी। लॉर्ड कर्जन भारत का गवर्नर जनरल था और उसने बंगाल के एक हिस्से को असम में मिलाने के लिए लोगों की रायसुमारी की घोषणा की। भारत सरकार के सचिव एच0एच0 रिसले ने बंगाल के पूर्वी हिस्से को असम में मिलाने का प्रस्ताव रखा। बंगाल के अमृत बाजार पत्रिका ने रिसले के प्रस्ताव को पूरी तरह बकवास घोषित कर दिया एवं भाषायी और सांस्कृतिक कारणों से बंगाल की यथास्थिति बनाए रखने की वकालत की।[7] 1904 में बिहार पृथक्करण आन्दोलन के समर्थकों को काफी प्रसन्नता हुई, जब कॉंग्रेस के बम्बई अधिवेशन में सर हेनरी कॉटन ने अपने अध्यक्षीय भाषण में बंगाल के उचित प्रशासकीय समाधान के रुप में बिहार को बंगाल से पृथक करने का सुझाव दिया। हेनरी कॉटन ने राय दिया कि बंगाल के पूर्वी हिस्सों को बंगाल से अलग करने से अधिक उचित समाधान बिहार, जो भाषायी एवं सास्कृतिक दृष्टि से बंगाल से सर्वथा अलग है, को अलग

*सहायक प्राध्यापक (अतिथि), इतिहास विभाग, का0वि0सा0 कॉलेज, उच्चैठ, बेनीपट्टी, मधुबनी, ल0ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

कर दिया जाय। कॉटन के इस प्रस्ताव को जोरदार समर्थन अधिकांश अंग्रेज पदाधिकारी से प्राप्त हुआ। बंगाल की ही सेवानिवृत प्रशासक दिलावर हुसैन ने भी बंगाल से बिहार को अलग एक सूबे के रुप में स्थापना को उचित माना।81906 ई0 में आन्दोलन की नयी ऊर्जा राजेन्द्र प्रसाद एवं उनके संगठन 'बिहार स्टूडेन्ट कॉन्फ्रेंस' के युवा सदस्यों से मिली।[9] 1906 में दुर्गापूजा के अवकाश के समय में इस संगठन का पहला सम्मेलन पटना में हुआ। इस कॉन्फ्रेंस के संस्थापक अध्यक्ष न्यायमूर्ति सर्फुद्दीन थे। 1906 में 'द बिहार टाइम्स' का नाम बदलकर 'बिहारी' कर दिया गया, ताकि बिहार के साथ इस नाम का अधिक लगाव दिखे। 'बिहार छात्र सम्मेलन' का दूसरा एवं तीसरा सम्मेलन भागलपुर में सम्पन्न हुआ। इसका चौथा सम्मेलन 1909 में गया में हुआ। आरा के पाँचवें सम्मेलन की अध्यक्षता 1910 में सच्चिदानन्द सिन्हा ने की। बिहारी छात्र सम्मेलन बिहार की छात्रों एवं युवाओं को अपनी ओर आकर्षित करता रहा एवं इसके सक्रिय सदस्यों की संख्या में लगातार वृद्धि होती रही। 1912 के अधिवेशन की अध्यक्षता उड़ीसा के जाने–माने राजनीतिज्ञ मधुसूदन दास ने की और 1913 के अधिवेशन की अध्यक्षता राजेन्द्र प्रसाद ने की। इस सम्मेलन ने बिहार के युवाओं में जोश भरा एवं उन्हें राजनीतिक रूप से सक्रिय किया।

बंगाल के राज्यपाल फ्रेजर का कार्यकाल 1908 में समाप्त हो रहा था। फ्रेजर को बिहार के प्रति काफी सहानुभूति थी, जिसका फायदा उठाकर 14 अगस्त 1908 को बिहार लैण्ड होल्डर्स एसोसियेशन, बिहार प्रान्तीय संघ, बिहार प्रान्तीय मुस्लिम लीग आदि संगठनों की ओर से गवर्नर से एक प्रतिनिधिमंडल मिला और एक ज्ञापन दिया। इस प्रतिवेदन में बिहारियों की व्यथा, आकाँक्षा एवं आवश्यकता की एक सूची पेश की गयी।[10] इस प्रतिवेदन में बिहार में सृजित नौकरियों पर केवल या अधिकांश बंगालियों की नियुक्ति की तरफ गवर्नर का ध्यान आकृष्ट किया गया। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया कि मनोनयन प्रथा से भी बंगालियों की नियुक्ति होती है और शिक्षित बिहारियों को कहीं भी मौका नहीं मिल पाता है।

राज्यपाल ने प्रतिवेदन का प्रत्युत्तर देते हुए स्वीकार किया कि राजकीय पदों पर नियुक्तियों में बिहारियों का प्रतिनिधित्व नितान्त असंतोषजनक है। राज्यपाल ने आश्वासन दिया कि सरकार इस विषमता को दूर करने का प्रयास करेगी।[11] यह भी आश्वासन दिया कि बिहारी डाक्टरों एवं इंजीनियरों को बिहार में नियुक्ति मिलेगी। साथ ही प्रान्तीय कार्यपालिका या न्यायपालिका में यथासंभव बिहारियों को मौका मिलेगा।[12]

राज्यपाल द्वारा दिये गए प्रत्युत्तर का बड़ा ही महत्व था। यह पहला अवसर था, जब राज्यपाल जैसे बड़े पदाधिकारी ने बिहार के साथ हो रहे अन्याय को स्वीकार किया।[13] पृथक बिहार आन्दोलन की बड़ी जीत थी। इसका असर उड़ीसा पर भी पड़ा जहाँ बंगालियों के भेदभाव के कारण रोष उत्पन्न होने लगा। अभी तक बंगाल विभाजन के प्रश्न पर उड़ीसा लगभग मौन थी। किन्तु बंगालियों की बढती उपेक्षा भाव ने उन्हें बिहार आन्दोलन को समर्थन देने के लिए उकसाया। उड़ीसाके समर्थन से बिहार आन्दोलन को नया बल मिला। दूसरी ओर बंगाली बिहार आन्दोलन को प्रान्त और राष्ट्र के स्वार्थों की उपेक्षा करनेवाला घोषित करने पर तुले थे।

बिहार में कॉंग्रेस की शाखा अब तक लगभग बिहार आन्दोलन की माँग से दूर थी। किन्तु बिहार कॉंग्रेस के कार्यकर्त्ता का सोचना था कि राष्ट्रीय आन्दोलन में बिहार की भागीदारी को बढ़ाने एवं राष्ट्रीय आन्दोलन को व्यापक बनाने के लिए बिहारी की सक्रियता जरुरी है और इसके लिए आवश्यक है कि कॉंग्रेस को बिहार आन्दोलन से जोड़ा जाय।[14]

1908 में सोनपुर मेले में सच्चिदानन्द सिन्हा, मजहरुल हक, हसन इमाम, दीप नारायण सिंह आदि ने सरफराज हुसैन की अध्यक्षता में 'बिहार प्रदेश कॉंग्रेस कमिटी' का गठन किया। प्रान्तीय कॉंग्रेस कमिटी का मुख्यालय पटना में बनाया गया और इसका पहला सम्मेलन अली इमाम की अध्यक्षता में अप्रैल 1908 में पटना में सम्पन्न हुआ।[15]

1910 में मुजफरपुर में दीप नारायण सिंह की अध्यक्षता में प्रान्तीय सम्मेलन हुआ। जिसमें स्पष्ट शब्दों में कहा गया कि बंगाल के शासन के अन्तर्गत बिहार प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ा रहा है। बंगाल से अलग होने पर ही बिहार का समुचित विकास संभव है। 'अमृत बाजार' पत्रिका ने इस भाषण की तीव्र आलोचना की।[16]

सन् 1911 में गया में प्रान्तीय कॉंग्रेस का अधिवेशन मजहरुल हक की अध्यक्षता में हुआ और इस सम्मेलन में भी पृथक बिहार की माँग की गयी। इस सम्मेलन में बिहार, छोटानागपुर एवं उड़ीसा को मिलाकर एक पृथक बिहार बनाया जाय या फिर बिहार या छोटानागपुर को मिलाकर पृथक राज्य का प्रस्ताव पारित किया गया।[17]

भारत सरकार अधिनियम, 1909 के तहत पहला चुनाव 1910 में सम्पन्न हुआ। जिसमें सच्चिदानन्द सिन्हा बंगाल विधान परिषद् की ओर से केन्द्रीय विधान परिषद में चुने गए। इसी चुनाव में मुसलमानों के प्रतिनिधि के रुप में मजहरुल हक भी चुने गए। शीघ्र ही हसन इमाम को भारत सरकार का विधि सदस्य नियुक्त किया गया। इस प्रकार तीनों के सहयोग से बिहार की माँग को आगे बढ़ाया गया।[18] 1911 में केन्द्रीय विधान परिषद् के शीतकालीन अधिवेशन के लिए ये प्रतिनिधि शिमला गए और इन्होंने सरकार में इस बात को रखा। 25 अगस्त 1911 को भारत सरकार ने एक पत्र के माध्यम से सेक्रेटरी ऑफ स्टेट्स का ध्यान बिहारियों की माँग की ओर आकृष्ट किया और सरकार की ओर से इस माँग की सिफारिश की गयी।

12 दिसम्बर 1911 को दिल्ली के शाही दरबार में सम्राट जार्ज पंचम ने बिहार और उड़ीसा को मिलाकर एक पृथक प्रान्त के सुजन की घोषणा की। 22 मार्च 1912 को बिहार और उड़ीसा प्रान्त की विधिवत् अधिसूचना की गयी। इस नवगठित प्रान्त में पाँच प्रमंडल (भागलपुर, पटना, तिरहुत, छोटानागपुर और उड़ीसा) थे।[19]

नवगठित बिहार एवं उड़ीसा प्रान्त के प्रथम गवर्नर के रुप में सर चार्ल्स स्टुअर्ट वेली को नियुक्त किया गया। जिन्होंने 1 अप्रैल 1912 को अपना कार्यभार ग्रहण किया।[20]

I UnHk' k

1. सिन्हा, सच्चिदानन्द– समकालीन बिहार की विभूतियाँ, अनुवाद–कलानाथ मिश्र, पटना, 2008, पृष्ठ–2
2. उपरोक्त, पृ0 7–8
3. उपरोक्त
4. नारायण महेश एवं सिन्हा, सच्चिदानन्द – द पार्टिशन ऑफ बंगाल ऑर द सेपरेशन ऑफ बिहार, 1906, पृ0 12–16
5. सिंह, एन0एन0पी0 – आन्दोलन की तैयारी, विजय कुमार (सं0) बिहार : सृजन से शताब्दी वर्ष, पटना, 2012, पृ0 28
6. चौधरी, विजय चन्द्र प्रसाद – आधुनिक बिहार का सृजन, पटना, 2012, पृ0 20–22
7. अमृत बाजार पत्रिका, 20 दिसम्बर, 1903
8. नारायण, महेश एवं सिन्हा, सच्चिदानन्द – पूर्वोक्त, पृ0 18–20
9. सिंह, एन0एन0पी0 – पूर्वोक्त, पृ0 30
10. चौधरी, विजय चन्द्र प्रसाद – पूर्वोक्त, पृ0 52
11. राज्यपाल का प्रत्युत्तर, दिनांक 14 अगस्त, 1908
12. उपरोक्त
13. चौधरी, विजय चन्द्र प्रसाद – पूर्वोक्त,
14. सिंह, एन0एन0पी0 – पूर्वोक्त, पृ0 36
15. झा, जे0एस0 – इमर्जेंस ऑफ इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस, रिस्पान्सेस इन रियेक्सन इन बिहार (1805–1908), पृ0 25–26
16. अमृत बाजार पत्रिका, 27 अप्रैल 1910
17. द बिहारी, 15 दिसम्बर 1911
18. सिंह, एन0एन0पी0 – पूर्वोक्त, पृ0 38
19. बिहार एण्ड उड़ीसा एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट (1911–12), पटना, 1913, पृ0 42
20. उपरोक्त।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 131-132

egkRek xk/kh d: fopkjk e: lkekftd 'kkfUr dh vo/kkj.kk

ckn'kkg vgen*

महात्मा गांधी के साथ यह महात्मा शब्द ही क्यूँ जुड़ा है यह अपने आप में एक विचारणीय प्रश्न है। परन्तु जब कोई आत्मा शुद्ध, निस्वार्थी, दया की मूर्ति हो तो महान आत्मा जैसी श्रेष्ठ उपाधियां धारण कर ही लेती है। जैसा कि महात्मा गांधी जी के जीवन में उन्हें यह उपाधि प्राप्त हुई।

महात्मा गांधी के जीवन का उद्देश्य सामाजिक शान्ति, सदभावना और आपसी प्रेम के लिए था। वह जीवन पर्यन्त अथक प्रयास करते रहे। परन्तु कुछ अन्य विचारधारक उन्हें अलग नजर से देखते है।

महात्मा गांधी का विचार था कि यह समाज स्वयं व्यक्तियों का समाज है। यदि सामाजिक शान्ति चाहिए तो समाजिक व्यक्ति को मजबूत करना होगा। गांधी की नजर में समाजवाद कभी हिंसा को बढ़ावा नहीं देता। वह लगभग समाज के सभी वर्गों के बीच शान्ति की स्थापना और अहिंसा की स्थापना करना चाहते थे। परन्तु यदि परिस्थिति अनुकूल न हो तो गांधी के अनुसार हिंसा का सहारा लेना भी कोई बुराई नहीं है।

गांधी के अनुसार यदि मनुष्य सुख की वस्तुओं का भोग करते रहे तो वह क्षणिक भर के लिए शान्ति पा सकते है। सुख की वस्तुएँ बाहरी भागों से बनी है। परन्तु सम्पूर्ण शान्ति यदि चाहिए तो उसे निरन्तर प्रयास करना होगा, वरन तृष्णा बनी रहेगी। परन्तु आन्तरिक सुख के लिए मनन आवश्यक है, वरन आपसी झगड़े बने रहेंगे। महात्मा गांधी का अन्य धर्मों व हिन्दू धर्मियों के प्रति यह विचार है कि सुख ही हृदय का भाव है सुखी हृदय आनन्द को धारण करता है। जिसे कोई छीन नहीं सकता। योगियों के लिए यह भाव आनन्द मात्र ही शान्ति है।

यह विचार गलत ना होगा कि गांधी जी के लिए कोई भी भौतिक सुख सुविधा नहीं थी परन्तु जो लौकिक सुख उन्हें प्राप्त था वह शायद ही किसी और के पास हो। यहां उदाहरण के तौर पर 'राजा जनक' की विवेचना की गई है। जिनके पास सारी सुख–सुविधाएं थी परन्तु लिप्त नही हुए। ठीक उसी प्रकार भौतिक पदार्थों को अति आवश्यक मानकर हम उसे महत्व देते है। जो सुखवाद का रूप धारण करता जा रहा है।

समाज में एक प्रश्न जो विचारणीय है कि आत्मा शरीर के अधीन है या शरीर आत्मा के अधीन है। परन्तु भौतिकवाद हमें उत्तर देगा कि शरीर ही सबकुछ है और आत्मा उसके अधीन है परन्तु किसी भी आत्मा को बाहरी सुख की आवश्यकता नहीं होती है।

महात्मा गांधी का विचार मध्यम मार्ग पर आधारित है। जहां बाहरी वस्तुओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती। परन्तु तृष्णा ही एक ऐसा कारण है जो उसपर नियंत्रण रखता है। इसी विचारधारा को मानने के लिए देश और विदेश में टकराव उत्पन्न होते है। इस तथ्य पर वैज्ञानिक व्याख्या हुई है कि कुछ अमीरों से सम्पत्ति लेकर कुछ गरीब लोगों में समान रूप से बांट देनी चाहिए। परन्तु इससे अमीर वर्ग पर प्रभाव पड़ेगा। परन्तु गांधी जी कहते है कि हमें अमीरों की सम्पत्ति नहीं छीननी चाहिए क्योंकि इससे प्रति हिंसा होगी। केवल हम हृदय परिवर्तन करके ही अमीरों से गरीबों के प्रति सहायता प्राप्त कर सकते है। वास्तव में जो अन्तर है वह हिंसा और अहिंसा के बीच है। जो वर्ग हिंसा करेगा वास्तव में वही एक हिंसक वर्ग बन जाएगा और इससे प्रतिहिंसा की भावना उत्पन्न हेागी। जो अहिंसा के विषय में वर्गहीन समाज की एक खोखली बात है।

*शोधार्थी, बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

गांधी स्वयं सेवा और त्याग को महत्व देते थे। वह कहते थे कि जितना बड़ा त्याग होगा उतना ही बड़ा सम्मान प्राप्त होगा। यह निवृत्ति का मार्ग है। महात्मा गांधी की नज़र में अहिंसा ईश्वर के समान है। उनकी दृष्टि में साध्य ही सत्य है और अहिंसा उस साध्य तक पहुंचने की साधना। महात्मा गांधी मानते थे कि अहिंसा हिंसा से ज्यादा ताकतवार है। यह परस्पर प्रेम और सम्मान को जन्म देती है। और यह अन्ततः आपसी वैमनस्य, राग, द्वेष–घृणा, शंकाओं पर विजय प्राप्त करने में सफल होती है। गांधी जी ने अहिंसा को सत्याग्रह का बुनियादी आधार माना है। जो सत्याग्रह का मूलमंत्र है पर सत्य ही सर्वोच्य कानून और अहिंसा का सर्वोच्च कर्त्तव्य है। ताकि सत्य की शान्ति अहिंसा में असीम बनी रहे। इस प्रकार महात्मा गांधी जी का जीवन भले ही राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक रहा हो वह अहिंसा के तत्व समाजिक शान्ति के आध्यात्मिक श्रोत से ओतप्रोत ही रहा है। वह इसके प्रति पूर्ण रूप से वचनबद्ध थे। वह कहते थे कि वर्तमान में मानव संस्कृति पर हिंसा, राग, द्वेष, असत्य, छल, कपट से स्वार्थ और संघर्ष की जो काली छाया पड़ी है। उन सभी के निराकरण का एक ही रास्ता है वह है जीवन पर्यन्त अहिंसा का मार्ग। हिंसा मात्र हार का कारण है। अहिंसा कभी नहीं मरती।

अतः अहिंसा का स्वरूप है हत्या न करना, और किसी भी प्राणी को क्षति न पहुंचाना है। बुद्ध और महावीर हमारे देश की उन महात्माओं में से एक है जो लगभग पूरा जीवन ही सामाजिक अहिंसा, सद्भावना व शान्ति के लिए प्रवचन करते रहे। ऋषि मुनियों ने भी अहिंसा को प्रमुख बतलाया। वचन और कर्म से किसी का बुरा न करना भी अहिंसा का मार्ग है। जिसकी मूल नीति शिक्षा में समाहित होती है।

महात्मा गांधी ने इसका एक नवीन आधार नई तालीम के रूप में भी प्रदर्शित किया है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति बेहतर समझ रखता हैव प्रतिहिंसा का विरोध करता है।

महात्मा गांधी के अनुसार जो शिक्षा का स्वरूप तैयार किया गया वह सामाजिक शान्ति के लिए व विरोधी को जवाब देने के लिए मात्र पत्र व्यवहार व सभाएँ ही है अन्यथा अशिक्षित व्यक्ति मात्र क्रान्ति ही करेगा। जिससे हमें जितना हो सके बचना चाहिए गांधी के अनुसार हिंसा किसी भी साधारण व्यक्ति का स्वभाव नहीं है। यह किसी को भी आनन्द नहीं देता। यह मात्र मनुष्य की पाशिवक मूल्यों पर गढ़ी गई समाज व्यवस्था और शिक्षा प्रणाली का रूप है। इसके लिए हमें बुनियादी मूल्यों को बदलना होगा। जिसको नवीन रूप देकर गांधी जी ने इसका स्वरूप ही बदल दिया।

इस प्रकार महात्मा गांधी का विचार जो सामाजिक शान्ति की अवधारणा को स्थापित करना था वह अहिंसा के कारण सत्य के मार्ग पर चलकर पूरा हो पाया है। व्यक्ति विशेष के लिए यह मार्ग थोड़ा कठिन जरूर है परन्तु असंभव नहीं। यही मात्र ऐसा मार्ग है जो व्यक्ति को व्यक्ति के लिए दया, करुणा, सहायता का भाव समझाता है। अंततः महात्मा गांधी का जीवन जिसे आज भी और युगों–युगों तक संसार स्मरण करेगा वह अतुलनीय व सराहनीय है।

lUnHk%

1. विवेक, रामलाल; महात्मा गांधी : जीवन और दर्शन, पंचशील प्रकाशनः जयपुर, 1996।
2. गुप्त, विश्व प्रकाश एवं गुप्त मोहिनी; महात्मा गांधी व्यक्ति और विचार, राधा पब्लिकेशन्स : नई दिल्ली, 1996।
3. गांधी, मोहनदास करमचन्दः सत्य के प्रयेाग, राजपाल : दिल्ली, संस्करण – 2011।
4. रफीक, डॉ. राकेश; नई तालिम, गांधी स्मृति दर्शन स्मृति : राजघाट, 2013।
5. सुजाता, गांधी की नैतिकता, सर्व सेवा संघः वाराणसी, 2012।
6. चौधरी, डॉ. लाखा राम, महात्मा गांधी के विचारों की 21वीं सदी में प्रासंगिकता, पंजाब केसरी : नई दिल्ली, 2017।
7. जैन, यशपाल, अहिंसा का अमोध अस्त्र, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012।
8. दत्त, धीरेन्द्र मोहन, महात्मा गांधी का दर्शन, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1973।
9. सिंह, रामजी, गांधी जी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1973।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 133-136

xko&tokj dk lLej.k % ^uxkrykbZ dk xko*

Hkjr fl ag*

संस्मरण गद्य साहित्य की एक जीवंत विधा है। इसका मूल आधार स्मृति होती है। यह किसी घटना, व्यक्ति या स्थिति की स्मृति को सजृनात्मक स्वरूप प्रदान करने वाली महत्वपूर्ण विधा है। समकालीन हिन्दी साहित्य में अपनी बेबाकी, सच कहने का साहस तथा रचनात्मक एवं रोचक लेखन–शैली से इस विधा ने महत्वपूर्ण स्थान बनाया है। साहित्य–संस्मरण को अलंकृत करने वाले आलोचकों में 'डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी' समकालीन संस्मरणकारों में अग्रणी हैं। इनके प्रमुख संस्मरण ग्रन्थ– 'नंगातलाई का गाँव', 'व्योमकेश दरवेश', 'गुरुजी की खेती–बारी' तथा 'गंगा स्नान करने चलोगे' हैं। 'व्योमकेश दरवेश' में इन्होंने अपने जागतिक और आकाश धर्मा गुरु 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' का पुण्य तथा पूर्ण स्मरण किया है। 'गुरुजी की खेती–बारी' में अपने शिष्यों तथा अध्यापक जीवन से जुड़ी घटनाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। 'गंगा स्नान करने चलोगे' संस्मरण ग्रन्थ में अपने समकालीन विशिष्ट साहित्यकारों और अपने साहित्यिक गुरुओं को स्मरण किया है। इसी क्रम में 'नंगातलाई का गाँव' डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी को उनके गाँव–जवार से जोड़ता है, उन्हें उनकी माटी से जोड़ता है, बचपन की यादें कौंध जाती हैं, उनके चेहरे पर विजयी मुस्कान लाती हैं, तथा शहरी पाठक को गाँव की ओर ले जाती है। डॉ0 त्रिपाठी ने इस ग्रन्थ को संस्मरण न कहकर 'स्मृमि–आख्यान' की संज्ञा दी है।

व्यक्ति जब गाँव–घर से दूर हो जाता है, नगर में बस जाता है, शहरीकरण हो जाता है तो नगर संस्कृति की हृदयहीनता, संत्रास, कुण्ठा, अकेलापन का कटुतिक्त अनुभव और गाँव की स्नेहशीलता की याद अक्सर हिला देने वाली होती है। डॉ0 त्रिपाठी के मन–मस्तिष्क के निर्माण में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शील–संस्कार का योगदान है जैसे वे अपने गाँव घर की सुधि लेते हैं, वैसे ही डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी भी। 'नंगातलाई' डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी के बचपन का नाम है। 'नंगातलाई का गाँव' अर्थात् 'विश्वनाथ का गाँव'। इसकी भूमिका में लिखा है– 'बोला मैंने है, लिखा बिसनाथ ने।' आशय यह है कि नंगातलाई के रूप में जो जीवन जीया है उसे विश्वनाथ ने स्मृति आख्यान में शब्दों से संजोया और पिरोया है। इसमें डॉ0 त्रिपाठी दो रूपों में उपस्थित हए हैं प्रथम– नंगातलाई के रूप में, द्वितीय– लेखक बिसनाथ के रूप में। यह ग्रन्थ एक तरह से डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी के जीवन संघर्षों को भी प्रस्तुत करता है।

बिस्कोहर गाँव जो पूर्वी उत्तर प्रदेश के बस्ती जिला (अब सिद्धार्थ नगर) में स्थित है, हिमालय की तलहटी में बसा है मुख्यतः तराई का क्षेत्र है। उत्तर में दूर तक हिमालय की चोटियाँ दिखाई पड़ती हैं। प्रत्येक गाँव की एक भौगोलिक स्थिति होती है डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी इन्हीं भौगोलिक दृश्यों से शुरूआत की है। हिमालय, दावाग्नि, अग्निचक्र, तराई क्षेत्र आदि बिस्कोहर की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करती हैं। गाँव का नाम लेते ही कुएँ, तालाब (पोखरे), बाग–बगीचे, मंदिर आदि स्मृतियों में आने लगती हैं। संस्मरणकार डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने इन सबका विस्तार से वर्णन किया है। कुएँ और मंदिर के प्रसंग पर इन्होंने लिखा है कि– ''गाँव में कुएँ और मंदिर बहुत हैं। एक बार जब पंडित हजारी प्रसद द्विवेदी ने बिस्कोहर नाम सुना तो उन्होंने कहा कि 'बिस्कोहर'? फिर मन में कुछ मुनमुनाकर बोले– 'विंशकूपधर' यानी बिस्कोहर गाँव में बीस कुएँ रहे होंगे। प्राचीनकाल में गाँवों के नाम इस बात पर भी रखे जाते थे कि उनमें कुएँ कितने हैं।''[1] पोखरा अर्थात् तालाब के संदर्भ में जी खोलकर लिखा है। बताते हैं कि गाँव के पोखरे प्रायः मंदिर से सम्बन्धित होते थे, पत्थर की सीढ़ियाँ और बुर्ज होते थे। जो आज भी प्रायः हर गाँव में देखने को मिल जाता है। बुर्ज से पानी में कूदना एक सामान्य घटना मानी जाती है जिससे गाँव का डरपोक

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

लड़का भी दो–चार बार कोशिश कर ही लेता है। गाँव की मौज–मस्ती के साथ–साथ ग्रामीण महिलाओं की दयनीय स्थिति का वर्णन करना नहीं भूले हैं, बालमृत्यु दर और मातृ मृत्युदर का भी जिक्र किया है। जो उनकी संवेदनाशीलता को प्रकट करता है। ग्रीष्म ऋतु में औरतों की दुर्दशा के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है– ''गरमी में सबसे बुरी हालत औरतों की होती थी। अवर्ण, गरीब, निम्न वर्ग की औरतों की नहीं, मध्यवर्ग के बनियों, लालाओं, ठाकुरों, पंडितों की औरतें बहुत तकलीफ उठाती थीं। रात में जब गरमी बहुत बढ़ जाती थी जैसे भुना हुआ वातावरण हो, कहीं से हवा नहीं आती थी तब भी वे घरों में ही रहती थीं। नहाने का बहुत कम इंतजाम होता था। इतनी गरमी में सास–ननद की सेवा करती थीं। पति के साथ रहती थीं। गर्भवती होती थीं। बच्चे पैदा करती थीं और उनमें कई औरतें और बच्चे मर भी जाते थे।''[2] आजादी से पहले तथा बाद के कुछ वर्षों तक पर्दा तथा घूंघट के पीछे स्त्री शोषण का वीभत्स चेहरा छिपा हुआ था। ग्रामीण महिलाएँ विशेषकर उच्च वर्ग की महिलाओं के साथ यह शोषण और कुपोषण की जड़े काफी गहराई में विद्यमान थी जबकि निम्न वर्ग की महिलाओं के साथ ऐसा कम था। शारीरिक व मानसिक शोषण उनका भी होता था लेकिन उच्च वर्ग की स्त्री की तुलना में कम।

गाँव के तीज–त्योहार, पर्व–उत्सव के संदर्भ में भी डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने उन्मुक्त होकर कलम चलाई है। बिस्कोहर के सबसे बड़े त्यौहार– मुहर्रम के गंगा–जमुनी तहजीब को रेखांकित किया है। गाँव में त्यौहार, उत्सव आदि के अवसर पर धर्म विशेष या जाति विशेष या फिर वर्ग विशेष का एकाधिकार नहीं रहता बल्कि सब मिलजुलकर बड़े उत्साह के साथ उसमें शामिल होते। मुहर्रम के अवसर पर गाये जाने वाले मरसिया को हिन्दू भी गाते तथा ताजिया हिन्दू अवर्णों के यहाँ रखे जाते। शहर में बस जाने के कारण डॉ0 त्रिपाठी को गाँव की दीपावली याद आती है और महानगरीय दीपावली को 'बल्बावली' की संज्ञा दी है। बचपन में गाँव में दीपावली नहीं बल्कि 'दिया–देवारी' मनाया जाता था, मिट्टी के दिये और तेल से जलते दीप बल्बावली के आकर्षण से कहीं ज्यादा मोहक थे। अयोध्या से निकट होने के कारण दीपावली अति उत्साह के साथ मनाया जाता। पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँवों में आज भी दशहरे के बाद से ही दीपावली की रौनक वातावरण में छाने लगती है। दीपावली के अवसर पर होने वाले साफ–सफाई के संदर्भ में डॉ0 त्रिपाठी ने लिखा है– ''गाँव में दशहरे के बाद से ही घरों की सफाई शुरू कर दी जाती थी। घरों की सफाई का मतलब तोड़ना–फोड़ना अतिक्रमण नहीं, बल्कि तालाब की चिकनी मिट्टी से दीवालों को लेपना, गोबर से घर का आँगन और शेष भूमि तल लेपना। दशहरे पर गाँव में गोबर के दस पिण्डों पर कोंहड़े (काशीफल) का एक–एक फूल खोंस दिया जाता था। अम्मा बताती थीं– गोबर के दस पिण्ड रावण के दस सिर और कोंहड़े का पीताभ फूल उसके दस स्वर्ण मुकुट हैं।''[3] गाँव जवार के त्योहारों में दिखावटीपन और तकनीकी कृत्रिमता का अभाव होता है यह अभाव उन्हें प्रकृति से जोड़ता है, गाँव के संस्कार से जोड़ता है किन्तु वर्तमान में संचार और तकनीकी युग ने गाँव के त्यौहार को भी अपने आगोश में ले लिया है। गोबर से आँगन का लेपन अब कंकरीट ने ले लिया जो अब केवल रचनाओं में ही पढ़ने को मिलता है।

'नंगातलाई का गाँव' में डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने गाँव के विशिष्ट चरित्रों के माध्यम से ग्रामीणों की मनः स्थिति को प्रस्तुत किया है। पण्डित जगदम्बा प्रसाद पाण्डेय 'जगेश' के माध्यम से गाँव में पनप रहे आर्यसमाज को रेखांकित किया है। 'जगेश' मुसलमानों के बीच खड़े होकर धड़ल्ले से हजरत मुहम्मद की आर्यसमाजी आलोचना करते तथा गोड़से के चित्र का चरण स्पर्श करते और गाँधी–हत्या को गाँधी–वध मानते। ऐसे चरित्र प्रायः प्रत्येक गाँव में एकाध मिल ही जाते हैं, धीरे–धीरे इनके अनुयायी भी बढ़ जाते। डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने इस अध्याय में आजादी के बाद बदलते भारत की और गाँवों का चित्रण किया है। दो महिला चरित्रों लक्खा बुआ और जनकदुलारी के माध्यम से गाँव की प्रगतिशील महिलाओं तथा पुरुषों की संकीर्ण मानसिकता को अलग–अलग अध्याय में तेज रोशनी डाली है। लक्खा बुआ ऐसे चरित्र के रूप में सामने आती हैं जिनकी शादी तो कई बार हुई लेकिन ससुराल नहीं पहुँच पायी, लक्खा खुबसूरत थी इसलिए उसके चाहने वालों की कमी न थी और लक्खा भी अपने पुराने दिलगीरों को 'ना' नहीं कर पाती। लक्खा बुआ के प्रेस–प्रसंग के संदर्भ में डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है– ''लक्खा बुआ के प्रेम–प्रसंग अनेक थे। जीवन ही प्रेम–प्रसंगों की शृंखला थी। लेकिन एक प्रेम–प्रसंग तगड़ा हो गया। ऐसा कि लक्खा बुआ का घरवाला हो गया।''[4] दूसरी महिला चरित्र जनकदुलारी का उल्लेख किया है। जनकदुलारी 'प्रेमचन्द' के उपन्यास 'गोदान' की 'धनिया' है जो विपत्ति आने पर किसी से भी लड़ जाती

है फिर सामने दारोगा ही क्यों न हों। गाँव की महिलाएँ गलत का विरोध और सही का समर्थन करने में हिचकती नहीं। जनकदुलारी अपने पिता के लिए बेटे के समान थी, वह घर का काम–काज करती तथा अपने आय का सृजन स्वयं करती थी। पुरुष चरित्रों की संख्या अधिक है किन्तु दो चरित्र–बल्दी बनिया और जगेश पाण्डेय का विशेष उल्लेख किया है। गाँव में अक्सर एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसे होली के दिन विभिन्न उपमाओं से सुशोभित किया जाता, यहाँ तक की भद्दी–भद्दी गालियाँ भी दी जाती। बल्दी बनिया बिस्कोहर के वहीं चरित्र थे।

आग लगाना अर्थात् किसी के बीच झगड़ा लगाना गाँव में खलिहर बैठे लोगों का काम होता, ये लोग निंदारसपान में माहिर होते। डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी के शब्दों– ''शहर के लोग, कविताओं में गाँव वालों को बहुत सीधा–सादा और निष्कपट समझते हैं। लेकिन गाँव वालों का काइंयापन और निन्दा में रस लेने की क्षमता अपार होती है। वे कैसा खल–सुख उठाते हैं– यह गाँव वाले ही जानते हैं।''[5] सामान्य झगड़े में भी किसी का घर जला देना गाँवों में पचास के दशक में आम बात थी, डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपने दादा के बारे में लिखा है कि वे भी आग लगवाते थे। बिसनाथ अपने गाँव बिस्कोहर में बल्दी बनिया और पठान परिवार के घरों को जलते हुए देखा था। घर जलाने में ज्यादातर उच्चवर्गीय लोग थे जो अपने से निम्न वर्ग के लोगों की तरक्की से जलते थे। ऐसे खल चरित्र संकीर्ण मानसिकता के लोग आज भी प्रायः हर गाँव में मौजूद हैं किन्तु घर फूँकने जैसी घटनाएँ नगण्य हो गई है। गाँव में दलितो की स्थिति दयनीय थी, आज भी दयनीय और शोचनीय बनी हुई है। दलित सिर्फ खेल–खलिहान में काम करने वाला, मजदूर था। कोई आर्थिक अधिकार नहीं, कोई राजनीतिक पहचान नहीं। सामाजिक–सांस्कृतिक वंचना की जड़ें, काफी गहराई में समाईं थी। दलित स्त्रियों की स्थिति दयनीय थी। बकौल डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी– ''दलितों की बहू–बेटियों पर सवर्णों की निगाह रहती थी। खासतौर पर ठाकुरों–बाह्मणों की। अहीर, पासी, कुम्हार, कहार, गड़रिया, नाई, मुराव (सब्जी उगाने वाले), घरकार (बाँस का काम करने वाले), बरई आदि भी शूद्र ही थे लेकिन इनकी स्थिति उतनी खराब नहीं थी। सोनार, कसेर, ठठेर तो लगभग वैश्य की श्रेणी में आते थे। अहीर जबर्दस्त होते थे। उनसे लोग डरते भी थे।''[6] आजादी के बाद मिले संवैधानिक अधिकारों से दलित समाज का राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान सम्भव हो पाया। किन्तु सवर्ण समाज के लिए दलित स्त्रियाँ तब भी शारीरिक शोषण का माध्यम बनी रहीं। रोजगार गारण्टी और स्वच्छ भारत अभियान ने इस शोषण पर काफी हद तक अंकुश लगाने में सफलता दिलाई है।

परतंत्र भारत के उत्तर प्रदेश में भू–राजस्व प्रणाली की स्थायी बंदोबस्थ व्यवस्था लागू थी जिसे जमींदारी व्यवस्था भी कहते थे। बिस्कोहर गाँव में भी कई जमींदार थे। ठाकुर, ब्राह्मण, मुसलमान तीनों ही जमींदारी में संलिप्त थे। ठाकुरों की तुलना में ब्राह्मण अधिक थे और मुस्लिम जमींदारों को चौधरी कहा जाता था जो पूर्व में सम्भवतः कुर्मी थे। जालिम जमींदार ज्यादातर हिन्दू ही थे न कि मुस्लिम। बिसनाथ ने जमींदारी व्यवस्था के माध्यम से मध्यकालीन व्यवस्था को देखा और महसूस किया था। जिसका उल्लेख डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने इस प्रकार किया है– ''बिस्कोहर का क्षेत्र बहुत पिछड़ा हुआ था। जब बिसनाथ अपने बचपन को याद करते हैं तो लगता है कि घोर मध्यकाल देख चुके हैं। गाँव में कुछ लोग ऐसे थे, जिन्होंने बहुत दिनों तक ट्रेन नहीं देखी थी। उस मध्यकालीनता का सबसे बड़ा लक्षण और प्रमाण ये था कि क्षेत्र के जमींदार बहुत निरंकुश, उद्दण्ड और क्रूर होते थे।''[7] गाँव के आर्थिक, सामाजिक विकास का आधार किसान होता है। इनके फसलों का नुकसान गाँव के सम्पन्नता में बाधक होता है। सिर्फ गाँव ही नहीं बल्कि राष्ट्र के विकास में भी बाधक है। डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने किसानों के दर्द को बयाँ करने में नहीं हिचके हैं। उन्होंने देखा था कि कुंजड़े सब्जी नष्ट, बर्बाद होने पर किस प्रकार छाती पीट कर रोते थे। डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपने सजातियों के संदर्भ में बड़ा तिक्त/कटु शब्दों का प्रयोग किया तथा इन्हें परान्नभोजी जाति कहकर सम्बोधित किया है– उद्धरण द्रष्टव्य है– ''लेकिन भोजन के लिए जितनी अधिक आतुरता, लालसा और बेचैनी ब्राह्मणों में थी उतनी किसी में नहीं। यह परान्न भोजी जाति, इसके लिए विख्यात और कुख्यात थी। बाक़ायदा हिसाब लगाए रखते थे कि यह आदमी मरने वाला है, जब मरेगा तो इसकी तेरही कब होगी। श्राद्ध के दिनों में ब्राह्मण विशेष रूप से प्रसन्न रहते थे। कहावत है कि 'जेठ में चमार और श्राद्ध में ब्राह्मण की इज्जत बहुत बढ़ जाती है।''[8] यह डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी के रचना की सबसे बड़ी विशेषता है कि गलत का विरोध करने के लिए वे तनकर खड़े हो जाते हैं फिर सामने

कोई भी हो। ब्राह्मण समाज की संकीर्णता को प्रस्तुत करने में तनिक भी नहीं सकुचाये हैं। उनके मध्य व्याप्त छुआछूत, दरिद्रता, निकृष्टता आदि का विशद रूप में वर्णन किया है।

आजादी से पूर्व गाँव–जवार की स्थिति का वर्णन आकर्षक है। बिस्कोहर के दुकानदारों के यहाँ जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस के फोटो या चित्र टँगे रहते थे। गाँव क्रान्तिकारियों के छिपने के लिए सुरक्षित ठिकाना होता था इनके आगमन से गाँवों में भी स्वाधीनता लौ जलने लगी थी। कांग्रेस की पैठ शहर से गाँव में भी हो गई थी। बिसनाथ ने स्वाधीनता के भाषण को गाँव में ही सुना था। मुस्लिम लीग भी धीरे–धीरे मुस्लिम समाज में पैठ बनाना शुरू कर दिया था। जिससे गाँव में साम्प्रदायिकता पनपने लगी थी।

गाँव–जवार की अपनी भाषा, बोली–बानी होती है। डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने इस स्मृति आख्यान में इस ओर भी ध्यान आकृष्ट कराया है। व्यक्ति के शारीरिक विशेषताओं के आधार पर नामकरण किया जाता था यह प्रचलन आज भी गाँवों में सामान्यतः दिख जाता है। उदाहरण के लिए– काले लड़के को कलुआ, गोरे लड़के को गोरका आदि सामान्य नामकरण आज भी प्रचलन में है। अश्लील शब्दों का बहुतायत में और आम बोल–चाल के रूप में होता था। बकौल डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी– ''अश्लील शब्दों का प्रयोग इतने खुले रूप में, धड़ल्ले से होता था कि उनका सारा अश्लीलत्व ही क्षरित हो गया था। वे अश्लील न रहकर सामान्य शब्द हो गये थे।''[9] 'अम्मा–दादा' अध्याय में डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपने माता–पिता को याद किया है जिनके याद के बगैर बचपन की यादें अधूरी सी थी। इनके बहाने उन्होंने अपनी अभावग्रस्ता, गरीबी और जीवन संघर्षों को बखूबी लिखा है। इसी में गाँव के संयुक्त परिवार की विशेषताओं को भी रेखांकित किया। लिखा है कि संयुक्त परिवार में अपने बेटे–बेटी का प्यार जताने की रीति नहीं थी। इनका देखभाल परिवार के अन्य सदस्य बाबा या काका ही करते।

अन्तिम अध्याय में उन्होंने गाँवों में होने वाले परिवर्तन को दर्शाया है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँव आजादी के बाद बड़ी तेजी से बदले हैं। रेलवे अब आम बात है। चुने जाने का अधिकार और चुनने के अधिकार ने राजनीतिक रूप से सशक्त बनाया। सामाजिक परिवर्तन के रूप में छुआछूत, ऊँच–नीच का अभाव दिखने लगा था। बिजली के खम्भे आ गये थे। अवगुणों का भी निरूपण किया है जैसे– आधुनिकता ने गाँव के युवकों को नशे का आदी बनाया दिया था, नशाखोरी, जुआखोरी, चोरी, डकैती, हत्याएँ आदि आये दिन कहीं–न–कहीं देखने या सुनने को मिल जाते। अन्त में डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है– 'लेकिन स्कूल, अस्पताल खुल रहे हैं। टेलीफोन आ गया है। दलित, पहले से ज्यादा सीना तानकर चल रहे हैं। उनकी आर्थिक स्थिति भी सुधर रही है।''[10] कुल मिलाकर डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने इस संस्मरण ग्रन्थ 'नंगातलाई का गाँव' के माध्यम से शहरी पाठक को गाँव की यात्रा करा दी है। बिस्कोहर केवल डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी के गाँव का प्रतिनिधित्व नहीं करता है बल्कि पूर्वी उत्तर प्रदेश के समूचे गाँव का प्रतिनिधित्व करता है। यह ग्रन्थ साबित करती है कि डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी को अपने गाँव–ज्वार से बेपनाह मुहब्बत है।

I UnHk; %

1. नंगातलाई का गाँव, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2012, पृ0 13.
2. नंगातलाई का गाँव, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2012, पृ0 18.
3. नंगातलाई का गाँव, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2012, पृ0 21.
4. नंगातलाई का गाँव, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2012, पृ0 52.
5. नंगातलाई का गाँव, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2012, पृ0 59.
6. वही, पृ0 75.
7. नंगातलाई का गाँव, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2012, पृ0 77.
8. नंगातलाई का गाँव, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2012, पृ0 91.
9. नंगातलाई का गाँव, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2012, पृ0 117.
10. वही, पृ0 144.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 137-139

thouefä % ljy ,oa okLrfod efä

Mejun jktu*

इक्कीसवीं सदी के मानव के लिए खासकर दार्शनिक वर्ग के लिए मोक्ष की प्राप्ति के लिए आत्महत्या की घटना झकझोरने वाली है साथ ही ऐसी घटना वैचारिक मंथन को मजबूर करने वाली होती है कि क्या जीवन की समाप्ति के बाद मोक्ष मिलता है? कैसा है यह मोक्ष? जो कुछ लोगों को जीवन का अंत करने को मजबूर कर देता है? आखिर इसका आधार क्या है? इसका स्वरूप क्या है, इन्हीं प्रश्नों के आलोक में हमने दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा की गई मोक्ष की मीमांसा को समझने का प्रयास किया है ताकि लोगों को इसकी वास्तविकता से रूबरू कराया जा सके एवं उन्हें सही मार्ग की ओर अग्रसर किया जा सकें।

मोक्ष क्या है?

नैतिकता के संदर्भ में मोक्ष निः श्रेयस है अर्थात् चरमलक्ष्य है।

विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों में मोक्ष का विचार कुछ इस प्रकार हैं।

d½ pkokd n'kZu % वृंहस्पतिसूत्र में कहा गया है – ''मरणम् स्व अपवर्ग''। यहाँ आत्मा नामक किसी सत्ता को स्वीकार्य नहीं किया गया है।

[k½ tSu n'kZu % जैन दर्शन सात प्रकार के मूल तत्व माने हैं यथा जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष। जीवन का पुदगलों से वियोग ही मोक्ष है। यह दो प्रकार का है–

(क) भाव मोक्ष (ख) द्रव्य मोक्ष।

d½ Hkko eks{k % (जीवन मुक्ति), यहाँ जीव मूलतः कर्म पुदगलों से मुक्त होकर सर्वज्ञ एवं सर्वश्रष्टा होकर मुक्ति का अनुभव करता है।

यह अवस्था चार धातीय कर्मों के (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय) नाश के पश्चात् आता है।

[k½ æ0; eks{k ¼fongefä½ % चार अधातीय कर्मों (आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय) का भी नाश होने पर द्रव्यमोक्ष प्राप्त होता है, फिर वह कर्मों के संसर्ग, से उत्पन्न (आत्मा) की विभिन्न अवस्थाओं से मुक्त हो जाता है।

जैन दर्शन के विपरीत बौद्ध दर्शन शाश्वत द्रव्य के रूप में आत्मा की सत्ता में विश्वास नहीं करता फिर भी वह मोक्ष को ही मनुष्यों के जीवन का अंतिम ध्येय मानता है जिसे निर्वाण कहा गया है। निर्वाण लोभ, घृणा तथा भ्रम से रहित, पूर्ण शांति एवं आनंद की अवस्था है। बौद्ध दर्शन में भी जीवनमुक्ति एवं विदेहमुक्ति की बात की गयी है।

न्याय एवं वैशेषिक दर्शन के अनुसार दुःख का आत्यांतिक विनाश ही अप वर्ग अथवा मोक्ष हैं। ध्यान देने योग्य बताते हैं कि इनके अनुसार मोक्ष की अवस्था में आत्मा के दुःखों का ही नहीं बल्कि सभी प्रकार के आनंद से भी मुक्ति मिल जाती है। मोक्ष का यह स्वरूप ''अचेतन'' आत्मा को मानने के कारण है।

सांख्य के अनुसार मोक्ष का अर्थ है पुरुष एवं प्रकृति के भेद का ज्ञान होना। यहां दो प्रकार की मुक्ति को स्वीकार्य किया गया है। (1) जीवनमुक्ति, (2) विदेहमुक्ति विज्ञानभिक्षु के अनुसार, विदेहमुक्ति ही एकमात्र मुक्ति है, सांख्य भी मोक्ष को सुख–दुःख एवं आनंद से परे मानता है। प्राचीन मीमांसा दर्शन में

*शोध छात्र, दर्शन विभाग, पटना विश्वविद्यालय

कहा गया है 'स्वर्ग कामों यजेत' अर्थात् सभी कर्मों का अंतिम उददेश्य है स्वर्ग प्राप्ति, परंतु परवर्ती मीमांसक मोक्ष को सबसे बड़ा कल्याण मानने लगे।

मीमांसा के अनुसार मोक्षावस्था वह अवस्था है, जिसमें आत्मा सभी सुख–दुखः से परे अपने यथार्थ स्वरूप में विद्यमान रहता है। मोक्ष में आनंदनुभूति, मीमांसा को मान्य नहीं है। क्रमारिल ने मोक्ष की परिभाषा करते हुए, कहा है कि–''प्रपंच–संबंधविलयो मोक्ष'' अर्थात् इस प्रपंचमय जगत के साथ आत्मा के संबंध का आत्यंतिक विनाश ही मोक्ष या मुक्ति है।

प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय ''अद्वैत–वेदांत'' मोक्ष या मुक्ति को ही मानव–जीवन का अंतिम लक्ष्य स्वीकार करता हैं। इस दर्शन का केन्द्र बिन्दु ब्रह्म है एवं ब्रह्म के साथ जीव का पूर्ण तादात्म्य ही मोक्ष है। इस तादात्म्य के कारण आत्मा में सत, चित, एवं आनंद तीनों गुण विद्यमान रहता है।

प्रमुख वैष्णव विशिष्टाद्वैतवादी दार्शनिक रामानुजाचार्य के अनुसार सभी प्रकार के कामों तथ अविध ा के विनाश द्वारा जन्म–मरण के इस चक्र और समस्त सांसारिक बंधनों एवं दुःखों से मुक्ति प्राप्त करना ही मोक्ष है। इस अवस्था में में जीव ईश्वर के स्वरूप और गुणों को प्राप्त करके उसके समान हो जाता है, परंतु उसमें उसका लय नहीं होता है।

इस प्रकार विभिन्न भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों के मोक्ष के विचार को देखने वैशेषिक के बाद प्रतीत होता है की ''यहाँ मोक्ष के मत पे सभी एकमत नहीं है। न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, आनंदमुक्त मोक्ष की बात करते हैं। सवाल है आखिर मानव ऐसे निर्जीव मोक्ष के पीछे उन्मुक्त होकर क्यों जाये? सवाल ये भी उठता है की आखिर मोक्ष किसे मिलता है अर्थात् मोक्ष का आधार क्या है? जब हम सभी दार्शनिक विचारों की ओर दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि चार्वाक, बौद्ध, छोड़कर हर सम्प्रदाय ''आत्मा की सत्ता को ''स्वीकार्य करता'' है एवं इसी आत्मा को फिर स्थायी सत्ता मानते हुए ''गीता'' में कहा गया है।

^^okklkfl th.kkfu ;Fkk fogk;
uokfu x`ãfr ujkMijkf.kA
rFkk 'kjhjk.kh fogk; th.kkU;U;kfu
l;kfr uokfu nsghAA**

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को धारण करता है। इस प्रकार भारतीय दर्शन का सामान्य सा सिद्धांत है की आत्मा की सत्ता है एवं आत्मा को ही मोक्ष की प्राप्ति होती है क्योंकि शरीर तो नाशवान है लेकिन आत्मा नहीं किन्तु। सम्पूर्ण भारतीय दर्शन स्थायी आत्मा के मत पर एकमत नहीं हैं।

आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में भी विचारधाराओं में भिन्नता देखने को मिलती है। जैसे न्याय–वैशेषिक के अनुसार–आत्मा स्वभावतः ज्ञानरहित है अर्थात् वह जड़ है एवं इसमें मन के विशेष संयोग से ज्ञान उत्पन्न होता है। मीमांसा भी आत्मा को जड़वत स्वीकारता है, अब यहाँ एक प्रश्न उठता है कि आखिर ऐसी जड़वत आत्मा की मुक्ति की बेचौनी क्यों? एक संदिग्ध तत्वमीमांसीय सत्ता के लिए, जिसका इन्द्रियानुभव से ज्ञान प्राप्त नहीं होता है उसके लिए अपने बहुमूल्य जीवन का बलिदान कहां तक युक्तिसंगत हैं?

मोक्ष जीवन का अन्त नहीं:–भरतीय दर्शन में जीवन मुक्ति की भी चर्चा की गई है। अर्थात् जीवन के रहते हुए भी आप मुक्त् हो सकते हैं फिर जीवन का अन्त क्यों?

बौद्ध दर्शन् जो की जीवनमुक्ति की बात करता है, जहां दुःख से मुक्ति तथा पूर्ण आनंद की प्राप्ति को ही निर्वाण माना गया है। धम्मपद के अनुसार निर्वाण लोभ, घृणा तथा भ्रम से रहित पूर्ण शांति एवं आनंद की अवस्था है और यह अवस्था जीव अपने जीवनकाल में ही प्राप्त कर सकता है। व्यवहारिक . ष्टि से देखें तो यह व्यवहारिक प्रतीत होता है इसके लिये बौद्ध दर्शन कहता है की चार आर्य सत्यों को जान लेना एवं उसके अनुसार आचरण कर आप निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं।

वहीं वेदांत के अनुसार जीव जो स्वाभावतः विशुद्ध चौतन्यस्वरूप तथा मुक्त है, अविद्या के कारण अपने वास्तविक स्वरूप को भूल कर सांसारिक बंधनों में आबद्ध हो जाता है और अनेक प्रकार के दुःख भोगता है और स्वार्थ, लोभ मोह, ईर्ष्या आदि से ग्रस्त होकर नानाविध पाप, कार्य करता है, फिर सवाल है मोक्ष कैसे संभव है? वेदान्त दर्शन के अनुसार ''ब्रह्म–ज्ञान'' द्वारा ही मुक्ति संभव है अर्थात् जीव को यह पता चल जाना की वह ''ब्रह्म ही है'' यही मुक्ति है, यह कैसे संभव है? वेदांत इसके लिये कहता है–

अधिकारी तु विधिवदधीतवेदवेदाङ्त्वेनापाततोऽधिगताखिलवेदार्थोऽस्मिन जन्मनि जन्मानतरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरः नित्यनैमितिकप्रायश्चितोप्रासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिल कल्मष्तया नितान्त निर्मलस्वान्तः साधन चतुष्टय सम्पन्नः प्रमाता''।

अर्थात् ब्रह्मज्ञान का अधिकारी वह है जिसने वेदों एवं वेदांगों का विधिपूर्वक अध्ययन करके समस्त वेदार्थ को सामान्य रूप से समझ लिया है, तथा काम्य और निषिध कर्मों का परित्याग करके नित्य–नैमितिक–प्रायश्चित–उपासना कर्मों के अनुष्ठान से समस्त पापों के दूर हो जाने के कारण जिसका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल हो गया है और जो साधन चतुष्टय सम्पन्न हो।

साधन चतुष्टथ सम्पन्न अर्थात् नित्यानित्यवस्तुविवेक–अर्थात् नित्य (आत्मा) तथा अनित्य सांसारिक वस्तुओं में अंतर को जानना।

इहामुत्रार्थफलभोगविराग इस लोक एवं उस लोक (स्वर्गलोक) के भोगों की कामना का परित्याग करना।

'kekfn"kVd lEifÙk % साधक को शम, दम, समाधान, उपरति एवं तितिक्षा इन छह साधनों का प्रयोग करना चाहिए।

eqe{kRo % अर्थात् ''मोक्ष के अभिलाषी'' को श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन से पूर्ण होना चाहिए।

इस प्रकार यहां देखते हैं कि बौद्ध एवं वेदांत दर्शन ''सदेहमुक्ति ६ निर्वाण'' के लिये अर्थात् ईर्ष्या, द्वेष से ऊपर उठकर आत्मलाभ के लिये अष्टांगिक मार्ग एवं श्रवण, मनन, निदिध्यासन जैस व्यवहारिक मार्ग का रास्ता दिखाया गया है। हेगल के शब्दों में कहा जाय तो "Die to Live" अर्थात् अपनी वासनाओं, तुच्छ इच्छाओं के दमन द्वारा ''आत्मविकास'' ही मुक्ति है।

fu"d"k % मानव जीवित रहते ही मुक्तिध्मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इसके लिये रास्ते बताये गये हैं, लेकिन खुद के जीवन को ''समाप्त करना'' पलायनवादी संस्ति है और कदाचित भारतीय दर्शन् यह शिक्षा नहीं देता है।

lUnHkZ %

1. डॉ0 वेद प्रकाश वर्मा, ''धर्म दर्शन की मूल समस्याएँ (दिल्लीः 'हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, 2008)।
2. डॉ0 रमेन्द्र, मैं हिन्दू क्यों नहीं और मैं बुद्धिवादी कैसे बना'' (पटना, बुद्धिवादी फाउंडेशन, 2001)।
3. डॉ0 आद्याप्रसाद मिश्र, ''वेदान्तसारः, ''(इलाहाबाद अक्षयवट प्रकाशन, 2007)।
4. डॉ0 प्रवेश सक्सेना, भारतीय दर्शनों में क्या है? (दिल्ली, हिन्दूलॉजी, बुक्स, 2012)।
5. डॉ0 अशोक कुमार वर्मा, नीतिशास्त्र की रूपरेखा, (दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास, 2009)।
6. उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन, (लखनऊ, प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, 1957).

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 140-143

Hkkjrh; vk[;ku dh fo'k"krk,¡ vkj ^gfj;k gjD;wyht dh g[jkuh*

iou dqekj b.'oj*

भारतीय रचना–परंपरा में आख्यान का विशेष स्थान है। आख्यानों के मूल रूप की अभिव्यक्ति ऋग्वेद के मन्त्रों में मिलती है। ऋग्वेद के भीतर 30 आख्यानों का स्पष्ट निर्देश किया गया है (वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ 269)। ऋग्वेद के अनेक आख्यान ब्राह्मणों, उपनिषदों, सूत्र–ग्रन्थों, रामायण–महाभारत तथा विभिन्न पुराणों में विकसित होते दिखाई देते हैं।

आख्यान शब्द की व्युत्पत्ति– "आख्यायते अनेनेति आख्यानम्" है (हिन्दी साहित्य कोश; भाग–1, पृष्ठ 75)। सामान्य अर्थ में इसका प्रयोग कथन, निवेदन, उक्ति, कथा, कहानी, प्रतिवचन के लिए किया जाता है।

पारंपरिक आख्यान की सामान्य विशेषताओं की बात करें तो इसकी कथा कल्पित या ऐतिहासिक दोनों होती थी। आख्यान सर्ग, उच्छ्वास आदि में विभाजित होता था। आख्यान का वक्ता नायक स्वयं भी होता था और कोई और भी। लेखक मुख्य कथा से पहले पूर्वपीठिका का निर्माण करता था। इसकी विषय वस्तु अपहरण, युद्ध, वियोग, प्रकृति–वर्णन आदि होता था। आख्यान सामान्यतः अपने शिल्प में महाकाव्य या महावृतांत का निर्माण करते थे।

परंतु आधुनिक जीवन शैली की अभिव्यक्ति में पारंपरिक आख्यान शैली सक्षम साबित नहीं हुई। इसके लिए आधुनिक आख्यान की आवश्यकता सक्षम रचनाकारों ने महसूस की। इसी का परिणाम हुआ कि लघु आख्यानों में विशृंखलित उपन्यास की रचना आरंभ हुई। आधुनिक कालया आधुनिकता के दबाव में भारत में आख्यान की जो एक दूसरी परंपरा निर्मित–विकसित हुई, मनोहर श्याम जोशी उस परंपरा के अग्रणी कथाकार साबित हुए। महावृतांतों की विदाई से उपजे शून्य को भरने के लिए मनोहर श्याम जोशी ने आख्यान–शैली को चुना। आख्यान दरअसल इतिहास के महावृतांतों को कथा में कहने वाला रूपबंध ही तो है। मनोहर श्याम जोशी अपने समय के जिस सच को अपने उपन्यासों में कहना चाहते थे, उसे घटना, चरित्र और भाषा के पारंपरिक संघटन में व्यक्त करना संभव नहीं था। उपन्यास के पारंपरिक रूपबंध की अपर्याप्तता ही उन्हें आख्यान की ओर ले गई, जिसमें कल्पना और हकीकत, संभव और असंभव, झूठ और सच के विभाजन घुल–मिल जाते हैं।

बकौल मनोहर श्याम जोशी हम हिन्दी वालों की स्थिति ऐसी है कि "हम यथार्थ से घबराते रहे पर लोक आख्यान शैली से भी परहेज करते रहे। हमने बीच का रास्ता चुना– आदर्शोन्मुख यथार्थवाद। यानी न आदर्शवादी न यथार्थवादी। हमारे यहाँ संस्कृत का घोटा लगाए पंडित और मार्क्स का घोटा लगाए तथाकथित क्रांतिकारी दोनों की स्वीकृति इसे प्राप्त है। यदि कोई लेखन सेक्स की, वेश्याओं की, हिजड़ों की, समलैंगिकों की बात लिख दे तो उसे दोनों खेमा अस्वीकृत कर देगा।" (बातें–मुलाकातें : आत्मपरक–साहित्यपरक, पृष्ठ 95)। और कमोबेश यही स्थिति मनोहर श्याम जोशी के साथ भी रही है कि उन पर दोनों खेमों के साहित्यकारों ने बहुत कम कलम चलाई है, यानी अस्वीकृत करने का प्रयास। अब तक ऐसा एक भी लेख इस शोधार्थी को प्राप्त नहीं हुआ, जिसमें 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' का भारतीय आख्यानात्मक दृष्टि से अध्ययन किया गया हो।

*शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

इस स्थिति में मनोहर श्याम जोशी के लेखन को समझने का सबसे बड़ा हथियार उनका अपना लेखन और उनके दिए साक्षात्कार ही हैं। उन्होंने अपने एक साक्षात्कार में कहा कि "परिस्थितियाँ 'ब्लैक ह्यूमर' यानी तिलमिला देने वाले, दहला देने वाले या उल्टी कर देने की इच्छा जगा देने वाले हास्य–व्यंग्य की माँग कर रही है (बातें–मुलाकतें : आत्मपरक–साहित्यपरक, पृष्ठ 86) और मनोहर श्याम जोशी अपनी मंशा में सफल भी होते हैं; जब बटरोही ने 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' उपन्यास को धारावाहिक रूप में प्रकाशित करने वाली पत्रिका 'इंडिया टुडे' के संपादक को लिखा– 'इसे पढ़कर मुझे उल्टी हो गई, बंद कीजिए।' (गप्प का गुलमोहर : मनोहर श्याम जोशी, पृष्ठ 347)।

'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' की कहानी को उसकी बिरादरी के लोगों ने अपनी बिरादरी के ही छोटे–मोटे पत्रकार को सौंप दिया। जो इस उपन्यास में 'मैंने' या 'हम' के रूप में उपस्थित है। मनोहर श्याम जोशी के पहले टी.वी. धारावाहिक 'हम लोग' को भी देखिए तो उसमें भी एक 'नैरेटर' (अशोक कुमार) उपस्थित है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मनोहर श्याम जोशी अपने उपन्यास 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' में भारतीय आख्यान की विशेषता यानी एक 'नैरेटर' की मौजूदगी को स्वीकार करते हैं।

भारतीय कथा परंपरा या आख्यान परंपरा में मूल कथा की पूर्वपीठिका या भूमिका या प्रस्तावना कथा का ही एक अंश होती है (और अंत में प्रार्थना, थर्ड डिग्री, पृष्ठ 80)। इस कसौटी पर अगर हम 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' को कसने का प्रयास करें तब भी हमें निराशा हाथ नहीं लगेगी। 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' कुल छब्बीस भागों में बंटा है, जिसमें शुरुआती दो भाग को पूर्वपीठिका ही माना जा सकता है, क्योंकि वास्तविक कहानी की शुरुआत तीसरे अंश से होती है, जब हरिया छुट्टी वाले दिन 'सोशल विजिट राउण्ड' पर निकलता है। ठीक इसी तरह की स्थिति हम 'क्याप' उपन्यास में भी पाते हैं। वहाँ भी मनोहर श्याम जोशी शुरुआती दो अंश का उपयोग आख्यान की पूर्वपीठिका के निर्माण में खर्च करते हैं।

भारतीय आख्यान का एक और विशिष्ट लक्षण 'कथासरितसागर' में अद्‌भुत विन्यास के साथ मिलता है। "इसमें एक मुख्य या बड़ी कथा के कलेवर में उसके मुख्य संदेश को समर्थित करने वाली अनेक अन्तःकथाएँ, उपकथाएँ या प्रासंगिक कथाएँ, साक्ष्य, उदाहरण प्रामुक्ति अथवा प्रमाण की तरह जुड़ी हुई हैं और जिसमें बयाँ के घोसले के भीतरी भाग की नाईं अनेक वेश्य, वेश्यान्त, प्रकोष्ठ और प्रकार है।" (कथासरितसागर, तृतीय खण्ड, पृष्ठ 6)। मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' को भी देखें तो यह हरिया की हैरानी के साथ पिरूली कैंजा की उपकथा, हैरी–स्मिथ की साक्ष्य पूर्ण कथा, धरणी धर (धारी) पाण्डे के बेटे अतुल कुमार पाण्डे की अंतःकथा, ये सभी कथाएँ एक–दूसरे से इस प्रकार जुड़ी है कि बयाँ के घोसले जैसे प्रकार व प्रकोष्ठ का निर्माण करती है। इसी को इंगित करते हुए सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' कहते हैं, "आख्यान का अगर कोई विशिष्ट रूपाकार है जिसे भारतीय प्रतिभा की अनन्य उपज माना जा सके तो वह शृंखलाबद्ध कथा या कहानी के भीतर कहानी ही है (सर्जना और संदर्भ, पृष्ठ 193)।

अब आगे इसी शृंखलित कथा की विशेषता बताते हुए 'अज्ञेय' लिखते हैं "यह व्यवहार और व्यावहारिक ज्ञान की भूमि लोकजीवन में खोजती और पाती हैः उस ठोस, 'सयाने' सफलतापरक (प्रैग्मैटिक) चलती का नाम गाड़ी कोटि के व्यावहारिक ज्ञान की, जिसके सहारे हमारा दैनंदिन जीवन चलता है (वही, पृष्ठ 194)। इस कसौटी पर भी 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' को कसने का प्रयास करें, तब यह विशेषता भी हमें देखने को मिल सकती है। किस प्रकार एक कुमाऊँनी समाज आकर दिल्ली में बस जाता है, किस प्रकार वे एक–दूसरे से जुड़े हैं, किस प्रकार राय साहब के गुजरने पर 'दस दिनिया' लोग आते हैं। एक और बात लोकजीवन की, जिसमें समाज में सभी का उसके गुण के अनुसार 'उपनामीकरण' कर दिया जाता है। जैसे हरिया के पिता गिरवाण दत्त तिवारी का जवानी में गिरुआ 'गौहरजान' उपनाम था क्योंकि वे काफी रंगीन तबीयत के थे। इसी तरह हरिया चूँकि घुड़सवारी की पोशाक पहनकर 'हरक्यूलीज' रूपी घोड़े की सवारी करता था इसलिए उसका नाम 'हरिया हरक्यूलीज' पड़ गया। इसी प्रकार लाजपत नगर में रहने वाले मुरलीधर पाण्डे का उपनाम मुरलिया 'हाफपैण्ट' रख दिया गया, क्योंकि वह स्कूल के दिनों

में शाखा जाया करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि हर उपनाम के पीछे एक कहानी, एक कथा, एक गप्प या बतरस की परंपरा शामिल है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "कथा और आख्यायिका में कवि कल्पना के बल पर अपनी वास्तविक दुनिया से भिन्न एकदम नई दुनिया बना सकता है (साहित्य–सहचर, पृष्ठ 145)। यह कार्य मनोहर श्याम जोशी ने 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' में 'गूमालिंग' के माध्यम से किया है। 'गूमालिंग' की दुनिया एकदम नई दुनिया ही तो है। जिसका एक निश्चित अर्थ भी नहीं है, अंश छह में हरिया इसका दो अर्थ लगाता है– पहला गुमा हुआ लिंग और दूसरा गू का बना हुआ लिंग। वहीं सोलहवें अंश में कैप्टेन ट्रैवर मर्डिथ के अनुसार "'गूमालिंग' हिन्दुस्तानी शब्द नहीं है और न ही स्थानिक बोली या तिब्बती भाषा का शब्द है। यह भारत और तिब्बत की सीमा के तांत्रिक सिद्ध पुरुषों की अपनी कोई संकेत भाषा होती है। ...जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ गूमालिंग का अर्थ 'मैं ही वह दूसरा' है।"

कुल मिलाकर मनोहर श्याम जोशी 'गूमालिंग' के माध्यम से एक बिंब का निर्माण करते हैं, एक मिथक का निर्माण करते हैं। हमारे भारतीय आख्यान परंपरा के कथाकार भी मिथक के निर्माण के साथ मिथकों का अपने लेखन में प्रयोग भी किया करते थे। जैसे मनोहर श्याम जोशी ने यूनान के मिथक 'हरक्यूलीज' का प्रयोग अपने उपन्यास में किया है। उन्होंने अपने लेखकीय शक्ति से 'हरक्यूलीज' और 'हरिया' के नसीब को एक दूसरे से जोड़ दिया है, इन दोनों के नसीब में केवल प्रायश्चित लिखा है। जैसे देवताओं की रानी 'हेरा' के शाप से विक्षिप्त 'हरक्यूलीज' अपनी ही पत्नी, बेटी और बेटे को मार डालता है, फिर अगले बारह वर्ष तक इस पाप से मुक्ति के लिए कठोर परिश्रम को अभीशप्त होता है। वैसा ही जीवन हरिया ने भी पाया है और तो और 'हरिया' को पता भी नहीं है कि उसका पाप क्या है, फिर भी वह आजीवन बिरादरी की मुक्ति के लिए कष्ट सहते हुए आइने के उस पार चला जाता है।

रुद्रट (दसवीं शती) के अनुसार, "कथाकार को कथा के आरंभ में कथा लिखने का उद्देश्य बताना चाहिए" (हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ 61)। और यह कार्य मनोहर श्याम जोशी ने अपने उपन्यास 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' में बखूबी निभाया है। कालचक्र के घूमने और बुजुर्ग पीढ़ी के गुजरने के साथ ही बिरादरी के मन में यह बात घर कर गई, कि इस टी.वी. के युग में हरिया की हैरानी बच पाएगी? इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए बिरादरी ने यह कार्य बिरादरी के ही छोटे–मोटे पत्रकार को सौंप दिया और वह छोटा–मोटा पत्रकार और कोई नहीं मनोहर श्याम जोशी या 'नैरेटर' स्वयं था।

विदेशी विद्वान पैंजर ने सोमदेव के 'कथासरितसागर' की विशेषता बताते हुए रेखांकित किया है "इसमें षड्यंत्र, छल–कपट, हत्या, पियक्कड़, जुआरी, वैश्या, बिट और कुस्टनी सभी का वर्णन है" (प्राक्कथन, कथासरितसागर, द्वितीय खण्ड)। मनोहर श्याम जोशी का उपन्यास 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' भी तो युगीन मक्कारी, धूर्तता का पर्दाफाश करता चलता है। हाँ, यहाँ कहने के तरीके में जरूर हास्य–व्यंग्य निहित है। मनोहर श्याम जोशी ने कहा भी है कि "मेरी रचनाओं में निराशा और आक्रोश की भावना सिर के बल खड़ी होकर हास्य–व्यंग्य बन जाती है" (बातें–मुलाकातें, पृष्ठ 86)। 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' के कुछ अंश द्रष्टव्य हैं–

1) उसने गँवार विधवा के दरबारी व्यभिचारिणी हो जाने और दरबारी व्यभिचारिणी के भिक्षुणी हो जाने को प्रभुलीला के खाते में डाला। (पृष्ठ 66)
2) इसके बाद तो गिरबाण देसी रजवाड़ों और फिरंगी अफसरों के बिलास–दरबार में स्त्रियों को भोगते हुए और पुरुषों द्वारा भोगे जाते हुए तेजी से प्रगति करता चला गया। (पृष्ठ 70)
3) गिरबाण और उसके विलापक्षी साथी लोप को एकमात्र गुण, लाभ को एकमात्र मूल्य, भोग को एकमात्र उद्देश्य और वाणिज्य–व्यापार को एकमात्र धर्म के रूप में प्रतिष्ठित कर दिखाते हैं। (पृष्ठ 70)
4) यह लेखक कुछ भी न छिपाने के लिए उलटे अपने मन से भी बहुत कुछ जोड़कर छपा देने के लिए बदनाम था। (पृष्ठ 120)

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' समाज के विभिन्न व्यभिचारों पर व्यंग्यात्मक प्रहार करता है।

मनोहर श्याम जोशी का उपन्यास 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' एक तरह का 'बायोग्रेफिकल फिक्शन' है और हमारे यहाँ चरित कथा की तो परंपरा ही रही है। इसके अलावा जैसे हम पंचतंत्र की कहानियों में देखते हैं कि अगली कहानी की भूमिका या पृष्ठभूमि पिछली कहानी के आखिर में ही तैयार कर दी जाती है, वैसी ही 'इंटर कनेक्टिवीटी' (अंतःसम्बद्धता) हमें 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' के भी शिल्प में देखने को मिलती है। जैसा कि अकसर आख्यानों में देखने को मिलता है कि कथा पूर्वदीप्ति में चली जाती है, वैसा कई बार 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' उपन्यास में भी देखने को मिला है।

समग्रतः मनोहर श्याम जोशी अपने उपन्यास 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' में जिस शिल्प का निर्माण करते हैं, उसे 'नॉन लिनियर नैरेटिव' की संज्ञा दी जा सकती है, जिसके लिए पश्चिम के आलोचकों ने 'उत्तर आधुनिक' शब्द गढ़ा है। जो हमारे भारतीय आख्यान परंपरा में पहले से ही मौजूद रहा है, जो हमारे लिए बिल्कुल नया नहीं है।

lUnHkZ %

vk/kkj xzUFk %

1. जोशी, मनोहर श्याम : हरिया हरक्यूलीज की हैरानी; राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2008.

lgk;d xzUFk %

1. उपाध्याय, आचार्य बलदेव : वैदिक साहित्य और संस्कृति; शारदा संस्थान, वाराणसी, 2010.
2. जोशी, मनोहर श्याम : बातें–मुलाकातें : आत्मपरक–साहित्यपरक; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014.
3. प्रकाश, उदय : ...और अंत में प्रार्थना; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006.
4. मलिक, कुसुमलता : गप्प का गुलमोहर : मनोहर श्याम जोशी; स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012.
5. झा, जयशंकर, 'मुक्त', प्रफुल्लचन्द्र ओझा (अनु.) : कथासरितसागर (तृतीय खण्ड); बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1998.
6. 'अज्ञेय', सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन : सर्जना और संदर्भ; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2011.
7. द्विवेदी, हजारीप्रसाद : साहित्य–सहचर; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005.
8. द्विवेदी, हजारीप्रसाद : हिन्दी साहित्य का आदिकाल; बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1980.
9. सारस्वत, पं. केदारनाथ शर्मा (अनु.) : कथासरितसागर (द्वितीय खण्ड); बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 2005.

dks'k %

1. वर्मा, धीरेन्द्र (प्रधान सं.) : हिन्दी साहित्य कोश भाग–1 (पारिभाषिक शब्दावली); ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 2009.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 144-147

tho fofo/krk dk lUnHkZ esa c) dk fopkjksa dh çklfxdrk

jkt iky*

हमारे विश्व में कई पर्यावरणीय समस्याएँ हैं, जिनमें मुख्य रूप से वैश्विक तापमान, ओजोन परत का क्षरण, वनों में कमी, जैवविविधता में निरन्तर कमी, मरुस्थलीकरण, अम्लीय वर्षा और समुद्रीय प्रदूषण आदि। ये समस्याएँ बहुत ही चिन्ताजनक और वर्तमान व भविष्य की जैविकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली अपरिहार्य घटना के रूप में दिखाई दे रही है। इन समस्याओं के समाधान के लिए वैश्विक स्तर पर विभिन्न कदम भी उठाये जा रहे हैं। इन समाधानों या उठाये गये कदमों में मुख्य रूप से तकनीकी विकास और मानवीय गतिविधियों में बदलाव प्रमुख हैं। यद्यपि धर्म या दर्शन अपरोक्ष रूप से तकनीक के स्तर का समाधान दे पायेगा यह अपने आप में बेइमानी होगी फिर भी माननीय कर्मों, मानवीय जीवन शैली, नैतिक मूल्यों और सामाजिक मूल्यों के आधार पर प्रकृति और पर्यावरण के सन्दर्भ में, दृष्टिकोण परिवर्तन करने वाले कारकों को देखा जा सकता है। इसी सन्दर्भ में इस बात का परीक्षण करने का प्रयास करूँगा कि बौद्ध दर्शन किस प्रकार पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में दृष्टि प्रदान कर सकता है।

पर्यावरणीय समस्याएँ जड़ तथा मानसिक दोनों स्तर पर सभी जैविक प्राणियों के लिए दुःख दे रही हैं, और बौद्ध दर्शन का प्रमुख उद्देश्य ही दुखों का निवारण करना है। बौद्ध दर्शन में जो सिद्धान्त दिये गये हैं, उनमें पर्यावरण व प्रकृति आपस में कारण व कार्य के रूप किस प्रकार सम्बन्धित है? या कर्म सिद्धान्त के आधार पर पुनर्जन्म की अवधारणा चार आर्य सत्यों और बोधिसत्व के आधार पर पर्यावरण की समस्याओं को, जीवन शैली, अभ्यास और कर्मो के आधार पर पर्यावरणीय क्षति को रोका जा सकता है या नहीं।

पर्यावरण की परिभाषा को लिया जाये तो इस प्रकार है–

निकोलस के अनुसार ''वाह्य दशाओं तथा प्रभावों का योग पर्यावरण है जो प्रत्येक प्राणी पर प्रभाव डालता है।''[1] एक अन्य परिभाषा जो डगलस एवं हालैण्ड ने दी है ''पर्यावरण उन सभी बाहरी शक्तियों एवं प्रभावों का वर्णन करता है, जो प्राणी जगत के जीवन, स्वभाव, व्यवहार, विकास और परिपक्वता को प्रभावित करती है।''[2]

बुद्धचरित में पृथ्वी की महिमा पर्यावरणीय दृष्टिकोण से प्राकृतिक संसाधनों का बहुत ही सचित्र वर्णन किया गया है।''

okrk co% Li'kZ[kk eukKk fn0;kfu okLkk;oikr;Urk%A
l;% l ,okH;f/kdi pUr'k tToky lkE;kfp juhfjrkvfXu%AA[3]

अर्थात् वायु वातावरण को आनन्दित करती है और स्पर्श करती है। सूर्य की चमक से पृथ्वी तापित हो जाती है और चारों ओर प्रकृति अपना सुन्दर रूप दिखा रही है। इस प्रकार से बुद्धचरित में पर्यावरण और प्रकृति की महत्ता का उल्लेख किया गया है।

बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त किस प्रकार से पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं। इसमें मुख्य रूप से लेख में सिद्धान्तों की व्यवहारिकता के माध्यम से मनुष्य के जीवन शैली व कर्मों में बदलाओं की परीक्षा करने का प्रयास है–प्रथम सिद्धान्त बोधिसत्व है, यह एक केन्द्रीय सिद्धान्त

*शोधार्थी, दर्शन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

है। बोधिसत्व बौद्धदर्शन (महायान) धर्म का नैतिक आदर्श है जिसमें स्वार्थवाद और आत्मकेन्द्रियता का निषेध करके लोक कल्याण पर बल दिया गया।

पर्यावरणीय दृष्टि से देखा जाये तो बोधिसत्व का महत्व वर्तमान के सन्दर्भ में भी देखा जा सकता है बोधिसत्व के मुख्य रूप से दो स्वरूप हैं– बोधिचित्त एवं बोधिचर्या। बोधिचर्या के अन्तर्गत ही षट्पारमिताओं का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है–दान, शील, शान्ति, वीर्य, ध्यान और प्रज्ञा का अभ्यास। इन्हीं पारमिताओं को यदि हम वर्तमान परिदृश्य में पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के रूप में देखने का प्रयास करें तो सबसे पहले दान को ले। इसके अन्तर्गत हम एक ऐसी व्यवस्था देना या पर्यावरण से सम्बन्धित कानूनों को लोगों को बताना, और पर्यावरण और मानवता के लिए कुछ उचित कार्य करना जिसमें किसी प्रकार का लोभ न हो। इसके अलावा दान के तहत पर्यावरणीय आन्दोलन को कुछ किया जा सकता है ऐसे शिक्षण संस्थानों का निर्माण करने के लिए धन देना जो पर्यावरण से सम्बन्धित शिक्षा प्रदान की जाए और ऐसे चारागाहों, अभ्यारण का निर्माण करवाना, तकनीकी सहयोग प्रदान करना जिससे वैश्विक स्तर पर कार्बन उत्सर्जन व अन्य विषैली गैसों को नियंत्रित किया जा सकता है। विशेषकर विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को धनराशि उपलब्ध करना जिससे वे पर्यावरणीय प्रदूषण के कुप्रभाव से उत्पन्न नुकसानों को कम किया जा सके।

शील, पारमिता का अर्थ है बौद्ध दर्शन में किसी की हत्या न करना व चोरी न करना। हत्या का सन्दर्भ वर्तमान के परिदृश्य में ले तो कई प्रकार से पर्यावरण को नुकसान हो रहा है। जंगलों की कटाई से वहाँ की जीव और वनस्पति दोनों मर जाते है और भोगविलासिता की सामग्री बनाने में भी कई ऐसे जीवों की हत्या करनी पड़ती है जो पर्यावरणीय दृष्टिकोण से उचित नहीं है व शील पारमिता इसकी अनुमति नहीं देगा। शान्ति, वीर्य और ध्यान पारमिता में बिना विघ्न पहुँचाए हुए समस्याओं का समाधान करना। प्रज्ञा के तहत विवेक प्राप्त करना। पर्यावरणीय दृष्टि से ऐसा ज्ञान प्राप्त करना जो ऐसी विधियों के रूप में हो, जिससे प्रकृति और पर्यावरण की समस्या कम की जा सकती हो।

इस प्रकार बोधिसत्व के माध्यम से पर्यावरणीय समस्याओं पर कर्म और संरक्षण दोनों किये जा सकते है। यह अधिक महत्वपूर्ण होगा कि षटपारमिताओं का सत्य अर्थ में स्थापना हो सके। बोधिसत्व जिसमें कि षटपारमिताओं के माध्यम से उसके अनुरूप व्यवहार करके कोई भी बुद्धवादी व्यक्ति पर्यावरण और प्रकृति का संरक्षण कर सकता है बिना किसी कानून या दबाव के।

बौद्ध दर्शन में महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतीत्यसमुत्पाद (The doctrine of dependent Origination) है जो कारणता सिद्धान्त है। इसके अनुसार किसी वस्तु की सत्ता स्वतंत्र नहीं हो सकती, वह किसी अन्य सत्ता पर निर्भर है। सजीव वस्तुएँ और प्रकृति भी एक दूसरे के कारण के रूप में है।[4] किसी भी देश और काल में वस्तुओं के बीच सम्बन्ध अवश्य होगा। इस पारिस्थितिकी में भी वस्तुएँ एक दूसरे से सम्बन्धित है कि उनका अस्तित्व एक के बिना दूसरे का नहीं रह सकता है। इस प्रकार जैव विवधता और अन्योन्याक्रिया वाद (Symbiosis) के माध्यम से ही जुड़े है, और इस विश्व का संचालन हो रहा है यदि इसमें से किसी भी घटक का अस्तित्व नष्ट होता है तो स्वभाविक रूप से अन्य का भी अस्तित्व मिट जाएगा। इसी सिद्धान्त का एक अन्य रूप यदि आगे बढ़ाया जाए तो द्वादशः चक्र में जरामरण के माध्यम से पुनर्जन्म भी होता है। बौद्धदर्शन पुनर्जन्म की अवधारणा को स्वीकार करता है तो व्यक्ति को भविष्य की चिन्ता सताती है। पहले तो अपनी पीढ़ी के लिए भी संसाधनों को बचा के रखना चाहता है या फिर उनको कम से कम उपयोग करके पर्यावरणीय दृष्टि से कम नुकसान या कम दोहन करना चाहता है जिससे सतत् विकास चलता रहे और व्यक्ति की जरूरतें भी पूरी होती रहे। पुनर्जन्म का एक दूसरा पहलू यह भी है कि अगला जन्म किस रूप में मिले यह पता नहीं होता है इसका भी भय होता है कि कही ऐसे जीवन के रूप में जन्म हो, जिनका जीना उनके लिए बहुत ही मुश्किल होगा, तो इस भय से भी मनुष्य संसाधनों के अन्धाधुंध प्रयोग करने से बचता है, क्योंकि नदी, पर्वत, पृथ्वी का जन्म सामान्य कर्मों के आधार पर होता है बल्कि वैयक्तिक मानव का पुनर्जन्म वैयक्तिक कर्मों के आधार पर होता है। परिणामस्वरूप मनुष्य की गहरी मनोवैज्ञानिकता आलय चेतना से एक प्रकार से जुड़ी होती है। मनुष्य के कर्मों में परिशुद्धि,

पर्यावरण के सामान्य कर्मों के आधार पर करेगा। इस प्रकार मनुष्य और पर्यावरण में एक प्रकार से द्वैत की समाप्ति दिखता है और व्यक्तिगत कर्मों के आधार पर पर्यावरण के सामान्य कर्म निर्धारित होते हैं। यह सिद्धान्त यह दिखाता है कि कर्ता और पर्यावरण परिवर्तित किये जा सकते हैं। इस प्रकार वैयक्तिक कर्मों का विकास न केवल वैयक्तिक समाधान करता है बल्कि पर्यावरणीय भी।

एक अन्य दृष्टि से भी इस समस्या के समाधान को बौद्ध दर्शन में खोजा जा सकता है, जो वैश्विक तापन लगातार बढ़ रहा है, उसके पीछे मुख्य कारण है प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन और भौतिक सुखों के लिए ही सब कुछ करने की इच्छा।

चूँकि संसाधनों की सीमितता हैं, इनके लगातार दोहन और उपयोग से वातावरण में उपस्थित विषैली गैसें लगातार बढ़ती जा रही है, इसको या तो तकनीकी के माध्यम से कम किया जा सकता है या फिर मानवीय क्रियाओं को सीमित करके जो मनुष्य ने अधिक से अधिक भोग के लिए प्रारम्भ की है इसके लिए उनकी इच्छा को ही नियंत्रित करने की जरूरत होगी। वर्तमान में मनुष्य के समृद्धता का अर्थ आर्थिक समृद्धता या भौतिक समृद्धता से है और यह अर्थव्यवस्था को मापने का सूचकांक है। आर्थिक विकास हमेशा से ही इच्छाओं को बढ़ाने का काम करता है। फलस्वरूप उपभोग में भी वृद्धि होती है।

बौद्ध दर्शन इस बात को मानता है कि दुःख का कारण इच्छा ही है। जब हम पर्यावरणीय दृष्टि से सोचते हैं कि किस प्रकार मनुष्य संसाधनों की इच्छा को त्याग दे जिससे कम से कम हरित गृह गैसें उत्सर्जन हो इस सन्दर्भ में दो बातें हो सकती हैं, एक भौतिकता की इच्छा को नियंत्रित करें। दूसरा या तो इसकी (इच्छा करने) दिशा में परिवर्तन हो। मानवीय इच्छा मनोवैज्ञानिक, भौतिक (डंजमतपंस) और मानसिक होती है। विशेषकर भौतिकवादी इच्छा अनन्त होती है। वसुबन्धु 'इच्छा को स्व व आकन के प्रति समर्पण के रूप में देखते हैं'[5] व्यक्तियों को इस बात का ज्ञान इस प्रकार करना चाहिए या मूल्यों का ज्ञान होना चाहिए। इसे परिपूर्णता के सन्दर्भ में सोचना चाहिए कि यदि भौतिक पदार्थ ही प्रसन्नता देता तो हर अमीर व्यक्ति खुश होता और गरीब व्यक्ति दुःखी होता लेकिन ऐसा नहीं है। यह मूल्यात्मक दृष्टिकोण है जो आनन्द या प्रसन्नता प्रदान करता है। यह वर्णन सूत्रों में मिलता है।[6]

बौद्ध दर्शन में अहिंसा का पर्यावरणीय महत्व भी है। बौद्ध दर्शन में अपृथक रूप से शान्ति और अहिंसा को सद्गुण के रूप में माना जाता है। बुद्ध ने कहा था ''शान्ति से बड़ा कोई आनन्द नहीं है।'' बुद्ध के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति हिंसा से डरता है और जीवन पसन्द करता है। हिंसा को शारीरिक और मानसिक हिंसा के रूप में स्वीकार करते है। अहिंसा का वर्णन पिटक में नहीं मिलता यह धम्मपद में मिलता है।

बौद्ध दर्शन में कहते हैं कि पशुबलि और जन्तुओं को मारना बिल्कुल भी उचित नहीं है। (कपिलसुत) पशुओं, जानवरों को मनुष्यों की सम्पत्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। गायों की हत्या नहीं होनी चाहिए। धम्मपद में अहिंसा को प्रेम की भावना जगाने वाला माना गया है। बुद्ध ने पशुओं की बलि जो, देवी और देवताओं को दी जाती थी, उसकी कटु आलोचना की[7] (धम्मपद 129)। बुद्ध कहते हैं कि जो व्यक्ति जीवों को मारता है या उनको मारने का कारण बनता हैं, वह कभी आर्य (छवइसम) व्यक्ति नहीं कहला सकता। (धम्मपद, 270)। अहिंसा बौद्ध दर्शन में मौलिक धारणा है जो नैतिक आदर्श प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है। अहिंसा सिद्धान्त से पर्यावरणीय क्षति को रोका जा सकता है जो वर्तमान में विभिन्न उद्देश्यों के लिए मनुष्य बड़े स्तर पर हिंसा कर रहे हैं।

बौद्ध दर्शन में 'परिवर्त' सिद्धान्त है जो इस बात पर बल देता है कि अन्यों के लाभ के लिए संचित पुण्य प्राप्त किया जा सकता है। बुद्ध स्वयं भी संबोधि प्राप्त करने के बाद मानव मात्र को दुःखों से मुक्ति दिलाने के लिए उपदेश देते रहे और परिभ्रमण करते रहे। बुद्ध ने स्पष्ट कहा था हे भिक्षुओं! अब तुम बहुतों के लाभ के लिए, मनुष्य जाति के कल्याण के लिए हृदय में संसार के प्रति करुणा का भाव लेकर जाओ, पशुओं और वनस्पति जगत के लिए भी रखो। पर्यावरणीय दृष्टिकोण से वर्तमान में बहुत से संगठन, व्यक्ति और समूह करुणा के भाव से जीवो व मनुष्यों की रक्षा के लिए लगे हैं। उनमें करुणा व पुण्य संचित करने व परोपकारिता का समन्वित रूप विकसित होता है जो इस सिद्धान्त के अनुरूप दिखाई पड़ रहा है।

इस प्रकार हमने इस लेख के माध्यम से यह देखने का प्रयास किया कि किस प्रकार से बौद्ध दर्शन के विभिन्न सिद्धान्तों को सैद्धान्तिक व व्यवहारिक स्तर पर आत्मसात किया जाये तो विश्व में विद्यमान पर्यावरणीय समस्याओं को समाधान के रूप देखा जा सकता है। मुख्य रूप से प्रतीत्यसमुत्पाद, मध्यम प्रतिपदा, अहिंसा, बोधिसत्व, परिवर्तित सिद्धान्तों को व्यवहार में मनुष्य उतार ले तो उसके जीवन शैली, मनोवैज्ञानिकता, मनोवेगो, दृष्टि और मूल्यों में परिवर्तन अवश्य आयेगा। परिणामस्वरूप पर्यावरण पर और पारिस्थितिकी पर सकारात्मक प्रभाव देखने को मिल सकता है। यदि यह आंशिक रूप से भी मानवीय क्रियाओं में बदलाव लाने में सफल होता है तो बौद्ध दर्शन अपनी वर्तमान प्रासंगिकता, विशेषकर पर्यावरण के सन्दर्भ में बनाये हुए है।

lUnHk %

1. शर्मा, बी0एल0, पर्यावरण, पृष्ठ–4
2. शर्मा, एच0एस0, पर्यावरण शिक्षा
3. बुद्धचरित 1/2
4. यामामोटो, एस एन्वारनमेन्टल प्राब्लम आफ बुधिस्ट एथिक्सः फ्राम द प्रसेपेक्टिव आव द कान्सियसनेस–वोन्ली ड्राक्ट्रन, पेल्नम पब्लिशर, न्यूयार्क, 2003, पृ0 239
5. एल्डो ल्यूपोर्ड, ए सैण्ड कन्ट्री एलमनाक, लन्दन, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1949, पृ0 55–56
6. बुल्सू–यूग्यिो–क्यो(सूत्रा) सैहो सिन्सू डैजो क्यो, वाल्यूम–12, 11, 11
7. धम्मपद–129
8. धम्मपद–270

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 148-151

HkfDr vkUnkyu dh iklfxdrk

jkt;'k dqekj fo'odek*

वस्तुतः भक्ति और आध्यात्म की जमीन पर निर्गुण और सगुण कविता में आलम्बन के निर्गुण और सगुण होने के बावजूद लगभग समानता ही है। अन्तर दिखायी पड़ता है जब वे भक्त कवि अपने समय और समाज पर दृष्टि डालते, उनका चित्रण करते हैं और उन पर अपनी राय देते हैं। यहाँ जरूर ऐसा लगता है कि सगुण भक्तों की तुलना में निर्गुण सन्तों की सामाजिक सोच अधिक प्रगतिशील है। परन्तु इस निर्णय पर पहुँचने के पहले हमें निर्गुण सन्तों और सगुण भक्तों की रचनाशीलता से समग्रता में साक्षात्कार करने की उसे ऊपर–ऊपर ही नहीं, भीतर तक पढ़ने और गुनने की जरूरत है।

भक्ति काल और भक्ति आन्दोलन की चर्चा करने वाले सभी विद्वानों ने उस युग को सामाजिक और सांस्कृतिक संक्रान्ति का युग माना है। जिस युग में निर्गुण सन्त और सगुण भक्तों की वाणी मुखर हुई और जिसे भक्ति काव्य कहा जाता है, उसका उद्‌भव सम्पन्न हुआ है। इस संक्रान्ति का मुख्य कारण भारत में सामाजिक– सांस्कृतिक जीवन में इस्लामी धर्ममत का आगमन और प्रसार था। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में बँटे हुए विद्यमान भारतीय समाज को एक व्यापक हिन्दू धर्ममत के तले एकजुट होने के लिए विवश होना पड़ा। इस्लाम की ओर से आयी सामाजिक–सांस्कृतिक चुनौती को इसी प्रकार झेला जा सकता था और उसका प्रतिकार किया जा सकता था।

सामाजिक स्तर पर भेदभाव विहीन सामाजिक संरचना का सवाल जटिल होने के नाते भले ही विचारणीय न बन पाया हो, परन्तु धर्म तथा भक्ति के अगुवा लोगों ने आचार्यों और धर्माचार्यों ने कम से कम भक्ति के धरातल पर मनुष्य और मनुष्य में भेद न करने की बात को जरूर उठाया और युग की अपनी विशेष स्थिति के संदर्भ में वे इस अभियान में बहुत कुछ सफल भी हुए। उनकी इस सफलता को निर्गुण सन्तों की रचनाशीलता और सोच में लक्ष्य भी किया जा सकता है। निर्गुण सन्त कविता को अपनी आत्मीयता के दायरे में उसकी पूरी ऊष्मा तथा प्रभाव के साथ स्वीकार न करने वाले आचार्य शुक्ल जी इस बात को स्वीकार करते हैं कि ''काव्यदर्शी भक्त कवि जनता के हृदय को सम्हालने और लीन रखने के लिए दबी हुई भक्ति को जगाने लगे। क्रमशः भक्ति का प्रवाह ऐसा विस्तृत और प्रबल होता गया कि उसकी लपेट में केवल हिन्दू जनता ही नहीं, देश में बसने वाले सहृदय मुसलमानों में से भी न जाने कितने आ गये। प्रेम स्वरूप ईश्वर को सामने लाकर भक्त कवियों ने हिन्दूओं और मुसलमानों, दोनों को मनुष्य के सामान्य रूप में दिखाया और भेदभाव के दृश्यों को हटाकर पीछे कर दिया।''[1]

शुक्ल जी ने यह बात मुख्यतः निर्गुण भक्ति की कविता को लक्ष्य करके लिखी है और इस क्रम में नामदेव और कबीर जैसे सन्तों का जिक्र विशेष रूप से किया है। हम कह चुके हैं कि निर्गुण सन्त कविता से आत्मीय न होते हुए भी उन्होंने उक्त संदर्भ में उक्त लक्ष्य के तहत उसके आविर्भाव को उस युग की एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक, सामाजिक जरूरत और उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया है। यह निर्गुण कविता अनेक कारणों के चलते कालान्तर में पंथबद्ध होकर निष्प्रभावी भले बन गयी हो, उसकी और जो भी असंगतियाँ और सीमाएँ हों, तत्कालीन सामाजिक–सांस्कृतिक क्षितिज में उसका आविर्भाव और उसमें नानक, दादू, कबीर, नामदेव, रैदास जैसे सन्तों का योगदान एक बड़ी सामाजिक, सांस्कृतिक उपलब्धि है। भले ही धर्म और भक्ति के क्षेत्र में ही सही किन्तु सामाजिक जीवन के बीच पहली बार वर्ग, वर्ण, जाति, नस्ल, धर्म और सम्प्रदाय के भेदों तथा बन्धनों को अमान्य करते हुए मानव हृदय के एकात्म तथा भक्ति

*पूर्व शोध छात्र, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

के संदर्भ में मानव मात्र की समानता को रेखांकित किया गया। यह कदम भले ही भक्ति और ईश्वरोपासना के सीमित क्षेत्र में हुआ हो, इसका प्रभाव भेदभाव बरतने वाली चली आ रही सामाजिक संरचना और उस संरचना को उचित ठहराने वाली सोच पर भी पड़ा, उस साधारण जनता पर पड़ा जो सामाजिक भेदभाव का शिकार बनती हुयी सदियों से एक अमानवीय जिन्दगी जीने के लिए अभिशप्त थी। स्मरण रहे, हिन्दू–मुस्लिम एकता इन सन्तों का लक्ष्य नहीं था वरन् भक्ति का एक ऐसा मार्ग निकालना, उसका ऐसा संदेश देना इनका लक्ष्य था, जिस पर किसी भी प्रकार की भेदबुद्धि से रहित मनुष्य सात्विक अन्तःकरण और मन से चल सके, उसे बिना किसी हिचक के सुन और सहेज सके। कबीर पर आलोचनात्मक तेवर के बावजूद शुक्ल जी इस बात को स्वीकार करते हैं कि उन्होंने एक नाजुक मौके पर जनता के एक बड़े भाग को सहारा दिया और नीची कही जाने वाली जातियों के मन में आत्मगौरव का भाव जगाया। इन सन्तों ने विशेषतः नानक और कबीर से चली आ रही सामाजिक संरचना की, धर्म और मजहब के नाम पर कर्मकाण्डों की पूजा–पाठ, आराधना और उपासना के खोखले तौर तरीकों की, वे किसी भी धर्म और मजहब की क्यों न हो जम कर भर्त्सना की हो, परन्तु इससे इनकी वाणी को विध्वंसक करार देना, इन्हें लोक विरोधी या समाज विरोधी मान लेना सही नहीं है। यह गलती आचार्य शुक्ल जी से हुई है। वस्तुतः इस आलोचना की बुनियाद पर ही एक मानवधर्म और एक मानवसंस्कृति की वह इमारत खड़ी हुई है। मनुष्य सत्य का वह आदर्श स्थित है जिसकी बड़ी संजीदा और बड़े सात्विक–निर्मल मन से इन संतों ने परिकल्पना की थी और जिसके लिए वे आजीवन संघर्षरत रहे।

भक्ति कविता सन्तों की हो या भक्तों की एक बुनियादी विशेषता उसकी यह दृढ़ स्वीकृति है कि संसार असार या मिथ्या नहीं है, और ना ही उसके सुख–दुःख मिथ्या है। मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन की व्यापकता और तीव्रगति प्रदान करने में विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों का बड़ा योगदान रहा हैं मध्य युग की यह विशेषता हो गयी थी कि आचार्य या सन्त विविध सम्प्रदाय या पंथ की स्थापना करके भक्ति के प्रचार में अपने साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए अनेक भक्त कवियों को प्रोत्साहन देने लगे थे। प्रभुदयाल मित्तल ने लिखा है कि मध्ययुग के विषय में यह बात भी देखी जाती है कि अपने–अपने सम्प्रदाय का विस्तार करने के लिए इन सम्प्रदायों के बीच में स्पर्धा उत्पन्न हो रही थी।[2]

गोस्वामी जी की भक्ति का विवेचन करते हुए शुक्ल जी का कहना है कि 'राम के यहाँ का रास्ता ठेठ जीवन के भीतर से गया है।' इन सन्तों और भक्तों ने जो यह सब प्रतिपादित किया है उसे स्वयं आचरित भी किया हैं कर्म प्रधान विश्व से भागकर, दायित्वों से विमुख होकर, भभूत लगाकर, घर बार छोड़कर की जाने वाली भक्ति दिखावा है। जीवन के भीतर से संसार और समाज के सारे दायित्वों के बीच से कर्ममय कर्मठ जीवन की सम्पूर्ण स्वीकृति के साथ उपजी भक्ति–सम्बन्धी इस सोच ने अपने समय और समाज में तो अपनी सकारात्मक–रचनात्मक भूमिका का निर्वाह किया है और आगे भी वह आदर्श रूप में मान्य हुयी। इसे इन सन्तों और भक्तों की समाज को एक महनीय देन ही माना जायेगा।[3]

भक्ति आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण आयाम लोक संस्कृति का उद्घाटन है। लोक संस्कृति का उद्घाटन ये भक्त इसलिए कर सके हैं कि ये स्वतः उस संस्कृति की उपज थे। उनकी संवेदना मूलतः किसान संवेदना है। अवध की लोक संस्कृति अपनी सम्पूर्ण मधुरता के साथ विद्यमान है। मीरा के पदों में राजस्थान की लोक संस्कृति के स्वर गूँजे हैं, और उनके अपने दर्द में घुल–मिल गये हैं। लोक जीवन के चित्रों के अलावा इन भक्त कवियों की भाषा में भी लोकमन की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। इन पदों में लोक गीतों की सी मिठास, इनके छन्दों और इनके काव्य रूपों का लोकमन से सहज नाता रिश्ता है। लोक की परिचित और आकांक्षित शैली में रचित उनकी कविता इसी नाते लोकचित्त से नहीं उतरी है।

इसे एक महत्वपूर्ण घटना ही कहा जायेगा कि युग की विशिष्ट वस्तुगत स्थितियों के संदर्भ में मध्यकाल के एक खास दौर में हमें उन वर्गों व वर्णों से प्रथम कोटि के सन्त मिले जिन्हें शूद्र और अन्त्यज कहा जाता था। ऐसा फिर आगे कभी नहीं हो सका। हमें भक्ति कविता के अन्तर्गत नारी भक्तों की एक जमात मिली, जैसा कि उस युग में उनकी जो देन थी वह आज भी यथार्थ रूप में देखने को मिल रही

है। हमें भक्ति कविता के अन्तर्गत नारी भक्तों की छवि या पहचान मिली। वह आज भी प्रासंगिक हैं यहीं नहीं समूचे भक्ति काल में इतने कालजयी कवियों, भक्तों का एक साथ आविर्भाव अपने में कम आश्चर्यजनक नहीं है। ये वे रचनाकार भक्त हैं जो सदियों से भारतीय जनमानस में विद्यमान है, अपनी रचनाशीलता के बूते पर। मानव जीवन के सारे पक्षों पर इन्होंने लिखा है कि जीवन के सारे कार्यव्यापार, इनके लेखन की परिधि में आये। व्यक्ति, परिवार, समाज सबके अन्तरंग को इन्होंने देखा और उनका मार्गदर्शन किया। प्रेम को अपना आदर्श मानते हुए इन्होंने समाज के समक्ष अपनी शक्ति को उजागर किया। प्रेम को अपना आदर्श मानते हुए प्रेम ही तत्व है कहा है जहाँ सगुण–निर्गुण सब समर्पित है। राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संक्रान्ति के युग में प्रेम के इनके संदेश ने बहुत से घावों को भरा, सामाजिक जीवन में अपनी सकारात्मक भूमिका अदा की। ये किसी भी प्रलोभन के विरोधी थे। अपने आराध्य के प्रति सम्पूर्ण समर्पित इनका सरोकार सिर्फ साधारण जनता और उसके जीवन से था। उसी को उन्नत बनाने में वे लगे रहे। इसी नाते ये उसके द्वारा स्वीकार हुए और सराहे गये।[4]

भक्ति आन्दोलन ने समस्त भारतीय भाषा साहित्य में एक नव जागरण प्रस्तुत किया। सामान्य जनता तथा पंडितों को समान रूप से आकर्षित करने वाले विशाल साहित्य की रचना हुयी।[5] भक्ति आन्दोलन ने भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में एक स्वर्णयुग का उद्घाटन किया। भक्त कवियों ने ऐतिहासिक महाकाव्यों तथा पुराणों से अपने कथानक लेकर सांस्कृतिक एकता का समर्थन किया। प्रत्येक भाषा के क्षेत्रीय साहित्य परम्परा के आधार पर सामान्य साहित्य साधना के परिणामस्वरूप तत्कालीन साहित्य क्षेत्रीय रंग से रंग गया। सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधकर अनेकता में एकता वाले भारतीय संस्कृति के मूल तत्व को सुदृढ़ किया। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच धार्मिक सामंजस्य का व्यापक वातावरण उत्पन्न हुआ। शूद्रों को ब्राह्मणों के समान धार्मिक ग्रंथों से लाभ उठाने का अधिकार प्राप्त हुआ। नारियों का सम्मान तथा उनकी सुरक्षा के लिए आत्मसमर्पित रहने की आवश्यकता पर भक्ति आन्दोलन ने बल दिया। भक्ति आन्दोलन ने विभिन्न सम्प्रदायों के पारस्परिक संघर्ष को मिटाकर समन्वय की प्रवृत्ति को बल पहुँचाया। इस आन्दोलन ने मानव– समानता का जोरदार समर्थन किया।[6]

भक्ति काल के कवियों ने भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को एक दिशा देने का प्रयास किया तथा अपने को धर्म निरपेक्ष बनाये रखा, वह इतना प्रासंगिक है कि आज के 21वीं सदी के वैश्वीकरण, बाजारवाद, पराकाष्ठा पर पहुँचा जातिवाद, धार्मिक असहिष्णुता, स्वार्थकता, राजनीतिक तथा सामाजिक भ्रष्टाचार और सांस्कृतिक चेतना शून्यता, सामाजिक विघटन ये सभी भक्ति कालीन काव्य के अतिरिक्त कोई दिशा देने वाले नहीं है। आज के परिवेश में भक्तिकालीन कवियों की श्रेष्ठता और अश्रेष्ठता के अनेक विमर्श एकाकी बनकर रह गया है, कबीर हो या जायसी, सूर हो या तुलसी अथवा विभिन्न सम्प्रदाय से जुड़े अन्य भक्त सबकी साधना के मूल में मानव कल्याण सर्वोपरि रहा है। इसलिए यह कहना है कि कबीर जितना प्रासंगिक है, उतना वर्ण व्यवस्था के पोषक तुलसी नहीं, बेमानी बहस है। आज से लगभग छः सौ वर्ष पहले की सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश देखें तो कबीर की पृष्ठभूमि और तुलसी की पृष्ठभूमि अलग–अलग है। उनके सरोकार अलग है लेकिन एक सरोकार समान है– ईश्वर में आस्था रखने वाले सभी मनुष्य एक समान है तथा उनकी अन्तरात्मा एक है। उनका कल्याण हो; यह ध्यान कबीर को भी है, तुलसी को भी है। वे उपदेशक और सामाजिक चेतक भी हैं।

ऐतिहासिक तथा लोककथानक को सूफी कवियों ने जिस तरह एक नया आयाम दिया, उससे उनकी धर्म निरपेक्षता तथा मानवीय प्रेम सर्वोपरि होकर उभरता है। जायसी के पद्मावत में जिस प्रकार प्रेम की पीड़ा उद्वेलित होती है, उससे यह स्पष्ट हुए बिना नहीं रहता कि सभी मनुष्य जिस अदृश्य की सन्तान हैं, लौकिक धरातल पर भी उससे प्रेम को चरितार्थ किया जा सकता है। यह प्रेम ही है जो सामाजिक समरसता बनाये रखने में कारगर हो सकता है। जायसी की प्रासंगिकता भी यहीं है। इसीलिए डॉ विजयदेव नारायण साही ने उन्हें हिन्दी का प्रथम मौलिक कवि माना है और सूफीजन से हटकर उनकी प्रेम व्यंजना को मानवीय लौकिक धरातल देने का सार्थक प्रयास किया।

सूर तो उस गुरू के शिष्य थे, जिसे राजनीतिक संरक्षण और अनुदान प्राप्त था। तत्कालीन भारतीय समाज में इस तरह की व्यवस्था बन चुकी थी कि कृष्ण की बहुप्रचलित लोकरंजक और लोकरक्षक दोनों स्वरूप घुल मिल से गये थे। बल्लभाचार्य के श्रीनाथ मन्दिर में उनके और उनके पुत्र विट्ठलनाथ से जुड़े हुए अष्टछाप के कवियों ने कृष्णलीला की जो सलिल सरिता बनायी उसमें सबको स्थान मिला। यह कृष्ण लीला ही थी, जिसने विस्तृत कृष्ण परिधि प्रेम में छूत–अछूत या धर्म–अधर्म का कोई बंधन नहीं था। सूर के सूरसागर में भारतीय ग्राम्य जीवन की जैसी झाँकी मिलती है, वह अनूठी है। उनका लोकजीवन और लोकसंस्कृति से जो प्रेम है, वह मुखरित होकर उनके काव्य में उभरा है। उनकी प्रासंगिकता उस मानवीय प्रेम में विद्यमान है जो कृष्ण को लोकजीवन और लोकसंस्कृति को अभिन्न अंग बनाकर प्रस्तुत करती है।

रचना वहीं महत्वपूर्ण होती है, जो अपने समय के लिए तो जरूरी हो ही, आने वाले समय के लिए भी उतनी ही प्रासंगिक हो। भक्ति कविता ऐसी ही कविता है जो आज के समय में अर्थवान् हो। वह हमारी विरासत है जिसे हमें कृतज्ञता के साथ स्वीकार करना है, और संरक्षण देना है।

lUnHkZ %

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 65
2. डॉ0 प्रभुदयाल मित्तल, ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, पृ0 184
3. भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, शिवकुमार मिश्र, पृ0 297
4. भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, शिवकुमार मिश्र, पृ0 298
5. ब्रजेश्वर वर्मा, भक्तिकाल : हिन्दी साहित्य कोष, भाग–1, 2020 वि0, पृ0 576
6. डॉ0 रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय,' 1957 पृ0 162

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 152-158

Tkurr= dh gdhdr % ukVd tkjh g

?ku';ke ik.M;*

'kks/k lkjk'k % समकालीन हिन्दी कविता के प्रतिनिधि कवि लीलाधर जगूड़ी की सजगता, गूढ़ वैचारिक चिंतन और गहन संवेदनात्मक दृष्टि की पड़ताल करते हुए उनके काव्य भाषा–शैली पर भी प्रकाश डाला गया है।

रोटी, कपड़ा और मकान मानव जाति की आधारभूत आवश्यकता है। लेकिन आजादी के इतने सालों बाद भी आम आदमी इन आधारभूत आवश्यकताओं से आज भी वंचित है। पेट और प्रजातंत्र के बीच' इस देश के अंदर क्या नाटक चल रहा है। लीलाधर जगूड़ी की रचना 'नाटक जारी है' इसकी पड़ताल करते हुए हकीकत को बयां करती है। 'शंखमुखी शिखरों पर' के बाद 'नाटक जारी है' लीलाधर जगूड़ी का दूसरा कविता संग्रह है। सन् 1972 में अक्षर प्रकाशन से प्रकाशित इस संग्रह में पन्द्रह कविताएं हैं। 'नाटक जारी है' में जगूड़ी ने अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाते हुए आमजन के दुःख दर्द के लिए उत्तरदायी राजनेताओं और पूंजीपतियों की कलई खोल कर रख दी है। जगूड़ी के शब्दों में –''साठ के बाद के मुख्य आग्रह थे निर्जीव मान्यताओं को ध्वस्त करो। अपनी नाराजगी का पुरजोर इजहार करो। भावुकता से इनकार करो। यथार्थ जैसे खुरदरे बन जाओ। जो क्षरित हो रहा है उसके क्षरण में मदद करो। जो नष्ट नहीं हो रहा उसकी ताकत को पहचानो और यह जानो कि क्या सचमुच उसकी शक्ति बचाने लायक है? अगर नही तो उसे भी धर्म और राजसत्ता की तरह व्यवस्था मानते हुए उसका भी उन्मूलन की हद तक विरोध करो। अपनी बात कहने के लिए भी नयी भाषा लाओ, नये मुहावरे गढ़ो या खोजों। अपनी निर्थकता और उदासी के मूल कारणों को उसकी संपूर्ण विकलता के साथ समझो। पुराना तुम्हारे किसी काम का नहीं है, इस दुनिया को तुम अपने लायक नये सिरे से रचो''।[1] लीलाधर जगूड़ी एक राजनीतिक कवि के रूप में सामने आते है।

डॉ0 ब्रजमोहन शर्मा ने इस संकलन की रचनाओं के बारे में कहते हैं कि–''यह कविताएं कथ्य के चुंबकीय प्रभावपना, शिल्प में पैनी मर्मस्पर्शी उद्देश्य में मुक्तिकामी और संवेदनाओं में धर्म–सरीखी है। कथ्य और शिल्प का अभूतपूर्व समंजन समवेत भवाभिव्यंजन और सुनियोजित प्रस्तुतीकरण इस कृति को जगूड़ी के कला वैशिष्ट्य का चरमोत्कर्ष सिद्ध करते हैं।''[2]

जगूड़ी कहते हैं कि आजाद देश कागज पर बने नक्शों में रंगों से भरा सुंदर दिख रहा लेकिन जमीनी हकीकत यह है कि इतने सालों बाद भी देश में न कोई परिवर्तन, न कोई विकास ज्यों का त्यों ठहरा जड़वत बना हुआ है। संविधान में वर्णित मूल अधिकार भी केवल कागज पर ही सिमट कर रह गए है। अधिकारों से वंचित आम आदमी अपने भाग्य को इसका जिम्मेदार ठहरा कर मौन होकर कठपुतली बना हुआ है। कवि ये सब देखकर बहुत ही क्षुब्ध है। देश की व्यवस्था चलाने वाली संविधान का पूरा चित्र अपनी कविता 'बिल्कुल निजी संवाददाता द्वारा' शीर्षक में सम्मुख प्रस्तुत करता है–

''नक्शे के रंगों मे मेरा देश एक ठहरा हुआ–टूटा हुआ इंद्रधनुष
मूल अधिकार : एक विशेषता
यही कोई दसवाँ–ग्यारहवां साल और ढेर–सी पतेलियाँ
भाग्य भाग दरारदार

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, सरदार भगत सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रूद्रपुर (ऊधम सिंह नगर), उत्तराखण्ड

होना था जिन्हें स्कूली हथेलियाँ
तीन सौ पिचानबे धाराएँ
टूटी हुई प्लेटें संविधान की मौत पर खनखनाती हैं।''[3]

कवि देश की हालत देखकर बहुत निराश उदास है। देश की चिंता करते–करते बीमार हो गया है। अब कवि को देश के अंदर एक–एक दिन भी बिताना दुर्भर हो गया। क्योंकि उसके अंदर की शेष क्रांतिकारी विचारों को भी कुचल दिया गया है। अब जीना व्यर्थ समझ रहा है। कवि मरना चाहता है। 'बीमारी' नामक शीर्षक कविता में व्यंग्य का धारदार प्रयोग हुआ है–

''होठों के कितने नजदीक जल रही है। सिगरेट
कितने नजदीक से सुलग रहा है। मेरा दिन
जूते की नोक के नीचे मसल दी शेष आग
अधजली तीलियों!
इस एक और अधजली तीली के साथ
तुम जल उठो मेरे आस–पास, मैं पिघलना चाहता हूँ
शेष न रहने के लिए।''[4]

आजादी के बाद की रचनाओं में व्यंग्य एक रूढ़ि बन चुका है। इस काल का कोई भी रचनाकार व्यंग्य से प्रभावित बिना नहीं रह सका। जगूड़ी की रचनाशीलता का एक बड़ा भाग व्यंग्य को ही आधार बनाकर चलता है। जगूड़ी ने सत्ता पर बैठे लोगों पर तंज कसते हैं कि यह देश कषि प्रधान है, फिर भी लोग भूखे हैं लेकिन आपको कोई असर नहीं है। आप चैन से सो रहे है। केवल अपने ही बारें में चिंतन कर रहे है। जनता को अपने झूठे वादों, बातों में उलझा कर केवल रखे है। कवि का धारदार व्यंग्य देखिये–

''गजब है आप सो रहे हैं
अपने ही देश की तरह तटस्थ हो रहे हैं
आपके चेहरे पर कषि प्रधान देश की पूरी भूख है
पूरा विप्लव है
आप से मिलकर बड़ी खुशी हुई आप चिंतन कर रहे हैं
मरने के बाद आत्मा का क्या होता है।''[5]

आजादी के बाद भी पढ़े लिखे–प्रतिभाओं से भरे लोग घास काट रहे बेरोजगार है। प्रतिभावानों पास उनके प्रतिभा के अनुकूल कोई काम नहीं है। सरकार उनके प्रतिभाओं को निखारने का कोई इंतजाम अभी तक नहीं की है। कवि इससे बहुत दुःखी है। कवि देश की विडंबनाओं, विसंगतियों से लड़ता–लड़ता थक चुका है। कविताओं में ही बार–बार उजागर करता है लेकिन अबवह कविता लिखते–लिखते भी ऊब चुका है अंत में अखबार पढ़ने को कह देता है–

''आजादी के बाद प्रतिभाएं घास काट रही हैं
और यह इच्छा है कि आपको अपने बारे में कोई खयाल नहीं
मैं इस बीच लापता रहा अंधेरे में
लगातार अपनी ऐसी की तैसी और कविता
दोनों करता रहा
थकने के साथ–साथ बहुत चीजें हैं–
जो नहीं है उन्हें रहने दीजिए
अखबार पढ़िए लीजिए बहुत कुछ हो रहा है।''[6]

जगूड़ी देश का फिर से नक्शा बनाने को बेचैन है। ऐसा नक्शा बनाना चाहते जिसमें देश की वर्तमान जो व्यवस्थाएं चल रही है। जनता उससे रूबरू हो सके। जनता को बताना चाहते हैं कि हमारे आजाद देश में पूंजीपतियों, राजनेताओं और दलालों की सांठगांठ से देश बर्बाद हो रहा है। कवि भूत, वर्तमान और भविष्य दृष्टा होता है। यह बिल्कुल सच है। वर्तमान सरकारें 'एक देश एक राशन कार्ड' का

अभियान चला रही है। इस राशन कार्ड की खामियां को जगूड़ी जी 1972 में ही उजागर कर दिया था। इस कविता में देखिये–

''दुनिया मेज भर ऊंची। पेट भर गहरी हो गई
छोटा सिर्फ आदमी हुआ है
ऐसा करते हैं कि इस देश का एक नया नक्शा बनाते हैं
तुम चाय रख देती हो कम मीठे की
(मैं शिकायत नहीं कर सकता–तुमने परसों की ही कह दिया था)
–बदले हुए मोहल्ले का राशन कार्ड यहाँ नहीं चलता।''[7]

कवि को आजादी से मोहभंग हो गया 'खलनायक' नामक शीर्षक कविता में कवि का मोहभंग परिलक्षित होता है। ''खलनायक कविता का नायक आश्वासनों से चाटी हुई भाषा के समानांतर तनकर खड़ा हो जाता है। अब और अधिक भुलावों में वह नहीं रहना चाहता। उसका मोहभंग हो चुका है लेकिन उसे हासिल क्या होता है? कुछ नहीं, कुछ भी नहीं। वह ईमानदारी की तरह अपने ही शरीर में भरा हुआ सा है। वह बहुत कुछ करना चाहता है लेकिन कुछ करने का साहस जब वह नहीं कर पाता है तब इतना उत्तेजित हो जाता है कि उसे देखकर मनुष्यता उससे डरने लगती है। चाय पीते हुए वह बैरे को आदेश देता है कि उसने मेज पर पानी से 'समाज' लिख दिया है साफ कर दें। इस बात को भी वह अच्छी तरह जानता है कि सफाई से कुछ होने वाला नहीं है।''[8]

''सारे प्रस्तुत के पीछे
आश्वासनों से चाटी हुई भाषा के समानांतर
वह खलनायक बनकर खड़ा है
और ईमानदारी की तरह अपने ही शरीर में मरा पड़ा है।''[9]

जिम्मेदारियों से घिरा आम आदमी अपने ही घर में एक अजनबी की तरह रहता है परिवार का सारा बोझ अकेले उठाता है। वह इतना काम में व्यस्त रहता है कि अपना ही चेहरा भूल गया है। उसके चेहरें की खुशी चली गई। उसके ह्रदय में अच्छा–बुरा का भाव भी मिट गया है, निर्विकार हो गया है। किसी भी घर के सदस्य में अपनापन उसे नहीं दिखता। 'होंने के शिल्प' कविता में कवि ने एक अजनबीपन का भाव व्यक्त किया है–

''वह इस दुनिया में घर पर था। सारा घर उस पर था
उसका चेहरा था जो उसे याद नहीं था
चे क्या था–हरा था?–नहीं, चेहरा। चेहरा था
कुछ पता नहीं वह और उसके चेहरे में
कौन अच्छा था। कौन बुरा था
लेकिन कोई किसी की तरह नहीं था।''[10]

जगूड़ी समानता के हिमायती कवि है। इस देश में अमीर–गरीब, उच्च–नीच का भाव को पूरी तरह से मिटा कर समानता की स्थापना करना चाहता है। कवि जानता है कि समानता से ही देश में बेराजगारी, निर्धनता मिटेगी देश विकास की तरफ अग्रसर होगा। इस दिशा में कवि पूरे शक्ति से काम कर रहा है। जिससे देश में समानता को स्थापित किया जा सके। देश में शोषक–शोषित के बीच एक बड़ी खाई बन चुकी है। इसे पाटने के लिए हर स्तर से कवि बेचैन दिखाई देता–

''मुझे बहुत कुछ करना है
गाँव का बैल हाँकने वाला चेहरा
फसल को पूंजी बनाने वाले से मिलाना है
झाऊ को नस्ल के बहाने मदद से ठुकराना है
खाऊं को हिलाते–हिलाते उखाड़ना है–जड़ से
उखाड़ने से पहले उसे लाजमी अफसोस से ढोना है।''[11]

लोकतंत्र व्यवस्था मैं आम आदमी का लगातार शोषण हो रहा है। सत्ता में बैठे लोग सुविधाओं का लालच देकर भोली–भाली जनता का शोषण करके अपना घर भर रहे है। कवि इस कविता में उजागर करता है देखिये–

''देखो,
इस देश की हर सड़क तिजोरी तक जाती है
और तुम्हारे लिए पोस्टकार्ड की कीमत बढ़ जाती है।''[12]

लीलाधर जगूड़ी लोकतांत्रिक व्यवस्था से पूरी तरह रूबरू हो चुके हैं। वह जान गए हैं कि यह पूरी की पूरी व्यवस्था स्वार्थ, धोखा, हिंसा, शोषण और चापलूसी पर टिकी हुई है। इस जनतंत्र में जो सत्ता में बैठे लोग हैं। उन्हीं का साथ देने से उनकी चापलूसी करने पर ही सरकारी योजनाओं का लाभ मिलता है। सत्ता के विरोधियों की तो हत्या हो जा रही है। इस व्यवस्था में रहते हुए कवि वोट की राजनीति से भी भली–भांति परिचित हो गया है इसलिए बार–बार आमजन को सचेत करता है–

''हाथों–हाथ समझदार लोग
अधिकारों के बहाने। तुम्हें बांट लेते हैं।''[13]

लीलाधर जगूड़ी की 'सांस्कृतिक यातना' कविता बातचीत की शैली से शुरू होती है। इस कविता में कवि ने पेट के लिए शहर को स्वीकारता है और गाँव को अस्वीकारता है। जगूड़ी कहते है कि गांव का आदमी नंगे पांव शहर में आता है। उसे शहर में काम मिलता है। जिससे वह कुछ पैसा कमा लेता है। अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता है। भरपेट भोजन कर पाता है। आत्मनिर्भर बन जाते है। इस कविता में शहर और गांव दोनों की संस्कषति को अभिव्यक्त किया गया है। शहर और गाँव के गुण–दोषों को बारीकी से उजागर किया है कि किस तरह से गाँव के लोगों से अनैतिक कार्य प्रलोभन देकर कराये जाते है। गाँव के लोग मजबूर होकर पेट के लिए सारे अनैतिक कार्य करने लगते है। एक भोला–भाला आम आदमी अपराधी बन जाता है। इस कविता में देखी जा सकती है–

''तुम कहते हो तो हम हाँ भर लेंगे गाँवों के लिए
मगर शहर अधिक सुविधा देता है नंगे पावों के लिए
सारी बेकारी को एक और ठेलकर कुछ काले काम देता है
अपना नाम भूल जाने के लिए
पैंट की जेब में ठंडे मुख वाला एक लोहा देता है
पेट भर रोटी खाने के लिए
बालों के लिए तेल। सोने के लिए खोह
और जीने के लिए कोई गिरोह देता है
दूसरों की जेबें। दूसरों की जानें। कितनी अपनी हो जाती हैं
अंधेरे की धांधलेबाजी में। दुर्घटनाओं को नींद नहीं आती..।''[14]

लीलाधर जगूड़ी नेताओं के दोहरे चरित्र से बहुत बच्छे से वाकिफ है। हर नेता कुर्सी पाने से पहले तक बहुत ईमानदार, क्रांतिकारी विचारों से ओत–प्रोत रहता है। वही नेता जो देश की बात करता था। वही संसद पहुंचते ही उसके किये हुये सारे वादें , सारे विचार बदल जाते है। सत्ता पर आजीवन काबिज रहने के लिए, देश को लूटने के लिये षड्यंत्र रचने लगते है। देश को कई प्रान्तों में बाटने लगते है, जिससे देश को खोखला करने में आसानी हो। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण– उत्तराखंड, तेलंगाना, झारखंड आदि ऐसे ही कई राज्य बंटने की तरफ अग्रसर है। कवि ने अपनी कविता 'घर संभालते हुए' नामक शीर्षक में पूरा चित्र सामने प्रस्तुत कर देता है–

''बहुत पहले जो मेरे साथ था रोशनी का बड़ा विचार
निर्दलीय हो गया
और क्रांतिकारी जुलूस संसद में घुसकर
प्रांतीयता के छोटे उजाले मे कुर्सियों पर सो गया।''[15]

हर व्यक्ति के पास विरोध दर्ज करने का अपना तरीका होता है। आदमी जिस व्यवस्था या व्यक्ति से असंतुष्ट होता है। उसके खिलाफ अपने हाव–भाव, शारीरिक–गतिविधियों द्वारा उस व्यवस्था या उस व्यक्ति का विरोध करता है। कवि भी लोकतंत्र में स्थापित इन व्यवस्थाओं से इतना क्रोधित है। फिर भी वह अपने अंदर ही अंदर गुस्से का घूट पीकर रह जा रहा है। कुछ नहीं कर पा रहा है–

''जिसके खिलाफ
अपने ही दातों तक किटकिटाता आदमी
शिकायत का सर्वजनिक बक्शा है।''[16]

जगूड़ी लोकतंत्र में जो चुनाव की प्रक्रिया है। उसके खिलाफ है। इसमें बड़े नेता को तो राजनीतिक दल के व्यक्ति ही चुनते हैं। ये चुनाव केवल जनता के आंखों में धूल झोंकने की प्रक्रिया है। ऊंचे कुर्सी पर बैठे लोगों का ही देश के हर व्यवस्था पर नियंत्रण रहता है जैसे चाहे वैसा देश को बना दे। जनता तो इनके हाथों की कठपुतली मात्र है। जगूड़ी 'नाटक जारी है' शीर्षक कविता में चित्रण करते है–

''इस नाटक में कुछ लोग देश को बना रहे हैं
आप भी कुछ बनाएं
अपने पड़ोसी को उल्लू वगैरह।''[17]

लोकतंत्र में लोक स्वतंत्रता बिल्कुल ही लुप्त हो गई है। नेताओं की सत्ता लिप्सा ने जन–सामान्य के बोध को शून्य कर दिया है। लोकतंत्र के प्रति उदासीनता का भाव जाग्रत हुआ साथ ही नेताओं और शासकों के प्रति अविश्वास का भाव भी पैदा हुआ। लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रति अनास्था का स्वर जगूड़ी के अलावा 'धूमिल' और 'ज्ञानेन्द्रपति' की रचनाओं में मुखर हुआ है। इन लोगों ने कागजी कार्यवाही का पुरजोर विरोध किया है। 'ज्ञानेन्द्रपति' की 'संशयात्मा' काव्य–संग्रह की 'खेवली तक सड़क नहीं आती' नामक शीर्षक कविता में दृष्टिगोचर होता है देखिये–

''उसकी खेवली तक
कोई सड़क नहीं जाती
बरसात शुरू होते ही दुर्गम द्वविप बनी खेवली तक
पहुंची नहीं कोई पंचवर्षीय योजना
तो भला क्यों आयेगी
जवाहर रोजगार योजना और इंदिरा आवास योजना।''[18]

जगूड़ी की कई कविताएँ ऐसी ही है, जहां 'शब्द' शब्द मात्र न होकर पूरा चरित्र है। जनतंत्र और व्यवस्था के साथ जगूड़ी ने कविताओं में मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखते हुए सामान्य नागरिक की सामाजिक स्थिति को भी दर्शाया है। जगूड़ी आक्रोश और तनाव के कवि है। इन्होंने समय, स्थिति, राजनीति और मनुष्य के नये समीकरणों व तनावों को समझने और समस्त विसंगतियों को बदलने का प्रयास करते है। हमें निम्न कविता में दिखाई देता है–

''मेरे दिमाग पर सवार यह वहआदमी नहीं है
जिसने तुम्हें आजादी के बाद का चकमा दिया
और नक्शा बदलने वाला महकमा दिया।''[19]

कवि इस मोहभंग स्थिति से बाहर निकलने के लिए एक बहुत बड़ा परिवर्तन चाहते हैं। एक ऐसा परिवर्तन जिसमें ^lo Hkkoh lf[ku* चरितार्थ हो। कवि के दिमाग में एक अलग से आदमी का चित्र बन गया है जो विषमता मूलक वातावरण को बदल सके।

लीलाधर जगूड़ी ने रचनाएं बहुत की और कहा बहुत कुछ है, किन्तु केवल कविता में। उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के लिए सिर्फ कविता को चुना और अपने सीधे–सरल भावों से लेकर गूढ़ वैचारिक चिंतन तक सब की अभियक्ति के अनुरूप उसके भाषा शिल्प को स्वय गढ़ा, संवारा और निखारा। जगूड़ी हर

अनुभव को भाषागत अनुभव मानते हैं। यथार्थ को प्रत्यक्ष करने के लिए उनके पास पर्याप्त शब्द भंडार है। उन्होंने हर समस्या को अपने निजी अनुभव की भाषा में चिन्हित करने का प्रयास किया है–

''भाषा के जमे हुए पानी में सुराख बनाते हुए
मैं सोचता हूँ यह तिप–तिप नदी कैसी होगी।''[20]

इनकी भाषा काव्य सत्य को जीवन सत्य के बरक्स लाकर खड़ा कर देती है। वह छली व्यवस्था के मुख से नकाब हटाकर सशक्त रूप से विरोध के स्वर उभारती हैं।

''लीलाधर जगूड़ी उन कवियों में आते हैं, जिन्होंने अनुभव और भाषा के बीच कविता को जीवित रखा है। अनुभव के आकाश में उड़ान भरने वाले वे हिंदी के एक मात्र ऐसे कवि है जिनके यहां शब्द किसी कौतुक या क्रीड़ा का उपक्रम नहीं हैं, वे एक सर्जनात्मकता की कोख से जन्म लेते है। जगूड़ी ने अनुभव, भाषा और संवेदना के वैविध्य के लिए ही उन्होंने कहा है–''भाषाएं भी अलग–अलग रौनकों वाले पेड़ों की तरह है। सबका अपना–अपना हरापन है कुछ उन्हें काट कर उनकी छवियों का एक ही जगह बुरादा बना देते हैं। जगूड़ी भाषा को एक रचयिता की तरह बरता और मांजा है।''[21]

अंततः हम कह सकते है कि 'नाटक जारी है' स्वतंत्र भारत में रहने वाले परतंत्र आम नागरिक का प्रमाणिक जीवंत दस्तावेज है। इस काव्य–संग्रह के केंद्र में व्यक्ति के जीवन से जुड़ी विसंगतियों, विडम्बनाओं, संघर्षो, दुःखों का स्वर मुखर हुआ है जगूड़ी ने कविता को एक नया मुहावरा दिया है और राजनीतिक चेतना को अपने काव्य में बड़ी कुशलता से अन्तर्व्याप्त किया है। जगूड़ी के अनुसार–''नाटक जारी है' की कविताएं एक बेरोजगार युवा होते व्यक्ति की कविताएं हैं, जो भाषा और आशय से प्रथम दष्ष्टया ही उग्र, अस्थिर और बेचैन दिखती है। काव्य परंपराओं को तोड़कर अपनी एक निज परंपरा कायम करने की हड़बड़ी, इसमें अनायास आ गयी लगती है। सारी कल्पनाओं और खुराफातों के केंद्र में एक युवा मन बार–बार खुद को ही रखकर सोचता है व्यक्ति ही खुद को समुदाय के रूप में भी सोचने लगता है, यही वजह है कि समुदाय भी वहां एक व्यक्ति के रूप में ही दिखाई देने लगता है। व्यक्ति ही समूह है और समूह व्यक्ति की धारणा से पैदा हुआ प्रतीत होता है। इस तरह अजब कोलाहल भरा उद्धत अकेलापन 'नाटक जारी है' में दिखता है। भाषा ऐसी कि कविता जैसे पहली बार जन्म ले रही हो। रफ–टफ, नंगी और फिर भी गंभीर जैसे कि यह महत्वपूर्ण हो। बिम्ब एकदम अप्रयुक्त, नयें पाए हुए और अनपढ़ टेढ़ेपन के साथ अलग से दिखते हैं। साफ लगता है कि वक्रता कविता की स्वीकार के लिए नहीं अस्वीकार के लिए लिखी जा रही है। उसमें प्रेम और आध्यामिकता दोनों ही क्रांति को नागरिकता के स्तर पर चाहते हैं। और दोनों ही इस भ्रांति में भी पड़े हुए हैं कि क्रांति सबकी समझ में आती है और सब उसके लिए तैयार है।''[22]

सत्ता पर आसीन शासकों की स्वार्थ प्रियता, भ्रष्टाचार के विविध रूप, गुंडागर्दी, न्याय की जटिल प्रक्रिया और तानाशाही शासन में घुटता आमजन और उसकी चेतना को जागृत करने वाला क्रांतिकारी स्वर प्रखरता से मुखरित हुआ है। जगूड़ी ने सत्ता के विविध पहलुओं को बारीकी से परखकर उसके गुण–दाषों को पूरी सच्चाई के साथ जनता के समक्ष रखकर अपनी राजनीतिक चेतना को दर्ज किया है। डॉ0 सुषमा शर्मा के अनुसार–''राजनीति समाज की दिशा निर्धारित करती है और समाज राजनीति को।''[23] लीलाधर जगूड़ी की कविताएं आम आदमी के अंतद्वद, संघर्षो, दुखों और अनुभवों से उपजी कविताएं हैं। जीवन और अनुभव की तीखी व विचलित कर देने वाली भाषा से जोड़कर पेट और प्रजातंत्र के बीच दरार की तरह खड़े आदमी को कविताएं सामने प्रस्तुत करती हैं। अपने समय के यथार्थ की विदुर्पताओं को, अमानवीय सामाजिक संबंधों की सीवन को पूरी निर्ममता से उधेड़ कर आम आदमी के भय, आतंक, अनिश्चय, दुश्चिंता, कुंठा–निराशा और मूल्यहीनता को पूरी नाटकीयता से चित्रित किया गया है।

I UnHk' %

1. नाटक जारी है– लीलाधर जगूड़ी, परिवद्धित संस्करण 2019, संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़, पृ0 18
2. समकालीन कविता और लीलाधर जगुड़ी–डॉ0 बृजमोहन शर्मा, नालंदा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1993, पृ0 4
3. नाटक जारी है–लीलाधर जगूड़ी, परिवद्धित संस्करण 2019 संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़, पृ0 26
4. वही, पृ0 30
5. वही, पृ0 36
6. वही, पृ0 37
7. वही, पृ0 40
8. परिवर्तन की परम्परा के कवि–डॉ0 बृजबाला सिंह, प्रथम संस्करण 2018, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 37–38
9. वही, पृ0 47
10. वही, पृ0 49
11. वही, पृ0 50
12. वही, पृ0 56
13. वही, पृ0 60–61
14. वही, पृ0 67
15. वही, पृ0 84
16. वही, पृ0 99
17. वही, पृ0 123
18. संशयात्मा–ज्ञानेन्द्रपति, प्रथम संस्करण 2004, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 28
19. वही, पृ0 34
20. वही, पृ0 105
21. आता ही होगा कोई नया मोड़ – प्रमोद कौंसवाल, प्रथम संस्करण 2015, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 127
22. रचना प्रक्रिया से जूझते हुए–लीलाधर जगूड़ी, प्रथम संस्करण 2015, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 43
23. समकालीन कविता और लीलाधर जगूड़ी– डॉ बष्जमोहन शर्मा, नालंदा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1993, पृ0 61

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 159-161

^cgr Çgnh dk'k* dh fuek.k&çfØ;k % leh{kkRed vè;;u

foØe xIrk*

'बृहत् हिंदी कोश' के तीन कोशकार हैं– कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव। इस कोश का प्रकाशन सन् 1952ई. में ज्ञानमंडल लिमिटेड से प्रकाशित हुआ। 'बृहत् हिंदी कोश' में कुल मिलाकर एक लाख छब्बीस हजार शब्दों का संग्रह किया गया है जो केवल एक ही जिल्द में प्रकाशित कोश है। चार वर्ष बाद इस कोश का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ और इसमें दस हजार शब्द और जोड़े गये जो कुल मिलाकर एक लाख छत्तीस हजार शब्दों यह कोश है। इस कोश का मुख्य उद्देश्य संक्षिप्त रूपों में शब्दों का ज्यादा से ज्यादा संग्रह करना तथा छात्रोपयोगी बनाना था। यहाँ कोशकारों का यह भी मंतव्य रहा है कि 'हिंदी शब्दसागर' के उपरांत साहित्य एवं व्यवहार में आए नए शब्दों का कोई संग्रह नहीं हुआ, इसलिए इन शब्दों को शामिल करते हुए 'हिंदी शब्दसागर' से छोटा एक नए कोश तैयार करने की योजना बनाई जाए।

'नागरी प्रचारिणी सभा' ने 'हिंदी शब्दसागर' के जरिए हिंदी भाषा के विकास की जो नींव रखी थी उसी के छोटे–छोटे आकार में हुए प्रकाशन ने, हिंदी के फलक को विस्तृत तो नही किया परंतु वैज्ञानिक अध्ययन, संशोधन एवं परिवर्धन जरूर देखने को मिला। चूँकि अंग्रेजी शब्दकोश (OED अर्थात् ऑक्सफ़ोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी) 20वीं शती में पाँच लाख शब्दों का कोश तैयार कर चुका था, इसीलिए उसके समांतर रामचन्द्र वर्मा जैसे मनीषियों से प्रेरित होकर एक बृहत् हिंदी कोश अनिवार्यता पर बल दिया गया। 'हिंदी शब्दसागर' (1965–1975ई.) के प्रकाशन के साथ ही हिंदी–कोश भंडार लगभग 2 लाख के आस–पास पहुँच गया। सवाल यहाँ उठता है कि क्या सिर्फ शब्दों के निरंतर संग्रहण से किसी भाषा का विकास होता है? क्या इस पर समयानुसार शोध एवं विस्तृत अध्ययन की जरूरत नहीं होती? क्या यह व्यवहार में प्रयोग की अनुमति नहीं देता? इस तरह के अनेक ऐसे प्रश्न जीवंत हो उठते हैं जो न सिर्फ कोश के दायरे को बढ़ाने का कार्य करते हैं बल्कि वैज्ञानिक अध्ययन को और ज्यादा पुख्ता बनाते हैं।

असल में हिंदी के पास न शब्दों की कमी है न लेन–देन में कोई अड़चन। फिर भी शोध–कार्य एवं विस्तृत अध्ययन की दूरी ने कोश–कार्य का दायरा सीमित रखा है। 'बृहत् हिंदी कोश' निर्माण के पीछे सबसे बड़ा कारण 'हिंदी शब्दसागर' का एक और संक्षिप्त रूप तैयार करना था और जिन कमियों से यह कोश पटा पड़ा था उससे निजात दिलाकर शब्दों की संख्या में इजाफे के साथ–साथ शब्दों का वैज्ञानिक ढाँचा खड़ा करना; इन कोशकारों का मुख्य उद्देश्य था। 'बृहत् हिंदी कोश' की विशेषता के बारे में हरदेव बाहरी ने लिखा है कि "इसके विशेष गुणों में छपाई की शुद्धता, शब्दों का सावधा संकलन, समास युक्त शब्दों को मुख्य शब्द के पेट में देने की पद्धति (जिससे जगह की बड़ी बचत होती है) एक कालम में 50 पंक्तियाँ (10 पॉइंट टाइप होने के कारण) अपेक्षा.त कम मूल्य और एक जिल्दी होने के व्यवहार की सुगमता है।"[1] इसके गुण–दोष की चर्चा करते हुए इन्होंने लिखा है कि "हिंदी कोशों की परंपरा के सारे दोष इसमें भी है, अप्रचलित, ग्रामीण, बोलीगत और अनावश्यक संस्कृत तथा उर्दू शब्दों की भरमार (यद्यपि सागर की अपेक्षा बहुत ही कम), अर्थों में हिंदी प्रयोग का अविचार शब्द के इसमें भी स्त्रीलिंग के 12 अर्थ और पुल्लिग के 15 अर्थ दिए गए हैं; नय, नर के 12–12 13–13अर्थ हैं; ये तीनों शब्द विष्णु के नाम तो हैं ही) अर्थों में किसी क्रम या पद्धति का अभाव, आधुनिक शब्दों और अर्थों की कमी इत्यादि। व्युत्पत्ति को बेकार समझा गया है, तत्सम शब्दों के आगे सं०(संस्कृत), अं०(अंग्रेजी), अ०(अरबी), फा०(फारसी) का संकेत किया गया

*शोधार्थी, हिंदी–विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

है।"[2] इस कोश में बहुत सारे शब्दों को संक्षिप्त रूप में देने का आधार समास पद्धति के जरिए किया गया है। ज्ञानमंडल के कोशकारों ने इस बात का ख्याल रखते हुए भूमिका में लिखा है कि "समास पद्धति का प्रयोग संस्कृत, अंग्रेजी तथा अन्यान्य भाषाओं की तरह हिंदी में भी समस्त पदों का प्रयोग प्रचुर रूप से होता है। ऐसे पद प्रायः मूलशब्द के साथ ही कोश में रखे गए हैं जिससे स्पष्ट हो जाए कि वह स्वतंत्र शब्द न होकर दो या दो से अधिक शब्दों के योग से बने हैं। ऐसे समस्त संयुक्त शब्दों को एक साथ–साथ रखने उनका प्रायिक संबंध दिखलाने के अतिरिक्त एक उद्देश्य और था– स्थान की बचत करना।"[3] इस कोश की भूमिका में बहुत सारे तथ्यों को स्पष्ट किया गया है ताकि सुधी पाठकों को समझने में किसी तरह की दिक्कत का सामना न करना पड़े। जो शब्द संस्कृत में कर्ता है, वह जरूरी नहीं कि हिंदी में भी वह कर्ता ही हो। इसे स्पष्ट करते हुए कोशकारों ने लिखा है कि "हिंदी में संस्कृत शब्दों (संज्ञाओं) का प्रायः कर्ता कारक के एक वचन का रूप ही प्रयुक्त होता है। किंतु समस्त पदों का ठीक–ठीक रूप समझने के लिए मूल रूप की जानकारी होना भी आवश्यक है। अतः बृहत् हिंदी कोश की तरह इस कोश में हमने संस्कृत शब्दों के सामने कोष्ठक में मूल भी दे दिया है और समास बनाने के पूर्व का रूप उचित क्रम में उससे पृथक रखकर उसी के साथ समस्त पद दिए गए हैं। उद्धरण के लिए 'राजा' (जन्) तथा 'पिता' (तृ) यथा स्थान देकर अर्थ भी वहीं रखे गए हैं। किंतु उनसे बनने वाले सामासिक शब्द 'राज'(न्) तथा 'पितृ' के साथ दिखाये गए हैं, जिससे उन्हें पहचानने, समझने में कठिनाई न हो।"[4] असल में ज्ञानमंडल की स्थापना एवं इसके द्वारा कोश निर्माण का कार्य वैश्विक फलक पर हिंदी भाषा को भावी पथ पर अग्रसित करना था, परंतु संस्कृत की पृष्ठभूमि में फँसकर हिंदी को कुंद–सा कर दिया गया, जिससे हिंदी के विकास मार्ग में बाधा पहुँची। हालाँकि इसके द्वितीय संस्करण में काफी उदारता बरती गयी है। इस कोश में अमानक शब्दों का ज्यादा इस्तेमाल हुआ है। इसलिए पाठक को कभी–कभी व्यवधान भी पैदा करता है। अगर इसमें मानक शब्दों का ज्यादा इस्तेमाल होता तो कोश की प्रामाणिकता और बढ़ जाती।

इस कोश के प्रकाशन के चार वर्ष ही नए संस्करण का आना पाठक वर्ग में स्वीकृति और प्रमाणिकता को दर्शाता है। साथ ही दूसरे संस्करण में कोशकारों ने कुछ संशोधन भी किये हैं। यह संशोधन मूलतः शब्द और अर्थ के संयोजन और समय के बदलते परिवेश के साथ कोश की अनिवार्यता निरंतर बरक़रार रहे, ऐसा प्रयास किया गया है। इसका स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने भूमिका में लिखा है कि "प्रथम संस्करण की ही तरह इस आवृत्ति में भी प्रत्ययों से बने संस्कृत के शब्द मूल शब्द से पृथक रखे गए हैं किन्तु अन्य भाषाओं के शब्द वहाँ प्रत्ययों के मिलने पर उनके मूल रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता, मूल शब्द के साथ रख दिए गये हैं। इसी तरह जिन समस्त पदों में संधि के कारण विकार हो जाता है वे मूल शब्द से पृथक रखे गये हैं। इसका कारण यह है कि जो लोग संधि के नियमों से अपरिचित उन्हें उनका रूप पहचानने में कठिनाई हो सकती है। इसी सिद्धांत के अनुसार इसमें कितने ही समस्त पद जो पहले ही मूल शब्द के साथ ही रखे गये थे, इस संस्करण में अलग रखे हैं जिससे संस्कृत न जानने वालों के लिए भी उन्हें पहचानने या ढूँढने में असुविधा न हो।"[5] अर्थात कोश पाठकों की आवश्यकता, भाषा की गरिमा और समय के साथ परिवर्तन की गुंजाइश को आत्मसात करके पाठक कोश के साथ जुड़ाव महसूस करे, ऐसा प्रयास किया गया है।

इस कोश के नए संस्करण में एक और बात ध्यान योग्य यह है कि प्रथम संस्करण में सम्मिलित सभी शब्दों का पुनरावलोकन और त्रुटियों का निवारण और नए रूप में पाठकों की माँग को ध्यान में रखते हुए इसकी उपयोगिता को बढ़ाने का प्रयास किया गया है। कोशकारों ने लिखा है कि "समूचा कोश फिर से दुहराया गया है और गद्य–पद्य की कितनी ही अन्य पुस्तकें पढ़–पढ़कर छूटे हुए शब्दों तथा अर्थों का संकलन किया गया है। ऐसे हजारों शब्द मूल भाग में ही समाविष्ट कर दिए गये हैं किन्तु वो वहाँ नहीं दिए जा सके वे परिशिष्ट संख्या 3 में रखे गये हैं हैं। इसके सिवा इस संस्करण की उपयोगिता बढ़ाने की दृष्टि से इसमें विभिन्न कवियों तथा लेखकों की रचनाओं से हजारों उदाहरण भी यथास्थान दे दिए हैं जिससे कठिन तथा अप्रचलित से होने वाले शब्दों का अर्थ और उनका प्रयोग समझने में जिज्ञासु पाठकों

को आसानी हो।"[6] इस तरह का प्रयास हिंदी के अनके कोशों में दिखलाई नहीं पड़ता है। परन्तु द्वितीय संस्करण के उपरांत इस तरह के कार्य को जारी नहीं किया जा सका, जिसकी वजह से यह अपने पुराने मानदंडो से कोश आगे न बढ़ सका।

कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार से यह कोश 'हिंदी शब्दसागर' से अलग एक स्वतंत्र कोश की नींव रखी गई और द्वितीय संस्करण में जो परिवर्तन दिखाई दिए अगर इस कार्य को निरंतर आगे बढ़ाया गया होता तो आज इसका प्रारूप 'हिंदी शब्दसागर' का विकसित रूप दिखाई देता और 'ऑक्सफ़ोर्ड अंग्रेजी शब्दकोश' के समकक्ष खड़ा होता।

lUnHkZ %

1. बाहरी, हरदेव, कोशकार्य (सं. त्रिभुवन नाथ शुक्ल, कोश निर्माणः प्रविधि एवं प्रयोग, वाणी प्रकाशन दिल्ली), पृ0 123
2. बाहरी, हरदेव, कोशकार्य (सं. त्रिभुवन नाथ शुक्ल, कोश निर्माणः प्रविधि एवं प्रयोग, वाणी प्रकाशन दिल्ली), पृ0 123
3. प्रसाद, कलिका व अन्य, बृहत् हिंदी शब्दकोश, भूमिका (प्रथम संस्करण), ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी
4. प्रसाद, कलिका व अन्य, बृहत् हिंदी शब्दकोश, भूमिका (प्रथम संस्करण), ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी
5. प्रसाद, कलिका व अन्य, बृहत् हिंदी शब्दकोश, भूमिका (दूसरा संस्करण), ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी
6. प्रसाद, कलिका व अन्य, बृहत् हिंदी शब्दकोश, भूमिका (दूसरा संस्करण), ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 162-166

bfrgkl y[ku % mn~Hko] fodkl ,oa izofÙk;k¡

MkW0 vjfoUn*

इतिहास लेखन की अपनी प्रविधि एवं अनुशासन है तथा इन प्रविधियों एवं अनशासन का विकास इतिहास लेखन के विकास के साथ–साथ हुआ है। आर0जी0 कोलिंगवुड के अनुसार अतीत संबंधी किसी भी लेखन को इतिहास की संज्ञा तभी दी जानी चाहिए जब उसमें वैज्ञानिकता हो अर्थात् उसमें किसी नई चीजों को खोजने की कोशिश की गई हो, वह मानवपरक हो, साक्ष्यों पर आधारित हो तथा उसका उद्देश्य मनुष्य का आत्मज्ञान हो।[1] अतीत–सम्बन्धी वृत्तांतों को इन उद्देश्यों को प्राप्त करने में लम्बा समय लगा तथा वर्तमान समय में भी किया गया लेखन बमुश्किल ही इन साँचे में फिट बैठता है। इसका कारण यह है कि घटनाओं के चुनाव, महत्व–निर्धारण, विश्लेषण तथा समीक्षा के दौरान इतिहासकार के अपने पूर्वाग्रह काम कर रहे होते हैं। इतिहासकार का यह पूर्वाग्रह देश, काल, परिस्थितियों तथा उसके वैचारिक आस्था से निर्मित और बलवती होता है तथा इतिहास वस्तुनिष्ठता एवं विषयनिष्ठता के अनुपूरक तथा कभी–कभी विरोधाभासी पैमाने के बीच झूलता रहता है। यही कारण है कि इतिहास लेखन एक दुष्कर कार्य है।

बटरफील्ड ने अपनी *''डिक्शनरी ऑफ हिस्ट्री ऑफ आइडियाज''* में इतिहासलेखन को मनुष्य के अतीत–बोध के विकास का अध्ययन बताया है।[2] इतिहास लिखने की इस कला को इतिहास का इतिहास भी कहा जाता है। इतिहास के विषयवस्तु का चुनाव के पीछे इतिहासकार की पूर्वनिश्चित धारनाएँ काम काम कर रही होती हैं तथा विषयवस्तु के रूप में उन्हीं लोगों, घटनाओं और प्रक्रियाओं का चुनाव किया जाता है जिसे तत्कालीन समाज द्वारा महत्व दिया जाता है। समाज के निर्माण, विकास तथा रूपांतरण में उनके योगदान का मूल्यांकन ठीक ढंग से नहीं किया गया। पूर्ववर्ती इतिहासलेखन द्वारा हाशिए पर छोड़े गए मुद्दों को उद्घाटित किया। जहाँ तक इतिहासलेखन के विकासक्रम की बात है तो इतिहासलेखन के शुरुआत के बहुत पहले से ही मनुष्य मिथक और गाथाओं के माध्यम से अपनी अतीत की स्मृति को संजोकर रखता था लेकिन उस दौरान यथार्थ और कल्पना इस तरह गुँथे होते थे कि उन्हें अलग कर पाना संभव नहीं था। बटरफिल्ड के अनुसार यूरोप में पूर्व शास्त्रीय काल में अतीत को लोक–आख्यान–काव्यों, महाकाव्यों तथा शासकों की स्मृति में रचे गये वृत्तांतों तथा हिब्रू धर्मग्रन्थों के माध्यम से संजोया जाता था।[3] यह मूलतः धर्ममूलक इतिहास हुआ करता था तथा लेखन की विषय–वस्तु धर्म एवं उससे जुड़ी हुई चीजें हुआ करती थी।

छठी शताब्दी ई0पू0यूनान में बौद्धिक संक्रमण हो रहा था। कविता के साथ–साथ गद्य का भी विकास हो रहा था। हेकाटियस, हेलेनिकस जैसे लोगोग्राफरों ने सरल गद्य में स्थानीय इतिहास (नगरों, लोगों, राजुकुमारों, मंदिरों आदि के उद्भव से संबंधित मौखिक परंपराओं और जनश्रुतियों का प्रस्तुतीकरण) लिखा। यह इतिहास की सबसे प्राचीन प्रजाति कथात्मक इतिाहस हुआ करता था।

पाँचवी सदी ई0पू0 में होरोडोटस और यूसीडाइडिस के लेखन से लोगोग्राफी इतिहास के रूप में विकसित होता हुआ प्रतीत होता है। उस समय इतिहासलेखन को उत्प्रेरण युद्धों से मिल रहा था लिवी (64 ई0पू0–17 ई0) तथा टैसिटस (55 ई0–119 ई0) ने रोमन साम्राज्य तथा युद्धों तथा उनके प्रसार का इतिहास लिखा। टैसिटस ने तो इतिहास के काम के बारे में नैतिक दृष्टिकोण अपनाय। संत ऑगस्टाइन ने (354 ई0–430 ई0) ने अपनी रचना 'सिटी ऑफ गॉड' के माध्यम से ईश्वर को इतिहास में स्थापित किया तथा घोषणा की कि ईश्वर मानवीय मामलों को शासित करना है।[4] यूरोप में शताब्दियों तक ऐसा ही

*पूर्व डॉ0 एस0 राधाकृष्णन पोस्ट डॉक्ट्रोल फेलो (यू0जी0सी), बक्सर, बिहार

इतिहास लिखा जाता रहा जो कैथोलिक चर्च की सत्ता की प्रतिष्ठा तथा स्थायित्व बनाए रखने में सहायक हो।

14वीं सदी में अफ्रीका में एक विलक्षण इतिहासकार इल–खाल्दून (1332–1406) ने अपनी *'किताब–अल–इबार'* की भूमिका *'मूकद्दिमा'* में इतिहास, इतिहासलेखन की विधि तथा सामाजिक संस्थाओं के महत्व को समझा।[5] उसने इतिहास को काल प्रवाह और विकास की दिशा के संदर्भ में समझने का प्रयास किया। वैज्ञानिक इतिहास की बात करने वाला वह पहला व्यक्ति था हालांकि वह खुद वैसा इतिहास नहीं लिख सका जैसा वह चाहता था।

यूरोप में 15वीं सदी में जब पुनर्जागरण शुरु हुआ तो जीवन–दृष्टि बदलने लगी। तथा लोग धर्म का विरोध किए बगैर धर्म के प्रति तटस्थ रहने लगे। इतिहास पर भी धर्म का प्रभाव दो तरीके से कम हुआ। गैर भिक्षु लोग भी इतिहासलेखन की तरफ आकृष्ट हुए। इतिहास का विषय सेकुलर होने लगा।[6] इतिहास में मानवतावाद स्थापित होने लगा।

पाठ्यगत आलोचना तथा ऐतिहासिक दस्तावेजों के आलोचनात्मक रवैया अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ी। मानवतावादी पूनर्जागरण का एक विशेष असर इतिहासलेखन पर यह हुआ कि पुरातत्वकालीन अवशेषों में एक नई जिज्ञासा पैदा हुई।[7] इतिहास में से ईश्वर एवं धार्मिक प्रस्तुतिकरण को निकाल फेंका गया एवं इतिहास को पूर्णतया लौकिक बनाते हुए इसके लिए एक नया आधार तैयार किया। हालाँकि इस काल का इतिहासलेखन भी अनाधिकारवादी एवं उपदेशवादी नीतियों को अपने अंदर समाहित किए हुए हैं। ईटली इस तरह के इतिहासलेखन का केन्द्र बना। हालांकि ईटली के बाहर भी इतिहासलेखन पर पुनर्जागरणकालीन प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ईटली के लेखकों में प्रमुख नाम लियोनार्डो ब्रूनी (1369–1444 ई0), सैबिलस (1436 ई0–1506 ई0), लॉरंजो वल्ला (1407–1457 ई0) लावियो बियांडो (1388–1463 ई0), निकोलो मैकियावली (1469–1527 ई0), फ्रांसेस्को गुइशीर्याडनी (1783–1540 ई0) ईटली के बाहर के लेखकों में स्विटरजरलैण्ड के Vadianus (1489-1551) जर्मनी के Albert Krantz (1450-1517), इंग्लैण्ड के Polydox Vergile इत्यादि प्रमुख है।

17वीं सदी के वैज्ञानिक क्रांति ने भी इतिहासलेखन को गहरे रूप से प्रभावित किया। विज्ञान के बढ़ते प्रभाव के कारण पश्चिम के मानव की मानसिक धारणाओं में बहुत परिवर्तन हुआ। यह विचार धीरे–धीरे स्थापित होने लगा कि संसार प्रकृति के नियमों से चलता है जिसे मनुष्य कारणों में जाकर खोज सकता है। इतिहास में उन्नति के विचारों को स्थापित करने का प्रयास शुरु हुआ। इस विचार ने इतिहास में यह प्रतिष्ठित किया कि मानव समाज स्थिर नहीं है बल्कि हमेशा सभ्यता के निचले स्तर से ऊपर स्तर की ओर बढ़ता रहता है। स्त्रोत वस्तुओं के संग्रहण पर जोर दिया जाने लगा, आनुषांगिक विज्ञानों (इपिग्राफी, डिप्लोमेटिक्स, न्यूमिस्मेटिक्स) का उदय हुआ, कालक्रम तथा काल–विभाजन जैसे मुद्दों पर गंभीरतापूर्वक अध्ययन शुरु हुए।[8] इस दौर के लेखकों में रोजर बेकन, डेस्कारेट्स, पियरे बॉयल, जोसेफ स्केलिगर, कार्टेशियन, विको इत्यादि प्रमुख हैं।

वस्तुतः इतिहासलेखन का मुख्य जोर उन्हीं चीजों पर रहता है जो तत्कालीन समय के वर्चस्ववादी संस्कृतियाँ और विचार निर्धारित करती है। Jeremy Black and Donald D. Macraild us viuh fdrkc ***Studying History*** में यह लिखा है कि प्रबोधन के पहले के अधिकांश इतिहास लेखन इस बात को मानकर चलता था कि ऐतिहासिक विकास के संदर्भ में सबसे गहती भूमिका ईश्वर की हे। एशिया तथा अफ्रीका में जहाँ यूरोप की अपेक्षा प्राक् आधुनिक ऐतिहासिक अन्वेषण अधिक विकसित थी वहाँ भी ईश्वर तथा ईश्वरीय कार्यों की मान्यता प्रदान की गयी।

प्रबोधन के समय से (18वीं सदी से) इतिहास का स्वरुप निश्चित दिशाओं में निर्धारित होने लगा। इतिहास वैसे अनुशासन के रुप में विकसित होने लगा जैसा हम जानते है। इतिहास का क्षेष धार्मिक दॉव–पेंच तथा राजनीतिक पहलुओं से इतर भी होने लगा। मान्तेस्किऊ, वोल्तेयर तथा कोंदोर्स के प्रयासों से इतिहास में प्रगति का सिद्धान्त प्रतिष्ठित हुआ तथा विचारों को अधिक महत्व दिये जाने के कारण बौद्धिक इतिहास की शुरुआत हुई। इतिहास का परिप्रेक्ष्य विस्तृत हुआ तथा इतिहास तर्कसंगत होने

लगा।[9] इसी तरह की प्रवृत्ति उस समय के अधिकांश विचारकों में मिलती है हालांकि ज्ञान के इन सुस्थापित मानकों पर हस्तक्षेप की भी शुरुआत इस दौर में हो गई थी हालांकि ज्ञानोदय काल ने इतिहास लेखन पर काफी सकारात्मक प्रभाव डाले। वोल्तेयर ने इतिहास–दर्शन का ईजाद किया। उसे 'Rationalist school of Historians' का संस्थापक माना जाता है।[10] R.G. Collingwoodus कहा है कि ज्ञानोदय काल के इतिहासकार अपनी तमाम असहनीशलता एवं अतर्क के बावजूद सहनशीलता के लिए संघर्षरत थे। वे इतिहास के अध्ययन के दायरे में बिलकुल नए अध्याय कला, विज्ञान, उद्योग, व्यापार एवं संस्कृति को इतिहास में लाने के प्रयत्न में थें यद्यपि वे कारणों के खोज में सतही थे मगर उन्होंने स्पष्टतः यह धारणा बनाई कि इतिहास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक घटना दूसरे को जन्म देती है।[11]

19वीं और 20वीं शताब्दी में इतिहास लेखन से संबंधित तीन महत्वपूर्ण परंपराओं का विकास हुआ। यह वह काल था जब तकनीकी विकास, औद्योगिक और वित्तीयद पूँजीवाद का स्थायीकरण तथा यूरोप में 17वीं सदी से विकसित हो रहे विज्ञान का दृढ़ीकरण हो रहा था। प्रत्यक्षवाद और मार्क्सवाद जहाँ इतिहासलेखन को एक वैज्ञानिक आधार देना चाहते थे, हालांकि इस वैज्ञानिक इतिहास के बारे में उनकी धारणाएँ अलग–अलग थी। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में इतिहास लेखन की तीसरी महत्वपूर्ण पद्धति का अविर्भाव हुआ जिसका प्रेरणास्रोत कुछ हद तक मार्क्सवाद था। इसे 'अनाल स्कूल' के नाम से जाना गया।[12]

ओगुस्त कोंत द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्षवादी दर्शन इतिहास को समाज विज्ञान की तरह प्रतिष्ठा दिलाने का एक महत्वपूर्ण प्रयास था। प्रत्यक्षवादी धारा के अनुसार इतिहास का आगमन, धार्मिक और आधिभौतिक अवस्थाओं के बाद होता है। कोंत का मानना था कि इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन से सामाजिक विज्ञान के कुछ सामान्य नियम प्रतिपादित किए जा सकते है। प्रत्यक्षवादी दर्शन उस अनुभववादी परंपरा से घनिष्ठ है जिसकी जड़े अतीत में थी। लेकिन पुरानी अनुभववादी दृष्टि को जॉर्ज वर्कले, डेविड ह्यूम और जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे आधुनिक दार्शनिकों ने काफी बदल दिया। इतिहास लेखन पर अनुभववाद का प्रभाव लिओपोल्ड फान रानके तथा उसके अनुयायियों के शोध और लेखन में देखा जा सकता हैं। उनकी पद्धति के केन्द्र में यह धारणा थी कि अतीत को वर्तमान की दृष्टि से न देखकर अतीत के मापदंड से ही देखा जाना चाहिए। रानके के समय से इतिहासलेखन में जिन बातों पर जोर दिया जाने लगा वे हैं– स्रोतों की प्रमाणिकता, सही संदर्भो और स्रोतों का विवरण तथा वस्तुनिष्ठता का आदर्श।[13] रानकेवादियों का यह मानना था कि इतिहास में तथ्यों को कठोर अनुशासन के साथ प्रस्तुत किया जाए भले ही वह शुष्क लगे। सामान्य में विशिष्ट की तलाश पर जोर दिया जाय। आलोचनात्मक पद्धति, तटस्थ शोध और संश्लिष्ट रचना की बात की जानी चाहिए। हालाँकि इन सबसे इतिहास निर्जीव हो गया। इतिहास की विषयवस्तु इस दौर में राजनीति एवं युद्धों तक सिमट कर रह गई। कला, धर्म, विज्ञान आदि की उपेक्षा की गई इतिहास लेखन में इसके मुख्य प्रणेता जर्मनी में रानके और मोमसेन, इग्लैड में ऐक्टन, बरी और हकल तथा फ्रांस में कुलान और तेने थे।

एक ओर रानकेवादी इतिहास लेखन का प्रभाव बढ़ता जा रहा था वहीं परंपरागत इतिहास लेखन की एक ओर भी अधिक मूलगामी आलोचना का विकास उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ। यह इतिहास की मार्क्सवादी दृष्टि थी। जो इतिहास के अध्ययन लेखन के अन्य पद्धतियों से अधिक वैज्ञानिक थी।

काल मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन की गतिशीलता और इतिहास में रुपातंरण को समझने के लिये हेगेलवादी द्वंदवाद के तर्क को अपनाया मार्क्सवाद के अनुसार इतिहास वर्ग संघर्ष के माध्यम से निरंतर विकासोन्मुख मानव समाज के अध्ययन का आधार है। इसके अनुसार हर सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक क्रांति का मूलभूत कारण मनुष्य के मस्तिष्क में या अंतिम सत्य और न्याय के प्रति मनुष्य की अंतर्दृष्टि में नहीं बल्कि उत्पादन और विनिमय के साधनों में हुये परिर्वनों में प्राप्त होते है। अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'होली फैमिली' में मार्क्स ओर एंगेल्स ने लिखा था कि इतिहास अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयासरत मनुष्य की गतिविधि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'' इस गतिविधि का मूल आधार आर्थिक होता है। हालॉकि आर्थिक आधार एकमाष आधार नहीं होता है। अधिरचना के विभिन्न तत्व जैसे वर्ग संघर्ष के

राजनीति स्वरुप, और संघर्ष के परिणाम, विजेता वर्ग द्वारा निर्मित संविधान, न्यायिक संगठन, संघर्षरत व्यक्तियों की मानसिक स्थितियाँ, राजनीतिक, न्याय संबंधी एवं दार्शनिक सिद्धान्त धार्मिक विचार और मताग्रह भी इतिहास के विकास पर प्रभाव डालते है।[14] प्रकृति में कार्यरत और उद्घाटित द्वद्वात्मक भौतिकवाद को समाज तक विस्तृत करने से ऐतिहासिक भौतिकवाद का जन्म हुआ जो मार्क्सवाद की विशेष देन है।

मार्क्स ने यह तर्क दिया कि इतिहास, जिसका अभिप्राय अतीत है, विभिन्न चरणों की एक श्रृंखला के माध्यम से सामने आया है। एशियाटिक पुरातन (एंटीक), सामंती और आधुनिक बुर्जुआ। इनमें से प्रत्येक चरण उन प्रचलित दशाओं द्वारा निर्धारित होता है जिनके तहत धन का उत्पादन होता है। दास कैपिटल में मार्क्स ने कहा कि श्रम और पूँजी के मध्य पास्परिक विरोध का मूल कारण यह है कि पूँजीवाद अधि ाशेष मूल्य को हथियाने में समर्थ है जो श्रम द्वारा उत्पन्न होता है और इसलिए जिसे श्रम के हिस्से में जाना चाहिए। मार्क्स क्रान्ति को सामाजिक प्रगति का एक सशक्त माध्यम मानते है। मार्क्स ने यह भविष्यवाणी किया कि सामाजिक क्रान्ति के भावों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए पूँजीवादी वर्ग को उखाड़ फेंकने के बाद सर्वहारा वर्ग का एक अधिनायकवाद स्थापित किया जाएगा।[15] इतिहास–लेखन पर मार्क्सवाद ने गहरा प्रभाव डाला है तथा इसने इतिहास लेखन की विषयवस्तु के आयाम को विस्तृत किया है। अपनी तमाम आलोचनाओं के बाद इतिहास के अध्ययन–लेखन का मार्क्सवादी तरीका अन्य पद्धतियों से अधिक वैज्ञानिक है। इतिहास.लेखन के दायरे में आम आदमी को लाया तथा ऐतिहासिक गतिविधयों में जनसाधारण की अग्रिम भूमिका को रेखांकित किया। इतिहास के प्रमुख विषयों के रुप में आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास का विकास हुआ।

20वीं सदी कुछ प्रमुख इतिहास–दार्शनिक जिन्होंने इतिहास लेखन को प्रभावित करने का कार्य किया उनमें जे0बी0 बरी, ट्रेवेलयन, स्पेंगलर, टॉयनबी, आर0जी0 कोलिंगवुड, जे0बी0 ब्लैक, जे0एच0 रॉबिन्सन, सी0ए0 बेयर्ड, कार्ल बेकर, हेनरी पाइरेने, जॉर्ज लेफेब्रे, सिडनी बेब, थियोडेर मॉमसेन, नेमियर, ए0जे0पी0 टेलर, क्रिस्टोफर हिल, ई0एच0 हाब्सबॉम, ई0पी0 थाम्पसन इत्यादि है।

इतिहास लेखन के अनाल स्कूल के उदय को 20वीं सदी के इतिहासलेखन से संबंधित महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक माना जाता है। 1929 में मार्क ब्लोख (1886 ई0 –1944 ई0) तथा लूसियन फेब्रे (1878 ई0–1956 ई0) ने 'Annales of Economic And social History' नामक पत्रिका की स्थापना के साथ इस धारा की विधिवत शुरुआत की। हालांकि उससे पहले हेनरी बेर (1863–1934 ई0) ने 'Review of Historical Synthesis' (1900) नामक शोध जर्नल की स्थापना की थी तथा सौ खण्डों में Evolution of Humanity की योजना बनाई थी जिसका उद्देश्य समाज में मनुष्य की सभी गतिविधियों का एक व्यापक संश्लेषण प्रस्तुत करना था। 19वीं सदी के इतिहासलेखन की एकरसता को 20वीं सदी के युद्धों तथा सामाजिक संक्रमणों के द्वारा छिन्न–भिन्न कर दिया गया तथा इतिहास लेखन अलग–अलग स्वरुपों तथा प्रविधियों के साथ विस्तृत होता है। समग्र इतिहास की बात की जाने लगी। इतिहासकारों के अन्वेषण के लिए नए–नए विषयों के द्वार खुले। अंतर्विषयक अनुसंधानों पर जोर दिया जाने लगा। मार्क ब्लोख ने दो खण्डों की अपनी पुस्तक 'दियूडल सोसायटी' (1936) में सामंतवाद के अध्ययन के दौरान सभी पहलुओं पर ध्यान देकर अध्ययन का समग्र और विशाल ढाँचा खड़ा किया। आर्थिक इतिहास एक स्वायत्त विषय के रुप में उदित हुआ। अरनेस्ट लेब्रास तथा फर्नैंड ब्राउडेल (दि मेडिटेरिनियन) अपनी कृति में इतिहास की ऐसी दीर्घकालीन प्रवृत्तियों को ढूँढने का प्रयास किया जो आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन को समझने में तथा एक हद तक उसके भविष्य का अनुमान लगाने में मदद कर सके। अनाल इतिहासकारों ने तीन तरह के प्रवृत्ति को जन्म दिया मानसिकताओं का इतिहास, समाज के हाशियें पर स्थित समूहों (न केवल साधनहीन और गरीब लोग बल्कि भिखमंगे, पागल, साधु, चोर और डकैत इत्यादि) का इतिहास और तुलनात्मक इतिहास।[16]

20वीं सदी में कुछ परवर्ती मार्क्सवादी इतिहासकारों ने क्लासिकल मार्क्सवादी सिद्धान्तों से इतर जाने की कोशिश की। उन्होंने आर्थिक नियतिवाद और रुढ़ मार्क्सवाद के आधार–अधिरचना संबंधी मॉडल

की आलोचना की। वर्ग–निर्धारण के सिद्धान्त के रुप में मार्क्सवाद का विकास किया। इन इतिहासकारों ने इतिहास पर उत्पीड़ित वर्गों के नजरिए से जोर दिया। वस्तुपरकता को घोड़े बिना परंपरागत इतिहासकारों की तटस्थता का परित्याग करने का प्रयास किया। इन इतिहासकारों में जॉर्ज लेफेब्रे (1874 ई0–1959 ई0), मौरिस डॉब (1900 ई0–1976 ई0), जार्ज रुदे (1910 ई0–1993 ई0), रोडनी हिल्टन (1916 ई0–2002 ई0), क्रिस्टोफर हिल (1912 ई0 –2003 ई0) ई0पी0 थॉमसन, ई0एच0 हॉब्सबॉम इत्यादि प्रमुख हैं।

इस दौरान इतिहास लेखन के विषयवस्तु का दायरा बढ़ता गया। इतिहास सम्पूर्ण मानवीय गतिविधियों को अपने अध्ययन का विषयवस्तु बनाने लगा। किसानों, मजदूरों तथा स्त्रियों के परिप्रेक्ष्य से इतिहास लेखन की प्रक्रिया की शुरुआत हुई। इतिहास लेखन के क्रम में सबाल्टर्न उपागम का हस्तक्षेप हुआ। इतिहास लेखन से अब तक बहिष्कृत थी उनके समोवशन की प्रक्रिया आरं हुई तथा इतिहास के चरित्र को समावेशी बनाने का प्रयास किया जाना शुरू हुआ।

I UnHk%

1. R.G. Collingwood- The Idea of History, New Delhi : OUP, 2009, (First Published IN 1945), p. 10
2. Philip P. Wiener (Edited) - The Dictionary of History of Ideas, Published in 1973-74.
3. R.K. Mazumdar and A.N. Srivastava- Historiography (Methods of History), New Delhi : SBD Publisher's & Distributors, 2009, p. 107
4. लाल बहादुर वर्मा, इतिहास : क्यों–क्या–केसे, नई दिल्ली : हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, 2010, पृ0 18
5. वर्मा, वही, पृ0 18
6. वही, पृ0 18
7. R.K. Mazumdar and A.N. Srivastava- Historiography (Methods of History), New Delhi :SBD Publisher's & Distributors, 2009, p. 107
8. ई0 श्रीधरन, इतिहासलेख, नई दिल्ली : ओरिंयट ब्लैकस्वॉन, 2011, पृ0 80
9. लाल बहादुर वर्मा, इतिहास : क्यों–क्या–केसे, नई दिल्ली : हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, 2010, पृ0 18
10. R.K. Mazumdar and A.N. Srivastava- Historiography (Methods of History), New Delhi : SBD Publisher's & Distributors, 2009, p. 114
11. ई0 श्रीधरन, इतिहासलेख, नई दिल्ली : ओरिंयट ब्लैकस्वॉन, 2011, पृ0 80
12. IGNOU MHI-03 इतिहास लेखन, खण्ड–4
13. वही,
14. ई0 श्रीधरन, इतिहासलेख, नई दिल्ली : ओरिंयट ब्लैकस्वॉन, 2011, पृ0 179
15. लाल बहादुर वर्मा, इतिहास : क्यों क्या–केसे, नई दिल्ली : हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, 2010, पृ0 25
16. IGNOU MHI-03 इतिहास लेखन, खण्ड–4

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 167-168

or eku ifjn`{; e L=h efä dh vo/kkj.kk

l ht ek;k*

राधा कुमार ने अपनी पुस्तक 'स्त्री संघर्ष का इतिहास' में 19वीं सदी को स्त्रियों की शताब्दी कहा है। यूरोप के फ्रांसिसी क्रांति के बाद पूरे विश्व में स्त्री जागरूकता का विस्तार होना आरम्भ हुआ और नारीवादी विचारों को एक नयी अभिव्यक्ति मिली। "उन्नीसवीं सदी के मध्य तक रुसी सुधारकों के लिए 'महिला–प्रश्न' एक केंद्रीय मुद्दा बन गया था जबकि भारत में–खासतौर से बंगाल और महाराष्ट्र में समाज सुधारकों ने स्त्रियों में फैली बुराइयों पर आवाज उठाना शुरू किया।"[1] वैश्विक पटल पर संगठित नारी आन्दोलनों के साथ–साथ सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्तरों पर नारी विषयक समस्याओं और प्रश्नों को उठाया गया। वस्तुतः नारीवाद की मूल अवधारणा समानता की अवधारणा पर केन्द्रित थी। जॉन स्टुअर्ट मिल ने नारीवादी चिंतन को स्त्री प्रश्न से जोड़ते हुए लिखा कि–" परिवार, मातृत्व और शिशुपालन सहित समस्त सामाजिक गतिविधियों एवं संस्थाओं में स्त्रियों की भूमिका, अन्य सामाजिक–आर्थिक शोषण–उत्पीड़न के साथ ही यौन–भेद पर आधारित स्त्री–उत्पीड़न की विशिष्टता और स्त्री–मुक्ति से जुड़ी सभी समस्याओं का जटिल समुच्चय है– स्त्री–प्रश्न।"[2] वस्तुतः स्त्री–प्रश्न के अंतर्गत महिलाओं द्वारा पुरुषों की तुलना में सामनाधिकार की मांग, सामाजिक स्तर पर बराबरी, अर्थस्वातंत्र्य, देह की मुक्ति और लैंगिक भेद को समाप्त करने जैसे प्रमुख मुद्दों को तरजीह दी गयी और यह तब संभव होता जब स्त्रियाँ पुरुषों की गुलामी के जंजीरों से मुक्त होतीं।

स्त्री–मुक्ति की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए रमणिका गुप्ता कहती हैं कि स्त्री–मुक्ति का तात्पर्य ""स्त्री के विषय में उसके सुख–सुविधाओं से लेकर प्रत्येक समस्या के परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सूक्ष्म से सूक्ष्मतम चिंतन–मनन कर अस्वस्थ दृ ष्टिकोणों को स्वस्थता प्रदान करना...।"[3] वहीं चार्ल्स फुरिए सामाजिक स्तर पर स्त्री की आज़ादी को एक मानक निर्धारित करते हुए कहतें हैं कि, "किसी भी समाज में आज़ादी का एक बुनियादी पैमाना यह है कि उस समाज विशेष में स्त्रियाँ किस हद तक आजाद हैं।"[4] समाज परिवार की महत्तम इकाई है और इस सामाजिक संरचना में स्त्री–पुरुष एक दुसरे के पूरक हैं। जब पुरुष को हर क्षेत्र और हर स्तर पर कोई भी कार्य करने की स्वतंत्रता प्राप्त है तो जाहिर है कि स्त्रियों को भी पुरुषों के समान वैसी ही स्वतंत्रता उपलब्ध होनी चाहिए क्योंकि "स्त्री की मुक्ति में समाज की मुक्ति का रहस्य छिपा हुआ है।"[5]

वैश्विक स्तर पर अनेक देशों की सामाजिक संरचना पितृसत्तात्मक रही है। इसी सामाजिक पितृसत्तात्मक वर्चस्व के कारण स्त्री हजारों वर्षों से पुरुषों की गुलाम बनकर रही है। स्त्री पर अपने आधिपत्य और वर्चस्व को बनाये रखने के लिए पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने ऐसे नियम, कानून, सिद्धांत और मान्यताओं को बनाया जिससे स्त्री को अधिकाधिक उपनिवेश बनाकर रखा जा सके। मिशेल फूको के अनुसार अनुशासन वह व्यवस्था है जो स्त्री को घर, परिवार, समाज के अधीन रहना सिखाती है। इसी अनुशासन में ढलते–ढलते उसकी स्वेच्छाचारिता या स्वतंत्रता को अर्जित कर ली गयी है। ग्राम्शी ने इसे सांस्कृतिक प्रभुत्व कहा है। पर्यन्त सहनशीलता, नैतिकता को नारी का सर्वोच्च गुण माना गया और कहा गया कि सर्वोच्च नारी वही है जो पितृसत्तात्मक अनुशासन का पालन बखूबी करती है और जो प्रतिरोध नहीं करती। स्त्री की अप्रतिरोधी धारणा का लाभ पितृसत्तात्मक व्यवस्था को मिला फलस्वरूप स्त्रियाँ

*पूर्व छात्रा, एम0ए0 (नेट), हिन्दी, गनपत सहाय पी0जी0 कालेज, सुल्तानपुर, उ0प्र0

पुरुषों की उपनिवेश बनकर रह गयीं। स्त्रियों की समस्याओं का समाधान क्या हो सकता है इस पर अपने विचार रखते हुए रमणिका गुप्ता कहती हैं, "सबसे ज्यादा जरुरी है स्त्रियों में मुक्त होने, अपनी पहचान बनाने, अपना स्वाभिमान निर्मित करने, स्वावलंबी बनने, अपनी रक्षा खुद करने, अपनी देह के बारे में अपना निर्णय खुद लेने की इच्छा शक्ति पैदा करना।"[6]

पश्चिम में नारी मुक्ति की मुहिम औद्योगिक क्रांति के साथ शुरू हुयी मगर भारत में इस मुद्दे पर विचार एक सामाजिक सुधार के प्रयास के फलस्वरूप हुआ। भारत में सर्वप्रथम स्त्री मुक्ति के प्रश्न पर विचार 19वीं सदी के आरम्भ में तब शुरू हुआ जब बंगाल में राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ़ आवाज़ उठाई साथ ही शिक्षा और संपत्ति में हक दिलाने की सिफारिश की। पश्चिम में स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए लम्बे समय तक पुरुषों के खिलाफ मोर्चा बांधकर लड़ना पड़ा था, वहीं भारत में नारी जागृति और उनकी मुक्ति के लिए प्रथम प्रयास नवजागरणकाल में भारतीय समाज सुधारकों और जन नेताओं के द्वारा किये गए। नवजागरणकाल में सामाजिक सुधार और सामाजिक चेतना की लहर एक साथ उठी और इन सुधारवादी आन्दोलनों में स्त्रियों की भूमिका बढ़–चढ़ कर रही। 1892 ई० में पंडिता रमाबाई ने स्त्रियों की शिक्षा और रोजगार के लिए पूना में 'शारदा सदन' की स्थापना की। 1886 ई० में स्वर्ण कुमारी देवी ने 'लेडीज एशोसिएसन' स्थापित किया और 'भारती' पत्रिका के संपादिका के रूप में उन्होंने अपने पत्रिका के माध्यम से महिलाओं में जागृति की लहर पैदा की। श्रीमती एनी बेसेंट ने 'थियोसोफिकल सोसाइटी' के माध्यम से भारतीय महिलाओं की दशा सुधारने के लिए काफी प्रयास किये।

आज 21वीं सदी में स्त्री विमर्श का एक व्यापक स्वरुप है, आज की स्त्री और स्त्री विमर्श का दायरा बहुत आगे निकल आया है। भारतीय सन्दर्भ में यह बात निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति और संविधान निर्मिती के बाद भी स्त्रियों को सामान सिविल राइट्स से लेकर शिक्षा, स्वास्थ्य, घरेलू हिंसा, ग्लोबल वर्ल्ड में स्त्री की अस्पष्ट भूमिका, यौन उत्पीड़न, लैंगिक असमानता, भ्रूण हत्या, महिला आरक्षण, ह्यूमन ट्रैफिकिंग और रोजगार के असमानता जैसे समस्याओं से प्रतिदिन रूबरू होना पड़ता है। ये आज के स्त्रीवादी विमर्श के मूल मुद्दे हैं, इन मुद्दों के सापेक्ष बहुत से सार्थक प्रयास भी हो रहें हैं। हालांकि इतना ही पर्याप्त नहीं, क्योंकि अब भी बहुत कुछ करना बाकी है। भारत की 99 प्रतिशत स्त्रियां सुहाग–भाव, पति–परमेश्वर, पारिवारिक इज्जत की अवधारणाओं से ग्रस्त हैं, ये अवधारणायें एक ग्रंथि की सीमा तक पहुँच चुकी हैं, उनके अंतर्मन में कुंडली जमकर बैठी हुई हैं। हमें इनसे निजात पानी है तो अपने को इनसे मुक्त करना ही होगा।

I UnHk%

1. स्त्री संघर्ष का इतिहास, राधा कुमार, वाणी प्रकाशन, 2011, पृ० 23
2. स्त्रियों की पराधीनता, जॉन स्टुअर्ट मिल, राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ० 10
3. Cy,x http:// renukamal.blogspot.in/2010/08/stree-vimarsh-aur-ramnika-gupta-ka-bold-html ?m=1
4. स्त्रियों की पराधीनता, जॉन स्टुअर्ट मिल, राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ० 16
5. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स ,नई दिल्ली ,2011 ,पृ० 202
6. स्त्री मुक्ति संघर्ष और इसिहास, रमणिका गुप्ता, सामयिक प्रकाशन, 2014, पृ० 117. हिंदी नवजागरण, गजेन्द्र पाठक, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2005, पृ० 05

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 169-172

L=h thou vkj uSfrdrk dk ç'u

MkW f'kYih xIrk*

समकालीन स्त्री–कथा लेखन का आरंभ सन् 1960 के बाद से माना जाना चाहिए। स्त्रियाँ 19वीं शताब्दी के अंत से गद्य लेखन के क्षेत्र में सक्रिय होने लगी थी। लेकिन यह सुगबुगाहट ही थी। 20वीं सदी में हिन्दी कथा साहित्यग में बंग महिला होमवती देवी, उषादेवी मित्रा, सुभद्रा कुमारी चौहान, कंचनलता सब्बंरवाल, दिनेश नंदिनी डालमिया, चंद्रकिरण सौनरेक्सा , रजनी पणिकर आदि लेखिकाओं ने स्त्री जीवन से जुड़े विविध पहलुओं को अपने लेखन का क्षेत्र बनाया था। जिसे आज के समय में समकालीन लेखिकाएँ जिनमें स्वन. शिवानी, मालती जोशी, शशि प्रभा शास्त्री, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, गीतांजलि श्री, अनामिका, जयंती, शरद सिंह सरीखी लेखिकाएँ हिन्दीन कथा साहित्य में उसी स्त्री लेखन की कड़ी को आगे बढ़ाती हुई दिखायी देती हैं। इन लेखिकाओं ने स्त्री के अधिकारों, स्त्रील की आर्थिक अवस्थाओं पर विचार करते हुए पुरुष के समकक्ष स्त्री को उसकी गरिमा के साथ उपस्थित किये जाने की वकालत की। इससे एक बात और खुलकर सामने आयी कि स्त्री एक शरीर अथवा भोग्या मात्र नहीं है, वह एक व्याक्ति–मनुष्यी है जिसमें वे सारे गुण–अवगुण हैं जो एक मनुष्य में हो सकते हैं। इन सभी लेखिकाओं ने नारी जीवन के विविध पहलुओं का चित्रण किया और स्त्री विमर्श से जुड़ी बातों पर विचार किया जिनमें कोख का अधिकार, अविवाहित मातृत्व, बाल विवाह, विधवा–नियति से छुटकारा, सहजीवन, स्त्री बहनापा, समलिंगी प्रेम, विवाहेतर प्रेम–संबंध तथा स्त्रीत–आत्म, निर्भरता जैसे विषयों को अपनी रचनाओं की विषय वस्तु के रूप में चुना।

नैतिकता की अवधारणा समाज में समय–समय पर बदलती रही है। जो तत्कावलीन समाज के लिए नीति–सम्म त हो वही नैतिक माना जाता है जो बाद में पुराना पड़ जाता है। समाज में एक समय बाल विवाह को वैध तथा नैतिक माना जाता था जिसके लिए परिवार, समाज सभी की स्वीकृति होती थी। कम उम्र में ही माता–पिता अपने बच्चों का विवाह कर देते थे। उस समय अधिक उम्र तक खास तौर पर लड़कियों का बिना विवाह किये घर में रखना उचित नहीं समझा जाता था और प्रायः समाज के लोग इसे संशय की दृष्टि से देखते थे। उपन्याास–सम्राट प्रेमचंद के जीवन में एक त्रासदी की तरह उनका व्याह भी कम उम्र में, परिवार की रजामंदी से, कर दिया गया था जिसके बारे में अमृत राय ने 'कलम का सिपाही' में कुछ इस तरह से लिखा है– ''नाना साहब ने पंद्रह साल के इस खूबसूरत नवाब के लिए ऐसी उम्र में ज्यृदा काली, भद्दी, थुलथुल, चेचक, अफीम खाने वाली, भचककर चलने वाली औरत ही क्यों चुनी, यह रहस्यर उनके साथ ही चला गया। लेकिन इसमें शक नहीं कि जिस जिसने देखा उसके मुँह से एक सर्द आह निकल गयी। कहाँ नवाब, कहाँ यह औरत का कार्टून! यहाँ तक कि मुंशी अजायब लाल (पिता) से भी नहीं रहा गया और उन्होंहने हिम्ममत बटोरकर अपनी पत्नी, से कह दिया . लालाजी ने मेरे लड़के को कुएँ में ढकेल दिया। मेरा गुलाब सा लड़का और उसकी यह बीबी! मैं तो उसकी दूसरी शादी करूँगा।'[1]

कम उम्र का व्याह और पारिवारिक रजामंदी का व्याह लड़के–लड़कियों के शारीरिक, मानसिक विकास को अवरूद्ध करने वाला सिद्ध हुआ। यहाँ प्रेमचंद का बचपन समय से पहले ही मर गया। प्रेमचंद को मन और शरीर से इतनी बेमेल स्त्रीय के साथ निबाह करने की कोई इच्छाम नहीं थी। यथार्थ का यह

*असि0प्रो0, हिन्दी, अमेठी विश्वविद्यालय, नोएडा, उत्तर प्रदेश

एक ऐसा धक्काा था जिसने नवाब को अंदर तक झकझोर दिया। उन्होंने इस स्त्री को कभी पत्नीव के रूप में नहीं स्वीरकारा और बाल विवाह, अनमेल विवाह जैसी कुरीतियों की भर्त्सना की।

'समाज में व्याप्त विषमताओं जात–पाँत की विडम्बनाओं एवं विसंगतियों ने उनके भीतर इन सभी के प्रति बेचैनी और असंतोष का ऐसा भाव जागृत किया है, जिससे इन्हों ने कुछ ऐसा लिखने का ठाना जिससे मुर्दा समाज में कुछ हरकत पैदा हो।'

उस समय आर्य समाज का काफी दौर था। प्रचारक लोग प्रायः घूम–घूमकर धर्म आदि का प्रचार किया करते थे। साथ ही बाल–विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि की बुराइयाँ बतायी जाती थी। ''एक तरफ जो लोग शादी में लेन–देन की प्रथा को बुरा कहते थे, खुद चोरी–छिपे वही काम करते रहते थे। विधवाओं की दुर्दशा पर लोग आंसू बहाते रहते लेकिन खुद विधवा के पुनर्विवाह के लिए तैयार नहीं होते थे और न अपनी विधवा बेटी या बहू का व्याह फिर से करने का साहस अपने भीतर जुटा पाते थे। ऐसे समय में प्रेमचंद ने समाज स्वीकृत, परंपरागत नैतिकता को चुनौती देने का काम किया। उनकी पहली शादी असफल रही थी, इसलिए उन्हों ने सोचा कि यदि उन्होंने दुबारा शादी करनी ही है तो किसी विध ावा से ही करनी है।

यह प्रेमचंद की नैतिकता ही थी, जिसमें उन्होंने बाल विवाह और अनमेल विवाह की खामियों को बताते हुए इसका निषेध किया और युवक–युवतियों की रजामंदी से होने वाले व्याह को प्रोत्साहित करते हुए विधवा विवाह जैसे विवाह को समाज में स्वीकृति दिलाने का प्रयास किया। कहीं न कहीं प्रेमचंद का अपनी पहली अनचाही पत्नी को पत्नी का दर्जा न दिये जाने के कारण जहाँ ऐसी घटनाएँ उनकी आलोचना का कारण भी बनीं तो दूसरी ओर बाल विधवा शिवरानी देवी से पुनर्विवाह या विधवा विवाह के द्वारा उठाये गये इस कदम की प्रशंसा भी की गयी।

समाज की बनी हुई नैतिकता को तोड़ना आसान नहीं है। आज कतिपय लेखिकाएँ भी कुछ ऐसे साहसिक कदम के द्वारा बनी–बनायी नैतिकता को तोड़ने का प्रयास कर रही हैं। प्रारंभ में लेखिकाओं ने उपन्यासों में परंपरागत मूल्यों पर आधारित नारी आदर्शों का ही प्रतिपादन किया। पातिव्रत्य का पालन, गृहकार्य में निष्ठां और कुशलता, आदर्श पत्नीय और आदर्श माता बनने धैर्य, विनय, शिष्टातचार, सदाचार आदि करने का उपदेश देना इनका लक्ष्य था। प्रेमचंद युग में रूक्मिणी देवी, कुंती देवी, विमला देवी, शैल कुमारी देवी, उषा देवी मित्रा आदि उल्लेखनीय हैं जिन्होंने नारी जीवन की विवशता, पुनर्विवाह, विधवा विवाह एवं विधवाओं के प्रति दुर्व्यववहार जैसी सामाजिक समस्याओं को व्यक्त किया।

लेखिकाओं ने उपन्याासों में नारी–नियति का चित्रण और नारी–विषयक नैतिक संहिता को किसी न किसी रूप में चुनौती भी दी। दिनेश नंदिनी डालमिया ने रूढ़ नैतिक मूल्यों, पारिवारिक जकड़नों, षड्यंत्रों एवं पुरुष की तानाशाहियों को सहती औरत की पीड़ा और तनाव की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति की है, जबकि शिवानी परंपरागत नैतिकता से भिन्न कोई नवीन नैतिकता की खोज करती हुई दिखाई नहीं देतीं। उन्हों्ने ज्यादातर उन परंपराओं को उसी रूप में स्वीकार किया है जो अभी तक चली आ रही थीं। वहीं कृष्णात सोबती जैसी लेखिकाओं ने अपने साहसिक कदम के द्वारा बनी–बनायी नैतिकता को तोड़ने का प्रयास किया। 'मित्रों मरजानी' उपन्यास की पात्र मित्रो का समाज के सामने यौन अतृप्ति को खुलकर रखना ऐसा ही है। उसका (पति) सरदारी लाल के ठंडेपन से तंग आकर अपनी दैहिक आवश्याकता की मांग को जायज ठहराना भी परंपरा–विरोध के दायरे में ही आता है, जिसे लेखिका मुखर होकर अभिव्यक्त कर रही है। इसी भाँति उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'रूकोगी नहीं राधिका' में राधिका के व्यक्तित्व के माध्यअम से लेखिका ने एक ऐसी स्त्री की कथा को सामने रखा है जो सिर्फ अपनी मर्जी से ही परिणय सूत्र में बंधने की इच्छा रखती है। राधिका आजाद ख्याल की है जो परंपरागत मूल्यों और जबरन लादे गये नैतिक तथा आचरणगत विधानों को स्वीकार नहीं करती। अविवाहित अवस्था में रहकर ही बिना किसी संकोच या कुंठा से ग्रसित हुए कई पुरुषों का साथ करती है। लेकिन राधिका के जीवन का यह भटकाव साबित होता है जो उसे कहीं स्थिर होने नहीं देता। उषा प्रियंवदा के दूसरे उपन्यास 'अंतर्वशी' में प्रवासी भारतीयों

के जीवन को विदेशी परिवेश में दिखाया है। यहाँ पहली बार खुलकर स्त्री समलैंगिकता की भी बात की गई है। स्त्री मानवी रूप में स्वीकृत होना चाहती है लेकिन पति के सामने देह से बढ़कर कुछ और नहीं समझी जाती। वह पति की नजरों में सिर्फ उसकी पत्नी और दो बच्चों की माँ ही बनकर रह जाती है। इसी स्त्री अक्स को तोड़ने के लिए वाना जैसी युवती विवाहेतर संबंध पर–पुरुष के साथ बनाती है। आकर्षण भाव उसे मानवी रूप में स्वीकृत किये जाने की आकांक्षा से ही उत्पुन्न होता है। दूसरी ओर राजी सेठ ने आधुनिक नारी के पुनर्विवाह की समस्या को गहरे संवेदनात्मसक स्तकर पर प्रस्तुत किया है।

तत्सम उपन्यास में एक युवा स्त्री के लिए पति की अचानक मृत्यु हो जाने पर पुनर्विवाह कोई छोटी समस्या् नहीं है। सामाजिक, पारिवारिक परिस्थितियाँ एक विधवा स्त्री को अकेले जीने नहीं देती। हर पल उसे उसके मृत पति की याद दिलायी जाती है। एक–एक कर उसके जीवन में कई पुरुष आते हैं लेकिन अपने लिए एक ऐसे पुरुष की तलाश करती है जो मात्र प्रेमी या स्वामी की भूमिका न अदा करके एक सच्चे सहयात्री की भूमिका अदा करे। उसकी यह तलाश अंततः उसे मनमाफिक युवक से मिलवा भी सकती है। यह लेखिका के द्वारा प्रस्तुत आदर्श समापन ही है जिसमें वह सफल विधवा विवाह की बात करती है। लेखिका अपनी मर्जी से पुरुष–वरण की स्वातंत्रता और दूसरी ओर अपनी देह पर सिर्फ अपना अधिकार समझती है जो हमारे वर्तमान समय और समाज में दूर की कौड़ी लाने जैसा है। राजी सेठ के दूसरे उपन्यास 'निष्किवच' की नायिका मार्था अबार्शन कराती है क्योंकि वह नर–शिशु पैदा नहीं करना चाहती है– ''मैं अमिनोसेण्टेहसिस के लिए गयी थी। पता लगा, लड़का है। तब तो और भी आसान हो गया मेरे लिए फैसला। भला मैं क्योंकि उसकी नस्ल को बढ़ाना चाहूँगी। इन्होंने सदियों से हमें कुचलकर रखा है।''[2] 'आधुनिका' मार्था अपनी देह को अपना धन मानती है, तभी तो दैहिक स्तआर पर स्वतंत्र है, गर्भधारण या गर्भपात जैसे निर्णय स्वयं उसके हैं। जिससे अपनी देह पर अपनी स्वीकृति और अधिकारों को अंतिम मानकर चलती है।

वर्तमान समय में शिक्षा और आत्मनिर्भरता के कारण पढ़ी–लिखी स्त्री तमाम ऐसे निर्णय कर रही है जिसे समाज कभी स्वीरकार नहीं कर सकता है। स्त्री विवाह में जहाँ अपनी रजामंदी चाहती है वहीं प्रेम विवाह या बिना विवाह किये स्वतंत्र जीवन जीने का निर्णय भी स्व्यं लेना चाहती है। बिना विवाह के भी मातृत्व सुख की आकांक्षा रखती है। यही नहीं, गर्भधारण भी करना उसकी मजबूरी नहीं, बल्कि यदि उसकी इच्छा है तभी करेगी अन्यथा नहीं करने का निर्णय भी स्वयं उसका होगा। मृदुला गर्ग के उपन्यास 'कठगुलाब' में नीरजा अपनी उम्र से दुगुने बड़े विपिन के साथ सहजीवन में अविवाहित मातृत्व की चाह को खुलकर सामने रखती है ''हम बच्चा पैदा करने की कोशिश कर सकते हैं। गर्भ रह जाए तो शादी कर लेंगे। पर अभी नहीं, दो साल इंतजार करना होगा। करेंगे? या किसी और युवी को ढूंढ़ेंगे?'' सरोगेसी भी अब हमारे समाज की सच्चााई बनती जा रही है।

वर्तमान समय में स्त्री और पुरुष दोनों इस प्रकार के निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र हैं। यह नई नैतिकता ही है जहाँ विवाह पूर्व या विवाहोपरांत या बिना विवाह के ऐसे निर्णय लेने की स्वतंत्रता की इच्छा पूरी की जा रही है। आज के वैज्ञानिक युग में विज्ञान एवं तकनीकी के विकास ने स्त्री–पुरुष दोनों को इतनी स्वतंत्रता दे दी है कि वे टैस्ट ट्यूब बेबी को भी स्वीकारने–अपनाने लगे हैं। स्त्री बिना पुरुष के संतानोत्पत्ति करने में सक्षम है– इस जानकारी से भी वह विमुक्ति अनुभव कर सकती है कि उसके गर्भ में बीज रूप में, किसी अनजान का शुक्राणु पड़ा है। ''पुरुष के स्पर्म का कृत्रिम रूप से दान किया जा सकता है। उसे बर्फ में जमाकर बैंक में संजोया जा सकता है। स्त्रीत न चाहे तो उसे यह जानने की जरूरत नहीं है कि उसके गर्भ में पलने वाले शिशु का शुक्राणु दान करने वाला पुरुष कौन है?''[3]

स्त्री की देह पर सिर्फ उसका स्वामित्व है, गर्भ धारण या गर्भपात जैसे निर्णय उसके निजी निर्णय हैं। यह नयी नैतिकता बन रही है। समकालीन लेखिकाएँ नये मूल्य और नयी नैतिकताओं को पहचानने का प्रयास कर रही हैं। उन्होंने सहजीवन, स्त्री या पुरुष समलैंगिक संबंधों को भी इसी क्रम में देखने का प्रयास किया है।[4] विवाह बनाम सहजीवन आज के समय का फैशन भी हो गया है, जिसे शहरी परिवेश

में आसानी से देखा जा सकता है, लेकिन कस्बाई और ग्रामीण परिवेश में यह आज भी अमान्य ही है। इसी भाँति आज LGBT (लेस्बियन, गे, बाईसेक्सुइअल, ट्रांसजेण्डर) आदि को व्यतक्ति की निजी पहचान के रूप में देखा जाने लगा है। यह भी नयी नैतिकता के दायरे में ही आता है, आज कई देशों ने इन सभी संबंधों को कानूनी मान्यता प्रदान करते हुए उन्हें आपस में एक–दूसरे से विवाह करने तथा संपत्ति संबंधी अधिकार दिये है।

I UnHk%

1. औरत : अस्तित्व और अस्मिता, सं0 अरविन्द जैन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008, पृ0 110
2. हिन्दी उपन्यास का विकास, मधुरेश, सुमित प्रकाशन, संस्करण 2005, पृ0 65
3. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ0 30
4. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2006, पृ0 493

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 173-176

fgUnh dfork vkj i;koj.kh; tkx:drk

MkW MhO mekn;oh*

पर्यावरण शब्द का अर्थ व्यापक है। पर्यावरण के अंतर्गत हमारे चारों तरफ जो कुछ भी तत्त्व फैला हुआ है जैसे वायु, जल, पेड़–पौधे तथा जीव–प्राणि आदि सभी तत्त्व आते हैं। इन्हीं से पर्यावरण की रचना होती है। पर्यावरण के अंतर्गत पूरा ब्रह्मांड समाया हुआ है। साधारण अर्थ में कहें तो 'परि' का अर्थ होता है 'हमारे चारों ओर' और 'आवरण' का अर्थ होता है 'ढकना या घेरा'। अर्थात् यह कह सकते हैं कि आसपास का परिवेश और वातावरण ही पर्यावरण है। आस–पास का परिवेश और वातावरण में वायु–धरा, आकाश, समुद्र, पर्वत, वन–उपवन, खेत–बाग, वाटिका, वृक्ष, लता, पुष्प, पल्लव आदि सभी का समावेश होता है। चिरकाल तक प्राकृतिक संपदा की सुरक्षा और जीव जन्तुओं के संरक्षण के कारण पर्यावरण विशुद्ध एवं संतुलित रहा है। किन्तु ज्यों–ज्यों वैज्ञानिक प्रगति, व्यावसायिक और औद्योगिक विकास होने लगा, त्यों–त्यों अनेक प्रकार की प्रविधियों और विज्ञान के उपकरणों का आविष्कार होने लगा। नगरीकरण की व्यापकता बढने लगी। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए वृक्षों को नष्ट करने लगे। लेकिन उसी अनुपात में वृक्षारोपण न होने के कारण उसका प्रभाव पर्यावरण पर पड़ा। कल–कारखानों से निकलने वाला दूषित द्रव नदियों और अन्य जलाशयों में प्रवाहित किया जाने लगा। परिणाम स्वरुप प्रदूषण बढ़ता ही गया। आज संसार में जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, ऊर्जा प्रदूषण जैसे अनेक प्रदूषणों का संकट बढ़ता जा रहा है। प्रदूषण का संकट मतलब जन–जीवन का संकट है। ऐसे समय में पर्यावरण संरक्षण के प्रति अत्यधिक सजग और सचेष्ट रहने की आवश्यकता है।

वर्तमान में चारों ओर फैले हुए प्रदूषण को कम करने हेतु हम कह सकते हैं कि प्राचीन एवं वर्तमान वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों के समान ही हिन्दी साहित्य की काव्य परम्परा में कवियों ने पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारी का निर्वहण करते हुए लगातार समाज को इस ज्वलंत समस्या के बारे में जागरुक करने का प्रयास किया है और कर रहे हैं।

पर्यावरण आकाश, वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि, पशु–पक्षी, वन, वृक्ष आदि का समाहार है। मानव का शरीर भी प्रकृति के पंच तत्त्वों से बना है, इसलिए पर्यावरण और मानव का संबन्ध अद्वितीय है। तुलसीदास ने रामचरितमानस के 'किष्किन्धाकांड' में इसी विषय को लेकर कहा–

fNfr ty ikod xxu leh;k ip jfpr vfr v/ke ljhjkA[1]

हमारा भारतीय साहित्य और दर्शन पर्यावरण पर ही आधारित है। वैदिक काल के साहित्य से पता चलता है कि मानव आरंभ से ही प्रकृति की पूजा करता आ रहा है। पृथ्वी को माँ मानकर उसकी रक्षा के लिए और उस पर अपना जीवन बनाए रखने के लिए अपने सभी कर्तव्यों का पालन करता था। सभी जीव–जन्तुओं को प्राण शक्ति देनेवाले सूर्य की पूजा करते थे। पेड–पौधों की पूजा करते थे, जैसे तुलसी, बरगद और पीपल आदि। इससे उन पेडों की औषधीय गुणों की रक्षा होता था और साथ ही पर्यावरण को शुद्ध रख पाते थे। भारतीय संस्कृति में वन और वनस्पति का बहुत अधिक महत्व रहा है। हमारे ऋषि, मुनि वनों में ही आश्रम बनाकर प्रकृति से जुडकर रहते थे। संन्यासी जीवन के तप के प्रमुख केन्द्र वन हुआ करते थे।

हिन्दी साहित्य हमेशा भारतीय दर्शन से प्रभावित रहा है। अतः प्रकृति के प्रति प्रेम, संरक्षण, आत्मानुभूति तथा किसी को हानि न पहुँचने का भाव चाहे वह मनुष्य हो या प्रकृति हिन्दी साहित्य में अधिक पाया जाता है। हिन्दी साहित्य के सभी साहित्यकार जैसे कबीर, तुलसी, रविदास, गुरुनानक,

*सहायक आचार्य और अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इंदिरा गांधी कांलेज आफ अर्ट्स एण्ड साइन्स, पुदुच्चेरी–9

हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि ने प्रकृति के अनावश्यक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर मनुष्य को आत्मानुभूति की ओर प्रेरित किया है।

भक्तिकालीन कवि जैसे कबीर, तुलसीदास, रहीम, मीराबाई आदि ने पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक जागरूकता जनता में फैलाई। कविवर रहीम ने भी पानी के माध्यम से जीवन के तत्त्व का ज्ञान कराया है–

jfgeu ikuh jkf[k,] fcu ikuh lc lwuA ikuh x, u Åcj] ekrh] eku lpuAA[2]

यह उक्ति वर्तमान संदर्भ में अधिक चरितार्थ और उपयुक्त है क्योंकि अपने स्वार्थ से लिप्त मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों का बहुत ही दोहन किया है। जंगल काटने के कारण वन सम्पदा का दोहन तो हुआ ही है इससे जल और शुद्ध वायु पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। जंगल की अन्धाधुन्ध कटाई से वर्षा कम हो गई और नदियाँ सूखने लगी है। यदि यही हाल रहा हो तो भविष्य में जल त्रासदी से गुजरना पडेगा।

इसी प्रकार तुलसीदास ने भी प्रकृति संरक्षण की आवश्यकता को अपने रामचरितमानस काव्य में बखूबी समझाया है। उन्होंने लक्ष्मण और सीता से वृक्षारोपण करवाते हुए दिखाया है। यथा–

rqylh r#oj fofo/k lqgk,] dgq&dgq fl ;] dgq y[ku yxk,A[3]

इसी प्रकार तुलसीदास एक जगह राम और सीता से नदियों की पूजा करवाते हैं। एक बार समुद्र द्वारा मार्ग न देने के कारण लक्ष्मण क्रोधित होकर समुद्र को सोख देने की बात कहता है तो राम इस बात को स्वीकार नहीं करते हैं। क्योंकि ऐसे करने से समुद्र के सभी जीव–जन्तु, वनस्पतियाँ नष्ट हो जाएंगी तथा पर्यावरण को भी क्षति पहुँचेगी। शरद् ऋतु के वर्णन करते समय प्र.ति में होने वाले बदलाव और उसके परिणतियों को बताते हैं। इससे पर्यावरण की महत्ता स्पष्ट रुप से विदित होती है।

Þty lqdkp] fcdy HkbZ ehukA vkS/k dVqfpa ftfe /kugha ukAAß

अर्थात् नदियों और तालाबों का जल धीरे–धीरे सूख रहा है, जैसे विवेकी पुरुष धीरे–धीरे ममता का त्याग कर देते हैं। पानी कम होने से मछलियाँ वैसे ही व्याकुल हो रही है, जैसे मूर्ख गृहस्थ धन के अभाव में व्याकुल होते हैं। इस प्रकार रामचरितमानास में अनेक उदाहरण मिलते हैं, जो पर्यावरण संरक्षण के प्रति चेतना जागृत करते हैं।

कृष्णभक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास भी वन में लगनेवाली आग के बारे में ओर उसकी भयावहता के बारे में वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

cuh dh yxh mBh vdqykbA
Tokyk nf[k vkdk'k cjkcfj] nlgq fnl dgq ikj u ikbA
>jgjkr cu ikr fxjr r#] /kjfu rjfd&rjkfd lukbA
ty cjlr fxfjoj rj ckp] vc dh fxfj gkr lgkbAA[4]

जंगल में आग कभी अपने आप लगती है और कभी मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए लगाते हैं। लेकिन इसका परिणाम वन के जीव–जन्तु और औषधीय वनस्पति नष्ट होने के साथ–साथ पर्यावरणीय प्रदूषण फैल जाता है।

रीतिकालीन कवियों ने भी प्रकृति की सुन्दरता का वर्णन करते हुए पर्यावरण के महत्व को समझाया है। आधुनिक काल में तो पर्यावरण प्रदूषण की विभीषिका से सारी मानव जाति और जीव–जन्तु संत्रस्त है। इस काल के कवियों ने भी मानव–जीवन की सर्वोपरि चिन्ता अर्थात् 'पर्यावरण' को अपने गीतों, गजलों और दोहों आदि के माध्यम से सशक्त वाणी दी है। इस काल में खास कर छायावादी कविता में पर्यावरण के प्रति प्रौढता दृष्टिगोचर होती है। छायावाद के प्रमुख कवि सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा के अलावा मुकुटधर पाण्डे, नंददुलारे वाजपेयी, हरिवंशराय बच्चन आदि ने अपने काव्य में प्रकृति और पर्यावरण का सुन्दर समन्वय किया है। पंत जी तो प्रकृति का सुकुमार कवि है। उनकी कविता में प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। शुद्ध और निर्मल प्रकृति का वर्णन करके पर्यावरण के संरक्षण की आवश्यकता का उद्‌बोधन किया है।

प्रसाद जी के काव्य में पर्यावरण या प्रकृति के प्रति गहन चिन्तन दिखाई देता है। प्रसाद जी अपने प्रसिद्ध काव्य कामायनी, झरना, आँसू, कानन कुसुम आदि में पर्यावरण का महत्व दर्शाते हुए प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। इस संदर्भ में कामायनी के इड़ा की ये पंक्तियाँ दर्शनीय हैं–

Þn[kk eu ;s 'kyJx] tk vpy fgekuh l jftr]
mUeä] mi{kk Hkj rx viu tM xkjo d çrhd
ol/kk dk dj vfHkeku Hkx viuh lekf/k e jg
l[kh cg tkrh g ufn;k vck/k dN Lor fcUn-----ß[5]

इस प्रकार प्रसाद जी ने पंचतत्त्वों का सुन्दर वर्णन करते हुए पर्यावरण के महत्व और उसके संरक्षण की आवश्यकता को बताया है। वे कहना चाहते हैं कि मानव जीवन में व्याप्त निराशा का कारण वह स्वयं है। जो प्रकृति हमारी निराशा को आशा में परिवर्तित कर, हमारे मन में सुख और शांति का संचार करती है, मनुष्य उसे ही नष्ट करने पर तुला हुआ है। प्रकृति हमेशा स्वच्छ, स्वतंत्र, शुद्ध, निर्मल अर्थात् प्रदूषण रहित होना चाहिए, क्योंकि मानव का अस्तित्व प्रकृति पर निर्भर है।

कवि अज्ञेय प्रकृति के प्रति आगाध प्रेम एवं अनन्य आस्था प्रकट करते हुए उसके विविध रूपों की झांकियां अंकित की है। कवि प्रकृति के सचेतन रूप का चित्रण करते हुए उद्दीप्त भावों के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए कहते हैं–

e lkr d lkFk cgrk g] i{kh d lkFk xkrk g[6]

पर्यावरण ने हमें जीवित रहने के लिए हर एक सुविधा तथा सहुलियत प्रदान की है। लेकिन हमारे द्वारा किया जाने वाला इसके अति दोहन के कारण ये अपने अस्वस्थ रूप में हमारे सामने है। अब हमें इसे पूर्ण रूप में स्वास्थ्य बनाने लिए आवश्यक कदम उठाना चाहिए। कवि जितेन्द्र जलज कहते हैं–

tc tc tk tk pkgk @ tk tk ekxk
/kjrh u dHkh gkFkk dk @ ldfpr ugh fd;k] fQj ,slk D;k\ fd ge
vc n ugh ldr /kjrh dk @ fpjk;s d fy,] çn"k.k eä i;koj.k\[7]

नरेन्द्र अग्रवाल जी भी मनुष्यों से अपने स्वार्थवश की जानेवाली लकड़ियों की कटाई दिन–प्रतिदिन बढती हुई देखकर व्याकुल हो उठते हैं और कहते हैं–

e xtj jgk Fkk @ viu fpjifjfpr enku s
,dk,d ph[k lqu @ tk ej çk.k fç; iM dh Fkh
dN ykx [kM Fk @ cMh&cMh dYgkfM;k fy;s
o dkV pdj Fk bldj gkFk @ vc iko Hkh dkVu oky g
ge ykx yk'k mBk jg g @ vfre lLdkj Hkh djk nxs
re jk[k y tkukA[8]

सुकवि रमेशचन्द्र पन्त ने भी अपनी कविताओं में पर्यावरण प्रदूषण पर चिंता व्यक्त की हैं–

jkt mxyrh @ /kvk fpefu;k
cgn ef'dyA @ okrkoj.k
gvk çnf"kr @ cgn ef'dyA

प्रयोगवादी काल के प्रवर्तक अज्ञेय के काव्य में भी मानव और पर्यावरण के अंतःसंबन्धों की झलक मिलती है। उन्होंने अपनी कविता 'आसाध्य वीणा' में मनुष्य को अहं का त्याग करने तथा आत्मानुभूति प्राप्त करने की प्रेरणा की है क्योंकि आत्मानुभूति द्वारा ही मनुष्य स्वयं को अपने सीमित दायरे व सोच से बाहर निकाल के संपूर्ण विश्व या इकोतंत्र के साथ सम्मिलित कर सकता है। इस प्रकार वे मानव को अहं से मुक्ति का मार्ग दिखाकर या मानव को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाकर पर्यावरण संरक्षण के पथ पर अग्रसर करवाते हैं। "सागरिका" पत्रिका में प्रकशित निम्नलिखित कविता के द्वारा भी मनुष्य को पर्यावरण के प्रति सचेत किया गया है–

Þgyk eu";] @e vkdk'k gA
dy lqtu Fkk] fuekk.k Fkk] @ vkt çy; gs] fouk'k g
ejh Nkrh e tk Nn gk x;s g dky dky
;s rEgkjs Hkkyk d ?kko g @ ;s dHkh ugh Hkju oky AßA[9]

इसी प्रकार डॉ. ओमप्रकाश सिंह ने अपने कई गीतों में पर्यावरण की चिन्ता बखूबी वर्णन किया है।

Þl;kh vk[k] @ l;kl iu?kV]
l;kl rky&ry;k! @ fcuk ikuh d
;g ftUnxkuh @ dkVk dh g 'k,;k!¼3[10]

साहित्य के माध्यम से ही मानग मन की चिंताओं की अभिव्यक्ति होती है और तभी उन चिंताओं से मुक्ति का चिंतन भी रचनाकार करते हैं। आज मानाव द्वारा प्रकृति परिवेश में हुआ हस्तक्षेप यानी पर्यावरण असंतुलन की बात कविताओं द्वारा अभिव्यक्त होने लगी है। प्रमुख कवि श्री चन्द्रसेन विराट विश्व के उन सभी मनुष्यों को एक चेतावनी देते हैं, जिन्होंने पर्यावरण से निरन्तर खिलवाड़ करके विश्व–मानवता को विनाश के कगार पर ले जाकर खडा कर दिया है। उनकी मार्मिक चिन्ता जन–मानस की चिन्ता बन गयी है–

tkudj <kyk g cctk ikuh @ xj o:.k u ugh Hktk ikuh
,d bd cn rk rjlxh lnh @ vkiu xj u lgtk ikuh*[11]

मानव का जीवन या अस्तित्व प्रकृति से जुडा है। प्रकृति को नष्ट करने का मतलब खुद को नष्ट करना है। इसलिए साहित्यकार मनुष्य को प्रकृति व पर्यावरण के प्रति अनुराग करना सिखाता है। कवि अपनी कविताओं के द्वारा यह संदेश देना चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति चाहे कुछ भी हो व्यक्तिगत रूप से स्वयं किसी भी प्रकार का अनावश्यक प्रदूषण न करें। व्यक्ति प्रकृति के प्रति अपनी नैतिक जिम्मेदारी को समझते हुए अधिक से अधिक लोगों को पर्यावरण प्रदूषण के प्रति जागरूक करने का प्रयास करें। मनुष्य को यह समझना चाहिए कि सौंदर्य ही प्रकृति है, प्रकृति ही सौंदर्य है। हिन्दी कवियों व साहित्यकारों ने अपने अधिकांश काव्यों व साहित्य में प्रकृति के महत्व को दर्शाते हुए पर्यावरण के गूढ़ रहस्यों तथा तथ्यों को उद्‌घाटित कर पर्यावरण संरक्षण के प्रति जनजागृति लाने के पूर्ण प्रयास किया हैं और कर रहे हैं।

lUnHkZ xzUFk lwph %

1. रामचरितमानस–तुलसीदास
2. सूरसागर–सूरदास
3. कामायनी–जयशंकर प्रसाद
4. ऐसा क्यों–जितेन्द्रर्जलज, वागर्थ, अक्टूबर 2016,
5. अंतिमसंस्कार–नरेन्द्र अग्रवाल
6. मैं आकाश बोल रहा हूँ–ऋषभदेव शर्मा
7. ब्रजमंजरी–डॉ. ओमप्रकाश सिंह

lUnHkZ %

1. रामचरितमानस, किष्किन्धाकांड–तुलसीदास
2. रहीम के पद–रहीम
3. रामचरितमानस–2–237–तुलसीदास
4. सूरसागर, दशमस्कन्ध, 600 सूरदास
5. कामायनी, इडा सर्ग–जयशंकरप्रसाद
6. कोकिल–अज्ञेय
7. ऐसा क्यों, जितेन्द्रर्जलज, वागर्थ, अक्तूबर 2016, पृ. 82
8. अंतिम संस्कार–नरेन्द्र अग्रवाल
9. मैं आकाश बोल रहा हूँ–ऋषभदेव शर्मा, पृ. 57
10. ब्रजमंजरी–डॉ. ओमप्रकाश सिंह
11. गाँवों की जिये जीवन–चन्द्रसेन विराट

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 177-180

Lkatho dh miU;kl lkfgR; esa ukjh thou

ukxUnz izlkn ;kno*

संजीव जी को वर्तमान हिन्दी साहित्य जगत में एक सशक्त एवं सर्व प्रमुख उपन्यासकार के रूप में जाना जाता है। संजीव जी ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। मानव जीवन के सर्वांगीण विकास में नर–नारी का समान योगदान है। भारतीय दर्शन एवं धर्म में ऐसी मान्यता है कि शिव शक्ति बिना व्यक्ति शव के समान है। नारी प्रकृति रूप है, वह पुरूष की पूरक है। उसे आदि काल में ही समस्त सृष्टि की संचालिका शक्ति माना जाता है। नारी के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। नारी के संयोग से ही संसार आगे बढ़ता है। नारी हमेशा से पुरूष की प्रेरणा रही है। नारी पुरूष को निराशा के क्षणों में आशा देती है,दुःख में दिलासा देती है और उसके कर्म में उत्साह भरती है।

इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक के अंतिम समय में हम लोग जी रहे है, आज नारी पूरी तरह से समस्याओं से मुक्त नही है। एक ओर जहाँ हम विकास और अन्तरिक्ष की सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं तो वहीं दूसरी ओर समस्याओं के नये रूप सामने आ रहे हैं। वैसे सभी समस्या नई नहीं है, पुरानी समस्या ने ही नया मुखौटा पहन लिया है। एक समय था जब घर की दहलीज को नारी नहीं पार करती थी तो उस समय उसे अपनों से खतरा था। आज जब नारी शिक्षा–दीक्षा पाकर नौकरी करने लगी है तो उसे सहकर्मियों के शाब्दिक बलात्कार, अपमान, उपेक्षा, प्रताड़ना आदि समस्या को झेलना पड़ रहा है। संजीव इन समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए अपने उपन्यासों के पात्रों जैसे– कामिनी, बेला, पल्लवी, शान्ता, सुरसती, दुर्गा आदि जैसे नारी चरित्रों की मान्यताओं को अपनाने की बात करते है। उन्होंने नारी जीवन पर होने वाले अत्याचार के खिलाफ उपन्यास–'धार', 'किसनगढ़ के अहेरी', 'पाँव तले की दूब', 'जंगल जहाँ शुरू होता है' आदि में प्रमुखता से उठाया है।

वर्तमान समय जितनी उन्नति कर रहा है उतना ही अधिक समस्याओं से घिरा जा रहा है। भारतीय समाज में चाहे शहरी हो या ग्रामीण नारी सब के सामने समस्याओं का पहाड़ है। आज भी परिवार में पुरूष मानसिकता एक बड़ी समस्या है। नारी केवल भोग का साधन मात्र मानना, नारी जन्म अभिशाप, नारी लिंग हीनता का सूचक मानना, दहेज प्रथा, विवाह की समस्या, शाब्दिक तथा शरीरिक बलात्कार और सबसे बड़ी समस्या नारी की सुरक्षा आदि समस्याएँ प्रमुख रुप से आज नारी के सामने है। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था मे नारी को सर्वाधिक प्रताड़ित किया है। रुढ़ परम्पराएँ नारी के विकास मे बाधा बन चुकी है। हम विज्ञान के क्षेत्र मे कितना भी क्यों न विकास कर ले किन्तु रुढ़ि–प्रथा और परम्पराओं के कारण आगे नहीं बड़ पा रहे हैं। पढ़ी–लिखी नारी भी रूढ़ि प्रथा और परम्परा के कुचक्र से छुटकारा नहीं पा सकीं।

संजीव ने अपने नारी पात्रों के द्वारा रूढ़ि प्रथा और परम्परा को तर्क निष्ठता के आधार पर निरर्थक साबित करते है और उनकी जर्जरता और विवशता का बखूबी उल्लेख करते है।

भारतीय समाज में प्राचीन काल से पुरुष प्रधान संस्कृति रही है। पुरुष की तुलना में आज भी नारी का दूसरा स्थान है। आज जहाँ नारी शिक्षित होकर पुरूष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम कर रही है वहीं नारी अपने को असहज और असुरक्षित महसूस करती है। प्राचीन काल से लेकर आज तक नारी का दोहन किसी न किसी रूप में होता रहा है। सबसे ज्यादा मध्य कालीन में नारी की स्थिति दयनीय दिखाई देती है। मध्य काल का प्रसिद्ध साहित्य 'राम चरित्र मानस' में तुलसीदास ने लिखा है ''ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताडन के अधिकारी।''[1] इस प्रकार मध्य काल में नारी स्थिति बहुत

*शोधार्थी, हिन्दी विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा

खराब थी जो आज भी दिखाई देती है। जिसे सुधार करने की आवश्यकता है। संजीव अपने उपन्यास साहित्य में नारी जीवन की समस्या और शोषण के विषय में मार्मिक चित्रण किया है।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में दुशाद लोग सवर्ण एवं बडे धनवान लोगों के यहाँ हलवाई का काम करते है। पंडिताईन फेकन की बहू को हाथ–पांव मालिस करने को कहा जाता है। 'इस प्रकार फेकन बहू ने इनकार कर दिया था– ''हमसें आप का देह छुवा नही जाएगा'[2] इतने से कसूर का इतनी बड़ी सजा दी जाती है जिसे सुनकर शरीर पर रोंगटे खडे हो जाते है। संजीव लिखते है– ''पाण्डे और पड़ाईन ने उस औरत को हाथों से पकड़ रखा था और पाण्डे का साला उसे दबोचे हुये था[3] काली कहती –''अरे बाप रे! क्या एक औरत खुद अपने सामने एक दूसरे औरत का बलात्कार करवा सकती है''[4] इस कथन से विदित होता है कि एक नारी दूसरी नारी के यौन शोषण में सहायक है, जो आज भी दिखाई देता है।

'किसनगढ़ के अहेरी' उपन्यास में जमींदार ज्योतिष बाबा का गजब का धंधा है। संजीव लिखते है – ''गाँव में हाथ की रेखाएँ पढ़ते–पढ़ते बदन की सारी रेखाएँ पढ़ डालते है।''[5] इससे यह स्पष्ट होता है कि आज भी अन्ध विश्वास, रूढ़ि परम्परा के कारण ढोंगी ओझा के चक्कर में पड़ कर शोषण का शिकार हो जाती है।

'धार' उपन्यास की नायिका के विषय में प्रोफेसर सुबास कुमार लिखते है, ''मैना के जीते जी उसके बाप और पति ने उसका श्राद्ध कर डाला, पर संयोग ऐसा कि मैना इन दोनों की मौत के बाद भी जीवित रही, शोषित वर्ग की जिजीविषा बनकर तेजाब फैक्ट्री वाले शोषकों ने मजदूरों को आदमी से कुत्ता बना दिया, औरतों को रण्डी। शासन, शिक्षा, पुलिस, रोजगार चारों तरफ से रास्ता बंद। मार खाती, लुटती हुई मैना फिर भी खत्म नहीं होती''[6] इससे स्पष्ट होता है कि संजीव ने नारी जीवन के विषय में कितना सोचा और समझा उनके संघर्षों को अपना विषय बनाया। समाज में आज भी महिलाओं का दोहन और शोषण हो रहा है। नारी शोषण का भयावह रूप उनके शारीरिक शोषण से देखा जा सकता है। संजीव के प्रस्तुत उपन्यास में नायिका मैना का शारीरिक व मानसिक शोषण दिखाई देता है।

संजीव नारी जीवन के यथार्थ रूप को अपने उपन्यास में नायिका राधा, सोना, रतिया और चाँदनी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। 'किसनगढ़ की अहेरी' उपन्यास में विधवा राधा के शरीर की लूट मामा करते है और बिडम्बना यह है कि वह ब्रह्मचारी है। कनिका पंड़ित ने राधा करुण कहानी और गोमती नदी में पडी लाश का वर्णन लेखक को सुनाया था। ''महान हिन्दू धर्म के इन आधार स्तम्भों ने छोडा नहीं राधिका को, उस एक राधा के सामने कितनी–कितनी धोतियाँ खुल चुकी है बतिया था कालिका की''[7] कितने लोगों ने राधा की मजबूरी का लाभ उठा कर दोहन–शोषण किया इनकी गिनती नहीं है। राधा, रतिया और सोना सभी की एक दशा है। ब्रह्मचारी, ज्योतिषी ठाकुर, जमींदार, पुलिस, नेता और पूँजीपति मजदूर महिलाओं के साथ मानसिक और शारीरिक शोषण करते है। आज जब नारियाँ पढ़ लिखकर अत्याचार का विरोध करने लगी हैं तो भी वह अपने आप को असहज और असुरक्षित महसूस करती है जब तक लोगों की शोच और मानसिकता नहीं बदलेगी तब तक नारी सुरक्षा नहीं हो सकता। सरकार क्यों न कितने कानून बना दे। नारी का सुरक्षा लोगों के मानसिकता पर निर्भर है। पुरूष प्रधान देश में नारी प्रधान बनाने का विचार सब के मन में होना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं हो पा रहा है अभी नारी यौन शोषण का मामला आए दिन सुनाई देता है। नारी समाज की शोभा है और उनकी ममता और ह्रदय की नम्रता का आदर होना चाहिए। लेकिन ऐसा नही होता नारी मानसिक और शारीरिक शोषण हो रहा है।

राजनैतिक क्षेत्र में भी नारी को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इस क्षेत्र में कदम रखने वाली नारी परम्परागत मानसिकता का शिकार होती है। चारों ओर बदनाम, आरोप और उपेक्षा होती है। संजीव ने इन स्थितियों का सामना करने के लिए जंगली बहू, कावेरी, पल्लवी, शान्ता को समस्या के साथ खड़ा कर देते है। नारी पात्र किसी भी परवाह न करते हुये उठाया हुआ कदम आगे बढाने में विश्वास करती है, फिर चाहे पति रूठे या घर छूटे या समाज वह मंजिल को पा कर दम लेती है।

देश के राजनैतिक परिदृश्य में शुरू से महिलाओं की मौजुदिगी कम भले ही रही हो, लेकिन आज उनकी भागीदारी बढ़ रही है फिर भी अभी आधी आबादी राजनीति के क्षेत्र में नहीं है। ग्रामीण में तो बहुत कम, यहाँ तक चुनाव के समय अपने मत का प्रयोग अपने मन से नहीं कर पाती हैं। अब जागुरूकता बढ़ रहा है लेकिन सामाजिक बंधन के कारण राजनिति रूप से सक्रिय होने में बाधा है। प्रभा दीक्षित लिखती है– ''जितनी आत्म विश्वास से धरती पर पैर रखते हो तुम, उतने ही आत्म विश्वास से धरती पर चल नहीं पाती हूँ मैं।'' [8] आज राजनीति साधन में नारी का उपयोग करते है और बड़े राजनेता बन जाते है। राजनीति रोड का रोड़ा बनकर जनता में बाधा बन गयी है।

भारतीय परिवार की मुख्य घटक नारी है। इनके अलावा हम मनुष्य जाति की कल्पना भी नहीं कर सकते। नारी से ही सृष्टि चलती है फिर भी नारी जीवन का अपमान हो यह विचार करने योग्य है। आज भी परिवार में कोई अहितकारी घटना घटित होती है, तो नारी को ही जिम्मेदार ठहराया जाता है। मुझे यहाँ डॉ0 कुलकर्णी के विचार सार्थक लगते है– ''नारी की गुलामी का एक मात्र कारण है उनकी आर्थिक परतंत्रता''[9] इस कथन से विदित होता है कि नारी को दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है जिसके कारण उसे हर एक क्षेत्र में लाचार एवं बेबस रहना पड़ता है। संजीव के उपन्यास साहित्य में नारी की लाचारी को बखूबी चित्रित किया गया है। संजीव नारी जीवन को सफल एवं खुशहाल बनाने के लिए नारी कर्म, आत्म शक्ति, अस्मिता, आत्मनिर्भर बनाने पर बल दिया गया है। उन्होंने पुरूषों का विरोध नहीं किया है बल्कि नारी को समान अधिकार देने पर जोर दिया है। संजीव पुरूष प्रधानता के बारे में प्रेत मुक्त में लिखते हैं– ''तू चुप रह औरत की जाति''[10] इस कथन से विदित होता है नारी को पुरूष हमेशा कमजोर करने की कोशिश करता है। आज भी ग्रामीण विशेष में यह दिखाई देता है। आज भी लड़कियों को अकेले घर से बाहर नहीं जाने देते है जिससे उच्च शिक्षा पाने के लिए उन्हें कठिनाई होती है। इससे नारी जीवन की स्वतंत्रता छिन जाती है। वह पुरूष पर निर्भर हो जाती है। जो नारी के विकास में बाधक है।

संजीव अपने उपन्यास साहित्य में शादी–ब्याह को लेकर समाज के सामने खड़े होने वाले सवालों को भी उठाया है। आधुनिक युग में भी शादी–विवाह करते समय जाति–उपजाति, धर्म, गोत्र, वंश आदि के बारे में पूछ–ताछ होती है। शादी–ब्याह के अवसर पर दहेज प्रथा समाज लिए घातक और विकराल समस्या है, जो धीरे–धीरे सुरसा की तरह अपना मुंह फाड़कर लडकी पक्ष के लोगों को निगल जाती है। डॉ0 ज्योत्सना शर्मा लिखती है कि– ''लोग जाति–पाति का ध्यान इतना रखते है की गरीब व्यक्ति इसके पालन में अपने आप पर गर्व करता है।''[11] इससे विदित होता है कि लोग जाति–पाति पर कितना विश्वास करते है और अपने विकास पर ध्यान नही देते है। वर्तमान समय में दहेज अभिशाप बन गया है इसके लिए समाज और सरकार को मिलकर इन दिशाओं में सुधार करने की आवश्यकता है।

संजीव के उपन्यास साहित्य के अनुशीलन के उपरान्त नारी जीवन के विकास एवं खुशहाल बनाने के लिए निम्नलिखित सुधार किये जा सकते है–

- नारी अधिकार और हक के लिए जागरण यात्रा का आयोजन हो तथा नारी अधिकार को हनन करने वाले पर कानूनी कार्यवाही होना चाहिए।
- नारी–पुरूष समान है यह समझ लोगों के अंदर जागरूकता के माध्यम से पहुँचना चाहिए।
- दहेज प्रथा के लिए समाज के मानसिकता में बदलाव लाना चाहिए।
- नारी शिक्षा के लिए प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है।
- शिक्षा के पाठ्यक्रम में नारी–पुरूष को समान अधिकार होना चाहिए।
- नारी को केवल संतान तक सीमित न रख कर उस कार्य क्षेत्र का विस्तार करना चाहिए।
- नारी को उच्च शिक्षा का अवसर देना चाहिए और उसे घर से बाहर जाने के लिए अनुमति प्रदान करना चाहिए।

इस प्रकार संजीव अपने उपन्यास साहित्य में नारी जीवन का मार्मिक चित्रण किया है जो उनके समस्या समाधान करने में सहायक है और नारी विकास के प्रति समर्पित है।

lUnHk; %

1. तुलसीदास, रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. संजीव–'जंगल जहां शुरू होता है', राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ0 62
3. संजीव–'जंगल जहां शुरू होता है', वही, पृ0 62
4. संजीव–'जंगल जहां शुरू होता है', वही, पृ0 62
5. संजीव–'किसनगढ. की अहेरी', मीनाक्षी पुस्तक मंदिर, दिल्ली, 1981, पृ0 31
6. प्रो0 सुबास कुमार (संपादक), कथाकार संजीव, पृ0 286
7. संजीव, किसनगढ. की अहेरी, पृ0 15
8. पाठक डॉ0 विनय कुमार, स्त्री विमर्श : पुरूष रचना धर्मिता के सन्दर्भ में प्रथा दीक्षित की उद्धृत कविता, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ0 26, 27
9. डॉ0 कुलकर्णी, हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, पृ0 50
10. संजीव, प्रेम मुक्ति, पृ0 121
11. डॉ0 ज्योत्सना शर्मा, शिवानी का हिन्दी साहित्य, सामाजिक परिप्रेक्ष में, पृ0 165

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 181-184

Hkkjrh;ok³e;s lkUn;Lko/kkj.kk

MkO xhrk >k*

भारतीय–वाङ्मये सौन्दर्य शब्दस्य प्रयोगो नातिप्राचीनः। वेदेषु मूलोपनिषत्सु चायं शब्दो नोपल–भ्यते, किन्तु सौन्दर्यस्यावधारणायास्तद्वाचकव्यज्कानां शब्दाना–मुक्तीनांच तत्राभावो न विद्यते। रामायणे "सुन्दर" शब्दः सामान्यतया प्रयुक्तोऽस्ति–तदीयस्यैकस्य भागस्य नामैव सुन्दरकाण्ड मित्यस्ति। अभिजाते संस्कृतसाहितयेऽस्य शब्दस्य मुक्तः प्रयोगोऽस्ति। किन्तु पारिभाषिकेऽर्थे वैशिष्ट्यं ते न प्राप्तम्। सुन्दर शब्दापेक्षयाऽन्येषां तत्पर्यायशब्दानां प्रयोगः काव्ये काव्यशास्त्रे उभयत्रैव भूयान् प्राप्यते। संस्कृत वाङ्मये सुन्दरशब्दस्यैते पर्यायाः पठ्यन्ते–

lqUnj% :fpj% pk:% l`"ke% lk/q% 'kkHkuesA
dkUr% eukstu% :P;% euksK% esr% etyeAA52AA[1]
vfH"V%·Hkh"Vl·Hkh"Vl â| nf;r% oYyHk% fi;eA 53AA[2]

एतदतिरिक्ता इतरेऽपि सुन्दरपर्यायाः सन्ति, ये एनमेवार्थ वदन्ति–यथा ललितम्, सुष्ठु, काम्यम्, कमनीयम्, रमणीयंचेत्यादयः। एतेषां केषुचिद् व्युत्पत्त्यादेरेव भेदोऽस्ति, अर्थच्छाया सर्वथा समानैव। यथा मनोरमं मनोज्ञंच, रूचिरं रूच्यंच मंजु मंजुलंचेति। प्रकृतिप्रत्ययादिकृतो भेदः। साधुशब्दस्यार्थः पर्यायान्तरापेक्षया व्यापकः, सामन्येनोचितार्थवाचकोऽयम सन्दर्भानुसारेणायं सुन्दर पर्यायतामपि धत्ते। सुषमशोभनयोरप्यस्ति अर्थविशेष साम्यम्। अतएव सुषम शोभा चेति प्रायः पर्यायौ भवतः। आभ्यां वाह्यं वैभवं, कान्तिः, द्यूतिर्वा बोध्यते। सुन्दरशब्दो नैकधा व्युत्पद्यते। तत्रैका व्युत्पत्तिः सु+उन्द्+अरन् इत्यकारास्ति, यस्याः शब्दार्थतया नयनासेचको गुणो गृह्यते नयनसुखद इत्यर्थः। चारू रूचिरयोरर्थोऽस्ति प्रियः प्रीतिकरो वेति। कान्तशब्देऽपि काम्यभाव एव प्रमुखः। अभीष्टार्थ वाचकेषु सर्वेषु शब्देष्वपि प्रमातुरभिलाषः एव मुख्यो भवति। उपर्युक्तानां पर्यायाणांर्थविश्लेषणे नेदं विशदीभवति। यथैतेषु केचिद्वस्तुपरकं सौन्दर्य द्योतयन्ति केचिच्चात्मपरकं सौन्दर्यम्।

सुषम–मंजु–मंजुल शब्देष्वालम्बनगता विविधा गुणा एवावधीयन्ते। ललितशब्दस्य व्युत्पत्तिः लल्धतोर्भवति, यस्यार्थद्वयमवगम्यते–1) क्रीड़नम्, लक्षणया श्रृङगार–क्रीड़ाकरणम्, हावभावप्रदर्शनमपि तेन लक्ष्यते। 2) अभिलषितो दयितो वेति। ययोः प्रथम एवार्थोऽधिकं प्रसिद्धयति। मनोरम मनोज्ञ–मनोहर–रमणीय–हृदयादिशब्देषु प्रमातृभावनाप्रामुख्यं प्रतीयते। प्रियदयिताभीप्सितादि शब्देषु आलम्बनस्य स्वकीया संज्ञा न भासते। इत्थमिमे पर्याया विभिन्नेष्वनुपातेषु सौन्दर्यस्य वस्तुपरकां भावपरकां वा अर्थच्छायां व्यंजयन्ति। ऐतै पर्यायैः सौन्दर्यस्याधस्तान्निरूपिता अवधारणाः संङकेतिता भवन्ति– 1½ सौन्दर्य किमपि गोचरताङगतं तत्त्वमस्ति, सुन्दरपदे सुदर्शनतवं नयनाभिरामत्वं वा विहितं भवति। शोभनपदे च गोचरीभूताया आभाया आकर्षणं प्रामुख्येन प्रतीयते। 2½ सौन्दर्य वस्तुन आलम्बनस्य वा गुणोऽस्ति, किंन्त्वयं प्रतीयमानो गुणोऽस्ति, तस्य सत्ता न सर्वथा निरपेक्षा, अपितु प्रमातृसापेक्षा भवति। रूचिरचारूपदयोः प्रमातुश्चेतनायाः प्रसानं व्यज्यते। 3½ सौन्दर्यमुले प्रेमभावना कामना वा प्रत्यक्षेणाप्रत्यक्षेण वा रूपेणास्ते, मनोज्ञ–मनोरम शब्दौ का–न्तकाम्यकमनीयादिपर्यायाश्चैनत्तथ्यं प्रति सङकेतं कुर्वन्ति। 4½ सौन्दर्यऽङगसाम्यस्य सामंजस्य वा धारणा निहिता भवतीत्यत्र सुष्ठुशब्दः प्रमाणम्। 5½ सौन्दर्यस्य श्रृङगारसम्बन्धोऽपि स्फुट इति ललित शब्दः सङकेतयति। 6½ लावण्यशब्देन सौन्र्यस्य प्रतीयमान स्वरूपेऽधिकं बलमाधीयते।

वैदिक वाङ्मयेऽपि सुन्दरसौन्दर्यपर्यायाः प्राप्यन्ते। तेषांचेयमर्थमीमांसावेदेषु सुन्दरसौन्दर्यशब्दो न प्राप्येते, किन्त्वेतयोः पर्यायशब्दानां तत्र मुक्तः प्रयोगोऽस्ति। प्रकृतिवैभवस्य जीवनस्य चानन्देन प्रेरितसु ऋृक्षु रूपरसयोः किमप्यपूर्व वर्णनं विराजते। सुन्दर–सौन्दर्य–सन्दर्भे–वैदकिवाङ्मये ये शब्दाः प्रयुक्ताः सन्ति, तेषु

*शोधार्थी, हिन्दी विभाग, आगरा कॉलेज आगरा

मुख्यतया रूप–चारू–रूचिर–वल्गु–प्रिय–पेशस्–भद्र–रण्व–चित्र–मधुर–श्रियादयः प्रसिद्धाः। रूपशब्दस्तत्र प्रायेणाकार–प्रकारार्थे प्रयुक्तः। यथा– ßfo'ok : ikf.k ifre|pr dfo¼ÞA[3]

इत्यत्र ज्ञानवानीश्वरः प्रतिक्षणं सर्वाणि रूपाणि धारयती त्यर्थके मन्त्रे। परमानेकेषु प्रसंङगेषु रूपपदेन सुन्दरस्य सौन्दर्यस्यवा भावोऽपि तत्र द्योत्यते। यथा– Þl : i|jT; r gfj¼ßA[4]

इत्यत्र दुःखहरः स पुरूषो विविधै रूपैरलङ्त्रियत् इत्यर्थके। हरित्वता वर्च्चसा सूर्यस्य श्रेष्ठ रूपैस्तत्वं स्पर्शयस्व।[5]

इत्यत्र दिक्षु व्याप्ते सूर्यस्य तेजसा तदीयैरूत्तमोत्तमै रूपैश्चास्माकं देहं स्पृशेत्यर्थके। ये रूपाणि प्रतिमुंचमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति।[6]

इत्यत्र ये अनेकानि सुन्दराणि वस्त्रभूषणादीनि परिदधाना एन्द्रियसुखासकताः सन्तः स्वबलेन विररन्तीत्यर्थके मन्त्रे च सुनदरस्य रूपस्यापि प्रतिपत्तिर्भवति। चारूशब्दस्य वैदिके संस्कृतेऽर्थद्वयं भवति। (1) कल्याणरूपम् (2) सुन्दरं प्रीतिकरंवा यथा–

;eh xHkhZerko/k n'kpk: eth tuuA dfo eefg"Be/oj i#Li'geA[7]

इत्यत्र जगद्धारकं यंचारूं सकलकल्याणरूपं प्रियं वा प्रभुम इत्वाद्यर्थके मनत्रेचारूशब्दः। (2) इन्दुपविष्ठः चारूमतादायाऽपामुपस्थे कविर्भगाय।

इत्यत्र चारूपदेनकल्याण रूपत्वं प्रीतिकरत्वं वा इन्दोः सामस्य प्रतिपादयति। मन्त्रेऽपि चारूशब्दः। (3) चित्रम्– Þ vLFk: fp=k m"kl% i|jLrkfUerk bo Lo[kk·/oj"kÞA[8]

इत्यत्र कान्तिमान् उषः समूहः पूर्वस्यां दिशि यज्ञस्तुपवत्स्थितोघ्स्तीत्यर्थके मन्त्रे चित्रशब्दः कान्तिमदर्थबोधकः।

रण्वम– vPNk ok nohe"kl fo Hkkrh @ izk Hkj/o ue lk lofDreA
Å/o e/k/kk fnfo ikt JJr @ i|jkpuk :#o j.o ndAA[9]

इत्यत्र एत् कान्तिमत्या उषसेऽजलिमर्पयत् तस्यै नामांसि कुरूध्वम्। रमणीयदर्शना मधुदायिनी च सा उपर्याकाशे स्वप्रकाशं प्रसारयन्ती सर्वं विश्वं प्रकाशति।इत्यर्थके रण्व शब्दो रमणीय पर्यायः रण्वसंदृक् इति चोषसो रमणीयदर्शनतां कथयति, वक्ति चास्याश्चाक्षुषं सौन्दर्यम्।

वल्गु आ नो अगने सुमतिं संभलो गमेदिमां कुमारीं नो भगेन। जुष्ठावरेषु समनेषु वल्गुशेषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै।[10]

इत्यत्र हे अग्ने अस्माकमियं कन्या भाग्येनास्मत्सुमतेरनुरूपं सौम्यं वरं प्राप्नुयात्फ। समनसां वरपक्षीयाणामियं रूचिरा कन्या प्रिया स्यत्, अस्याः पतिसाहचर्येण सुखसौभाग्यं सिद्धयतु।

इत्यर्थके मन्त्रे वल्गुपदं रूचिरत्वं वक्ति। ततश्च प्रियत्वं गम्यते। वल्गुः रूचिरा प्रीतिजननी स्यात् इति सायणः। (अथर्ववेदे–वि0भाव)

अप्सः– ,"kk i|rhph nfgrk fnok uR;k"ko Hknk fu.k|rvll%A
0;|jko|rh nk'k"k ok;k|f.k iuT;k|fr;|ofr% i|o;k d%AA[11]

इत्यत्र यथा दिवो दुहिता उषा अभिमुखीभूयाभीष्टानि स्वरूपाणि प्रकाशयति। प्राचीं दिशंच आलोकेन पूरयति तथा पतिं प्रति प्रेमकामना अभिव्यंजयन्तीयं कन्याऽभिमतं स्वरूपं प्रकटयेदित्यर्थके मन्त्रे अप्स इति अभिमत रूपवाचकः शब्दः। वेदेषु तत्रापि ऋग्वेदे काव्यतत्त्वमेव प्रामुख्येन स्थितम्। काव्यशास्त्रविषये तु तत्र केचिदेव विरलाः सङकेता इतस्ततौ विकीर्णाः सन्ति। तथैवात्र सौन्दर्यवर्णनं प्राचर्येणोपलभ्यते किन्तु सौन्दर्ग्येविवेचनं प्रकारान्तरेणैव क्वचित्क्वचित्सङके–तात्मना प्राप्यते। यथा सौन्दर्यस्य मधुरः पक्ष "उषः" सूक्ते, उदात्तः पक्षश्च मरूपुरूषेन्द्रविष्णु– प्रभृतीनां सूक्तेषु केनापि भव्येन स्वरूपेण चित्रितोऽस्ति।

उषसः सूक्ते प्रकृतेर्गोचरीभूतं सौन्दर्यमपूर्वतयोल्लसति। आलोक–वसना उषाः प्राच्यामुदेत्य स्वसौन्दर्यमनावृत्तं करोति। तस्यात– नुद्यतिः सद्यःस्नाताया इवोज्ज्लास्ति। सा रात्रे श्याममावरणं भंजयन्ती मरूतामामितं तेजः पुनः पुनर्वर्ण्यते ते स्वर्णवर्णाः सन्ति, अरूणयाऽऽभया दीप्ताः, अग्नि– तेजसः, प्रकाशभास्वराश्च सनित। विद्युता सहैषां घनिष्ठः सम्बन्धः तेषां शास्त्रास्त्राणि विद्युन्मण्डितानि सन्ति। ते स्वर्णमालाः स्वर्णमयानि वस्त्राभूषणानि तादृशमेव च शिरस्त्राणं परिदधति। तथैव इन्द्ररूद्रविष्णुप्रभृतीनामपि तेजोमयं विराड्रूपमृग्वेदीयासु वनीषु ऋक्षु वर्णितमस्ति। एतेषु समस्तेषु प्रसङगेषु सौन्दर्यस्य एन्द्रियं स्वरूपं स्फुटतया स्वक्रियते, कान्तेवर्णस्य

ऊर्जः प्रभृतेश्च प्रमुखानां सौन्दर्यतत्त्वानामत्यन्तमुच्छ्वसितं वर्णनं विधीयते। येन विशदीभवती यद् वैदिकक–वेर्धारया सौन्दर्यस्वरूपं मूलतः ऐन्द्रियमस्ति, कान्तिवर्णौजांसि च तस्य प्रमुखानि तत्त्वानि तेषु च सर्वाधिकं कान्तेर्महत्त्वम्। यथा–

;;k xkok eN;Fkk d"kkfpr] v'kjhjk d.kFkk lqjrhdeAA[12]

इत्यत्र कान्तिकिरणा रूपहीनमपि सुप्रतीकं (सुन्दरं) कुर्वन्ति इत्यर्थके मन्त्रे। एतेन सहैव वैदिकीषु ऋक्षु सौन्दर्यस्य मानसं रूपमपि मुक्ततया स्वीकृतम्, सौन्दर्य प्रीतिकरम्, उल्लास प्रदं, मधुरं, स्फूर्त्तिप्रदं, चिरनवीनं, पवित्रं, दिव्यंचास्तीति।

कलाशब्दस्तावद् वेदे–भागे, अंशे, वार्थे–पठितः। किन्तु कलाया अवधारणा तस्याः कतिपयेषां रूपणांच स्फुटोल्लेखस्तत्र नूनं जभ्यते। चित्र लक्षणंवयनादयः कलास्तत्र बहुत्र चर्चिताः, काव्यकलायास्तु प्रकामसूक्ष्मं गहनं च विश्लेषणं तत्र कृतमस्ति। ऋग्वेदे कविता (ऋक्) सुवृक्तिरि–ति। सुष्टुतिरित्युक्ता। तदीये हार्दिके (रागात्मके) शैल्पिके चेत्युभयोरपि पक्षयोः समानमवधानं दीयते। काव्यकलाया अधिष्ठात्री च तत्र "उषा" विद्यते। या सूर्यस्थ दुहितृत्वेन दिव्यप्रेरणाघ्ल्लो– कं वितरति।

pkn;=h lqu`rkuk] p;Urh lerhuk f/k;k fo'ok fojkt frA[13]

इत्यत्र सूर्यस्य दुहिता (या परस्तात्साहित्ये सरस्वतीत्वेन प्रतिष्ठता)

सून्दरगीतप्रबोधिका, सुन्दरभावनोद्भाविका, सकलपवित्रविचारप्रेरिका चास्ति। तस्याः काव्यकलया सह सम्बन्धः–एकतो दिव्यचेतनया, हार्दिकैर्मधुरैः पवित्रैश्च भावैः सह भवति, अपरतश्च रचनाशिल्पेन। सा खल्वेकतः सुन्दरीं, प्रीतिकरी, श्रेयस्करी च वर्तते अपरतो दिव्यसत्तया प्रेरिता च।

Lrkeq âk| lq"kok cgq fi;q nokfgreA[14]

अपरत्तश्च कुशलेन शिल्पिना रथवन्निर्मिता च

jFk u /khj% Loik vr{keA[15]

अतएव वैदिकमन्त्रद्रष्टा ऋृचं हृदयनिर्मितां मन्यते।

vk r vXu _pk gfo% ânk r{keA[16]

इत्थमृग्वेदे वाक्सौन्दर्यमिषेण सौन्दर्यशास्त्रस्य प्रायः सर्वेमङ्गानो सूत्रबद्धं परं मार्मिकं विवेचनं लभ्यते।

1) वाक्सौन्दर्यस्वरूपम्मानसं चाक्षुषं च दिव्यं लौकिकंच।
2) प्रेरणस्रोतः सौन्दर्यानुभूतेर्विवेचनम्।
3) प्रयोजनं सार्थकता च।
4) उपकरणानि शब्दः, अर्थः, अलंकारः, लयः, छन्दःप्रभृतयश्चं।

वेदेषु सगीतस्य (नादब्रह्मणः) अपि सविस्तरं विवेचनं विहितम्। यदाधृत्य पश्चात्सगीतत संगीत–शास्त्रं च विकसितम्। तत्र रूप विधायिकानां कलानां (प्लस्टिक आर्ट इत्यारव्यानां) स्थापत्यस्य (वास्तुब्रह्मणः) मूर्त्ते चित्रस्यापि यथास्थानमुल्लेखोघस्ति। किन्तु यथा डॉ0 वासुदेवशरणस्याग्रव– लस्य मतं वैदिक ऋषिर्मानवशिल्पापेक्षया देवशिल्पं प्रति परमानुरक्त आसीदित्येतासां कलानां तत्रापेक्षिकं नैयून्यमस्ति। आम्, वेदेषु केषांचिदीदृशां कलापेतीकानां सुष्ठु वर्णनमवश्यं प्राव्यते यत्परवर्तिषु युगेषु चित्रस्थापत्यादीनां कृतेऽक्षयं वरदानं सिद्धयति। यथा पूर्णकुम्भः, कल्पवृक्षः, देवासु–रो श्रीलक्ष्मीप्रभृतश्च। भारतीये कलाशास्त्रे एषां वैदिकपतीकानां महन्महत्वपूर्ण स्थानमस्ति।

उपनिषदां प्रतिपाद्यमस्ति तावदात्म विद्या इदामात्मचिन्तनविषयकं काव्यमस्ति। वैदिकाः कवयो यत्र सौन्दर्ये लौकिके दिव्ये च, ऐन्द्रिये आत्मिके चेत्युभयविधेऽपि रसिका आसन तत्रौपनिष दिकस्य कवेदृष्टिः केवले आत्मिकसौन्दर्ये एवोन्मुख्यभूत, तेन स्वीयाः कृतयः प्रकृति वैभवतोनिवार्य आत्मिकै–श्वर्य एव केन्द्रिता अवभून्। वैदिकः कविः यस्यापारस्यैश्वर्यस्य सूर्यचन्द्रोषसां हिरण्मयालोके ब्रह्माण्डे दर्शनं करोतिस्म, तदोपनिषदिकः कविः केवलात्मगतत्त्वेन पिण्ड एव साक्षात्करोति। यथा–

;r'pkn fr lq;k·Lrq ;= p xPNfrA
rq nokW lo·fiirkLrq ukR;fr d'puA ,rn o rrA[17]

इत्यत्र यस्मात्सूर्य उदेति यस्मिश्चास्तमेति, यस्मिश्च सर्वे देवाः स्थिताः। यं कोऽपि नातिक्रमति, तदेवैतत्परमतत्त्वम्। इत्यर्थके मन्त्रे आत्मैवाभिष्टूयते। उपनिषदाधारभूतः सिद्धान्तोऽस्ति तावदद्वैतम, अनेकतायामेकतेत्यर्थः। इदमेव सामरस्यं सामंजस्थं वा सौन्दर्यस्य मूललक्षणमस्ति। पुनश्च–

,"k lo"kq Hkwrs"kq xq<kRek u izdk'krsA
n';rsRoxz;;k c);k l{e;k l{enf'kZfHk%A[18]

इत्यत्र सर्वेषु भूतेष्वन्तर्व्यान्त एष आत्मा प्रत्यक्षतो न दृश्यते। सूक्ष्मदर्शिनस्तीव्रया सूक्ष्मया च बुद्धिरूपया स्वदृशा तं द्रष्टुमर्हन्तीति वर्णितम्। अयं विश्वप्रपंचो यया मूलचेतनयाऽनुप्राणितोऽस्ति, तस्यैव नामात्मेत्यस्ति, तदेव ब्रह्म वरीवर्त्ति।

,dks'kh lo"kZHkwrkUrjkRek] ,d :i cgq/kk ;% djksfrA[19]

इत्यत्र स एको नियन्ता सर्वेषां प्राणिनां प्राणः यः स्वकीयमेकं रूपमनेकेषु रूपेषु प्रकाशतीति नि–रूपितम्। इदं तत्त्वं ब्रह्म, आत्माचैतन्यं वा अन्तालोकेन दीप्तम्। परमानन्देन चोतप्रोतमस्ति।

ßl ; ,"kks·Urjkn;s vkdk'ks A rfLeUu;a i#"ks euks;s A ve`rs fgj.e;s Aà[20]

स यो हृदय मध्ये आकाशः, तस्मिन्नयं मनोमयः, अमृतस्वरूपो हिरण्मयः पुरूषोऽस्तीत्यर्थः। आनन्दो ब्रह्मेति व्याजानात्। आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। प्रय–न्त्यभिसंविशन्तीति।[21]

इत्थं भृगुरज्ञासीद् यथा आनन्दो वै ब्रह्मेति। इमानि सर्वाणि भूतानि ह्यानन्दोत्पद्यन्ते, उत्पन्नाश्च आनन्देनैव जीवन्ति, अन्ते प्रयाणकाले चानन्दमेव प्रविशन्तीति। एवमुपनिष्त्सु यत्सौन्दर्यनिरूपितम्, तस्य द्वे लक्षणे स्तः प्रकाश आनन्दश्च। गोचरीभूतं तावत्प्रकाशः, अनुभूतिविषयस्त्वानन्दः। एतदाधृ–त्यैव औपनिदिकदर्शनेन प्रभावितैराचार्यैः परस्ताद् रसस्य स्वप्रकाशानन्दत्वं प्रतिपादितम्।

"विद् ज्ञाने" इति ज्ञानार्थकाद् विद् धातोर्घञि प्रत्यये कृते वेद इति रूपं निष्पद्यते। एवं वेदशब्दो ज्ञानार्थकः। ज्ञानराशिर्वेद इति वक्तुं शक्यते। विद् सत्तायाम् विद विचारणे विद्लृ लाभे, विद् चेतानाख्यानानवासेषु इति धातुभ्योघपि धञि वेदरूपं निष्पद्यते। वेदा ज्ञानराशित्वात् शाश्वतस्थायिनः, मानवहितप्रापकाः ज्ञाननिधयः मनुज–कर्त्तव्य–बोधका इति विविधधात्वर्थ–ग्रहणाद् ज्ञायते। वेदार्थानुशीलनाद् ज्ञायते यद् वेदा हि विविध ज्ञान–विज्ञान–राशयः, कर्त्तबयाकर्त्तव्यावबोध–काः शुभाशुनिदर्शकाः, जीवनस्योन्नायकाः, विश्वहित संपादकाः। आचारसंचारकाः, सुखशान्तिस– धकाः, ज्ञानलोकप्रसारकाः सत्यतायाः सरणयः, कलाकलापप्रेरकाः, आशाया आश्रयाः, नैराश्यविनाश–काः चतुर्वर्गावाप्तिसोपानस्वरूपपाश्च सन्ति। वेदामन्वादिभिः ऋषिभिः परमप्रमाणत्वेनोपन्यस्ताःवेदोऽखिलो धर्ममूलम (मनुस्मृतिः–2.6) इति समुदघोषयता मनुना समग्रस्यापि वेदनिधेर्धर्माधाररूपेण प्रतिष्ठिता विहिता। मानवस्याखिलं कृत्यजातं कर्त्तव्याकर्त्तव्यं वा वेदेषु विशदयता निरूप्यते। अतएव वेदा आचार–संहिता रूपेण प्रमाणीक्रियन्ते।

lUnHk%

1. अमरकोषस्य तृतीय काण्ड
2. तथैव
3. ऋक्–5.81.2
4. ऋक्–9.34.4
5. ऋक्–10.11.3
6. यजु0–2.30
7. ऋक्–9.10.2.6
8. ऋक्–4.51.21
9. ऋक्–3.6.1.5
10. अथर्व0–2.36.1
11. ऋक्–1.8.6.23
12. ऋक्–6.28.6
13. ऋक्–1.3.10.12
14. ऋक्–5.42.2
15. ऋक्–5.3.11
16. ऋक्–5.16.47
17. कठोपनिषद्–4.9
18. कठोपनिषद्–3–12
19. कठोपनिषद्–5.12
20. तैत्तरीयोपनिषद्–1.6.1
21. तैत्तरीयोपनिषद्–3.6.1

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 185-189

Hkkjr dk xkeh.k fodkl % vko';drk vkj fu;kstu

M,0 j[kk mik/;k;*

भारत एक विशाल जनसंख्या वाला देश है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में चीन के बाद दूसरा स्थान है। भारत की लगभग तीन–चौथाई जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। ग्रामीण जनसंख्या की आजीविका का मुख्य श्रोत कृषि ही है और यदि देखा जाय तो भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि ही है। परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है तथा परिवर्तन ही जीवन की माँग। जहाँ जीवन है वहाँ परिवर्तन भी है। पूर्णतः गतिहीनता का अन्य नाम मृत्यु है। अतः मानव समुदाय में परिवर्तन स्वाभाविक है, परिवर्तन का तात्पर्य अप्रत्यक्ष रूप विकास से ही है।

नगरीय समुदाय की अपेक्षा गाँव के समुदाय कम गतिशील होते है किंतु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि गाँव गतिहीन है। ग्रामीण समुदाय भी सतत परिवर्तन शील है किंतु इनके परिवर्तन की गति अपेक्षाकृत मंद होती है। भारत के किसी भी क्षेत्र में ग्रामीण समुदायों के इतिहास पर नजर डालकर यह तथ्य परख सकते है कि ग्रामीण समुदायों में परिवर्तन के कारको तथा प्रतिमानों के अध्ययन से ही ग्रामीण क्षेत्र में कल्याण कार्य के विकास में मदद मिलेगी, क्योकि वांछित दिशा में परिवर्तन ही विकास है। गाँवों के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक किसी भी प्रकार का विकास करने के लिए उसमें परिवर्तन की आवश्यकता है तथा बदलाव की जरूरत। समूचे भारत की आर्थिक प्रगति के लिए ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी को नियंत्रित करने के लिए ग्रामीण विकास अनिवार्य है। भारत की वास्तविक प्रगति तभी होगी जब हमारे गाँव आर्थिक, सामाजिक और अन्य क्षेत्रों में प्रगति करेंगे। ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा जैसी समस्याओं को नियंत्रित करना अनिवार्य है। गरीबी उन्मूलन के अनेक प्रयासों के बाद भी अधिकांश लोग गरीबी में ही जन्म लेते है और गरीबी में ही प्राण त्याग देते है, अतः गरीबी एक अभिशाप है। भारत की जनसंख्या मे होंने वाली वृद्धि के साथ–साथ गरीबी की समस्या प्रति वर्ष बढ़ रही है। सन 1973–74 में 55% जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे थी जो वर्ष 1993–94 से 1996–97 के दौरान यह जनसंख्या घट कर 29.18 फीसदी रह गयी। इसके अतिरिक्त 26 फीसदी जनसंख्या ऐसी है जो स्वयं को गरीब मानते हुए गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली जनसंख्या का लाभ लेना चाहती है।

सर्वेक्षण द्वारा यह बात सामने आई है कि अब तक ग्रामीण विकास के लिए कार्यों से सकारात्मक परिणाम तो अवश्य मिले है किंतु माँग इतनी अधिक है कि पूर्ण जनसंख्या तक इसका लाभ पहुँचाना कठिन हो रहा है। पिछले वर्षों में ग्रामीण विकास की दिशा में अनेक कार्यक्रम लागू किया गया तथा उसमें व्यय की जाने वाली राशि भी बढ़ाई गयी है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास हेतु 30,000 करोड़ की राशि निर्धारित की गयी थी, जिसे नौवीं पंचवर्षीय–योजना में बढ़ाकर 43,874 करोड़ कर दिया गया।

ग्रामीण जीवन की मुख्य आवश्यकता शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, सिंचाई व्यवस्था, आवास तथा सड़के है। अतः भारत का ग्रामीण विकास अति आवश्यक है, ग्रामीण विकास होने से भारत का विकास स्वतः ही हो जाएगा।

xkeh.k fodkl dh vko';drk % यूँ तो गाँव ही क्या, किसी भी क्षेत्र का समय–समय पर विकास होना अति आवश्यक है, किंतु यदि ग्रामीण विकास की बात करें तो इनका विकास कई कारणों से आवश्यक हो जाता है। एक तो देश की अधिकांश जनसंख्या गाँवों मे निवास करती है, तो दूसरी तरफ ग्रामीण क्षेत्रों

*पी0एच0डी0, भूगोल विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ0प्र0

की विकास के संबंध में गाँवों की तुलना में अनदेखी की जाती रही है। विकास अत्यंत मंद गति से होता है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से ग्रामीण क्षेत्र अछूता ही रह जाता है। विकास कार्य के परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण क्षेत्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सभी क्षेत्र में पिछड़े रह जाते है। हमारी 70% जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, अतः ग्रामीण क्षेत्रों का विकास होने से विकास का लाभ अधिक से अधिक जनसंख्या को मिलेगा। ग्रामीण जनसंख्या मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित रह कर जीवन यापन करती है। यदि गाँवो का सुचारू रूप से विकास हो जाए तो लोगों का शहरों की तरफ पलायन निश्चित रूप से कम होगा। यातायात, चिकित्सा, शिक्षा, सड़के, बिजली, पानी आदि जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ है, जो गाँवों में उपेक्षित है। अतः लोग शहरों में बसना चाहते है। ग्रामीण विकास की आवश्यकता निम्न कारणों से है– 1) प्राकृतिक कारण, 2) प्राविधिक कारण, 3) सामाजिक कारण, 4) सांस्कृतिक कारण, 5) राजनैतिक कारण, 6) मूलभूत सुविधाओं का अभाव, 7) बेरोजगारी, 8) अशिक्षा।

1½ çkÑfrd dkj.k ¼ ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के कारकों में वे सभी प्राकृतिक तत्व आते है जो ग्रामीण क्षेत्रों के रहने वाले स्थान पर पाए जाते है। उदाहरणस्वरूप नदियों के किनारे पर बसे गाँव प्रतिवर्ष बाढ़ की समस्या से जूझते है, इसी प्रकार जंगलों के किनारे बसे गाँव जंगली जानवरों द्वारा नुकसान की स्थिति झेलते है तथा भयपूर्ण जीवन व्यतीत करते है। इसी प्रकार पर्वतों पर स्थिति गाँव का जीवन भी दुष्कर है, रेगिस्तान के निकटवर्ती गाँव पानी और सूखा की समस्या से जूझते है। तो कुछ गाँव प्रति वर्ष आँधी, तूफान, ओला वृष्टि आदि प्राकृतिक विपदाओं से ग्रसित है। अतः प्रत्येक गाँव की समस्या प्राकृतिक रूप से पृथक्–पृथक् है। अतः प्रत्येक गाँव का विकास उनके प्राकृतिक दशाओं के रूप मे होनी चाहिए। यदि सूखे की समस्या से ग्रसित गाँवों का विकास पानी की व्यवस्था करके की जाए तो ग्रामीणों का पानी की तलाश में दूर–दूर भटकने से जो श्रम और समय की बर्बादी होती है वो रुकेगी उनका समय और श्रम की बचत होगी जिसे वे अन्य किसी कार्य में लगाकर देश के विकास में योगदान दे सकते है, अप्रत्यक्ष रूप से इससे देश का आर्थिक विकास होगा।

2½ çkfof/kd dkj.k ¼ प्राविधिक कारकों की सहायता से मानव वर्ग एक नवीन एवं आधुनिक पर्यावरण का निर्माण करता है तथा प्राकृतिक पर्यावरण को अपने अनुकूल बदलता है। अतः प्राविधिक कारणों मे सभी प्रकार के आविष्कार आते हैं, ज्योंही सभी गाँवों मे बिजली पहुँच गयी तथा नियमित प्रदान की जाने लगी। गाँवों का स्वरूप ही बदल जाएगा। प्रो. आर्गबर्न के अनुसार रेडियो के अविष्कार से ही सामाजिक जीवन मे बहुत बदलाव आए। इसके अलावे दूर संचार के माध्यम से कृषकों को घर बैठे उन्नत बीज, कीटनाशक तथा अच्छी फसल प्राप्त करने के तरीकों का आसानी से ज्ञान हो सकेगा जिससे वो आत्मनिर्भर बन सकेंगें। आज गाँवों की स्थिति यह है कि दूर संचार के माध्यम तथा बिजली होते हुए भी बिजली की आपूर्ति जिस नियमितता के साथ शहरों मे होती है गाँवों मे नहीं होती है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों का विकास अवरुद्ध होता है। दूरसंचार के अलावा आटा पीसने की मशीने, कपास ओटने की मशीने, दाल बनाने की मशीने, ट्यूबवेल, कृषि कार्य की मशीने आने से कृषकों से समय की बचत होने के साथ–साथ स्वावलंबी बनने का रास्ता सुगम हुआ है।

3½ lkekftd dkj.k ¼ ग्रामीण समुदाय को सामाजिक जीवन पर सामाजिक कारणों का व्यापक प्रभाव पड़ता है, ग्रामीण क्षेत्र आज भी सामाजिक बुराइयों को त्यागने के स्थान पर नियमतया पालन कर रहे है, जिससे इनका विकास अवरुद्ध होता है, जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, कन्या भ्रुण हत्या आदि के होने का प्रभाव स्त्रियों की दयनीय दशा द्वारा देखा जा सकता है। भारतीय ग्रामीण समुदाय के जीवन को प्रभावित करने वाली मुख्य सामाजिक कारक हैं– जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार, जजमानी प्रथा, स्वजाति विवाह एवं स्थानिक एवं धार्मिक रीति रिवाज परंपराएँ आदि।

4½ vkfFkd dkj.k ¼ आर्थिक कारणों के अंतर्गत कृषि, व्यवसाय तथा उद्योगों से संबंधित कारक आते हैं। गाँवों मे कृषि योग्य भूमि मे कोई वृद्धि नही होती तथा एक ही परिवार के आवश्यकता से अधिक लोग कोई अन्य कार्य नही मिलने के कारण कृषि कार्य मे ही संलग्न हो जाते हैं, जिससे उनके श्रम तथा समय दोनो ही की बर्बादी होती है। इसके अतिरिक्त आर्थिक दृष्टि से भी वे कमजोर हो जाते है इसलिए आर्थिक दृष्टि से अपने विकास के लिए वे शहरों की तरफ पलायित होते हैं। रोजगार की प्राप्ति से वे आर्थिक रूप

से मजबूत होते हैं। अतः यदि गाँवों मे इन्हे रोजगार आसानी से प्राप्त हो जाए तो गाँव के लोग स्वावलंबी होने के साथ साथ आर्थिक दृष्टि से मजबूत होंगे। जिन–जिन गाँवों मे खानें या मिलें स्थापित हैं, वहाँ बड़ी संख्या मे स्त्री पुरुष को रोजगार मिलने से वह अन्य गाँवों की अपेक्षा विकसित हैं तथा गरीबी की समस्या का निराकरण भी आसानी से प्राप्त होता है अतः कृषि से मिलने वाले उत्पाद जैसे– सरसों, सूरजमुखी, गन्ना, चावल, गेहूँ, रुई को कच्चा माल के रूप मे उपयोग करने वाले कारखाने स्थापित किए जाने चाहिए। जैसे चिप्स और पापड़ बनाने, टोकरी बनाने, तेल निकालने की मिले, चीनी मिलें, मिट्टी के बर्तन बनाने, मैदा, सूजी, आटा तैयार करने, डालें साफ करने, धान कूटने, अचार बनाने, ब्रेड, बिस्किट, नमकीन बनाने आदि द्वारा लोगों को रोजगार देकर स्वावलंबी बनाया जा सकता है।

5½ lkaLÑfrd dkj.k % इसके अंतर्गत विश्वास और धारणाएँ मूल्य आदि आतें हैं। इसके विकास द्वारा सामाजिक जीवन मे व्यापक विकास होते रहते है, भारत मे हर धर्म के लोग रहते है, वास्तव में भारत की शक्ति और संस्कृति का निर्धारण ग्रामीण भारत द्वारा ही होती है किंतु विडम्बना यह है कि भारतीय गाँवों ने विकास मे क्षेत्र मे सदियों से उपेक्षा ही सहन की है, पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण अनेक जनजातियाँ गाँवों मे लुप्त होती जा रही है , पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव मे आकर ग्रामीण युवक–युवतियों मे व्यक्तिवाद, भोगवाद आदि की वृद्धि हो रही है जो ग्रामीण विकास पर व्यापक प्रभाव डालते हैं।

6½ jktuhfrd dkj.k % राजनैतिक कारण भी ग्रामीण समुदाय पर व्यापक प्रभाव डालते है। सरकार के अतिरिक्त राजनैतिक दलबंदी का भी ग्रामीण विकास पर सीधा असर पड़ता है। भारत एक गणतंत्र है, जिसमें जनता ही शासन करने वाले प्रतिनिधियों को चुनती है। इससे गाँवों में भी राजनैतिक चेतना जाग्रत होती है।

7½ ewyHkwr lqfo/kkvksa dk vHkko % भारतीय गाँवों के अवलोकन द्वारा एक बात सामने आती है कि प्रायः सभी गाँव मूलभूत सुविधाओं द्वारा वंचित ही है। मूलभूत सुविधाओं के अंतर्गत सड़कें, पानी, बिजली, शिक्षा, चिकित्सा आदि आते है। प्रायः इन सुविधाओं का गाँवों में अभाव देखा जाता है। गाँवों की गलियाँ सकरी, नालियों के जल निकास की अव्यवस्था आदि सुविधाओं का भी अभाव पाया जाता है। जिससे वर्षा ऋतु में स्थिति और दयनीय हो जाती है। अतः मूलभूत सुविधाएँ प्रदान करके हम बहुत हद तक गाँवों का विकास कर सकते है।

8½ cjkstxkjh % गाँवों में रहने वाली जनसंख्या को रोजगार देना तथा उनके रोजगार की व्यवस्था करना सरकार का दायित्व है। जिससे ग्रामीण आत्मनिर्भर बनने के साथ–साथ उनका अन्य क्षेत्रों में पलायन में भी कमी आए। उन्हें रोजगार प्राप्ति हेतु अन्यत्र न भटकना पड़े।

9½ vf'k{kk % ग्रामीण क्षेत्रों के पिछड़ेपन के कारणों में अशिक्षा भी एक महत्वपूर्ण कारण है। अशिक्षित होने के कारण ग्रामीणों को अपने अधिकार का ज्ञान नहीं होता और वे सदैव शोषित होते है। हमारे तीन चौथाई ग्रामीण अभी भी अशिक्षित है, जो कि चिंता का विषय है, जब तक वे शिक्षित नही होते हमारा विकास अधूरा ही होगा, क्योंकि सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली उनके हित की योजनाएँ तथा लाभ का ज्ञान उन्हें नहीं होता और वे उसका लाभ भी अज्ञानता वश नही ले पाते और प्रायः वंचित रह जाते है। इसके अतिरिक्त शिक्षित होकर वे कृषि कार्य को नवीन तकनीकी और आधुनिक प्रयोगों द्वारा और भी लाभकारी बना सकते हैं। नवीन उपकरणों का प्रयोग, नयी नयी कृषि की विधियाँ शिक्षित होकर सरलता से सीख सकते है साथ ही साथ उनका शोषण भी खत्म होगा। अतः शिक्षा का प्रचार प्रसार करके गाँवों के विकास को एक उचित दिशा दी जा सकती है।

xkeh.k fodkl dk fu;kstu % किसी कार्य को क्रमबद्ध ढंग से करना नियोजन कहलाता है। गाँवों के विकास की दूषित तथा धीमी गति का मुख्यकारण नियोजन का अभाव है। ग्रामीण क्षेत्रों के पिछड़ेपन हेतु नियोजन व्यवस्था पूर्णतः उत्तरदायी है। उदाहरणस्वरूप गाँवों की शैक्षिक व्यवस्था वांछित स्तर की नहीं है, किंतु अगर शैक्षिक व्यवस्था का ही अवलोकन करें तो जिन गाँवों में विद्यालय है, उनमें भी या तो शिक्षकों का अभाव है या शिक्षक विद्यालय नियमित रूप से आते ही नहीं, जिससे अध्ययन कार्य सुचारू रूप से नही होता अतः सरकार को प्रत्येक विद्यालय में शिक्षकों की नियुक्ति उचितसमय पर करनी चाहिए। यही दशा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित अस्पतालों की भी है। अस्पताल का निर्माण करके सरकार अपने दायित्व की

पूर्ति समझती है, किंतु डाक्टर, कर्मचारी, सफाई कर्मी आदि का अभाव दिखता है। ग्रामीणों को इन सुविधाओं के होते हुए भी शहर जाना पड़ता है अतः विकास सुविधाओं का नियोजन होना बहुत आवश्यक है। विद्यालयों में शिक्षकों, अस्पतालों में डाक्टर व अन्य कर्मी आदि की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए तभी ग्रामीणों को उसका पूर्ण लाभ मिल सकेगा। इसी प्रकार सड़कों, बिजली, सफाई आदि को भी नियोजित करके ही ग्रामीणों का वास्तविक विकास होगा। इसके अलावा लघु तथा कुटीर उद्योगों को नियोजित रूप से विकसित करना सरकार का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। अब समय आ गया है कि हम अपनी प्राथमिकताओं का मूल्यांकन स्वयं करते हुए अपने गाँवों की दशा सुधारने में ध्यान केंद्रित करे। लिंक सड़कों के निर्माण अति विलंब पूर्ण करना चाहिए जिसके द्वारा समस्त गाँव मुख्य सड़क से जुड़ जाए जिससे एक ओर तो यातायात की परेशानी का हल मिलेगा तो दूसरी तरफ गाँव साफ सुथरे होंगे और व्यापार की दृष्टि से भी ग्रामीणों को लाभ मिलेगा। खाली भूमि पर विभिन्न तरह के वृक्ष लगाकर जहाँ एक ओर हरियाली होगी वहीं दूसरी तरफ प्रदूषण जैसी समस्याएँ भी दूर होंगी। पशुपालन को भी प्रोत्साहन मिलेगा। जिससे विभिन्न तरह के पशु उत्पाद जैसे डेयरी फार्म, दुग्ध उत्पादन, मक्खन, घी, पनीर, दही, मुर्गी पालन द्वारा, मछली पालन द्वारा, मधुमक्खी पालन द्वारा, रेशम कीट पालन द्वारा, कृषि अनुसंधान केंद्र द्वारा ग्रामीणों को लाभान्वित किया जा सकता है। इसके अलावा सिंचाई सुविधाओं का विकास, कृषि तकनीकी का विकास और संचार सुविधाओं के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों का बहुत को लाभान्वित किया जा सकता है। कुछ योजनाएँ जैसे ग्रामीण आजीविका मिशन, मनरेगा, भारत निर्माण आदि ग्रामीण भारत के विकास और उत्थान हेतु सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली योजनाएँ है। सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु निम्नलिखित कदम उठाए गये हैं–

1½ nhun;ky mik/;k; xkeh.k dkS'ky ;kstuk ¼ यह योजना ग्रामीण क्षेत्रों के युवाओं को रोजगार के लायक बनाने के लिए निर्मित एक कौशल विकास कार्य क्रम है। यह योजना पंडित दीन दयाल उपाध्याय की 98 वीं जयंती के अवसर पर 25 सितंबर 2014 को केंद्रीय मंत्री नितिन गडकरी और वेंकैया नायडू द्वारा शुरू की गयी। इसका उद्देश्य 15–35 आयु वर्ग के युवाओं को लाभ पहुँचाना है।

2½ jks'kuh ¼ vkfnokfl;ksa dsfy, dkS'ky fodkl ;kstuk ¼ 7 जून 2013 को ग्रामीण विकास मंत्रालय ने 24 नक्सल प्रभावित जिलों में आदिवासी युवाओं को रोजगार करने के लिए इस योजना का शुभारंभ किया। इस योजना का नाम रोशनी है। इसके लाभार्थीयों का 50% महिलाओं को रखने का लक्ष्य था।

3½ LoPN Hkkjr fe'ku ¼ प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2 अक्टूबर 2014 को महात्मा गाँधी की जयंती पर स्वच्छ भारत मिशन का शुभारंभ किया था। इसका मुख्य उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वच्छता सुविधाओं के रूप में शौचालय की व्यवस्था, ठोस और तरल अपशिष्ट निपटान प्रणाली की व्यवस्था, गाँवों की साफ–सफाई की व्यवस्था तथा पर्याप्त पेयजल आपूर्ति करना है।

4½ lkaln vkn'kZ xke ;kstuk ¼ इस कार्यक्रम की शुरुआत प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारालोकनायक जयप्रकाश नारायण की जयंती पर 11 अक्टूबर 2014 को की गयी थी। इसके पर्यवेक्षण का अधिकार ग्रामीण विकास मंत्रालय को दिया गया है। जिसके अंतर्गत संसद के प्रत्येक सदस्य 2019 तक तीन गाँवों में संस्थागत बुनियादी ढाँचे के विकास की जिम्मेदारी लेंगे।

5½ fojklr fodkl vkj lao/kZu ;kstuk ¼**HRIDAY**½ ¼

- **i.** यह योजना, शहरी विकास मंत्रालय की देख–रेख में 21 जनवरी 2015 को शुरू किया गया था।
- **ii.** इस योजना का उद्देश्य देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की रक्षा और उसे पुनः जीवंत करना है।
- **iii.** हृदय योजना के प्रारंभिक चरण में 12 शहरों की पहचान की गई है, जिन्हें पुनः जीवंत और विकसित किया जाएगा। केन्द्र सरकार इन 12 शहरों के विकास के लिए 500 करोड़ रूपये प्रदान करेगी।

6½ egkRek xka/kh jk"Vªh; xkeh.k jkstxkj xkjaVh ;kstuk ¼**MGNREGS**½ ¼ राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005, को 2 फरवरी, 2006 से शुरू किया गया था। अब इस योजना का नया नाम 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम' (या मनरेगा) है।

यह योजना एक भारतीय श्रम कानून और सामाजिक सुरक्षा उपाय है जिसका उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे के परिवार के लोगों को 'काम करने का अधिकार' प्रदान करना है। यह योजना गांव के लोगों को एक वर्ष में 100 दिन के रोजगार की गारंटी देती है। इस योजना के लाभार्थियों में 50% श्रमिक महिलाएँ होती है।

इस योजना का 90% वित्तपोषण केन्द्र सरकार द्वारा और 10% राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाता है।

7½ jk"Vªh; xkeh.k vkthfodk fe'ku % यह योजना 2011 में स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना का पुनर्गठन कर शुरू किया गया था। राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (आजीविका) देश भर में महिलाओं के स्वयं सहायता समूह मॉडल को सशक्त करने के लिए शुरू की गई है।

8½ çkueaincluded xkeh lMd ;kstuk % इस योजना को 25 दिसम्बर, 2000 को शुरू किया गया था। प्रारंभ में यह योजना 100% केन्द्र द्वारा वित्तपोषित थी।

9½ vUR;ksn; vUu ;kstuk ¼**AAY**½ % इस योजना की शुरूआत प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 25 दिसम्बर, 2000 को की थी।

इस योजना के तहत गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) रहने वाले लगभग 2 करोड़ परिवारों को बहुत ही रियायती दर पर खाद्यान्न प्रदान किया जाता है।

10½ Lojkstxkj dsfy, xkeh.k ;qokvksa dk çf'k{k.k ¼**TRYSEM**½ % केन्द्र द्वारा प्रायोजित इस कार्यक्रम को 15 अगस्त, 1979 को शुरू किया गया था।

11½ xkeh vukt cSad ;kstuk % इस योजना को सार्वजनिक वितरण विभाग द्वारा लागू किया गया था। इस योजना का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक आपदा की अवधि के दौरान या खराब मौसम के दौरान जब खा। सुरक्षा से वंचित परिवारों के पास राशन खरीदने के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं होते हैं, उन्हें भुखमरी से बचाना है।

12½ jk"Vªh; xkeh.k LokLF; fe'ku % राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) की शुरूआत 12 अप्रैल, 2005 को हुई थी। यह योजना अब "राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन" के अंतर्गत आ गयी है।

13½ vke vkneh chek ;kstuk % इस योजना को 2 अक्टूबर, 2007 को शुरू किया गया था। यह ग्रामीण परिवारों के लिए एक सामाजिक सुरक्षा योजना है।

14½ dsoh T;kfr dk;Øe % इस कार्यक्रम को 1988–89 में शुरू किया गया था। इसका कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति सहित गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले ग्रामीण परिवारों के जीवन स्तर में सुधार लाना था।

15½ lo Sf'k{kk vfHk;ku % सर्व शिक्षा अभियान को 2000–2001 से चलाया जा रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य 6 से 14 आयु वर्ग वाले बच्चों को मुत और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना है, जो एक मौलिक अधिकार है। इस कार्यक्रम को पूर्व भारतीय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा शुरू किया था।

सन्दर्भ :

1. अधिवास भूगोल, डॉ आर. सी. तिवारी
2. तहसील–रसड़ा (जनपद–बलिया) का ग्रामीण आवास रूपांतरण एवं नियोजन. डॉ0 रेखा उपाध्याय
3. https://wwweasssaysinhindi-com
4. tps://wwwhindilibraryindia-com
5. https://wwwhindivyakaran-com
6. fromm-jagranjosh-com>rural&deliver
7. hi-vikaspedia-in>socialwelfare

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 190-192

nkEiR; thou e ukjh dk ;kxnku

MkW0 cch dekjh*

आदर्श पत्नी के विषय में 'पतिव्रतात्वं भार्यायः परमो धर्म उच्यते' कहकर बताया गया है –

lk Hkk;k ;k xg n{kk lk Hkk;k ;k iwtkorhA
lk Hkk;k ;k ifr ik.kk lk Hkk;k ;k ifro rkAA[1]

स्त्री के लिए इस आदर्श को सफल बनाने का मार्ग पातिव्रत्य धर्म का पालन नारियों का पतिव्रता धर्म अत्यन्त दुष्कर माना जाता था।[2] धारणा यह थी कि पति की प्रसन्नता से ही स्त्री को रति, प्रीति और धर्म एवं परमगति प्राप्त हो सकती है।[3] अतः कपोती के वचन हैं–

^u l L=hR;fHkHkk"kk L;kn ;Lrk Hkrk u r";frA*[4]

ब्राह्मणी ने भी यही कहा था कि स्त्री को अपने प्राण देकर भी पति का हित करना चाहिए। अतः–

^u p Hkkxs u p'o;s u l[k u /ku rFkkA
Ligk ;L;kL;Fkk Hkr% lk ukjh.kk ifro rkAA
ifrfg nsor L=h.kk ifrc/k ifrxfr%A
ukU;s xfreg i'p iesnk;k rFkk ifr%AA*[5]

यह धारणा उमा ने स्त्रीधर्म रहस्य में बताई है6 तथा यही पतिव्रता का आदर्श कपोती के शब्दों में भी उपलब्ध है –

^fer nnkfr fg firk fer ekrk fer l r%A
vferL; fg nkrkj Hkrkj dk u it ;rAA
ukfLr Hkr lek ukFkk u p Hkr le l[keA
fol T/kuo Lo Hkrk o 'kj.k fL=;kAA[7]

द्रौपदी ने पातिव्रत्य का महत्व बताते हुए अपने विषय में सत्यभामा से कहा था –

iR;kJ;k fg e /keka er% L=h.kk lukru%A
l no% lk xfrukU;k rL; dk fofi;s pj rAA[8]

अनेक पतिव्रताओं की धारणा ऐसी ही थी।[9] इसलिए भद्रा काक्षीवती और कपोती की भावना थी कि पति के बिना स्त्री के लिए मरना ही श्रेयस्कर है क्योंकि 'पति बिना जीवति या न सा जीवति दुःखिता'।[10] सावित्री ने यम से कई वर प्राप्त करने पर भी कहा था –

^u dke;s Hkr foukd rk l[k u dke;s Hkr foukd rk fnoeA
u dke;s Hkr foukd rk fJ;s u Hkr ghuk 0;olkfe thfor eAA[11]

^ir;k cU/kkW% L=h.kke*[12], 'पति ही स्त्री का परम भूषण है'[13] परम गुरु है[14] इसी विचार से प्रेरित होकर पतिव्रता साध्वी अपने कौटुम्बिक कर्तव्यों के पालन में जागरूक रहती हुई भी पति सेवा में तत्पर रहती थी। उसक लिये जीवन का केन्द्र था पति और समस्त कर्तव्यों की चरणसीमा थी पति–सेवा जैसा कहा गया है –

ukfLr ;K% fL=;k% df'pUuJ lk)k ukiok ldeA
/ke% LoHkr 'kJ"kk r;k Lox t;U;rAA[15]

*सामाजिक विज्ञान संकाय, (प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति)

स्त्री की तपश्चर्या, दान, धर्म सब कुछ पति को समर्पित होता है, उसका रूप कुल यश और तेज पति में ही प्रतिष्ठित है। पातिव्रत्य के अनुसार सद्वृत नारी ही पति के साथ पुण्यलोक जा सकती है। तप और शारीरिक श्रम से पुरुष जो पुण्यफल प्राप्त करता है वह सब नारी पतिपूजा द्वारा ही सम्पादित कर सकती है।[16] यह भावना तथा सुख में तथा दुःख में पति को निरन्तर साथ देना पतिव्रता का धर्म था जैसे सावित्री ने मृत पति के अनुसरण में यम से कहा था कि जहाँ पति जाता हो या ले जाया जाता हो वहाँ उसके पीछे पतिव्रता को जाना चाहिए।[17] इस आदेशानुसार द्रौपदी और दमयन्ती एकवस्त्रा होकर अपत्यों को भी छोड़कर पति के साथ वनवास के कष्ट उठाने गई थीं। पुत्रलोक त्याग कर पतिलोक का वरण करनेवाली द्रोपदी का कुन्ती ने गौरव किया था।[18] नल ने दमयन्ती को विदर्भ का मार्ग बताया तब दुःखार्त होकर उसने पूछा था – 'हृतराज्य, हृतधन, विवस्त्र तथा क्षुधापीड़ित तुम्हें वन में छोड़कर मैं कैसे जा सकती हूँ? क्यों मुझे त्यागना चाहते हो? मैं तुम्हारे क्लेश और श्रम का परिहार करूँगी।'[19] पत्नी ही सारे दुःखों के लिए औषध होती है। नल द्वारा परित्यक्ता होने पर भी भयानक वन में अकेली भटकती हुई दमयन्ती को नल ही के लिए चिंता थी कि मेरे बिना उसका क्या होगा?[20] ऋषि शाप से नरमांस भक्षक बने हुए कल्माषपाद को केवल अपनी पत्नी दमयन्ती का ही आसरा था।[21] अपने प्रिय पति के लिए नारी कितने भी कष्ठ उठा सकती है किन्तु पातिव्रत्य की दुष्करता तो यह थी कि पति चाहे वृऋ, कुरूप, बीभत्स हो, धनवान हो या निर्धन हो वही पत्नी का भूषण है ऐसा समझ कर निष्ठावान से उसकी सेवा करने, उसके अनुकूल और अनुव्रत बनने में पतिव्रता का धर्म माना जाता था। युधिष्ठिर और नल ने कहा था–

^Hkrkjeu:Ue;Ur% fDy';Un ohjiRu;%A
'kJ"k;k fDy';ekuk ifrykd t ;UR;rAA[22]

भीम ने ऐसी पतिव्रताओं के उदाहरणों में सुकन्या, नाडायनी, सीता और लोपामुद्रा का निर्देश करके उनका अनुसरण करने वाले द्रौपदी की प्रशंसा की थी।[23] यह दुष्कर पातिव्रत्य धर्म केवल आदर्शवाद के रूप में ही नहीं था। अपितु महाभारत में ऐसे नारियाँ चित्रित भी हैं। वृद्ध और अन्ध पति की श्रद्धापूर्वक सेवा करने वाली सुकन्या,[24] वृद्ध, क्रोधी, दरिद्र पति को श्वेतकाकीय उपायों से प्रसन्न रखने का प्रयत्न करने वाली जरत्कारू,[25] अपनी आँखों पर पट्टी बांधकर स्वयं अन्धत्व स्वीकार करके पति की सेवा सुश्रुषा में तत्पर गान्धारी[26] जैसी अनेक साध्वियों ने पातिव्रत्य को सार्थक बनाया है। पर्वत ऋषि से शाप के फलस्वरूप विवाह के समय से ही वानर के रूप में प्रकट होने वाले अपने नारद के प्रति दृढ़ पातिव्रत्यभाव रखनेवाली सृंजयकन्या सुकुमारी आदर्श पतिव्रता का एक स्पष्ट उदाहरण है।[27] यह आदर्शवाद केवल विशेष अवसरों पर ही व्यवहार में आता था ऐसा नहीं। दैनंदिन जीवन में पतिव्रता नारियों का पति के साथ व्यवहार का परिचय द्रोपदी द्वारा वर्णित अपने विनक्रम में, तथा उमा और शाण्डिली के स्त्रीधर्म के उपदेश में मिलता है। अन्य गृहकृत्यों के अतिरिक्त उनके पतिशुश्रूषा का भी निरूपण इन वर्णनों में उपलब्ध है। द्रोपदी ने सत्यभामा को पांडवों पर अपने प्रभाव का रहस्य उनके साथ अपना बर्ताव ही बताया था। वह काम, क्रोध, अहंकार और अभिमान त्यागकर, अपनी इच्छाओं का दमन करके पूरी सावधानी के साथ पतियों की सेवा में लगी रहती थी। उनसे पूर्व उठना, उनके स्नान के पश्चात् स्वयं स्नान करना, उनको भोजन दिये बिन स्वयं नहीं करना और जब वे सोते नहीं थे तब तक स्वयं शयन न करना, न अधिक हंसना या क्रोध करना, क्रोध का अवसर ही नहीं आने देना, सदा सत्य बोलना, अपना कर्तव्य तत्परतापूर्वक करना, इस सदाचार पालन से वह पतियों को प्रसन्न रखती थी। नित्य पतियों के प्रिय भारण और उनके अनुकूल बर्ताव करती हुई वह उनके हितसाधन में दक्ष रहती थी। पतियों के बिना अकेली रहना उसे पसंद नहीं था। वह पति के सान्निध्य में वस्त्राभूषणों से विभूषित होकर पतियों के साथ हास–परिहास से उन्हें प्रसन्न रखती थी। किन्तु उनके इच्छा के विरूद्ध कोई आभूषण नहीं पहनती थी। वे जिस वस्तु को खाते–पीते नहीं थे उनका सेवन स्वयं भी त्याग देती थी, कभी किसी की निन्दा नहीं करती थी और दिन–रात कष्ट उठाकर पाण्डवों की अराधना में लगी रहती थी। पाण्डवों को मृदुस्वभाव वाले सज्जन समझती हुई भी वह उनसे डरती रहती थी। वे जब कभी बाहर से पधारते थे, द्रौपदी खड़ी होकर उनका अभिनन्दन करती थी और आसन जल आदि अर्पण करके उनके स्वागत सत्कार में लगी रहती थी। श्रद्धा से युक्त होकर

की गई पतिभक्ति और सेवा ही द्रोपदी का पति–वशीकरण का उपाय था। सत्यभामा को उसने मार्ग बताया था – 'स्त्रियों के लिए समस्त लोकों के अन्दर पति के समान कोई दैवत नहीं है। पति के प्रमाद से नारी की सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो सकती हैं, और यदि पति ही कुपित हो जाय तो वह नारी की सारी आकांक्षाओं को नष्ट कर सकता है। सेवा द्वारा प्रसन्न किये हुए पति से स्त्री को संतान, भोग, वस्त्र, प्रसाधन, समस्त सुख एवं स्वर्गलोक तथा महान् यश की प्राप्ति होती है। इस जगत में सुख–से–सुख की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती है, किन्तु दुःख उठाकर ही पतिव्रता सुख पाती है। तुम सौहार्द, प्रेम और सुन्दर वेशभूषा से तथा सत्कार में सुन्दर आसन, पुष्पमाला, सुगंधित द्रव्य अर्पण करके, उदारता एवं व्यवहार–कुशलता से कृष्ण की अराधना करो। महल के द्वार पर आये हुए स्वामी का स्वर सुनते ही आंगन में जाकर उनकी प्रतीक्षा में खड़ी रहो, उनके भीतर आने पर आसन पाद्य आदि से उनका पूजन करो। यदि वे किसी कार्य के लिए दासी को भेजते हैं, तो स्वयं उठकर वह कार्य करो, जिससे इस सेवाभाव से वे समझेंगे कि 'सत्यभामा हृदय से मेरी सेवा करती है।' तुमसे कही हुई बात छिपाने योग्य न हो तो भी उसे गुप्त ही रखो, अन्यथा दूसरे के मुख से यह बात सुनकर तुम्हारे पति तुम्हारी ओर से विरक्त हो जायेंगे। पति के मित्रों को खिलाओ–पिलाओ, तथा उनसे शत्रुत्व, अहित और छल करने वालों से दूर रहो। बहुमूल्य हार, अंगराग, आभूषण धारण कर सुगन्धित वस्तुओं से सुवासित होकर पति की अराधना करो। इसी से यश और सौभाग्य की वृद्धि तथा मनोरथ की सिद्धि होगी।'[28] शाण्डिली,[29] पतिव्रता ब्राह्मणी,[30] एक चक्रा के निवासी ब्राह्मण की पत्नी,[31] कपोती,[32] नागपत्नी,[33] आदि की भी पातिव्रत्य संबंधी ऐसी ही धारणा एवं व्यवहार थे। उमा ने स्त्री धर्म के उपदेश में इसी पातिव्रत्य के विषय में कहा है कि पति के पूर्व उठकर सारे प्रातः कर्म सम्पन्न करने के पश्चात् पति का भाव जानकर उसे जगा देना चाहिए।[34] पौर्वाह्निक कार्य स्वयं करके पति से पूछकर उसकी रूचि के अनुसार स्वादिष्ट भोजन बनावे। बाहर से आये हुए पति को पाद्य शासनशयनादि देकर मधुर शब्दों से उसका श्रमपरिहार करना चाहिए। गृहकृत्य, धर्मार्थकार्य में तत्परता, पति के विहारकाल में अलंकृत होकर कन्दहास और प्रियवाक्यों से उसे संतोष प्रदान करना, पति दुष्ट और स्वस्थ हो ऐसा आचरण, उसकी सहायता के लिए प्रिय और हितकारी भाषण, अप्रियवचन ईर्षा एवं कलह का वर्णन, आज्ञा देना छोड़कर पति का अनुसरण करना आदि भार्या के पातिव्रत्य के कर्तव्य बताये गए हैं। इस प्रकार दाम्पत्य जीवन में नारी का महती योगदान है।

I UnHk¡ %

1. महाभारत, शांतिपर्व, 347.10
2. वही, आरण्यक, 196.5–6
3. वही, आरण्यक, 223.3
4. वही, शांति, 142.12
5. महा0 आदि, 146.4,5
6. महा0 अनुशासन 250, 24–25
7. महा0 शांति, 144, 6–7
8. वही, आरण्यक, 197, 29, 12.
9. महा0 आरण्यक, 297.29.12
10. महा0 आदि, 113.19–20
11. महा0 आरण्यक, 281.52
12. महा0 उद्योग, 36.36
13. महा0 आरण्यक, 65.18
14. महा0 आश्मेधिक, 108.20
15. महा0 आरण्यक, 196.20
16. महा0 अनुशासन, 250.26
17. महा. आरण्यक, 181.28
18. महा0 उद्योग, 88.43
19. महा0 आश्वमेधिक, 57.10
20. महा0 आरण्यक, 60.10,11, 21–24
21. महा0 आश्वमेधिक, 57.10
22. महा0 विराट, 15.32
23. महा0 विराट, 20.7–13
24. महा0 आरण्यक, 122.26, 27
25. महा0 आदि, 43.10
26. महा0 आदि, 103.12.17
27. महा0 शांति, 30.30,31
28. महा0 आरण्यक अध्याय–22–23
29. महा0 अनुशासन अध्याय–185
30. महा0 आरण्यक, 197.11–15
31. महा0 आदि 145.31–33 / 146.1–35
32. महा0 शांति, 144.2–9 / 143.3–12
33. महा0 शांति, 347.4–12
34. महा0 अनुशासन अध्याय–250

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 193-195

dkfynkl ok³e; e¡ i¡e dk vkè;kfRed Lo:i

MkŒ vk'kk d¡ekjh*

आचार्य विश्वनाथ में प्रेम की अभिव्यक्ति में स्तम्भ कम्प, श्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वैवर्ण्य, अश्रु पुलक और प्रलय जैसे सात्विक भाव स्वाभाविक रूप से दिखाई देते हैं।[1] प्रेम ही भक्ति का कारण है। प्रेम के अभाव में भक्ति सम्भव नहीं। तुलसीदास जी कहते हैं–

t ku¡ fcu¡ u gkb ijrhfr] fcu¡ ijrhfr gkb ufg ihfrA
ihfr fcuk ufg Hkxfr f<Bkb] ftfe [kxifr ty d¡ fpdukbAA[2]

परमात्मा प्रेम के ही वशीभूत है। प्रेम के द्वारा उसे प्राप्त किया जा सकता है।[3] भगवान् कृष्ण भी गीता में कहते हैं कि मैं सभी भूतों में सम हूँ, जो प्रेम से पूर्ण हो कर मुझ प्रेमांस्पद को पुकारता है वह मुझमें और मैं उसमें समाहित जो जाता हूँ।[4] प्रेम तत्त्व ही जीवन का रमणीय रहस्य और काव्य सर्जना का अलौकिक आधार है। काव्य में प्रेम का स्थूल नहीं बल्कि सूक्ष्म स्वरूप प्रकट होता है। कालिदास के काव्यों में प्रेम के रसमय स्वरूप के अन्तर्गत आध्यात्म का गूढात्मक स्वरूप देखने को मिलता है। उन्होंने काव्य रचना में मर्यादित प्रेम के प्रति निष्ठा व्यक्त की है और अमर्यादित प्रेम को प्रेम नहीं वासना माना है। मेघदूत में कवि ने प्रेम और सौन्दर्य एवं भौतिक वासना आधारित प्रेम नश्वर एवं अस्थिर होता है परन्तु परस्पर समर्पण, त्याग एवं कर्त्तव्य की भावना ही प्रेम को अनश्वर त्याग एवं कर्त्तव्य की भावना ही प्रेम को अनश्वर रूप देकर दिव्य बनाती है।

प्रेम का पावन–प्राण स्वरूप अध्यात्म ही संस्कृत वाङ्मय की अमूल्य निधि है। अध्यात्म वह धर्म है जिससे स्पर्श से आत्मा ऊँचा उठ जाता है जैसे–पारसमणि के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है उसी प्रकार मर्यादित एवं पवित्र आचरण से युक्त पुरुष सभी लोगों द्वारा वन्दनीय एवं पूजनीय हो जाता है। यही भारत एवं भारतीयता की पवित्र पहचान है। भारत की मूल चेतना आध्यात्मिकता है जिसे भगवान कृष्ण ने ज्ञान तथा अज्ञान दो रूपों में वर्णित किया है। वे कहते हैं–जिस ज्ञान के द्वारा आत्मवस्तु या अनात्म वस्तु जानी जाए उस ज्ञान का नाम 'अध्यात्म' ज्ञान है।[5] जीवन दर्शन एवं नैतिक प्रेरणा का सनातन स्रोत है। जीवन में सच्ची विजय इसी अध्यात्म के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। अध्यात्मिक ज्योति ही जीवन की सर्वोत्तम त्योति है और इसे जलाने के लिए या जलाये रखने के लिए संस्कृति वाङ्मय की शरण लेना परमावश्यक है। यह एक ऐसा विषय है जो अतिसूक्ष्म एवं आनन्दमय है तथा साहित्य मूलतः जीवन के उसी आनन्द की खोज है। वेद, पुराण, उपनिषद आदि गौरवशाली ग्रन्थों में इसी प्रेम–तत्त्व का विश्लेषण प्राप्त होता है लेकिन इसके मार्मिक एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप का जितना विवेचन लौकिक साहित्य में हुआ है अन्यत्र दुर्लभ है।

महाकवि कालिदास ने अपने सभी काव्यों के पूर्व में प्रेम के अति सामान्य तथा बाद में विशिष्ट स्वरूप का वर्णन किया है। प्रेम के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए उन्होंने प्रेम या काम के द्वारा धर्म के आदर्श स्वरूप को समाप्त करने की जरा सी भी अनुमति नहीं दी। इसलिए शाकुन्तलम् एवं दुष्यन्त की एक दूसरे के विरह में तड़पने को बाध्य किया है। कवि ने नाटक के माध्यम से यह सन्देश भी जन–जन तक पहुँचाय कि प्रेम अलौकिक है। गुप्त प्रेम सोच–समझ कर ही करना चाहिए क्योंकि बिना जाने–समझे व्यक्ति के साथ की गयी मित्रता (प्रेम) शत्रुता का रूप धारण कर लेती है। अतः सोच–समझकर तथा परीक्षा करके ही मैत्री–भाव को आगे बढ़ाना उचित है।[6] दुष्यन्त और शकुन्तला के बीच हुआ विषयात्मक उद्वेग

*संस्कृत विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यविद्याल, दरभंगा

नाटक के अन्त में आध्यात्मिक शान्ति के मधुमय रस से डूबा हुआ दिखाई देता है। दुष्यन्त इन्द्र की कृपा से पुत्र–पत्नी सहित दरबार लौटकर आजीवन आनन्दपूर्वक रहने का जो यथाक्रम कवि ने प्रस्तुत किया उसमें यह दर्शाने का सफल प्रयास किया कि सही अर्थों मे त्याग के साथ, ऐश्वर्य और तपस्या के साथ–साथ प्रेम का मिलन होने पर स्त्री और पुरुष का प्रेम धन्य हो जाता है। यहाँ वासनात्मक काम को विशुद्ध प्रेम में परिणित कर मंजुल चित्रांकन किया गया है। यहाँ तपस्या तथा साधना की आग में तथा दुर्वासा के शाप की ज्वाला में काम की कालिमा नष्ट हो जाती है और प्रेम कुन्दन बनकर निखर जाता है। वास्तव में यही स्थिति शाकुन्तलम् कथावस्तु की अध्यात्मिक पृष्ठभूमि है।

महाकवि ने "कुमारसम्भवम्" नामक महाकाव्य में प्रेम के आदर्श स्वरूप का वर्णन किया है। यहाँ कवि शिव–पार्वती की दाम्पत्य प्रेम की अविभाज्यता और अनुकरणीयता की कल्पनापूर्ण तुलना भगवती भागीरथी और समुद्र के प्रेम से की है। यदि भागीरथी के लिए समुद्र सर्वस्व तो समुद्र के लिए भागीरथी यही स्थिति शिव और पार्वती के रसात्मक अनुराग की थी।[7] भगवान् शिव और माता पार्वती का प्रेम विशुद्ध एवं अध्यात्मिक है। गर्विला कामदेव जितेन्द्रिय शिव को भी काम–प्रवाह में उसी प्रकार बला ले जाना चाहता है जिस प्रकार बरसाती नदी का प्रवाह उसक दोनों किनारों पर स्थित सामग्री को बहाकर लिये चला जाता है लेकिन वह (कामदेव) शिव की क्रोधग्नि में जलकर भस्म हो जाता है। माता पार्वती का सौन्दर्य भी समाधिस्थ शिव की तपस्या को भंग नहीं कर पाता तो पार्वती मन ही मन अपने शाीरिक–सौन्दर्य की चिन्ता न करती हुई उसे तप की अग्नि में तपाकर और भी अधिक उज्जवल तथा अमोघ बनाने में लग गई क्योंकि वैसा अलौकिक पति तथा इस प्रकार का दिव्य प्रेम तपस्या के बिना मिल पाना असम्भव है।[8] इस प्रकार कवि ने प्रेम के जिस उदात्त एवं आदर्श स्वरूप का वर्णन अपने काव्य में किया है उसमें भगवान शिव को आदर्श प्रेमी या नायक के रूप में उकेरा है। इससे स्पष्ट है कि यह प्रेम कायिक नहीं आत्मिक है अर्थात् प्रेम का सम्बन्ध शारीरिक सौन्दर्य से नहीं बल्कि आत्मा से है। यदि उनका प्रेम मांसल होता तो भगवान शिव पार्वती के सौन्दर्य को अपना लेते लेकिन ऐसा नहीं होता है। काया के जल जाने पर भी वे माता पार्वती को अपना लेते हैं।

कालिदास ने 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक में लिखा है कि जैसे पहाड़ की ऊँची–नीची चट्टानों के बीच में आ जाने से नदी का वेग और भी बढ़ जाता है वैसे ही मिलन के मार्ग में आई बाधायें प्रेम रूपी नदी के प्रवाह को अधिक विशाल बना देती है।[9]

रघुवंश महाकाव्य में भी कवि ने अन्य वर्णनों के साथ ही प्रेम के विशिष्ट स्वरूप का वर्णन किया है। इसमें जहाँ एक ओर श्रृंगार का सुखद रसास्वाद है वहीं दूसरी ओर विप्रलम्भ श्रृङ्गार की मार्मिक अनुभूति है। जहाँ एक ओर इन्दुमती के प्रगाढ़ प्रेम का चिन्तन है वहीं दूसरी ओर सीता–परित्याग का मार्मिक दृश्य भी दिखाई देता है। ऐसे तो समस्त राजा प्रेम के बन्धन में बंधे हुए नजर आते हैं परन्तु प्रेम की पराकाष्ठा राजा अज के रूप में अवलोकन करने को मिलती है। चिर निद्रा में सोई इन्दुमती की मूर्च्छा जब नहीं टूटती तो मृत पत्नी के शव को गोद में लेकर विलाप करते हुए कहते हैं– "कि जब फूल भी शरीर छूकर प्राण ले सकते हैं तो देव जिसे चाहे उसे मार सकता है।"[10] विरह से व्यथित महाराज आज कहते हैं–"कि हे प्रिय चन्द्रमा को रात्रि मिल जाती है चकवे को चकवी प्रातः काल मिल जाती है लेकिन तुम तो सदा के लिए मुझे विरह की आग में डाल कर जा रही हो। तुम ही बताओ उस विकट विधाता ने तुमको मुझसे छीनकर मेरा क्या नहीं छीन लिया। तुम्हारे अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु से हमें प्रेम नहीं है तो तुम्हारे बिना मैं कैसे जीवित रह सकता हूँ।" यही प्रेम की पराकाष्ठा व्यक्ति को अपना सर्वस्व अपने ईष्ट के चरणों में समर्पित कर देने के लिए आतुर कर देती है।

इसी प्रकार रघुवंश में राम और सीता के भव्य प्रेम के अद्वितीय स्वरूप के दर्शन होते हैं। राम द्वारा निर्वासित सीता जब अपने आराध्य देव श्रीराम के प्रति लक्ष्मण द्वारा सन्देश भेजती है वह सन्देश बड़ा ही कारूणिक, हृदयस्पर्शी एवं वेदना से विगलित कर देने वाला होता है। वह कहती है कि– "हे! राजन् मेरे गर्भ में आपका प्यार नहीं पलता तो आपके अभाव में मैं प्राण त्याग देती जब पुत्र हो जायेगा तब मैं भगवान सूर्य में दृष्टि बांधकर ऐसी तपस्या करूंगी जिससे अगले जन्म में आप ही हमारे पति हों और आपसे मुझे अलग न होना पड़े।[11]

प्रणय जिसे अध्यात्मिक परिणय भी कह सकते हैं प्रकृति और पुरुष का सौन्दर्य एक दूसरे के हृदय में प्रणय का संचार करता है जिससे जड़ प्रकृति और चेतन पुरुष में क्षोभ उत्पन्न होता है और वे परस्पर मिलने के लिए तथा एकाकार होने के लिए विह्वल हो उठते हैं। महाकवि कालिदास भी इसी प्रेम को अध्यात्म की मर्यादा में बांधने के पक्षधर हैं लेकिन जब–जब कामदेव अध्यात्म की अवहेलना कर स्त्री–पुरुष को मिलाना चाहता है वह स्वयं नष्ट हो जाता है परन्तु जहाँ अध्यात्म के द्वारा नर और नारी एकत्रित होते हैं वहँ कामदेव के साथ किसी का विरोध नहीं होता है। इसका सुन्दर दर्शन मेघदूत में निर्विन्ध नदी के वर्णन द्वारा किया जा सकता है।[12] यहाँ कवि काव्य के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास करता है कि काम का आश्रय लेकर भी विराट प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करके अन्त में परम शिवात्म ज्योति का दर्शन सम्भव है। जो मेघ निर्विन्ध्यादि नायिकाओं के साथ अनेक विलास करता है वहीं अन्त में मणितट पर शिव–पार्वती के आरोहण में सहायक होता है।[13] वह गर्जन आदि के द्वारा मधुर संगीत कर पुण्य प्राप्त करता है साथ ही शिव की परिक्रमा के द्वारा शरीर त्याग के बाद शिव के गणों के शाश्वत पद को प्राप्त करता है।[14] इस प्रकार कवि ने यहाँ मेघ के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम को उकेरा है।

जहाँ एक ओर मेघदूत व्यष्टि प्रेम का काव्य है वहीं कुमार सम्भवम् समष्टि प्रेम का काव्य है। जिसमें कवि ने पुरुष और स्त्री के पारस्परिक आकर्षण का मोहक सामंजस्यपूर्ण एवं माधुर्यमय चित्रण किया है। प्रेमी प्रेमिका के भोग विलास चिंतन में संकोच न करने वाले महाकवि द्वारा वर्णित काम की रमणीय हिलोरें शान्त होती सी दिखाई पड़ती हैं। तत्पश्चात् प्रेम सरोवर में वात्सल्य कमल खिल उठता है। शकुन्तला, पार्वती, उर्वशी सीता, सुदक्षिणा आदि रानियां मातृमहिमा से मण्डित होकर वन्दनीया बन जाती है। रूप की सुरा, शील की सुधा में परिणित हो जाती है। साधारण पाठक की दृष्टि में श्रृंगारिक प्रतीत होने वाला मेघदूत सहृदयों को भोग और योग का सही सन्देश देता है।

सन्दर्भ :

1. स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्च स्वभङ्गोऽथ वेपथुः। वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः।।
   स्तम्भश्चेष्टा प्रतीघातो भयहर्षाभयादिभिः। वपुर्जलोद्गमः स्वेदो रति धर्म श्रमादिभिः।।
   – साहित्यदर्पण– आचार्यविश्वनाथ, श्लोक–3/135–136.
2. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, पृ० सं०–912.
3. नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदयेन न च। मद् भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तष्ठामि नारद।।
4. सोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
   ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।। – श्रीमद्भगवद्गीता–9/29.
5. अध्यात्मज्ञान नित्यत्वंत त्व ज्ञानार्थ दर्शनम्।
   एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। – श्रीमद्भगवद्गीता–13/11.
6. अतः परीक्ष्य कर्त्तव्यं विशेषात् संगतं रहः।
   अज्ञातहृदयपेयष्वेवं वैरी भवति सौहृदयम्।।
   –अभिज्ञानशाकुंतलम, महाकवि कालिदास–5/27.
7. तं यथात्मसदृशं वरंवधूरन्वरज्यत वरस्तथैव ताम्।
   सागरादनपगा हि जाह्नवी, सोऽपि तन्मुखस्सैकवृत्तिमाक।।
   – कुमारसंभव, महाकवि कालिदास, श्लोक सं०–8/16.
8. कुमारसंभव, महाकवि कालिदास, श्लोक सं०–5/12.
9. विक्रमोर्वशीयम्–3/8.
10. रघुवंशम्, शलोक सं०–8/44.
11. तत्रैव, श्लोक सं०–14/66.
12. मेघदूतम् महाकवि कालिदास पूर्वमेघ, श्लोक सं०–29.
13. मेघदूतम् महाकवि कालिदास पूर्वमेघ, श्लोक सं०–63.
14. तत्रैव, श्लोक सं०–37 एवं 58.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 196-198

dk0; lkUn;Zfoe'k%

dedee dekjh*

ykdkÙkj âankgykn ykdknckd/k p l³xrkA
iKkor% do% l}kd dk0;feR;fHk/kh;rA
jE;oLrLo:ikn ;ÙkÙoekLok|efLr rrA
rf}nkgykuu ;Dr lkUn;Zefhk/kh;rAA[1]

कवेर्भावः कर्म वा काव्यम्, ''शब्दार्थयोगुर्णभावेन रसांगभूतव्यापारप्रवणतया विलक्षणं लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म इति मम्मटः[2] वक्राभिधेयशब्दो– क्तिरिष्टावाचामलङ्कृतिरिति भामहः[3], रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यमिति पण्डितराजः[4], भामदिशा लोकातिक्रान्तगोचरं वचः वक्रोक्तिः[5], रमणीयार्थता च पण्डितराजदिशा ''लोकोत्तराह्लादजनकज्ञान गोचरता। काव्य सरस्वती (वाक्/भाषा) आनन्दवर्धनदिशा अलोकसामान्यमभिव्यक्ति–

ljLorh Lokn;rnFkZoLr fu";Unekuk egrk dohukeA
vykdlkekU;efHk0;ufDr ifjLQjUr ifrHkkfo'k"keAA[6]

कुन्तकेन– लोकोत्तर चमत्कारकारिवैचिष्यसिद्धये, काव्यायमलंकारः कोऽप्यपूर्वो विधीयते तेन च लक्षणं क्रियते–

'kCnkFkkS lfgrkS oØdfo0;kikj'kkfyfuA
cU/k0;ofLFkrkS dk0;s rf}nkgykdkfjf.kAA[7]

एवं सर्वे प्राक्तना आचार्या लोकोत्तराह्लादं काव्यस्य प्रमुखं तत्त्वं मन्वते। नव्या आचार्या अपि लोकोत्तरत्वं काव्यस्य स्वीकुर्वते–

vkuUndk'kL;kYykl ykdkRrjfoHkkoukA
vyd'rkFkkSlfrfRr% dfork loZe;xyAA[8]

प्राक्तना नव्याश्च काव्यशास्त्रिणः काव्यस्यानन्दस्तत्त्वमन्तः सौन्दर्य वा लोकोत्तऋरत्वमेव स्वीकुर्वते। सुन्दरशब्दस्य सौन्दर्यशब्दस्य वा पर्यायवाचिनोऽनेके– शब्दाः संस्कृतवाङ्मये राराज्यन्ते सुन्दरं रूचिरं चारू सुषमं साधु शोभनम्, कान्तं मनोहरं रूच्यं मनोज्ञं मंजु मंजुलम् इत्यमरः। सुन्दर+ष्यञ् सौन्दर्यम्। मनोहारि सौम्यं भद्रकं रमणीय रामणीयकमिति टीकासु। संस्कृतवाङ्मये विशेषतः संस्कृतकाव्यशास्त्रं काव्यसौन्दर्यशास्त्रमेव। सौन्दर्यतत्त्वमस्य निरूपणं वैदिककालादद्यावधिदरीदृश्यते। प्राक्तनः प्रशस्तश्चालंकारशास्त्री वामनः–

lkUn;Zeyadkj bfr ofDrA[9]

ततः प्राक् नाट्यशास्त्रे भरतमुनिना विशेषतः षोडशेऽध्यायेऽलंकाराणां निरूपणं व्यधायि। संस्कृत साहित्यस्य अद्वितीय विद्वान् महाकविकालिदासोऽपि कथ्यते–

lokiekn0;leiPp;u ;Fkkin'k fofufof'kr uA
lk fufeZrkfo'ol tk i;Ruknd LFk lkUn;Zn{k;oAA[10]

एवमुक्वा सौन्दर्यनिर्मितिजक्रियां प्रतिपादयति। माघोऽपि रमणीयतायाः स्वरूपं व्यनक्ति–

{k.k&{k.k ;Uuorke ifr rno:i je.kh;rk;kA[11]

सर्वेऽपि प्रसिद्धः काव्यशास्त्रिणो नामान्तरेण सौन्दर्यस्य निरूपणमवश्यं कुर्वन्ति। तद्यथा भामहः–

*ग्राम + पो0– नवादा, भाया– बहेड़ा, जिला– दरभंगा

lfUuo'kfo'k"kkRrf}:Drefi 'kkHkr:A
uhyi iyk'kekc)eujkyL=k tkfeoAA
fdifpnkJ;lkUn;k)Rr 'kkHkkelk/ofiA
dkUrkfoykpuU;Lr eyhelfHkok tueAA[12]

आनन्दवर्धनः प्रतीयमानार्थस्फुटीकरणे समग्रतायां लावण्यानुभूतेरेवमुपमानं प्रददाति–

irh;eku ipujU;no oLRofLrok.kh"k egkdohuke A
;Ùkr ifl)o;okfrjDr foHkkfr yko.;feok³xukl AA[13]

वस्तुतोऽलंकारशास्त्रमिति कथनेनाद्यापि काव्यशास्त्रमिति कथनेनाद्यापि काव्यशास्त्रस्य साहित्यशास्त्रस्य वा बोधो भवति। अलंकारशास्त्रपरिधौ रसध्वनिगुणरीतिक्रोत्यौचित्यादि काव्य तत्त्वानि समाहितानि भवन्ति। रसशास्त्रं ध्वनिशास्त्रमित्यादिनाम्ना काव्यशास्त्रं केनापि नोक्तम्। अत्रालंकारशब्दो व्यापकेऽर्थे प्रयुक्तः। वामनादिमतेन चेत् ^^lkUn;eyadkj%**[14] तदा सौन्दर्यशास्त्रमपि काव्यशास्त्रस्यैव पर्यायतामङ्गति। एतत्सत्यं यदलंकारशास्त्रे केवलं वाग्गतं सौन्दर्य विशेषरूपेण प्रतिपादितम्। काव्याधिकरणरूपेण वाक्, शब्दः, अर्थः, शब्दार्थौ, वाक्यम्, पदावली, कीर्तनम्, आख्यानम् प्रभृतिशब्दाः प्रयुक्तः।

काव्यात्मा कः? ध्वनिरित्यानन्दवर्धनः, रीतिरिति वामनः रस इति राजशेखरादयः, जीवितमिति शब्दतः– वक्रोतिरिति कुन्तकः, औचित्यमिति क्षेमेन्द्रः, अलंकार इति सनातनो रेवाप्रसादो द्विवेदी त्रिपाठी राधावल्लभश्च। यथा दृश्यमाने वपुषि जीवात्मा महत्त्वावहस्तथैव काव्ये चैतेषां महत्त्वम्। यथा वाचा भेदे शब्दार्थवाक्यपदावलीत्यादीनां समाराहो भवति तथैव लोकोत्तराह्लादे काव्यशास्त्रिभिः प्रोक्तानामात्मातत्वानाममन्तर्भावो भवति। यथा–

jlk·yadkjkjhfr p/ofuoiØkfDrjkfpr hA
;kfUr ykdkÙkjkgykne.kko lfjrk ;FkkAA[15]

वस्तुतः सर्वेषु काव्येष्वेतेषां मिश्ररूपमेव निभाल्यते। ''भिन्नरूचिर्हि लोक'' इति न्यायात्स्वानुभूतकाव्यतत्त्वस्य सर्वप्रामुख्यं काव्यशास्त्रवेतृभिः निर्णीतम्। तथापि प्रायश आचार्याः अन्येषामाचार्याणां निरूपितं काव्यतत्त्वमपि स्वग्रन्थे निरूप्यन्ति। यथा मम्मटो रसं ध्वनिञ्चाद्रियते किन्तु गुणालंकाराणामपि निरूपणं करोति। अलंकारस्य महत्त्वं स्वीकुर्वन्नपि भामहो ''रसैश्च सकलैः पृथक् (भामहकाव्यलंकारे 1/21) इत्युक्त्वा महाकाव्ये रसस्थितिं निरूप्यति। एवमेव दण्डी ''मधुरं रसवद्वायि वस्तुन्यपि रसस्थितिरित्येवं वक्ति। विश्वनाथपण्डितराजावप्यलङ्कार–निरूपणं दत्तावधानौ विलोक्येते यौ रसवादिनौ विद्वद्भिः कथितौ। एतेन सिद्धयति यल्लोकोत्तराह्लादभेदान्येव रसध्वन्यादिकाव्यतत्त्वानि सन्ति।

यद्यपि सर्वाण्येव काव्यतत्त्वानि लोकोत्तराह्लादमुद्दश्यैव प्रवर्तन्तेऽतः समेषां समानं महत्त्वमस्ति। अग्निपुराणकारेण '' इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली'' काव्याधिकरणमुक्तमासीत्। किन्तु दण्डिना ततः प्राक् ''शरीरं तावत्'' संयोजितम्– शरीरं तावदिष्टार्थव्यच्छिना पदावली। एतेन काव्यस्य मानवीकरणं सञ्जातम्। वामनेन रीतिरात्मा काव्यस्य, आनन्दवर्धनेन ^^dk0;kL;kRek/ofu%**[16] राजशेखरेण च ''रसदिश्चात्मा'' (काव्यमीमांसा तृतीय अध्याये) इत्यादिरूपेण काव्यतत्त्वं प्रतिष्ठापितम्।

कालिदासस्य सुन्दरसौन्दर्यशब्दावधिकं रोचेते, तेन– मनोज्ञ– मनोहर– मधुर– रमणीय– चारू– ललित– सुभग– रमणीयता– माधुर्य– चारूता– लालित्य– सौभाग्य– शब्दाः प्रायशः प्रयुक्ताः। वस्तुतः स निसर्गकविः। अनुमतिनिरूपण परेऽस्मिन् पद्ये रम्यमधुरशब्दौ कालिदासेन प्रयुक्तौ विद्यते।

लोकव्यवहारभाषातः शास्त्रभाषातो वा काव्यवाग् भिन्ना भवति, सा काव्ये विन्यासविशेषभव्या भवति। यथा–

;kuo 'kCnkuo o;eky ikek ;kuo 'kCnkuo o;efYy[kke%A
rjjo foU;klfo'k"kHk0;% lekg;Ur do;k txfUrA[17]

अतः काव्येषु यत्र यस्मात् काव्यतत्त्वाल्लोकोत्तराह्लादानुभूतिर्भवति तदेव काव्यसौन्दर्यमिति।

lUnHk%

1. नव्यकाव्यतत्त्वमीमासायाम्
2. काव्यप्रकाशे– 1/2
3. काव्यालंकारे– 1/36
4. रसगंगाधरे प्र0 आ0 सू0 1
5. काव्यालंकारे 2 / 81–85
6. ध्वन्यालोके– 1–6
7. वक्रोक्तिजीविते – 1/7
8. अभिराजशोभूषण– 1/34
9. काव्यालंकारसूत्रे– 1•2•2
10. कुमारसम्भवे 1/49
11. शिशुपालवधे– 4/17
12. काव्यालंकारे– 1–54, 55
13. ध्वन्यालोके– 1/4
14. काव्यालंकार सूत्रे 1•1•2
15. नव्यकाव्यतत्त्वमीमांसायाम्
16. ध्वन्यालोके 1/1
17. शिवलीलार्णवे

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 199-201

jl lEcUèkh fopkj

MkO iou dqekj jkmr*

jl 'kCn dk vFk% चुरादि गण के आस्वादनार्थक रस धातु से धञ् प्रत्यय लगाकर रस शब्द बना है। 'रस्यते आस्वाद्यते' यह इसकी विरक्ति है अर्थात् जिसका आस्वादन की क्रिया इस दृष्टि से स्थूल जगत के समस्त भोग्य विषयों को पाँच श्रेणियों में रखा गया है– उनमें एक रस है। अमरकोष में कहा गया है–

Þ: i: 'kCnk: xUèkjLi'kk'p fo"k; vHkh xkpj bfUn:;kFkk'pAß[1]

मेदिनीकोश में रस के निम्नलिखित अर्थ बताएँ गए हैं– गन्ध जल शृंगार, विष, वीर्य, तिक्त आदि जिह्वा से अस्वाद रस, द्रव तथा राग में। हैम वे मधुर को रस का एक पर्याय माना है।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध– ये पाँच विषय आकाश, वायु, जल तथा पृथ्वी– इन पाँच महाभूतों से सम्बद्ध है। रस का सम्बन्ध जल से है अतः जल के अर्थ में रस का उपचरित प्रयोग किया गया– ऐसा प्रतीत होता है। ताण्डव ब्राह्मण में औषधियों के सार के अर्थ में 'रस' व्यवहृत है।

अर्थशास्त्र में 'रस' शब्द का प्रयोग विष के अर्थ में हुआ है तथा मदन रस का मादक विष के अर्थ में। अर्थशास्त्र के परम्परा में ही मुद्रा राक्षस नाटक के लेखक ने विष के अर्थ में रस का प्रयोग किया है–

Þ;: eU=h"k: jl:"k: p if.kfgrkLrjo r: ?kkfrr%Aß

जबकि कालिदास ने वैदिक और औपनिषदिक वाङ्मय की परंपरा में 'रस' शब्द को 'जल' के अर्थ में भी किया गया है–

i:tkukeo HkkR;Fk: l rkH;k: cfyexgh rA
lgl:x|.keRl:"V:eknÙk: fg jl: jfo%AA
rFkk U;Lr{kjkèkkr jl:u ;=&

पर इन तीनों रचनाकारों ने निचोड़ सार के अर्थ में भी 'रस' शब्द का प्रयोग किया है। परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्तु पुरुषः रस। शब्द का काम या इच्छा के अर्थ में प्रयोग कालिदास ने किया है–

Þb"V: oLrU;: ifpjl% i:ejk'kh HkofUrAß[2]

रस का अर्थ आनन्द प्रेम या सुख भी इन कवियों ने लिखा है, वैशेषिक दर्शन में रस 24 गुणों में से एक माना गया है, तर्क भाषा के अनुसार रसना (जिह्वा) से ग्राह्य रस है। विश्वनाथ ने रस का निरूपण आयुर्वेवेद के आधार पर किया है।

jlLr: jlukxkák: eèkjkfnju:dèkkA
lgdkjh jlKk;k fuR;Rokfn p i:o'or:AA

मुक्तावली के अनुसार जल में रहने वाला रस नित्य है, शेष नित्य शाक्त तंत्रों में मधुराशि षड्रसों का छः ऋतुओं से अभेद माना गया है[3] तथा नियति–सहित शृंगारादि नवरसों का अष्णिमादि दश सिद्धियों से[4] तन्त्रराज में कहा गया है–

JhpØ: fl):% ikDrk jlk fu;fr l:;:DrkA
Åe:;% i//.;:ki: p ckã;k|k ekrjLe'rk%AA[5]
jlukFkk: jlLrL; n0;ek.k% f{kfrLrFkkA

*ग्राम + पो0– नवादा, भाया– बहेड़ा, जिला– दरभंगा

ऋग्वेद में तीन स्थलों पर नदी की एक धारा के अर्थ में रस शब्द व्यवहृत है।[6] तथापि काव्य या सूक्त के सारभूत तत्त्व के अर्थ्ा में ऋग्वेद के सोमसूक्त में रस प्रयुक्त है–

iouh;k vè;R;f"kfHk% lEHkr jlesA
rLe ljLorh ng {kh jfi% eèkkndeAA[7]

यहाँ 'रस' का सम्बन्ध सरस्वती से भी लोड़ा गया। उपनिषदों में रस की अवधारणा को पल्लवित कर जीवन के परमतत्व के अर्थ में निरूपित किया गया है– तथा 'आनन्द' से इसका अविभाज्य सम्बन्ध स्वीकार किया गया है–

Þjlks oS l%A rydèok vkuUnhHkofrA jlks oS vkuUn%A[8]

उपर्युक्त विवेचन से रस के विषय में दो अवधारणाएँ सामने आती है। एक एक में वह किसी भी पदार्थ का निचोड़ या सार है जिसमें आस्वाद्यता या आनन्द प्रदान करने की क्षमता है। इसी से जुड़कर दूसरी अवधारणा आती है, जो रस को आस्वाघ–रस या आनन्दरूप अपूर्व तत्त्व के रूप में देखती है। रसात्मक तत्त्व के ये दो पक्ष कहे जा सकते हैं और रस की यह द्विपक्षीय धारण नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र में भी संक्रांत हुई।

dk0; ;k ukV;; dk {k= e jl % रस शास्त्र के प्रवर्तक आचार्य भरत ने[9] आठ रसों का निरूपण करने वाले अपने पूर्ववर्ती आचार्य दुहिण का उल्लेख किया है। भावों से रसनिष्पत्ति की प्रक्रिया वासुकि नामक आचार्य ने समझाई थी इसका उल्लेख शात ने किया है–

ukukn0;k"kk% ikd0;ksa tu Hkk0;r ;FkkA
,r Hkkok Hkko;fUr jlkufHku;s lgA
,r Hkkok Hkko;fUr jlkufHku;% lgA
bfr okl fdukl;Drk HkkoH;k jll Hko%A

रसोत्पत्ति के विषय में वासुकि के साथ नारद भी स्मरण किया है–

mRifrLr jlkuk ;k ijk okl fdukfnrkA
ukjnL; er l"kk i dkjkUrjdfYirkAA

18 अधिकरणों वाली काव्यविद्या का प्रवर्तक आचार्य नन्दी को बताया गया है।[10]

रसनिष्पत्तिविषयक प्रसिद्ध सूत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः को मम्मट को आदि आचार्यों ने भरत बताया है।

दृश्यकाव्य के तीन भेदक में एक 'रस' भी है। रस का सामान्य अर्थ कहना चाहेंगे कि काव्य के पठन, श्रवण या दर्शन से जिस आनन्द का अनुभव हमें होता है, वही आनन्द 'रस' कहलाता है। इस रस की उत्पत्ति विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से होती है।

LFkk;h Hkko % 'भाव' ही 'रस' का बीज है।[11] स्थायी भाव रस सामग्री के अन्तर्गत आते हैं। स्थायी भाव ही सहृदय सामाजिकों में पहले विद्यमान रहता है। तथा संस्कार रूप होने से हर प्राणी के अन्दर स्थायी रूप से अवस्थित रहता है। स्थायी भाव जन्मजात है ये कभी नष्ट नहीं होते हैं, ये विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों में परिणत हो जाते हैं।

भरत स्थायीभावों की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि जैसे बड़े परिवार से युक्त होने पर भी केवल राजा का नाम रहता है उससे बड़े (कुटुम्बीजन) का भी नाम नहीं रहता। वैसे ही विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों से युक्त स्थायीभाव ही नरेन्द्र के समान रस दशा को प्राप्त करता है।

;Fkk ujk.kk mifr% f'k";k.kk p ;Fkk x#%A
,o fg lo Hkko u Hkko% LFkk;h egkfugAA

दशरूपक में धनंजय ने स्थायीभाव का लक्षण यह दिया है–

fo:)jfo:)ok Hkko fofPN|r u ;%A
vkReHkko u;R;U;ku l LFkk;h yo.kkdj%AA

स्थायीभाव उस समुद्र के समान है जिसके अन्तर्गत कोई भी खारा या मीठा पानी मिलकर तद्रूप हो जाता है। समुद्र समस्त वस्तुओं को आत्मसात् करके, आत्मरूप बना लेता है। वैसे स्थायी भाव भी बांकी सभी भावों को आत्मरूप बना लेता है। धनिक इसी बात को अपनी वृत्ति स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि वह रत्यादि भाव जो सजातीय–विजातीय अन्य भावों से तिरस्कृत नहीं हो पाता, स्थायी भाव कहलाता है।

दशरूपक आठ स्थायीभावों को मान्यता देते हुए कहते हैं कि रति, उत्साह जुगुप्सा, क्रोध, हास्य, विस्मय, भय तथा शोक आठ ही स्थायी भाव होते हैं। कुछ आचार्य शम जैसे नवें स्थायी भाव को भी मानते हैं, किन्तु इस भाव की पुष्टि नाट्य में नहीं होती। धनंजय के अनुसार यह भाव नाट्यानुकूल नहीं है। अतः नाट्यशास्त्र की दृष्टि से स्थायी भाव केवल आठ ही हैं।[12]

lUnHkZ %

1. अमरकोष–1.5.7.
2. मेघदूत.
3. भावनोपनिषत–6.
4. वही–11.
5. भावनोपनिषत् के भास्कराजकृतभाष्य में उद्धृत.
6. ऋग्वेद–1112,12 4536, 10756.
7. सोमसूक्त–6.67.32.
8. तैति॰ उपनिषद–2.6.1.
9. रसशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य भरत–6.16.
10. भा॰प्र॰अ–2, पृ॰सं॰–36–37.
11. कामी–1; पृ॰सं॰–1.
12. 4.35 द॰रूप॰–36.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 202-203

Hkkjro"kZ dh lkfgR; lEink d vu|kj ifruk;d dk y{k.k ,o Lo:i

MkO fo'othr*

संस्कृत साहित्य के मूलाधार ग्रन्थ रामायण और महाभारत यद्यपि उपजीव्य महाकाव्य हैं लेकिन नायक और नायिका के अभाव में महाकाव्य अपूर्ण है। कवि प्रतिभा के साथ नायक के गुणों की प्रतिभा काव्य को ख्याति दिलाती है। नायक के गुणों को निखारने में प्रतिनायक की महती भूमिका होती है, क्योंकि प्रतिनाय के अभाव में नायक की श्रेष्ठता को उचित रूप में स्थापित नहीं किया जा सकता है और प्रतिनायक के अभाव में महाकाव्य पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता अर्थात् उचित ध्येय की प्राप्ति नहीं कर सकता है। अतएव महाकाव्यकारों, नाटककारों ने अपने महाकाव्यों, नाटकों, काव्यशास्त्रों में प्रतिनायक को विशेष स्थान दिया गया है।

सामान्य शब्दों में प्रतिनायक का अर्थ है नायक के विपरीत कार्य करने वाला अर्थात् वह पात्र जो नायक का प्रतिद्वंद्वी हो या प्रतिद्वंद्विता रखता हो। सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने बताया कि– नाट्य प्रयोग काल में प्रयोक्ता पात्र जब रंगमंच पर 'स्व' का त्याग और पर प्रभाव को ग्रहण करता है तब प्राण की यात्रा एक देह से दूसरी देह में होती है।

वह दूसरी देह में प्रवेश करते हुए प्रथम देह के 'स्वभाव' को त्यागकर दूसरी देह के अनुरूप हो जाती हैं। इसलिए पात्र अपने रूप को उपयुक्त वर्ण, वेशभूषा आदि से आच्छादित कर मन से भी प्रयोगकाल 'राममय', 'रावणमय', दुर्योधनमय हो जाता हैं। भरतमुनि के अनुसार किसी भी पात्र की भूमिका तभी सपफल मानी जाती है, जब वह 'स्व' का विसर्जन करे तथा प्रयोज्य पात्र की भूमिका में तत्कलीन हो जाए।

1. भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रतिनायक का लक्षण–भरतमुनि ने प्रतिनायक को प्रतिनायक रूप वर्णित न कर प्रतिनायक को प्रतिनायक के पर्याय राक्षस नाम से वर्णन किया है।

jk{kl&LFkk;h ik'k cgnxEHkhjfuLoueA jkn;LoHkkou·xPp LoHkkoHkkdVhe[keAA
j{kk nkuonU;kuk Hkfedkl ç;kt ;r· i#"kk.kk ç;xLr rFkk·xfØ;;kfUor%AA[1]

अर्थात् जो पुरुष मोटे और लम्बे कद के हों, जिनकी ध्वनि मेद्य के समान गहरी और कड़ी हो, जिनकी सहज दृष्टि भी भयानक प्रतीत हो तथा मुँह पर भी जिनके सदा क्रोधी के समान भृकुटी बढ़ी हुई रहती हो तो ऐसे पात्र को राक्षस, दानव, दैत्य की भूमिका दी जाए तथा पुरुषों की भूमिका में उनकी आंगिक चेष्टाएँ अतिशय संपुष्ट रखी जाएँ।

संस्कृत नाट्य–परम्परा का आरम्भ व्यवस्थित रूप से भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से माना जाता है क्योंकि भरतमुनि ने जब नाट्यस्थापना, नाट्यमण्डप, नाट्यप्रस्तुति तथा अभिनय के विभिन्न पत्रों पर इतनी विशद् विवेचित किया तब विश्व के दूसरे भागों में सभ्यता एवं कला अपनी आदिम अवस्था में थी।

2. विश्वनाथ विरचित साहित्यदर्पण के अनुसार प्रतिनायक का लक्षण–धीरोद्धतः पापकारी व्यसनी प्रतिनायकः।।[2] अर्थात् धीरोद्धत, अधर्माचारी, व्यसनी पुरुष पात्र जो नायक का प्रतिपक्षी हो वह प्रतिनायक कहलाता है। घीरोद्धत होने के कारण प्रतिनायक मायापटु, उग्र स्वभाव, अस्थिर चित्त, अंकारी, दम्मी तथा आत्मश्लाघी होता है–

*व्याख्याता, म0गाँ0शि0प्र0 महाविद्यालय, बांका, बिहार

ek;kij% ipp.Mpiyk·gdkjnifHkf;"B%A vkRe'yk è;fujrk èkhjèkh jk) r% dfFkrAA[3]

व्यसन दो प्रकार के होते हैं – कामज, कोपज। इन्हीं के योग से मनु ने 10 कामज, 8 कोपज व्यसनों का वर्णन इस प्रकार किया है–

dkeT"k iqlDrk fg 0; lu"k efgifr%A fo;T; r·Fkèkekf;k ØkèkT"okReuo rAA

पाश्चात्य भावना से सम्पन्न लोगों को भले ही इसमें कोई तथ्य दिखाई न दे किन्तु स्थूल जगत् का सूक्ष्म दैवी जगत् से सम्बन्ध और उसका रहस्य भारतीय सामाजिक व्यवस्था विशेषज्ञ धम्र मर्मज्ञों के पास इसका रहस्य तिरोहित नहीं है। इसलिए हिन्दू जीवन में स्त्राी–मर्यादा सदैव सुरक्षित रखने का विशेष ध्यान दिया जाता है। धर्मशास्त्र का स्पष्ट आदेश है–

firk j{kfr dkekj HkÙkkS ;kSouA j{kfUr LFkfoj iq=k u L=h LokrU=;egfrAA[4]

धर्मशास्त्रों ने व्यवस्था इसलिए बनायी कि स्त्री निर्बाध गति से अपना धर्मपालन कर सके, अतः बाह्य आपत्तियों से उसकी रक्षा हेतु पुरुष समाज पर यह भार दिया गया। यह भार नहीं अपितु यह उसका परम कर्त्तव्य है।

स्त्री मातृ देवता है। भारतीय संस्कृति में स्त्राी को मातारूप उपस्थित कर इस रहस्य का उद्घाटन किया है कि मानव के कामोपभोग की वस्तु न होकर उसकी वन्दनीया एवं पूजनीया है। मानव धर्मशास्त्र में जननी के गौरव का सर्वोत्कृष्ट वर्णन किया गया है।[5] स्त्री को यह मातृत्व पुरुष के साथ समानता के सिद्धान्तानुसार किये गये किसी बँटवारे में नहीं मिला क्योंकि यदि ऐसा होता तो वह वन्दनीया न हो पाती। शास्त्रीय दृष्टि में मातृत्व दमामयी जगन्माता का प्रसाद है जिसका रूप कहलाने का गौरव सारे स्त्री समाज को प्राप्त है। विष्णु पुराण की सूक्ति है–

nofr ;Äeu";"k i=kkRek Hkxoku gfj%A L=h ukEuh Jh'p foK;kAA[6]

अर्थात् जो नारी सभी कार्यों में प्रयत्नशील है, जो नारी सब कार्यों में दक्ष है, जो नारी पुत्रा प्रसविनी है, जो नारी प्रतिव्रता है, जो नारी पति को प्राणों के समान प्रेम करने वाली है वह नारी धर्मभागिनी है। हमारी संस्कृति एवं शास्त्रों में आरम्भ से ही शक्ति की उपासना का वर्णन है, सावित्री की दीक्षा दी जाती है। गणेशाय नमः के पूर्व 'श्री' लगाया जाता है। स्त्री प्राणदात्राी है। वह सरसता का संचार करके सृष्टि के सृजन कार्य को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए सर्वोत्तम सुन्दर साधन महाकाव्यों का उपजीव्य भी हमारे धर्मग्रन्थ ही हैं। हमारे धर्मशास्त्र साक्षी हैं कि यहाँ धर्म रक्षार्थ भगवान विष्णु को भी 'स्त्रीरूप' में मोहिनी अवतार लेना पड़ा। इसलिए भगवान मनु आज्ञा देते हैं कि– iqtuh;k ç;Rur%[7] समाज को प्रयत्न करके भी स्त्राी की पूजा अर्थात् सम्मान करना चाहिए।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि हमारे शास्त्रों एवं धर्मग्रन्थों में स्त्री के प्रति अपना असीम सम्मान प्रकट किया है जिसका हमें समय–समय पर अवलोकर करना चाहिए। स्त्री जाति ही सभ्यता का मूल है। जिसे हमारे शास्त्रों ने और समाज ने भी स्वीकार किया है।

lUnHk% %

1. संस्कृत सुधा निधि, श्लोक 7–8 श्री राधा सुधा के पृ0 37
2. श्री विजयेन्द्र स्नातक, राधावल्लभ सम्प्रदाय–सिद्धान्त और साहित्य पृ0 213–214
3. श्रीराधा–माधव चिन्तन, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 22
4. वही, पृ0 23
5. भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा, आचार्य बलदेव उपाध्याय बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना–4, पृ0 142
6. वही, पृ0 144
7. वही, पृ0 144

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 204-208

cky Je dk jkdu e ikFkfed f'k{kk dh Hkfedk

T;kfr dekjh*

बाल श्रम किसी भी क्षेत्र में बच्चों से गैरकानूनी तरीके से काम करवाना कहलाता है। ये काम बच्चों से उनके बचपन को छिनने और रोजाना उनके स्कूल जाने में बाधा पैदा करते हैं। ये रूकावट बच्चे के लिए मानसिक शारिरीक, समाजिक या नैतिक तौर पर नुकसानदायक और हानिकारक हो सकती है। बाल श्रम दिवस के खिलाप एंटी चाइल्ड चेंबर डे या विश्व बाल दिवस बच्चों को एक गरिमापूर्ण जीवन जीने और बाल श्रम से लड़ने के लिए पर्यावरण प्रदान करने का अवसर प्रदान करता है। गरीबी बाल श्रम का एक मुख्य कारण है जिसके कारण, बच्चों को अपने स्कूल छोड़ने के लिए मजबूर किया जाता है और अपनी आजीविका के लिए अपने माता–पिता का समर्थन करने के लिए नावालिग नौकरियों का विकल्प चुनते हैं। कुछ संगठित अपराध रैकेट द्वारा बालश्रम मे मजबूर होते हैं। यह दिवस न केवल बच्चों के विकास और समृद्धि के लिए आवश्यक उपयुक्त वातावरण पर ध्यान केन्द्रित करता है, बल्कि बाल श्रम के खिलाफ अभियान में भाग लेने के लिए सरकारों, नागरिक समाज स्कूलों, युवाओं, महिलाओं के समूहों और मीडिया से समर्थन प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है।

बाल मजदूरी इंसानियत के लिए अपराध है जो समाज के लिए श्राप बनता जा रहा है तथा जो देश के वृद्धि और विकास में बाधक के रूप में बड़ा मुद्दा है। बचपन जीवन का सबसे योगदारक्षण होता है जिसे हर एक जो जन्म से जीने का अधिकार है। बच्चों को अपने दोस्तों के साथ खेलने का स्कूल जाने का माता बाल श्रम का स्थिति और आँकड़े 2011 की जनगणना के आँकड़ो के अनुसार भारत में 5 से 14 साल के 25.96 करोड़ बच्चों में से 1.01 करोड़ बाल श्रम कर रहे है। भारत मे करीब 43 लाख से ज्यादा बच्चें बाल मजदूरी करते हुए पाए गए हैं। यूनिसेफ के मुताबिक दूनियाभर के कुल बाल मजदूरों मे 12 फीसदी की हिस्सेदारी अकेले भारत की है। दूनियाँ में 5 से 17 साल के बीच 152 मिलियन कामकाजी बच्चे है जिनमे से 8 मिलयन बच्चे भारत मे है। 152 मिलियन बच्चों में से 73 मिलियन बच्चे खतरनाक काम करते हैं इनमें सफाई कर कारखानों और घरेलु सहायक जैसे काम शामिल है। शिक्षा मानव के विकास का प्रमुख आधार स्तम्भ है जो उसे कुशल और प्रशिक्षित कर प्रगति के पथ पर ले जाती है। बच्चा देश का भविष्य होता है। कोई राष्ट्र विकसित तभी कहा जा सकता है जब वहाँ का बच्चा शिक्षित हो। बच्चे स्वभाव से जिज्ञासु होते हैं। अपने आस–पास की सभी चीजों को वे जल्दी से जल्दी सीख लेते हैं। cky etnjh dk dkj.k % बहुत से गरीब परिवार अपने बच्चों के मजदूरी के सहारे हैं। कभी कभी ये ही उनके आय के स्त्रोत है। इस प्रकार का कार्य अक्सर दूर छिप कर होता है क्योंकि अक्सर ये कार्य औद्योगिक क्षेत्र में नहीं होते हैं। बाल श्रम कृषि निर्वाह और शहरो के अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत है, बच्चों के घरेलू काम में योगदान भी महत्वपूर्ण है। बच्चों का लाभ मुहैया कराने के लिए, बाल श्रम निषेध को दोनों अल्पवधि आय और दीर्घावधि संभावनाओं के साथ दोहरी चुनौती से निपटने के लिए काम करना है। कुछ युवाओं के अधिकार के समूहों यद्यपि, एक निश्चित आयु से नीचे के बच्चे को काम करने से रोक कर, बच्चों के विकल्प कम करने को मानव अधिकारों का उल्लंघन मानते है। ये महसूस करते है कि ऐसे बच्चे पैसे वालों के इच्छा के अधीन रहते है। बच्चे की सहमति या काम करने के कारण बहुत भिन्न हो सकते हैं। एक बच्चा कार्य के लिए सहमत हो सकता है यदि इसका आय आकर्षक हैं या अगर बच्चा स्कूल से नफरत करता है, लेकिन इस तरह की सहमति को सूचित नहीं किया जा सकता। कार्यस्थल बच्चे

*शोधकर्त्री, गृह विज्ञान, ल0ना0मि0वि0वि0,दरभंगा

के लिए लंबे समय में अवांछनीय स्थिति पैदा कर सकता है। एक प्रभावशाली समाचार पत्र में ''बाल श्रम के अर्थशास्त्र'' पर अमेरिकी आर्थिक समीक्षा (1998), में कौशिक बसु और हुआंग वान का तर्क है कि बाल श्रम का मूल कारण माता पिता की गरीबी है। यदि ऐसा है तो, उन्होंने बाल श्रम के वैधानिक प्रतिबंध पर आगाह किया और तर्क दिया कि इसका उपयोग वयस्क मजदूरी प्रभावित हीन पर ही करना चाहिए और प्रभावित गरीब बच्चे के परिवार को पर्याप्त रूप से मुआवजा देना चाहिए। भारत और बांग्लादेश सहित कई देशों में अभी भी बाल श्रम व्यापक रूप से विद्यमान है। यद्पि इस देश के यूनीसेफ के अनुसार बच्चों का नियोजन इसलिए किया जाता है, क्योंकि उनका आसानी से शोषण किया जा सकता है। बच्चे अपनी उम्र के अनुरूप कठिन काम जिन कारणों से करते हैं, उनमें आम तौर पर गरीबी पहला है। लेकिन इसके बावजूद जनसंख्या विस्फोट, संस्था श्रम, उपलब्ध कानूनों का लागू नहीं होना, बच्चों को स्कूल भेजने के प्रति अनिच्छुक माता–पिता (वे अपने बच्चों को स्कूल की बजाय काम पर भेजने के इच्छुक होते हैं, ताकि परिवार की आय बढ़ सके) जैसे अन्य कारण भी हैं। और यदि एक परिवार के भरण–पोषण का एकमात्र आधार ही बाल श्रम हो, तो कोई कर भी क्या सकता है।

cky etnjh mUeyu gsrq fd;s tk jgs iz;kl % बाल श्रम उन्मूलन के लिए राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना कार्यक्रम के तहत 1.50 लाख बच्चों को शामिल करने हेतु 76 बाल श्रम परियोजनाएं स्वीकृत की गयी हैं। करीब 1.05 लाख बच्चों को विशेष स्कूलों में नामांकित किया जा चुका है। श्रम मंत्रालय ने योजना आयोग से वर्तमान में 250 जिलों की बजाय देश के सभी 600 जिलों को राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना में शामिल करने के लिए 1500 करोड़ रूपये देने को कहा है। 57 खतरनाक उद्योगों, ढ़ाबा और घरों में काम करनेवाले बच्चों (9–14 साल की उम्र के) को इस परियोजना के तहत लाया जायेगा। सर्व शिक्षा अभियान जैसी सरकारी योजनाएं भी लागू की जा रही हैं।

jk"Vªh; cky Je ifj;kstuk dk rgr 'kkfey uhfr % सातवीं पंचवर्षीय योजनावधि के दौरान 14 अगस्त, 1987 को राष्ट्रीय बाल श्रम नीति को मंत्रिमंडल द्वारा मंजूर किया गया। इस नीति का उद्येश्य बच्चों को रोजगार से हटाकर उन्हें समुचित रूप से पुनर्वास कराना था। इस तरह जिन क्षेत्रों में बाल श्रम अधिक है उन क्षेत्रों में इसके प्रभाव को कम करना है।

cky Je dk f[kykQ % बाल श्रम औद्योगिक क्रांति के आरम्भ के साथ ही प्रारम्भ हो गया उदाहरण के लिए, कार्ल मार्क्स ने अपने कम्युनिस्ट घोषणा पत्र में कहा ''कारखानों में मौजूदा स्वरूप में बाल श्रम का त्याग ''यह बात भी गौर करने योग्य है कि सार्वजनिक नैतिक सहापराध के जरिये ऐसे उत्पाद जो विकासशील देशों में एकत्रित या बाल श्रम से बने हैं उनके खरीद को हतोत्साहित किया जाय। दूसरों की चिंता है कि बाल श्रम से बने वस्तुओं का बहिष्कार करने पर यह बच्चे वेश्यावृत्ति में जा सकते हैं उदाहरण के लिए, एक यूनिसेफ के एक अध्ययन में पाया गया कि 5000 से 7000 नेपाली बच्चे वेश्यावृत्ति के तरफ मूड गए इसके अलावा अमेरिका में बाल श्रम निवारण अधिनियम (1986) के लागू होने के बाद, एक अनुमान के अनुसार 50000 बच्चों को बंगलादेश में उनके परिधान उद्योग में नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया था और बहुत से लोग ''पत्थर तोड़ने, गलिओं में धक्के खाना और वेश्यावृत्ति'' गए–– यह सब के सब तथ्य यूनिसेफ एक अध्ययन के आधार पर आधारित है। ये सारे कार्य ''वस्त्र उत्पादन की तुलना में अधिक खतरनाक और विस्फोटक है''। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि'' भुथरे उपकरणों के दीर्घकालिक प्रयोग की भांति ऐसे परिणाम से बच्चों को फायदा की जगह हानि ज्यादा हो सकता है।''

आज उद्योग और निगम हैं जिनको कार्यकर्ताओं द्वारा बाल श्रम के कारण लक्षित किया जा रहा है।

ikFkfed f'k{kk dh Hkfedk % मानव जीवन की शिक्षा का प्रमुख आधार प्राथमिक शिक्षा है, जिसके आधार पर बालक भावी जीवन में उन्नतशील बनने हेतु प्रेरित होता है। बालक अपने जन्मजात व्यवहार में सौन्दर्य लाने का प्रयास शिक्षा के माध्यम से करता है। वास्तव में शिक्षा एक ओर जहाँ व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहयोग देती है तथा सर्वांगीण विकास करके व्यक्तिगत उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है वहीं दूसरी ओर वह उसे समाज का एक महत्वपूर्ण एवं उत्तरदायी सदस्य तथा राष्ट्र का एक सुयोग्य,

कर्तव्यनिष्ठ व सजग नागरिक बनाकर आशाओं, उत्कृष्ट आकांक्षाओं, सनातन मूल्यों, सतत् विश्वासों एवं प्राचीन परम्पराओं से युक्त अपनी सांस्कृतिक धरोहर को हस्तारित करती है, अतः शिक्षा व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र सभी के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्राथमिक शिक्षा बालक की शिक्षा का आधार स्तम्भ है एक प्रकार से प्राथमिक शिक्षा राष्ट्रीय नीब है और उसकी सुदृढ़ता भी शिक्षक एवं छात्र पर निर्भर करती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संपूर्ण राष्ट्रीय समाज के शिक्षार्थ, 1947 में भारत के संविधान में 26 जनवरी 1950 को धारा 45 के द्वारा सबके लिए निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा (6 से 14 आयु वर्ग के प्रत्येक बालक–बालिका हेतु) प्रावधानित की। अर्थात् कक्षा 1 से लेकर कक्षा 8 तक की अनिवार्य शिक्षा सबके लिए अनिवार्य कर दी। एवं विध, सरकार ने आठ वर्षीय निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक विद्या प्रावधानित कर दी। इस धारा के निहित उद्देश्य राष्ट्र में, सबको, समान अधिकारों से लाभान्वित कराना है, और गुणात्मक प्राथमिक शिक्षा से विभुषित कराना है। किन्तु 66 वर्षों के बाद भी राष्ट्र इस महान उद्देश्य की परिपूर्ति नहीं कर पाया है, जो कि कष्टकर है।

सममूर्ति समिति ने अपने प्रतिवेदन Towards and Enlightened the Human Society-NPE, 1986 A Reviedw में इस बात की आलोचना की है कि सरकार ने शिक्षा के अधिकार सवैंधानिक निर्देश की अवहेलना की है। यहाँ फिर, आगे कहा गया–

"Now time has come to recognize Right to Education as one of the fimdamental rights of the Indian citizen for which necessary to the constitution may have to be made and more importantly conditions be created in society society in society such that this right would become available for all children of Indian"

स्पष्टतः 14 वर्ष तक के सभी बालकों का यह मूलाधिकार है कि वे इस आयु तक अनिवार्यतः षिक्षा प्राप्त करें। इस तथ्य की न्यायालय ने अपने वाद उन्नीकृष्णन, जे0पी0 और आंध्रप्रदेश राज्य में भी साफ–साफ पुष्टि की है। हाँ, उसके बाद इस अधिकार की पूर्णता बालक–बालिका की आर्थिक क्षमता और राज्य की विकास दिशा पर निर्भर करेगी।

अनुमान है– उक्त तथ्यों को दृष्टिगत संविधान के 93वें संशोधन बिल–2001 द्वारा शिक्षाधिकार बिन्दु को गतिवत्ता प्रदान की गयी और ''सबके लिए शिक्षा'' लक्ष्य को विचार के केन्द्र में रखा गया। पारित होने पर यह राष्ट्र के संविधान का 86वीं संविधान संशोधन अधिनियम बना जिसके द्वारा प्राथमिक शिक्षा–प्रत्येक बालक–बालिका का मूलाधिकार बनी। इस अनुभाग के अंतिम वाक्य द्वारा एक से चौदह वर्ष की आयु वर्ग के प्रत्येक बालक–बालिका की शिक्षा की सारी जिम्मेदारी राज्य सरकार पर डाली गयी। इस अधिनियम की प्रभावकारिता की जाँच का अधिकार केन्द्र सरकार को प्रदान किया गया। केन्द्र सरकार ने एतदर्थ शिक्षा का अधिकार कानून (बिल) 2005 पारित किया। इसके द्वारा, केन्द्र सरकार, समय–समय पर राज्य सरकार से उक्त अधिनियम की व्यावहारिकता की जाँच करती रहती है।

भारत के संविधान की धारा 45 के सन्दर्भ में प्रस्तुत 39वें संशोधन कानून में, कालान्तर में, यह स्थानापत्र व्यवस्था की गयी– "The state shall endeavour to provide early childhood care and Education for all children until they complete the age of six years."

इसे सरकार की बाद की सभी नीतियों द्वारा बराबर बल प्रदान किया गया। किन्तु इस स्थल पर यह संकेततव्य ही नहीं, ध्यातव्य है कि केन्द्र सरकार द्वारा पारित उक्त अधिनियम देश के बालकों की प्रारम्भिक शिशु अवस्था (0–6) के पोषण–देखभाल की उपेक्षा करता है, जो कि दोषपूर्ण है और इसलिए रेखांकन योग्य है।

शिक्षा, भारतीय संविधानानुसार मूल अधिकार है, निश्यचतः स्वागत योग्य है, पर यह निर्दोष नहीं है। अधिनियम के रूप में यह सर्वथा आपत्तिमुक्त नहीं है। कुछ सम्बन्धित निम्नांकित बिन्दु हमें विचारणीय लगते हैं। ये विचारण योग्य थे/हैं। इनके समाधान के बिना अधिनियम की शत–प्रतिशत प्रभावकारिता बरे संदिग्ध प्रतीत होते हैं।

- माता–पिता/अभिभावक विहानी बच्चे/गली–कूचे में विहरते बच्चे/आउट ऑफ स्कूल बच्चे, असंगठित क्षेत्रों/घर–गृहस्थी में कार्यरत बच्चे आदि।
- सुदूर क्षेत्रों में निवसते बच्चे।
- प्रारम्भिक बाल्यावस्था पोषण का बिन्द।
- बालश्रम अधिनियम का आधा–अधूरा कार्यान्वयन।
- बालिका शिशु और उसकी परिवार में देखरेख का बिन्दु।
- माता–पिता अभिभावकों से अनुकूल वातावरण की उपलब्धता का बिन्दु, शारीरिक–सामाजिक और आर्थिक दशाओं की भाव–भूमि।
- निःशुल्क का संप्रत्यय स्पष्ट नहीं।
- स्कूली–सुविधाओं का बिन्दु बालकों तक इसकी उपलब्धता का बिन्दु स्पष्ट नहीं।
- लिंगगत सोच।
- केन्द्र और राज्य सरकार से धनापूर्ति का बिन्दु।
- गुणात्मक शिक्षा के प्राविधान का बिन्दु।
- शिक्षक–छात्र अनुपात।
- महिला–शिक्षकों की संख्या/अनुपात का बिन्दु।
- पंचायतों का संदर्भित दायित्व।
- कानून की व्यावहारिकता डवदपजवतपदह का बिन्दु।
- प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के निजीकरण का बिन्दु।
- प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की जिम्मेदारी का पहलू तथा
- प्रत्येक बालक, विद्यालय पहुँचे, इसकी सुनिश्चिता।

अस्तु, समन्वित बाल विकास सेवा सर्वथा वांछनीय है जिसमें राज्य–केन्द्र सरकारों का ईमानदार प्रयत्न/सहकार विधेय है।

मनुष्य को वातावरण में सामंजस्यपूर्वक समायोजन करने, समानपूर्वक जीवन निर्वाह करने तथा जीवन की सुरक्षा एवं संरक्षा करने के लिए रोटी, कपड़ा, मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करना आवश्यक है। रोटी, कपड़ा और मकान से मनुष्य की शारीरिक सुरक्षा एवं विकास तो सम्भव है परन्तु मनुष्य के समुचित जीवन संचालन में शारीरिक विकास के साथ–साथ मानसिक, सामाजिक, संयोगात्मक एवं नैतिक विकास आवश्यक है जो कि केवल शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है।

इसलिए ही भारतीय संविधान में भी इसकी व्यवस्था की गयी है। भारतीय संविधान के तीन मुख्य भाग नागरिकों के हितों की संरक्षा के लिए बने है। भाग–3 मूल अधिकार (अनु0 12–35) भाग–4 राज्य की नीति के निदेशक तत्व (अनु0 36–51), भाग–4 के मौलिक कर्तव्य (अनु0 51–क) (यह भाग मूल संविधान में नहीं था इसे 1976 में 42 वें संविधान पत्र कहा गया है। मूल अधिकार संविधान द्वारा प्रदत्त वे आधारभूत अधिकार है जो नागरिकों के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है। इन अधिकारों के अभाव में व्यक्ति का बहुमुखी विकास सम्भव नहीं है। संविधान के भाग–3 अनु0 15(1) में धर्म, जाति, लिंग, वर्ण, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी आधार पर नागरिकों के विरूद्ध कोई विभेद करने से राज्य को निषिद्ध करता है। अनु0 15(3) अनु0 15(1) और 2 में दिए गए सामान्य नियम का अपवाद है। यह उपबन्धित करता है कि अनु0 15 की कोई बात राज्य को स्त्रियों के लिए निःशुल्क और अनविार्य शिक्षा या उनको शोषण से बचाने के उद्देश्य से बनाए गए प्रावधान है। अनु0 15(4), अनु0 15(1) और 2 के सामान्य नियम का दूसरा अपवाद है। इसे प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम 1951 द्वारा जोड़ा गया। अनु0 15(4) के अन्तर्गत राज्य किन्हीं सामाजिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है।

अनु0 28(1) यह उपबन्धित करता है कि राज्यनिधि से पूरी तरह से पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी। अनु0 29(1) भारत के राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में निवासियों के किसी भाग को, अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति बनाए रखने का अधिकार होगा। अनु0 29(2) राज्य द्वारा संचालित या सहायता प्राप्त किसी शिक्षा संस्था में किसी व्यक्ति को धर्म, जाति, रंग, भाषा के आधार पर प्रवेश के लिए मना किया जा सकता है। अनु0 30(1) धर्म या भाषा के आधार पर अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा–संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन का अधिकार होगा। अनु0 30(2) राज्य सरकारें अनुदान देते समय इन संस्थाओं से केवल इसलिए भेदभाव नहीं करेगी कि ये संस्थाए अल्पसंख्यकों के द्वारा विशेष नियमों के अन्तर्गत चलायी जा रही है।

मूल संविधान में सामान्य शिक्षा के मूल अधिकार से सम्बन्धित कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं था। उच्चतम न्यायालय ने एक निर्णय में कहा कि शिक्षा पाने का अधिकार अनुच्छेद 21 के अधीन एक मूल अधिकार है और सभी को शिक्षा उपलब्ध कराना राज्य का उत्तरदायित्व है किन्तु उस पर एक परिसीमा लगा दी कि यह अधिकार 14 वर्ष के बच्चों के लिए सीमित है। उच्च शिक्षा के मामले में यह अधिकार राज्य की आर्थिक क्षमता पर निर्भर करेगा।

शिक्षा प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति के व्यवहार एवं विचार में समन्वित परिवर्तन एवं परिवर्द्धन तथा परिस्थितियों का योग्यता एवं दक्षतापूर्वक सामना करने तथा आंतरिक शक्तियों को उद्‌बद्ध कर, सर्वांगीण विकास कर, मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदायी होने के कारण 86वा संविधान संशोधन अधिनियम 2002 द्वारा संविधान में संशोधन कर नया अनु0 21 क जोड़ा गया। जिसमें शिक्षा को संविधान के भाग–3 अध्याय–11 के अन्तर्गत मूल अधिकार का दर्जा प्रदान किया गया। जिसमें 6 से 14 वर्ष की आयु के बालकों को शिक्षा का मूल अधिकार प्रदान करना स्पष्ट एवं सुनिश्चित किया गया तथा अनु0 45 के स्थान पर एक नया अनुच्छेद प्रतिस्थापित किया गया है। ''राज्य 6 वर्ष की आयु के सभी बालकों के पूर्व बाल्यकाल की देख–रेख और शिक्षा के लिए अवसर प्रदान करने के लिए उपबन्ध करेगा।'' 6 से 14 वर्ष के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने हेतु माता–पिता अथवा अभिभावकों पर कर्तव्य अधिरोपित करने के उद्‌देश्य से 2001 में 93वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान के भाग–4क अन्तर्गत अध्याय–19 के अनुच्छेद 51क में 11वाँ मूल कर्तव्य जोड़ा गया जिसमें कहा गया कि 6–14 वर्ष के बालकों के माता–पिता और प्रतिपाल्य के संरक्षकों का यह कर्तव्य होगा कि वे उन्हें शिक्षा का अवसर प्रदान करें।

I UnHkk %

1. बाल श्रम निबंध (अनिल कुमार)
2. हिन्दुस्तान अखबार 2007 जुन
3. वसिष्ठ धर्म सूत्र 1/4/6
4. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1/2 त्रयीस्थापना
5. चौहान सी0पी0: एलीमेन्ट्री एजूकेशन इन इण्डिया सम इमरजिंग इसूजः यूनिवर्सिटी न्यूज 51(43) अक्टुबर 28 नवम्बर 2013 पृ0 34
6. कुमार जय 2011–2012 अधुनिवंध
7. कुरूक्षेत्र सितम्बर 2006 पृ0 27
8. अमर उजाला 2009 जून
9. Meene: Doldrums of fundamental rights and consumer right: Education in perspective University News, 46-109, March 24-30, 2008, page-13
10. सिंह सिमाः प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन समस्या का सुलतानपुर जन पद के संन्दर्भ में आलोचनात्मक अध्ययन शोध डॉ0 रा0म0लो0अ0वि0वि0 फैजाबाद 2011 पृ0–15

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 209-211

ekd.Ms; ijk.kL; ofr"V;e

fo'oukFku*

पुरति अग्रे गच्छतीति पुरा। तुदादिगणपठितात् पुर–अग्रमगमने इति धातोः औणादिके काप्रत्ये कृते पुराशब्दो निष्पद्यते, योऽव्ययो मन्यत कोशानुसारं च स त्रिषु अर्थेषु पयुज्यते–प्रबन्धेऽतीतकाले सकटे च।

तथाहि–स्यात् प्रबन्धे पुरातीते संकटागमिके तथा।

पुरापूर्वकाद् दैवादिकादन प्राणने इति धातो पचाद्यचि कृते पुराणशब्दो निष्पद्यते। वा पुरा पुरातनम् अनिति जीवयति बोधयति इति पुराणं ग्रन्थविशेष, पुरा पूर्वकात् आदादिकात् अन् प्राणने इति धातोरचि णत्वे च कृते पुराणशब्दो निष्पद्यते।

यद्यपि पुराणशदस्य पर्यायवाचिनः प्रत्न–प्रतन–पुरातन– चिरन्त– नादयः, शब्दाः सन्ति, तथापि अत्र पुराशब्देन प्राचीनाख्यायिकादियुक्ता महर्षिव्यासद्वारा निर्मित अष्टादश ग्रन्थविशेषा एव ज्ञायन्ते। यदि पुराणं कश्चिद् नवीन कथयति तर्हि स एव कथयितुमुद्यतो भविष्यति, यस्य पूर्वोक्ताना व्युप्पतीना ज्ञान नास्ति। संस्कृतसाहित्यस्य सर्वे ग्रन्थकारा इममेवार्थं स्वीकुर्वन्ति तथा स्वयं पुराणान्यापि अस्येवार्थस्य मान्यतां प्रददति। तथाहि मत्स्यपुराणम्–

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणादि विदुर्बुधा। वायुपुराणमपि प्राचीन– कालतोऽद्यावधि जीवित साचित्यमेव पुराणं मनुते–

;Lekr ijk g;urhn ijk.k rq dF;rsA
fu:fDreL; ;k on lo`ikiS% ie`P;rsAA

पद्मपुराणानुसार प्राचीनां परम्परा व्यक्तीकर्तु समर्थशास्त्रमेव पुराणमुच्यते।

ijk ijEijk ofDr ijk.k rq o Le`re!

ब्रह्माण्डपुराणे तु इततो भिन्नैव व्युत्पत्तिरूपलभ्यते पुरा एतद्भूत अर्थात् प्राचीनकाले ईदृगासीत्। अत एतत् पुराणमुच्यते–

;Lekr ijk g;HkPpjr ijk.k rq rr Le`reA

एवं विभिन्नेषु पुराणेषु, कृतायां व्युत्पत्तौ ध्यानप्रदानेन प्रतीयते, यत् पुराणस्य वर्ण्यविषया प्राचीनकालतः सम्बद्धाः सन्ति। अमरकाषे– ऽमरसिहन वल्लक्षणमितिहासस्य कृतं तदेव लक्षण–

पुराणानि भारतीयसाहित्यस्य प्राणभूतानि। पुराणं पुरातन– माख्यामुच्यते। प्रतीकश्लोकेन पुराणानि अष्टादशसख्यकानि सन्तीति प्रतिपादनपुरस्सर प्रथमाक्षरप्रतीकेन तषा नामान्यपि संस्मृतानि संकेतितानि च–

e}kS ;}×pks c}kS opr"V;eA
v&uk&i&fy&x&d"dkfu ijk.kkfu ir`fkrAA

तदेव मत्स्य मार्कण्डेय–भागवत–भविष्य ब्रह्माण्ड–ब्रह्मवैवर्त– वामन–वराह निष्णु–अग्नि–नारद–पद्म–लिङ्ग–मरूड–कूर्म–स्कन्दानि अष्टादशपुराणांने विज्ञेयानि।

अष्टादश विष्णु अक्षरस्कमेषु द्वितीय स्थानम् मार्कण्डेय पुराण विद्यते। संस्कृत स्महित्ये मार्कण्डेय पुराणानामतीव गौरवास्पदं स्थानं विद्यते। पौराणिक एवच धार्मिक दृष्ट्या एषां महत्त्वमधिकमस्ति। वेदविहितानां धर्माणां सरलसुबोधभाषायां वर्णनायैव मार्कण्डेय पुराणानि विरचितानि। यथा– यथोक्त महाभारते–

bfrgkl ijk.kkH;ka on le`ic`g;rsA
foHkR;Jrk}nk eke;a igfj";frAA

*बौंसी, बाँका, बिहार–813104

यदा वेदाक्ता अर्थाः लौकानां बुद्धौ नारोढ़ प्रवृत्तास्तदा वेदोक्ताथस्य ज्ञान सुलभं कर्त्तु मार्कण्डेय पुराणादि विरच्यन्ते स्म। अस्मिन् पुराणे प्राचीन भारतस्येतिहास निहित। वैदिकसाहित्य–अनुशीलनेन ज्ञायते यत् मार्कण्डेयापुराणानि अत्यन्तप्राचीनकालादेव प्रचलितानि सन्ति एषाच वेदमूलकत्व तत्पण्डिताः स्वीकुर्वन्ति। प्रथर्ववेदस्य मन्त्रोण पनेदशंनरूपण दृश्यते–

_p% lekfu NUnkfl ijk.k lt"kk rFkkA
mfPNrkTtf>j lo fnfo nok fnfofJrk%AA

मार्कण्डेय पुराणे देवीमदालसा–चरित–कथा अतिरोचका विद्यते। अस्मिन् पुराणे सती महत्त्वस्य वर्णनम् अति रोचकं विद्यते।

मार्कण्डेयपुराणानुसारेण राजा विश्वावसु महोदयस्य पुत्री मदालसा विदुषी कथ्या आसीत्। सा नतिशास्त्र, धर्मशास्त्र एवं ब्रह्मविद्यायाम् पारङ्गता आसीत् वर्णधर्म एवच आश्रमधर्मे सा आस्थान्विता आसीत्। वज्रकेतु दानवस्य पुत्रः पातालकत्वेन तस्या अपहरणम् कृतोऽस्ति। नृपः शत्रुजितस्य पुत्र कुवलयाश्व ऋतध्वजेन दानवस्य वधः कृतः एवच दानवसेनाया युद्ध परास्ताः। तेन मदालसाया विधिवत् विवाहम् कृतः। कस्यचित् दुरात्मा दानवेन् छलपूर्वकं गन्धर्व राजस्य पुत्री धर्मशीला मदालसा देव्याया प्रति मृत्यु–सूचना प्रसारिता। देवी मदालसा स्वकीय पत्युः मृत्यु–समाचार श्रुत्वा पतिवियोगस्य असहय वेदनायां देहत्याग कृतवती। तस्या पतिरपि पत्नी–रूपे अन्य स्त्रिया वरणम् न कृतवान्। यथा–

vfLet Uefu ukU;k e Hkfo=h lg/kekpkfj.khA
rkeriex'kkok{kh xU/koiru;kegeAA
u Hkk{;; ;kf"kr dkfpfjfr lR;e;kfnreA
lg/kekpkfj.kh iRuh rk eDRok x t xfeuheAA

– (मार्कण्डेय–21/21–22)

यद्यपि ऋतुध्वजः पत्नीमनुसृत्य प्राणत्यागं न करोति तथापि सोऽन्ययोजितो भोमस्य त्याग कृत्वेकेपत्नीत्वमायरति। स उद्घोषपि यत् नान्या स्त्री मदालसाया स्थानं ग्रहीतुमर्हति। ऋतुध्वजः स्वप्रतिज्ञां पूर्णरूपेण पालयति च।

अनन्तरम् मार्कण्डेय पुराणानुसारं नागराज अश्वतरेन स्वकीय द्वौ पुत्रौ माध्यमेन सती–सावी वाला मदालासा वियोगस्य एवंच विरहातुरः ऋतध्वजस्य एकपत्नीव्रतसङ्कल्पस्य वृत्तान्तम् श्रुत्वाप्लक्षावतरण नामक तीर्थे दुश्चर तपं कृत्वा सरस्वती देवीम् प्रसन्नो कृतः। देवी सरस्वती देव्या वरदानस्वस्ता पद, ताल एवंच स्वराद्याम् अद्भुत दक्षतां प्राप्य अपूर्व संयमः एवंच श्रवपूर्वकम् सप्तस्वरेण गानम् कृत्वा भगवान् शिवस्य अराधना कृतः। भगवान् शिवः तस्य तपस्यया कारणेन प्रकटो भूत्वा वरम् ब्रूहि इत्य कथयत्। नागराजेन वरं याचना क्रमे कथितः–

पुनर्जन्मे मदालसा प्रथमारभ्यः चतुर्थ पुत्रस्य जन्म दतवती। तेषां क्रमशः नानोस्ति– विक्रान्तः सयाह शत्रुमर्दन एवंन अलर्कः।

देवीमदालसा अस्य रूदन कीडनादि अवसरे स्वकीय एकःएकः पुत्रम् आत्मगीत माध्यमेन प्रवृत्तिमार्गेन विरक्तम् कृत्वा निवृत्तिपरायण यतिधर्म प्रति प्रतिष्टिता स्वकीयं अलकर्म प्रति तस्या आकर्षणम् अधिकमस्ति। तस्य कृते राजधर्मस्य उपदेशम् अधिकम देवती। सः एव पितु राजकार्यस्य वास्तविक अधिकारी अभवत्। देवी मदालसा स्वकीय पुत्रम् अलर्कम् प्रति कथयति– काकवत् आलस्य–रहितः, कोकिलवत् संचयशीलः, सर्पवत् शत्रुजयः, मयूरवत् निधि–विस्तारकः, हंसवत गुणाग्राहकः कुक्कुरवत्, प्रातः जागरणशीलः लोहसदृश क्लिष्ट एवंच विविध कर्मसम्पादकः, उलूकवत् आक्रमण–शील अग्निनिष्केपिड्वत प्रकाश एवंच व्यापनशीलता, शाल्मलीबीजवत् प्रसरणशीलस्य उपदेश कथित।

अनेन उपदेश क्रमेण पुनः मदालसा स्वकीय कनिष्ठ पुत्रं, प्रतिकथयति–शार्दूलवत् पराक्रमशीलता, पद्मवत् अलिप्तता एवंच तावापनोदकता, चन्द्रवत् अह्लादता एवंच सूर्यवत् प्रकाशशीलता, गर्भिणीया पयोधर तुल्या भविष्यनिधि संचयशीलताया उपदेशाऽपि प्रदत्त।

पतिदेव ऋतध्वजस्य सार्थ्वे वनगमन समयेनपूर्वम् सतीदेवी मदालसा निज पुत्र अर्लकम् अध्यात्मसन्देशयुक्त एकः स्वर्णमयी अङ्गूष्ठिका प्रदत्तवति। विपन्नता दशायामपि तस्ये सन्निहित सन्देशानुरूपम् कार्य कर्त्तुम् उपदेशयति। यथा–

l³xq% lokReuk T;kT;% l pÙ;Dr u 'kD;rA
lf)% lg l dÙkZ0;% lrk l³xk fg Hk"kteA
dke% lokReuk g;k gkr pPND;r u l%A
eeSf{kk ifr rRdk;s lo rL;kfi xk"kteAA

– (मार्कण्डेय पुराण – 34/23/24)

उपरोक्त विविध प्रमाणेन मार्कण्डेय पुराणस्य वैशिष्टयम् स्वयमेव स्फुटं भवित। मकार शब्दस्या धीराकृतं वेदव्यासस्य मार्कण्डेय पुराणम् अति प्रसिद्धमस्ति। पं0 बलदेवोपाध्यायेन पुराणानां तिस्त्रः श्रेष्योऽभिमतः गीयन्ते। आलोच्य पुराणं प्रथम–श्रेण्यां मन्यते।

lUnHk%

1. श्रीमदा0 – 7/2–2.
2. श्री मदालसा0 – 6/20–22.
3. श्री मदा0 – 6/24.
4. श्री मदालसा – 5/7–9.
5. श्री मदा0 – 4/1–2.
6. श्री मदा0 – 1/31–35.
7. श्री मदा0 – 3/1.
8. गीताया – 2/47.
9. म0 अ0 – 1/37.
10. मदा0 – 1–19 एवं 21.
11. मदा0 –1/22
12. तार्कण्डेय पुराणे – 34/23–24.
13. मदा0 चरित्र –1/3.
14. मदा0 – 33/6–10.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 212-214

fMftVyhdj.k vkj ljdkjh iz;kl % ,d fo'ys"k.k

MkW0 uhjt dqekj jk;*

दुनिया तेजी से डिजिटलीकरण की तरफ बढ़ रही है। चाहे उद्यमों के जरिये उत्पाद बनाने और उसे बचने का मामला हो, लोगों को रोजमर्रा की जिंदगी की बात हो या सरकार द्वारा नागरिकों को सामाजिक सेवाएँ प्रदान करना हो, तमाम जगहों पर यह प्रक्रिया हावी है। बड़े पैमाने पर और शानदार रफ्तार से डिजिटल डेटा के उत्पाद, डेटा स्टोरेज की घटती कीमत और बेहतर कम्प्यूटर इंफ्रास्ट्रक्चर के कारण डिजिटलीकरण अभूतपूर्व स्तर पर पहुँच गया है और इसे अब चौथी औद्योगिक क्रांति का नाम दिया जा रहा है। भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारों ने डिजिटल इंडिया की बदलावकारी संभवनाओं को पहचान की है और इन प्रौद्योगिकियों को सक्रियाता से अपनाना शुरू किया है।

भारत में पिछले कुछ साल में बिजनेस प्रोंसेस इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी और डेटा एनालिटिक्स के जरिये शासन प्रणाली को नए सिरे से पारिभाषित किया गया है। दरअसल, प्रौद्योगिकी सरकार के कार्यक्रमों की रूपरेखा और अमल को नई शक्ल दे रही है। प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल के कारण सिस्टम में बेहतरी आई, दक्षता बढ़ी है और शासन प्रणाली पर इसका गहरा असर दिखना शुरू हो गया है।

सरकार ने कुछ बड़े और छोटे ई–गवर्नेंस और डिजिटलीकरण कार्यक्रमों को शुरू किया, जिन सबको बाद में 'डिजिटली इंडिया' अभियान के दायरे में लीाया गया। 'मोबाइल' और 'क्लाउड' जैसे नए प्लेटफॉर्म को तेजी से अपनाए जाने के कारण और 'ई–क्रांति के तहत 31 मिशनकारी परियोजनाः राष्ट्रीय ई–गवर्नेस प्लान 2' की शुरूआत के बाद डिजिटल इंडिया अभियान को फिर से तेजी से आगे बढ़ाने की जरूरत महसूस की गई। 'गवर्नेस (शासन प्रणाली) को बदलने के लिए ई–गवर्नेस को बदलना' के नारे के साथ इस पर फिर से फोकस करने की बात हुई। ई–गवर्नेस की सभी परियोजनाएं अब ई–क्रांति के अहम सिद्धातां को पालन करती हैं– मसलन 'अनुवाद नही बदलाव' 'एकीकृत सेवाएँ, न कि निजी सेवाएँ' 'हर एमएमपी में गवर्नमेंट प्रोसेस रीइंजीनियरिंग (जी0पी0आर0) जरूरी होगा' 'मांग आधारित आईसीटी अवसंरचना' 'क्लाउड बाय डिफॉल्ट', 'मोबाइल फर्स्ट' 'मंजूरी की प्रक्रिया को तेज करना' 'भाषा का स्थानीकरण', 'राष्ट्रीय जीआईएस' 'सिक्योरिटी और इलेक्ट्रॉनिक डेटा संरक्षण'।

भारत सरकार ने कल्याणकारी योजनाओं के तहत बड़ी संख्या में मौजूद अवैध लाभार्थियों की संख्या को कम करने और सामाजिक फायदों को प्रभावशाली बनाने के लिए बायोमैट्रिक पहचान सिस्टम के इस्तेमाल और वित्तीय समावेशन अभियान को मिला दिया है। प्रत्यक्ष लाभ अंतरण प्रणाली (डीबीटी) को 437 योजनाओं में लागू किया गया और इससे अब तक 83,000 करोड़ रूपये की बचत करने में 2.27 करोड़ फर्जी और गड़बड़ राशन कार्ड को हटाया जा रहा है और 3.85 करोड़ फर्जी और निष्क्रिय उपभोक्ताओं को एलपीजी सब्सिडी के फायदे के दायरे में अलग किया जा रहा है।

स्रकार ने सहायता समूह तैयार किया और मछुआरों को नई प्रौद्योगिकी मुहैया कराई। उनकी उत्पादकता को बढ़ाने के लिए फाइबरग्लास क्राफ्ट, आउटबोर्ड मोटर और मछली पकड़ने का बेहतर जाल उपलब्ध कराया गया। समुद्री स्तर पर ही नीलामी की प्रणाली भी शुरू की गई, ताकि रोजाना मछली पकड़ने से होने वाली उनकी कमाई उनके बैंक खातों में जमा हो सके। सबसे बड़ी चुनौती मछुआरों के लिए बैंक खाते खुलवाना थी। बैंक मैनजरों से संपर्क साधाकर इस काम को करवाने में 10 महीने का वक्त लगा। केवाईसी की प्रक्रिया का मामला डरावना सपना जैसा था।

*असि0 प्रो0, समाजशास्त्र, राजकीय महिला महाविद्यालय, ढिंढुई, पट्टी, प्रतापगढ़, उ0प्र0

जेएएम (जन धन–आधार–मोबाइल की तिकड़ी देश की विभिन्न सेवाओं के लिए बुनियादी डेटा इंफ्राक्ट्रक्चर है, कि ई–केवाईसी, ई–हस्ताक्षर, तत्काल (यूपीआई) और फाइल स्टोरेज (डिजिलॉक) शामिल हैं। दुनिया भर में वित्तीय समाक के विस्तार के लिए यह सबसे बड़ी है। विश्व बैंक के तरफ से जारी वैशि फिनडेक्श रिपोर्ट 2017 के मुताबिक 2014–2017 के दौरान खुले सभी बैंक खाते 2014 में देश के 53 फीसदी लागों का न में खाता था और जन धन योजना के काम 2017 में यह आँकड़ा बढ़कर 80 फसीद हो गया। इस योजना के तहत 2014 से तक 31 करोड़ भी ज्यादा नए बैंक खाते खुल चुके है।

सार्वजनिक वित्तीय प्रबंधन प्रणाली (पीएफएमएस) के जरिये सभी नियमों योजनाओं के लिए वित्तीय प्रबंधन प्लेटफार्म बनाना मुमकिन हुआ है। साथ ही, बैंको के कोर बैंकिंग सॉल्यूशंस से जुड़ाव, राज्य कोषागारों का एकीकरण और निचले स्तर पर योजनाओं के अमल में रियल टाइम आधार पर फंडों के प्रवाह की निगरानी संभव हुआ है। पीएफएमएस के कारण फंडों को समय पर जारी किए जा रहे है और इसके इस्तेमाल का बेहतर प्रबंधन भी देखने को मिल रहा है। 28 मार्च को पीएफएमएस पोर्टल के जरिये 98 लाख सौदों के लिए 72,000 करोड़ का डिजिटल लेन–देन हुआ। यह एक दिन में हुए डिजिटल लेन–देन का रिकॉर्ड है।

आमतौर पर इस्तेमाल की जाने वाली और कम वैल्यू की वस्तुओं और सेवाओं की एकल खिड़की ऑनलाइन खरीददारी प्रणाली के तहत साल 2016 में गवर्नमेंट ई–मार्केटप्लेस (जीईएम) को शुरू किया गया। केंद्रीय सार्वजनिक खरीदारी पोर्टल ऊँचे मूल्य के आइटम (2 लाख या इससे ज्यादा) की ई–खरीदारी की सुविधा मुहैया कराता है। जीईएम सीधी खरीदारी, ई–बिडिंग उल्टी ई–नीलामी, सरकारी यूजर्स के लिए ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन की सुविधाएँ देने के अलावा उत्पाद बिक्रीकर्ताओं और सेवा प्रदाताओं के लिए गुंजाइश मुहैया कराता है। साथ ही, यह सरकारी खरीद के लिए मार्केट प्लेस भी उपलब्ध कराता है। इस साल अप्रैल के मुताबिक, पहले ही 22,000 से ज्यादा सरकारी खरीदार, 1 लाख से ज्यादा सेलर्स (बिक्रीकर्ता) और सेवा प्रदाता 6,500 करोड़ से ज्यादा के कुल लेन–देन के साथ 231 सूचीबद्ध उत्पाद मौजूद है। इनमें से 44 फीसदी खरीदारी एमएसएमई के जरिये की गई है।

उपभोक्ता भुगतान के तौर–तरीके में बदलाव – यूनिफाइडल पेमेंट्स इंटरफेस (यूपीआई) और भारत बिल पेंमेंट सिस्टम (बीबीपीएस) ने निजी क्षेत्र द्वारा कई बनोवेटिव ऐप बनाने के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। इस तरह लोगों के लिए बिलों को भुगतान करना काफी आसान हुआ है। बीबीपीएस में भगुतान किए गए बिलों की संख्या अप्रैल 2017 के मुकाबले दोगुनी हो गई है। बीबीपीएस को पिछले साल अप्रैल में पायलट आधार पर शुरू किया गया था। संबंधित अवधि में इस प्लेटफॉर्म पर भुगतान किए गए बिलों का मूल्य तकरीबन 46 फीसदी बढ़ गया। केपीएमजी की एक रिपोर्ट के मुताबिक 2016 के आखिर तक भारत में बिल भुगतान का बाजार 5.85 लाख करोड़ रूपये से भी ज्यादा का था, जिनमें से 70 फीसदी बिलों का भुगतान कैश या चेक के जरिये किया जा रहा था। केपीएमजी के अनुमान के मुताबिक, साल 2020 तक भारत में बिल भुगतान का बाजार बढ़कर 9.4 लाख करोड़ हो जाने का संभावना है।

भारत इंटरफेस फॉर मनी (भीम) यूपीआई के कारण डिजिटल भुगतान का काम अब काफी सरल हो गया है। वित्त वर्ष 2017–18 के दौरान भारत में संख्या के हिसाब से डिजिटल पेमेंट लेन–देन में एक अरब से भी ज्यादा की बढ़ोतरी हुई, जबकि मूल्य के हिसाब से बढ़ोतरी का यह आँकड़ा एक लाख करोड़ से भी ज्यादा रहा। नए खिलाड़ियों और नई प्रौद्योगिकी के साथ इसमें उथल–पुथल का सिलसिला आगे भी जारी रहेगा। क्रेडिट सुईस की एक रिपोर्ट के मुताबिक, 2023 तक भारत के डिजिटल पेमेंट का आंकड़ा 1 लाख करोड़ डॉलर तक पहुंच जाने का अनुमान है।

प्रत्यक्ष करों के संग्रह की प्रणाली के डिजिटलीकरण से काफी फायदे हुए हैं। आयकर विभाग को वित वर्ष 2017–18 में 6.8 करोड़ आयकर रिटर्न मिले यानि इसमें 26 फीसदी की बढ़ोतरी हुई। साथ ही, एक करोड़ से भी ज्यादा नए रिटर्न दाखिल किए गए। ऐसे 98.5 फीसदी रिटर्न ऑनलाइन दाखिल किए गए।

वस्तु और सेवा कर (जीएसटी) को लागू किए जाने से अप्रत्यक्ष करदाताओं की संख्या में 50 फीसदी की बढ़ोतरी (जीएसटी) से पहले दौर के मुकाबले) हुई। इसमें 34 लाख नए अप्रत्यक्ष करदाता बने और बड़े पैमाने पर लोग अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा से जुड़े।

प्रधानमंत्री ने प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल के जरिये प्रगति अभियान के तहत परियोजनाओं पर तेजी से काम सुनिश्चित करने में भौगोलिक सीमाओं और विभागीय अड़चनों को आड़े नहीं दिया है। अटकी पड़ी सामाजिक क्षेत्र की योजनाओं और अवसंरचना संबंधी परियोजनाओं की निगरानी और देखरेख के लिए भी प्रधानमंत्री ने सीधे तौर पर केंन्द्र और राज्य के वरिष्ठ अधिकारियों से संवाद कायम किया है। प्रधानमंत्री ने वीडियो कॉन्फ्रेंस के जरिये प्रगति की 25 बैठकों में हिस्सा लिया और 10.5 लाख करोड़ से भी ज्यादा की 22 परियोजनाओं को मंजूरी दी।

हाल में प्रस्तावित आयुष्मान भारत योजना के तहत प्राथमिक और सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों को डिजिटल तौर पर जिला अस्पतालों से जोड़ा जाएगा। इससे 5 लाख रूपये के स्वास्थ्य बीमा के साथ कैशलेस, पोर्टेबल स्कीम के जरिये स्वास्थ्य सेवाएं सुनिश्चित की जाएगी। इस स्वास्थ्य बीमा के दायरे में 50 करोड़ लोग होंगे।

एक्सेंचर के विश्लेषण के मुताबिक साल 2035 तक देश की अर्थव्यवस्था में आर्टफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) 957 अरब डॉलर के मौजूदा सकल मूल्य का 15 फीसदी तक योगदान कर सकता है। भारत के पास अपनी तरह की चुनौतियाँ हैं, जिन्हें कृत्रिम मेधा के उपयोग से दूर किया जा सकता है। इसके अलावा, माइक्रोसॉफ्ट–इंटरनेशनल डेटा कॉरपोरेशन (आईडीसी) की हालिया स्टडी में कहा गया है कि डिजिटल बदलाव से 2021 तक भारत की जीडीपी में 154 अरब डॉलर का इजाफा होगा और इसकी वृद्धि दर में सलाना। फीसदी की बढ़ोतरी होगी। पिछले साल यानि 2017 में देश की जीडीपी का तकरीबन 4 फीसदी हिस्सा डिजिटल उत्पादों और सेवाओं में हासिल किया गया। ये उत्पाद और सेवाएँ सीधे तौर पर क्लाउड, इंटरनेट ऑफ थिंग्स (आईओटी) और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) जैसी प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल से तैयार हुई थी।

केंन्द्र सरकारी योजनाओं में नई प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल और इसकी संभावनाओं विकल्प तलाश रहा है। नीति आयोग कृत्रिम मेधा पर राष्ट्रीय कार्यक्रम विकसित करने की जिम्मेदारी दी गई है और मंत्रालयों, अकादमिक हलकों, उद्योग के शोधकर्ताओं और स्टार्टअप के साथ बात कर रहा है। प्रौद्योगिकी, अर्थव्यवस्था शासन प्रणाली के लिए इसकी उपयोगिता इससे जुड़े जोखिम और भविष्य में इस विकास की राह को समझने के लिए एक अच्छी कोशिश है। इसके अलावा आधुनिकतम प्रौद्योगिकी के फायदे आकलन और उसे प्रदर्शित करने के लिए नीति आयोग ने राष्ट्रीय प्राथमिकता वाले में इन प्रौद्योगिकी पर अमल का काम किया है। इन्हें प्रूंफ–ऑफ कॉन्सेप्ट (पीओ) परियोजना कहा जाता है और कृषि, के रिकॉर्ड, स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं में कृषि मेधा का इस्तेमाल कर इनका परीक्षण किया जा रहा है। इन पीओसी का लक्ष्य समस्या को हल करने में प्रौद्योगिकी के असर परीक्षण करना है।

इस प्रकार यह अवलोकित होता है कि डिजिटलीकरण से विकास से संबंधित जितनी भी योजनायें है वो तेजी से सरकार द्वारा जन समाज को उपलब्ध करायी जा रही है। सरकार का यह प्रयास एक नवीन आधार संरचना का निर्माण कर रहा है। डिजिटलीकरण का पूर्णतः प्रयोग करकें आने वाली और पूर्व से व्याप्त चुनौतियों का तेजी से निपटारा हो रहा है। योजनायें वास्तविक रूप से लाभप्रद व्यक्ति को और समाज को उपलब्ध हो पा रहीं है। अभी कमियां और कठिनाईयाँ विद्यमान है लेकिन इस दिशा में बढ़ते कदम एक बेहतर भविष्य की परिकल्पना जनसमाज हेतू निर्मित करेगा।

I UnHk%

1. कांत, अभिताभ (2018) : डिजिटलीकरण के जरियें विकास, योजना जून 2018
2. राय, नीरज कुमार (2011) : सूचना प्रौद्योगिकी और सामाजिक संरचना, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस दरियागंज नई दिल्ली
3. मैकेंजी (2017) : दी केस आफ डिजिटल रिइन्वेंशन, 2017 मैकेंजी डाट काम
4 प्रकाश अमित (2017) : डिजिटल इंडिया नीड्स टू गो लोकल दी हिन्दू फरवरी 26, 2017
5 थामस, प्रदीप नीनान (2012) : डिजिटल इंडिया, सेज पब्लिकेशन इंडिया, 2012

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 215-217

Hkkstijh {k= dh /kkfeZd Hkkouk

mÙke iVy* o MkO fot; dqekj**

भोजपुरी लोक गीतों में इस क्षेत्र की धार्मिक भावना अपने आप में पूर्ण, स्वस्थ एवं गहरी है। इस क्षेत्र के लोग भगवान शंकर के उपासक को शैव, सूर्य के आसक को वैवस्वत् विष्णु के उपासक को वैष्णव, दुर्गा के उपासक को शाक्त तथा गणेश के उपासक को गाणपत्य कहते हैं परन्तु यह उपासना साम्प्रादायिक आधार पर नहीं होती हैं, बल्कि स्वाभाविक रूप से प्रत्येक हिन्दू उपर्युक्त सभी देवताओं की पूजा विबिध धार्मिक अवसरों पर करता है। इस सन्दर्भ में डॉ0 श्रीधर मिश्र ने अपनी पुस्तक 'भोजपुरी लोक साहित्य सांस्कृतिक अध्ययन' में लिखा है– ''भोजपुरी क्षेत्र के सभी मांगलिक कार्यो में चौक पर बैठते समय शिव–पार्वती के गीत गाये जाते हैं। इसमें उनके नाम लेकर शुभ–कार्य प्रारम्भ करने की भावना तो रहती ही है, किन्तु इसके साथ ही यज्ञ में आने वाले सभी विघ्नों के दूर होने तथा उसके पूर्ण होने का भी विश्वास रहता है। वास्तव में शंकर लोक के प्रिय देवता हैं। अपने संकट काल में लोक शिवजी को ही गोहराते है और शिवजी उसके संकट दूर कर देते हैं ये सौभाग्य के देवता हैं। इनकी पूजा से सौभाग्य अचल होता है। इसलिए औरतें शिव–पार्वती की पूजा करती हैं।''[1]

भोजपुरी भाषा–भाषी सरल–सीधे स्वभाव के होते हैं। ये लोग किसी प्रकार के छल–कपट नहीं जानते तथा इनकी 'कथनी' और 'करनी' में भेद नहीं होता है। भगवान शिव–पार्वती के अलावा इनके प्रिय देवी देवताओं में काली माई, डीह बाबा, ब्रह्म, विष्णु हनुमान सरस्वती दुर्गा आदि विशेष स्मरणीय हैं। ये जब किसी भी कार्य को करना आरम्भ करते हैं, तब इन देवी देवताओं की बन्दना करते हैं–

jke ifgyk ek lfejh cã dk pjuok j ukA
jkek ftUgh dj lf"V dk jpuok jukAA
jke lfejhyk fo".k Hkxouok j ukA
jke ftUgh dj tx dk iyuok j ukAA
jke lfefj x.k'k dk Kkuok j ukA
jkek ftudk tx iFke ituok j ukAA
jkek lfejhyk vtuh yyuok j ukA
jkek uke ftudk ohj gueuok j ukAA
jkek dBok fcjkt ljLorh erok j ukA
jkek lkFk&lkFk p.Mh njxk erok jukAA

इन सभी देवी देवताओं के प्रति भोजपुरिया लोगों का विश्वास है कि ये दुर्दिन में सहायक होते है।

भोजपुरी क्षेत्र के लोक गीतों में राम के जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रकरण जैसे–राम का जन्म, विवाह, वनवास, सीता हरण, लंकादहन, रावण वध आदि का वर्णन मिलता है– इस समाज की स्त्रियाँ राम को पति के रूप में पाने की कल्पना करती हैं, इसीलिए बहुत–सी गीतों में पति के स्थान पर राम शब्द का प्रयोग करती हैं।

*शोध छात्र, डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज–आजमगढ (उ0 प्र0)
**शोध–निर्देशक, डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज–आजमगढ़ (उ0 प्र0)

श्राम की भाँति कृष्ण का चरित्र हिन्दुओं का प्रेरणा स्रोत है प्रसंग के वध, राधा–कृष्ण के प्रेम तथा गोपिओं के विरह से सम्बन्धित घटनाओं का भोजपुरी लोकगीतों में विविध वर्णन मिलते हैं–

dgk xby xb;k dgk xby cN:]
dgk xby ekj uUn th d ykykA

भोजपुरी भाषा–भाषियों की धार्मिक प्रवृत्ति का परिणाम है कि प्रत्येक हिन्दू घरों में देवस्थान (देवखुर) आवश्य रहता है जहाँ तीज–त्यौहार पर पूजा–अर्चना की जाती है तथा सुख –समृद्धि की कामना की जाती है। ऐसी मान्यता है कि किसी के बीमार होने पर या चेचक निकलने पर लोग इसी स्थान पर आकर स्वास्थ्य हेतु याचना करते हैं तथा धार चढ़ाते हैं। कभी–कभी हवन आदि का भी आयोजन किया जाता है।

सवन महीने में भोजपुरी क्षेत्र की प्रत्येक गाँव की महिलाएँ समूह में जाकर विभिन्न गाँवों में भीख माँग कर लाती हैं और शीतला माता को प्रसन्न करने हेतु 'हलवा' पूड़ी व 'धार' इत्यादि चढ़ाती हैं। भीख माँगते समय पचरा या देवी गीत गाती हैं–

Lkhrfy eb;k nkgk fcnb;k ?kjok tkb viu
?kjok ckyd jkoy n/k fcuk
Lkhrfy ekb nk gk fcnb;k ?kjok tkb viu]
?kjok ckf>u jko yh cyd fcukA

परन्तु अब भीख माँगने की यह प्रथा विलुप्त प्रायः हो चुकी है। इसके स्थान पर अपने गाँव में ही भीख माँगकर, आदमी व पशुओं की सुरक्षा हेतु पूजा की जाती हैं

शीतला माता को पारिवारिक तथा श्रृंगार प्रसाधन की सामग्री–खटोला, चूड़ी, चोटी, कंघी, सिन्दूर, चढ़ाया जाता है। साथ ही दवना, मडुआ, अड़हुल तथा चम्पा का फूल भी चढ़ाया जाता है–

dou fd;jh;k lhry eb;k nouk eM|vok]
dou fd;jh;k vMgyokA
NkVdh fd;jh;k eb;k nouk] eM|vk]
cMdh fd;jh;k vMgyokA

डॉ0 श्रीधर मिश्र ने अपनी पुस्तक 'भोजपुरी लोक साहित्यः सांस्कृति अध्यन में लिखा है कि ''भोजपुरी क्षेत्र के लोग देवी देवताओं की पूजा किसी न किसी स्वार्थ से प्रेरित होकर करते हैं। कहीं उनसे अन्नधनजन की माँग होती है तो कहीं शक्ति, यश मोक्ष की, तो कहीं शारीरिक तथा आर्थिक कष्टों से मुक्त रहने के लिए उनकी पूजा होती है, तो कही मनोवांछित फल के लिए मनौती होती है।''

भोजपुरी समाज में लोग परिवारजनों के साथ पशुओं के स्वस्थ होने तथा फसल अच्छी होने की कामना करते हैं जिसके लिए देवी देवताओं से अनेक प्रकार की मिन्नते की जाती हैं। गाय या भैंस जब गाभीन (बच्चा देने वाली) होती है तो लोग मनौती मानते हैं कि यदि सकुशल पूर्वक उक्त पशु अपने बच्चे का जन्म दे देगी और सफल पूर्वक दूध भी देने लगेगी तो उसके दूध से जेवनार (दूध में चावल पका कर) चढ़ायेगे। मनौती पूरा होने पर सम्बन्धित देवी–देवताओं के स्थान पर गाय का दूध 21 दिन बाद तथा भैंस का दूध 12 दिन बाद किसी शुभ दिन में जाकर जवनार चढ़ाते हैं।

Tkkg d fyekb xb ;k cNMk tufeg]
n/kok p<bck tkoukjA
tkgdfy ekb Hkbfl ;k ifM;k tufeg n/kok p<bck tkoukjA

इसी प्रकार किसान फसल को दैविय आपदा से बचाव हेतु स्थानीय देवी–देवताओं से मिन्नते करते हैं कि यदि फसल सफलता पूर्वक तैयार होकर घर में चली जायेगी तो दूध भात (खीर) चढ़ायेगें, जिसे, 'खेतही' कहते हैं।

भोजपुरी क्षेत्र की लोग गीतों में धार्मिक भावना से तुलसी, चन्दन, गुड़हल, नारियल, पीपल, पाकड़, बरगद इत्यादि तथा लोक कल्याणार्थ की भावना से आम, महुआ व आँवले का वर्णन मिलता है–

veok yxoyk fi ;k gk] egvk yxoyk]
dkguk yxoyk fi ;k gk] fufc;k d xfN;k
veok yxoyh /ku gk] egvk yxxoyh]
fufc;k d xfN;k /ku gk] ekbl d clsjokA
veok yxoyk fi ;k gk] egvk yxoyk]
dkg uk yxoyk fi ;k gk] v<my d xfN;k]
veok yxoyh /ku gk] egvk yxoyh]
v<my d xfN;k /ku gk] ekbl d clsjokA
veok yxoyk fi ;k gk] egvk yxoyk]
dkg uk yxoyk fi ;k gk] ujh;y d xfN;k]
veok yxoyh /ku gk] egvk yxoyh
ujh;y d xfN;k /ku gk] ekbl d clsjokA

उपर्युक्त लोक गीत में नीम के पेड़ का वर्णन किया गया है जिसका उपयोग देवी के बसेरा, औषधि तथा लकड़ी हेतु किया जाता है। नीम के पेड़ को लेकर भोजपुरी लोक कण्ठ में एक कहवत प्रसिद्ध है–

^^fufc;k fdruk dMokly rck lhry Nkg]
Hk;ok fdruk : ly rck nfguh ckgA**

भोजपुरी अंचल में हरिकीर्तन का भी अधिक प्रचार है। लोक कल्याणार्थ की भावना से इसका आयोजन अखण्ड रूप से चौबीस घण्टे लगातार–''हरे–राम,हरे राम, राम राम हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण, कृष्ण हरे हरे'' का गायन होता है। इस क्षेत्र में राम और कृष्ण दोनों समान रूप में लोक कण्ठ में बँसे हुए है। जब कि अवधी बोली क्षेत्र में 'राम' तथा ब्रज बोली के क्षेत्र में 'कृष्ण' को अधिक प्राथमिकता दी जाती है।

भोजपुरी क्षेत्र के लोग अपने कर्म एवं धर्म के प्रति सजग रहते है। वे नाना कष्टों को सहकर भी अपने धर्म का पालन करते है। लोक मानस में ऐसा विश्वास है कि भगवान अपने भक्तों की परीक्षा लेते हैं, इसी लिए कभी–कभी बुरे दिन भी दिखाते हैं। ऐसी स्थिति में अपने कर्तव्य का पालन आवश्य करना चाहिए।

lUnHk %

1. श्रीधर मिश्र, भोजपुरी लोक साहित्यः सांस्कृतिक अध्ययन पृ0 226
2. श्रीधर मिश्र, भोजपुरी लोक साहित्य सांस्कृतिक अध्ययन पृ0 234

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. II
May-October, 2019
Pg. No. 218-221

dey'oj d dgkuh e vkfFkd leL;k,¡

lrk"k dekj*

आज के भारतीय जन जीवन में अर्थ के महत्त्व ने राक्षसी रूप धारण कर लिया है। अर्थ मानव जीवन का साधन नहीं, साध्य का स्थानपा चुका है। अर्थ केन्द्रित आधुनिक समाज व्यवस्था में हर व्यक्ति अर्थ संघर्ष के क्षेत्र में लड़ता रहता है किन्तु अब भी गरीब गरीब रहता है और धनी धनी ही रहता। इस दोगली अर्थव्यवस्था से तंग आकर ही कमलेश्वर को कहना पड़ा– ''जितने बड़े पैमाने पर यह लूट आजादी के बाद हुई है, उतनी तो उन आक्रमणकारियों के जमाने में भी नहीं हुई थी, जिन्हें हमने इतिहास में टाँग रखा है।''[1] आर्थिक मूल्यों के विघटन के कारण गरीबी का प्रवाह किनारे को तोड़कर बहने लगा, शिक्षित बेरोजगारों की संख्या बढ़ गयी तथा मानवीय सम्बन्ध शिथिल होकर नहीं के बराबर हो चुका। इन सारी आर्थिक समस्याओं को कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में चित्रित किया है।

कमलेश्वर की 'दुःख–भरी' कहानी में आर्थिक अभाव में दबते एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार की ट्रैजडी है कि वे भविष्य सुधारने के प्रयास में वर्तमान में कडुवाहट भरते जाते हैं। कहानी का नायक बिहारी बाबू बिजली कंपनी का क्लर्क है किन्तु आर्थिक अभाव से उसे अपना जीवन बोझिल लगने लगा। ''उसकी आंखों में बिजली कंपनी के इंजीनियर बसे हुए हैं, जो उनके अफसर हैं, जो कारों से आते–जाते हैं।''[2] पिता अपने अंधेरे सपनों की पूर्ति के लिए आठ वर्षीय दीपू पर दबाव डालते हैं। वे चाहते हैं कि उनके बेटे इंजीनियर बन जाए। आर्थिक पराधीनता के कारण बेटे की इच्छा के अनुसार रंग का डिब्बा, कापी, बड़े पेंसिल जैसी चीजें खरीद देने में भी लाचार पिता असमर्थ हो उठते हैं। बाबू रोज दफ्तर से लौटकर दीपू के साथ दो–तीन घंटे माथा खपाते हैं। एक दिन दीपू को पढ़ाते समय पिता ने पहाड़ा भूल जाने के कारण उसे खूब पीटा, वह बेहोश होकर गिर पड़ा, खाना खाए बिना ही सो गया था तब भी वह पहाड़ा बुदबुदा रहा। आगे केवल एक सिसकी ही उसके मुंह से सुनाई पड़ी। यहाँ कमलश्वर ने बिहारी बाबू के संघर्षपूर्ण जीवन की नक्शा खींचने के साथ हमें इस बात पर सोचने को मोड़ दिया है कि वर्तमान भारत में दीपू जैसे कितने बच्चों का भोला बचपन परिवार की आर्थिक महत्वाकांक्षाओं के कारणा खो जाता है।

'बयान' कहानी में एक ईमानदार फोटोग्राफर की आत्महत्या का कारण व्यवस्था की मार से उद्‌ध ाष्त आर्थिक तंगी है या समाज की दोगली अर्थव्यवस्था है। ''बयान आज की आर्थिक परिस्थितियों पर की गई कटु परन्तु खरी टिप्पणी है।''[3] कहानीकार ने फोटोग्राफर की लाश का जो चित्रण किया है वह बिल्कुल यथार्थ और संवेदनात्मक है– ''वे निश्चल लेटे हुए थे। नाखून और ओंठ नीले पड़ गये थे। शरीर पीलिया के रोगी की तरह पीला–पीला था। हाँ, आंखें बन्द थी और बिल्कुल सूखी हुई। उनमें खून क्या नमी तक नहीं थी, रेत में पड़ी सीप की तरह।''[4]

'अकाल' कहानी भूख से पीड़ित एक खानदान के सम्बन्ध में लिखी गयी है। रघुनन्दन लाल अपने बच्चों को साथ लेकर रिश्तेदार सुन्दरसिंह के यहाँ की शादी में गया। वहाँ पहुंचने पर वह दुःखी हो उठता है क्योंकि स्वागत सम्मान की जितनी अपेक्षा थी उतनी उन्हें नहीं मिली। घण्टों दावत के इन्तजार में खड़े बच्चों को देखकर उसे लगा– दावत के इन्तजार में भोली–भोली आंखें लिए वे खामोश बच्चे जैसे उनका राज खोल दे रहे थे– हम भूखे हैं, हम आज पेट भर खाने के लिए खड़े हैं।''[5] विधी की विडंबना कौन जानता है कि सामने थाली भरी है पर खाने की क्षमता नहीं क्योंकि गरीबी के कारण पचाव वर्ष की आयु में ही उसका शरीर कंकाल मात्र रह गया तथा उसका मुंह पोपला था इसलिए वह चबाकर न खा सका।

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0

उसके अधखुले पोपले मुंह से निरीह भूख झांक रही थी पर वह लाचार था। उसने यह भी नहीं देखा कि बच्चों ने क्या खाया और क्या नहीं खाया। आखिर किसी न किसी प्रकार थके मांदे घर पहुंचते ही उसने घर में बचे हुए चावल को चीनी मिलाकर खाया। यह कहानी गरीबी से पीड़ित लोगों की त्रासदी का यथार्थ व हृदयभेदी रूपांकन करती है।

आर्थिक अभाव ने मानवीय मन को व मानवीय सम्बन्धों को बहुत संघर्षमय किन्तु संवेदनशून्य बना दिया है। कमलेश्वर की 'इतने अच्छे दिन' और 'अकाल' भूखे की विपन्नता तथा भूख में मानवीय मूल्यों की समाप्ति की अत्यन्त करूण कथा है।''[6] गाँव में तीन साल से बढ़ते रहे अकाल में कई लोग भूखों मरने लगते हैं। अकाल से पीड़ित लोग जिन्दा रहने के लिए गाँव–गाँव घूमकर जानवरों और मनुष्यों की हड्डियाँ इकट्ठा करके चीनी मिल में बेचते हैं। बाला और कमली भाई–बहन हैं, घर में मष्त्यु से बच गये दो ही जीवन हैं। वे भी भूख मिटाने के लिए यही व्यापार करते हैं। इसी बीच ट्रक ड्राइवर बन्तासिंह उसकी विवशताओं का फायदा उठाकर कमली का यौन शोषण करता है। कमली अपने वर्तमान धंधे पर खुश है। बाला को ऐसा लगा कि सचमुच उसके जीवन में इतने अच्छे दिन कभी नहीं आये थे क्योंकि कमली भी रोज चार–पांच रूपये इसी धंधे से कमाने लगी। वह इतना निर्मम विचार करता है– ''घर में छोटी बहन कमला न होती तो कैसा काम चलताकृ बंतासिंह अगर रात में कमली को उठा न ले जाता तो उसकी जिन्दगी ही बरबार होजाती। सबकुछ अच्छा ही हुआ था।''[7] यहाँ पेट के लिए भाई–बहन दोनों अपने तमाम मानवीय मूल्यों व मानवीय रिश्तों को तोड़ना भूख की मार से पीड़ित मानव का घिनौना रूप है। क्या इन अभावग्रस्त नागरिकों से भारतीय लोकतांत्रिकता बरकरार रहेगी।

कमलेश्वर ने 'आसक्ति' कहानी में दिखाया है कि आर्थिक जटिलता ने किस प्रकार भाई–बहनों के ईमानदारी व संवेदनशील रिश्तों में दरारें पैदा की है। कहानी में बेकार विनोद को अपनी कामकाजी बहन सुजाता पर पूरी तरह निर्भर होकर जीना पड़ता है। माँ–बाप की मष्त्यु के बाद दोनों इस दुनिया में अकेले हैं। अपनी सुरक्षा और अपनत्व के लिए सुजाता को पहले भाई की आवश्यकता थी किन्तु वीरेन्द्र से शादी होने के पश्चात भाई–बहन का रिश्ता शिथिल हो जाता है। सुजाता जाने–अनजाने बेकार भाई से उपेक्षा का भाव रखती है। जिन्दगी के प्रति आसक्ति ने विनोद को बहिन को छोड़कर कहीं जाने न दिया बल्कि समाज और अपनों के दुत्कार एवं तिरस्कार की कड़वी घूंट पीने को विवश किया। ''यह इस युग की सबसे बड़ी त्रासदी है कि आज हर सम्बन्ध ने अपनी इयत्ता खो दी है और आदमी को अपनी अस्मिता बनाए रखना बड़ी मुश्किल हो गया है।''[8] आर्थिक अभाव से उत्पन्न अलगाव तो आज विनोद जैसे हजारों बेकार युवकों की नियती बन गयी है।

इस अर्थप्रधान युग में अर्थ का अभाव मूल्यवान रिश्तों को लगभन शून्य–सा कर देता है। ऐसा ही कुछ 'तंग गलियों के मकान' की कमली के जीवन में घटित होता है। उसका पति मथुरादास तहसील का एक बेईमान तथा जिद्दी किन्तु गरीब पटवारी है। शिकायतों की वहज से उसका तबादला दूर के गांव में कर दिया गया। कमली अपने पति से बेहद प्यार करती थी लेकिन उसके जाने के बाद इस तंग गली में गरीबी से तंग आकर उससे किनारा पाने के लिए पति के मित्र बनवारी के साथ शरीर विक्रय करने को मजबूर हो जाती है। कर्जदारों की पंक्ति और भूखे बच्चों के सामने पतिव्रता बनने में असमर्थ होकर वह बनवारी से कहती है– ''समझ में नहीं आता बनवारी कैसे क्या करूं? ये तो बड़ी मुसीबत में छोड़ गये हैं। अकेले यहां भी जाऊँ पर बच्चों के पेट पर तबा कैसे बांध दूँ।''[9]

अर्थाभाव पति–पत्नी में तनाव, अलगाव आदि पैदा करता है तो कभी–कभी इनमें से एक को आत्महत्या करने के लिए ही विवश करता है। कमलेश्वर की 'राजा–निरबंसिया' कहानी में यह तथ्य परिलक्षित हुआ है। कस्बे के अस्पताल में चन्दा के यौवन से आकष्ष्ट बच्चन सिंह उसके पति जगपति को दवा मुफ्त में देता है। अर्थ की तंगी के कारण चन्दा कड़ा बेचकर पति का इलाज करना चाहती थी परन्तु बच्चन सिंह इन्कार करता। बच्चन सिंह की आर्थिक सहायता से जगपति ने लकड़ी का टाल भी खोल दिया। बच्चन सिंह की आर्थिक सहायता से जगपति ने लकड़ी का टाल भी खोल दिया। बच्चन सिंह जगपति की आर्थिक लाचारी का लाभ चन्दा के यौवन से चुका दिया। पहले जगपति ने 'अर्थ' और 'काम'

के लिए चन्दा को जाने अनजाने में बेच दिया था। बच्चन सिंह से चन्दा गर्भवति हो जाती है तो पति पश्चाताप और आत्मग्लानि में जलने लगा तथा अन्त में उसने आत्महत्या कर ली। मरने के पहले पुलिस के नाम लिखा पत्र उसकी मनोव्यथा द्योतक है– ''किसी ने मुझे मारा नहींकृकृ किसी आदमी ने नहींकृकृ कृ मैंने अफीम नहीं रूपये खाए हैं, उन रूपयों में कर्ज का जहर था उसी ने मुझे मारा है।''[10] गरीबी के भँवर में पड़ गये जगपती में जो अर्थ हावी हो गया था उसने उसके जीवन को बरबाद कर दिया, पति–पत्नी के पवित्र रिश्तों को तोड़ दिया व उसके जीवन को मष्त्यु के घाट उतार दिया।

कमलेश्वर ने 'नंगा आदमी' में सुयोग्य व सुशिक्षित किन्तु बेरोजगारी के कारण समाज की सच्चाईयों से मुंह मोड़ने के लिए मजबूर बेकार आदमी का चित्रण किया है। कहानी का नायक रवि एम0ए0 फर्स्टक्लास में पास हुआ था किन्तु अभी तक कहीं भी प्रतिष्ठा और इज्जत की नौकरी नहीं मिली। ''उसे अपनी बेकारी का एहसास दिन–व–दिन बढ़ता गया था और अपनी प्रतिभा और बुद्धि पर वे विश्वास केंचुल की तरह उतरता गया। ऐसी कौन–सी जगह थी जहाँ उसने कोशिश न की हो, अर्जी न दी हो, दौड़कर न गया हो? लेकिन हुआ कुछ भी नहीं था।''[11] औरों की नजर में अपनी गरिमा बनाए रखने के लिए दूसरों के सामने, मित्रों के सामने तथा अपनी प्रेयसी राशी के पिता के सामने अपने को ऊँचे ओहदे का अधिकारी सिद्ध किया किन्तु अन्त तक ऊँचे ओहदे की नौकरी नहीं मिलती। इसी बीच उसकी प्रेयसी की शादी भी किसी दूसरे से हो गई। अब उसे मालूम हुआ– ''कितना बड़ा अभिशाप बन जाती है बेकारी। यह जरूर है, जो उसके अंग–प्रत्यंग को उसके तन और मन को धीरे–धीरे घोल रहा था। वह कैसे स्वीकार करे कि वह एक असफल व्यक्ति है, एक ऐसा आदमी है जो महत्वहीन और निठल्ला है।''[12] अन्त में वह सारे लिबासों को उतारकर समाज की सच्चाईयों के सामने अपने आप को नंगा कर देता है। यहाँ कमलेश्वर ने यह दिखाया है कि शिक्षित बेरोजगार को अपने झूठे अहम को छोड़ना बिल्कुल जरूरी है।

बेकारी की वजह से शिक्षित बेकार युवकों के मन में उत्पन्न आक्रोश, विद्रोह, घुटन, तनाव, मोहभंग जैसे भावों की सशक्त तथा सजीव अभिव्यक्ति 'शरीफ आदमी' में हुई है। कहानी का नौजवान रामानन्दन नौकरी की तलाश में गांव छोड़कर दिल्ली आ गया है। दिल्ली में रामानन्दन एक सरदार के रिक्शा में साउथ एवेन्यू की ओर निकल गया लेकिन पार्लामेन्ट हाउस के बाहर वाले गेट पर आते ही सरदार ने पूरा पैसा मांगा तो ''इस बात पर रामानन्दन आस्तीन चढ़ाकर अपना शौर्य करते हुए कहता है कि यह कोई पढ़ा–लिखा शरीफ जादा नहीं।''[13] परंतु झटके से बाग खुलता है और उसमें पैसा नहीं थे बल्कि उपाधि पत्रों के बंडल ही जीवन की दस्तावेज के रूप में रखे थे। रामानन्द कहीं से नौकरी न मिलने पर अपनी औकात भूलकर गुण्डागर्दी करने को भी उद्यत बन जाता है।

'जोखिम' फैंटसी की परिधि में घूमती कहानी है जो बेकारी की सागर में डूबते आदमी की कठिनाईयों का जायजा लेती है। कहानी का नायक बंबई के बड़े शहर में नौकरी के लिए मारा–मारा फिरता है। वह काम करने को तैयार है लेकिन हर जगह सिर्फ तसल्ली मिलती है, कोई उसे नौकरी नहीं देता। उस सीमित जिन्दगी में उसे सर्वत्र विसंगति और निरर्थकता के ही दर्शन होते हैं। अपने ठहराव की स्थिति से ऊबकर वह कहता है– ''मेरेपास कुछ यादें और एक लहु–लुहान जिन्दगी के सिवा कुछ नहीं है।कृकृ इसके अलावा एक बड़ी नाकाम, सीमित और बेकार–सी जिन्दगी है। यों सब चलता है, चला जाता है, पर यह क्योंकि और किसलिए हैं, उसका कुछ अन्दाजा नहीं होता।''[14] अंत में सब ओर से हारकार वह अपने गांव लौट आता है। यहाँ यह स्पष्ट है कि बेकारी की परेशानियों से विवश आधुनिक शिक्षित युवक अपने अन्धकारपूर्ण भविष्य के आगे लड़खड़ाता ही रहेगा।

'आसक्ति' कहानी का विनोद ऐसा एक विवश बेरोजगार है जिसको शहर में बहन की कमाई के सहारे जिन्दगी को घसीट ले जाना पड़ा है। घर के अन्दर और बाहा अपमान की कड़वी घूँट पीते–पीते थक गया। विनोद अपनी निस्सहाया बहन के सामने प्रकट करता है– ''लेकिन समझ में नहीं आता क्या करूं कहीं कैसी भी नौकरी मुझे मिल जाय, सुजाता, तो मैं कम से कम तुम्हें तो काम न करने दूं। यह बोझ मन में भारी पड़ता है, लगता है, जैसे मेरी जिन्दगी बेमान होकर रह गयी है.... गली में निकलते ही शरम आती है।''[15]

'युद्ध' कहानी का युवक 'वह' नौकरी की खोज में महानगर दिल्ली पहुंच कर भी शहर उसे पनाह नहीं दे सकता। वह भूख और बेकारी से संघर्ष कर रहा है। अन्त में हारकर वह गांव लौटता है। कपड़ों के अभाव में एन0सी0सी0 की वर्दी पहनकर जा रहा है। गाड़ी में बैठ कर स्वयं विश्लेषण करता है– ''भूख और बेकारी उसे घर ले जा रही है या बमबारी। हर साल से वह एक कमीज तक नहीं सिलवा पाया है। पिछली बार गया था तब भी यही एन0सी0सी0 की खाकी वर्दी पहनकर घर पहुंचा था और इस बात भी वही है.. अपने शहर में स्टेशन पर उतरकर कपड़े जरूर बदल लेगा।''[16] यहाँ विनोद बेकारी और भूख से लड़ते–लड़ते हारने वाले असंख्य युवकों का प्रतिनिधि है।

कमलेश्वर की 'मांस का दरिया' कहानी में जुगुनी जैसी रेडलाइट क्षेत्र की वेश्याएँ जिस गिरी अवस्था में जीती है उसका सशक्त किन्तु भयावह चित्रण है। आर्थिक अभाव और पुरूष की कामान्धता ने ही अधिकांश नारियों को वेश्या बनने को मजबूर किया है। इलाज के लिए उसने कई पुरूषों से रूपये उधार लिए थे, बदले में मजबूर होकर उसे कर्जदारों को अपना शरीर बेचना पड़ता है। 'मांस का दरिया' समाज की पूँजीवादी, समाजवादी प्रवृत्तियों के क्रूर यथार्थ का चित्रण प्रस्तुत करती है।''[17] वेश्याओं के फोड़े का मवाद उसकी नारकीय जिन्दगी का प्रतीक है। यहाँ वेश्या जीवन की विडम्बनाओं का यथार्थ रूप तथा मानवीय मूल्यच्युति का घृणित रूप दृष्टव्य है।

fu"d"kZ % स्वतंत्र्योत्तर भारतीय जन मानस ने एक वर्गहीन, शोषण मुक्त समाज में आर्थिक संतुलन का सपना देखा था किन्तु आज भी वह सपना तो सपना रह गया है। आम आदमी को आर्थिक विषमता बराबर तोड़ती रहती है और उसको पारिवारिक, सामाजिक और वैयक्तिक स्तर पर भी विघटन महसूस होता है। आर्थिक असंतुलन और मानसिक तनाओं के बीच तड़पे आदमी की जिन्दगी निराशा, कुंठा, घुटन, संत्रास, अकेलापन और अजनबीपन से भर गयी। आज अर्थ ही जीवन मूल्य बनकर उभरा है। इसी अर्थ की प्राप्ति के लिए सम्बन्ध की मधुरता को नकार कर मानव किसी भी रास्ते से होरक स्वार्थता की तंग गली में विचरण करने लगे। आर्थिक अभाव और अर्थ प्राप्ति के गलत मार्ग के कारण कई पारिवारिक सम्बन्ध टूट गए, देश में बेकारी की समस्या बढ़ गयी। महंगाई के कारण गरीबी का ताँडव नृत्य ने विजय प्राप्त की। आर्थिक दृष्टि से टूटे मध्यवर्ग के मनोविकारों को कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में बड़ी निष्पक्षता और ईमानदारी के साथ चित्रित किया है।

lUnHkZ %

1. कमलेश्वर – नई कहानी की भूमिका, पृ0 101
2. कमलेश्वर– दुःख भरी दुनिया (खोई हुई दिशायें) पृ0 127
3. विनोद कुमार नागर– हिन्दी उपन्यास एवं कहानी साहित्य, पृ0 116
4. कमलेश्वर– बयान (बयान), पृ0105
5. कमलेश्वर– अकाल (बयान), पृ060
6. डॉ0 पुष्पपाल सिंह– समकालीन कहानी रचना मुद्रा, पृ0 29
7. कमलेश्वर– इतने अच्छे दिन (इतने अच्छे दिन), पृ0 9
8. रतीलाल शाहिन– कहानीकार कमलेश्वर, पृ0 74
9. कमलेश्वर– तंग गलियों में मकान, (कथा प्रस्थान), पृ0 91
10. कमलेश्वर– राजा निरबंसिया (राजा निरबंसिया), पृ0 110
11. कमलेश्वर– नंगा आदमी (कथा प्रस्थान), पृ0 24
12. वही, पृ0 24
13. कमलेश्वर–सरोकार (कथा प्रस्थान), पृ0 106
14. कमलेश्वर– जोखिम (बयान), पृ0 86
15. कमलेश्वर– आसक्ति (बयान), पृ0 145
16. कमलेश्वर– युद्ध (मांस का दरिया), पृ0 18
17. कीर्ति केसर– समकालीन कहानी के विभिन्न सन्दर्भ, पृ0 72

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. I
May-October, 2019
Pg. No. 1-5

Medical Negligence and Rights of Patient as a Consumer

Sushil Kumar*

Introduction : It is the duty of the government to provide safeguards fundamental right to life and personal liberty guaranteed by Article 21 of the Constitution of India because this right has been called as repository of all the rights. Constitutionally, it is the duty of the State to provide to all citizens adequate and proper medical services. So that every person has right to proper health dignified life and to achieve his desired goal in life.

What is Negligence? : The definition of negligence given by Alderson B in *Blyth v. Birmingham water Works Co.*[1] has been modified by Charlesworth[2] in the following ways: "Negligence is a tort which involves a person's breach of duty that is imposed upon him to take care, resulting in damage to the complainant". The essential component of the modern tort of negligence propounded by Percy and Charles worth are as follows:

a) The existence of a duty to take care, which is owed by the defendant to the complainant;
b) The failure to attain that standard of care, prescribed by the law, thereby committing a breach of such duty; and
c) Damage, which is both causally connected with such breach and recognised by the law, has been suffered by the complainant.

What is Medical Negligence? : Medical Negligence may be defined as the "act or omission which a reasonably competent medical practitioner, guided by such medical knowledge and practice as is commonly known at the time and at the place where he practices and further guided by such other considerations which ordinarily regulate the conduct of a reasonably competent medical practitioners, would do, or doing something which a reasonably competent medical practitioners would not do".

It is the failure on the part of a doctor to exercise his skill and diligence, which are required of a medical professional resulting in harm to the patient. However deviation from common practice is not necessarily an evidence of negligence. Similarly a mere accident or error of judgment is also not evidence of negligence. To label any act or omission by the doctor as negligence, all the essential ingredients of medical negligence must be present.

Who is a Consumer? : Any person who buys any goods against consideration is a consumer. For that matter, it also includes any user of such goods other than the person who buys such goods where such use is made with the original buyer's approval. However, if the goods are purchased for resale or any commercial purpose, then the buyer is not a consumer and cannot avail the protection under Consumer Protection Act, 1986.

Similarly, any person who hires any service against consideration is also a consumer and it includes any beneficiary of such services, of course with the approval of the original consumer. So strictly speaking the definition penetrates the essence of consumption and not merely the dereliction based on privity between the parties. So any user of goods or beneficiary of services has also a legal right and *locus standi* to initiate action under the act.[3]

Definition of Services under Consumer Protection Act, 1986 : Section 2 (1) (o) Service of any description which is made available to potential users and includes the provision of

*Research Scholar, Department of Law, university of Allahabad, Prayagraj

facilities in connection with banking, financing, insurance, transport, processing, supply of electrical or other energy, board or lodging or both, housing construction, entertainment, amusement or the purveying of news or other information, but does not include the rendering of any service free of charge or under a contract of personal service[4].

Medical Services Covered by Section 2(1) (o) of the Consumer Protection Act : In *Indian Medical Association v. V.P. Shantha and others*[5], the Supreme Court of India observed that the medical services rendered by the medical practitioners are covered by Sec. 2 (1) (o) of the Consumer Protection Act. It excludes free services or services under a contract of personal service.

While construing the words 'free of charge' the Apex Court observed that the medical practitioners, govt. hospitals/nursing homes and private doctors/nursing homes (hereinafter called doctors and hospitals) broadly fall in three categories namely,

a) Where services are rendered free of charge to everybody availing of said services;
b) Where the charges are required to be paid by everybody availing the services; and
c) Where charges are required to be paid by persons availing services but certain category of persons who cannot afford to pay are rendered services free of charge.

i. In case of first category where medical services are rendered free of charge whatsoever to every person availing the service would not come within the ambit of 'service' as defined under Sec. 2 (1) (o) of the Consumer Protection Act. Payment of token amount for registration purposes would not alter the position in respect of such doctors or hospitals.
ii. In case of second category where services are rendered on payment basis to all persons will clearly come within the ambit of Sec. 2 (1) (o) of the Consumer Protection Act.
iii. So far the third category is concerned, where free services are rendered to poor patients by doctors/hospitals whether private or Govt., but fee is charged for services rendered to other patients would come within the purview of Sec. 2 (1) (o) of the Consumer Protection Act, even in cases where services are rendered free of charge.

Deficiency of Service : Under the Consumer Protection Act, deficiency in relation to any service mean any fault, imperfection, sort-coming, inadequacy in the quality, nature and manner of performance which is required to be maintained under law or has been taken by the opposite party to be performed under or otherwise in relation to any service.[6]

Rights of Patient as a Consumer Rights : As much as hospitals are places of hope of second chances and recovery they can also be the cause of serve anxiety and financial burden of many. When a loved one is seriously ill or injured we tend to completely trust a hospital and it doctors without so much as a shadow of a doubt. Now we are not saying that someone can take advantage of this situation but it is crucial for everyone to know about their rights at every place.

a) Right to information : Physician or their qualified assistants are required to provide adequate information about your illness, its diagnosis (provisional or confirmed, as it may be), proposed investigation and possible complications to the patient. If the patient is not in a state to understand this, the physician or their assistant is required to provide the information to the caretaker. This has to be done in simple language that the patient or caretaker will understand.

b) Right to records and reports : The patient has the right to access his/her medical records and investigation reports. Service providers should make these available upon the patients' payment of any photocopy fees as applicable.

c) Right to emergency care : Public and private hospitals have an obligation to provide emergency medical care regardless of the patients' capacity to pay for the services.

d) Right to informed consent : Patients have the right to be asked for their informed consent before submitting to potentially hazardous treatment. Physicians should clearly explain the risks from receiving the treatment and only administer the treatment after getting explicit written consent from the patient.

e) Right to confidentiality, human dignity and privacy : Doctors should observe strict confidentiality of a patient's condition, with the only exception of potential threats to public health. In case of a physical inspection by a male doctor on a female patient, the latter has the right to have a female person present throughout the procedure. Hospitals also have an obligation to secure patient information from any external threats.

f) Right to second opinion : Patients are entitled to seek a second opinion and hospitals should facilitate any information or records that the patient requires to do so.

g) Right to transparency in rates, and care according to prescribed rates wherever relevant : Hospitals should display the rates that they charge in a visible manner and patients should receive an itemized bill when payment is required. Essential medicines, devices and implants should comply with rates established by the National Pharmaceutical Pricing Authority (NPPA).

h) Right to non-discrimination : Service providers cannot deny treatment on the basis of gender, caste, religion, age, sexual orientation or social origins. Additionally, it is against the Charter to deny treatment on the basis of a patients' health condition, including HIV status.

i) Right to safety and quality care according to standards : Hospitals must ensure a hygienic and sanitized environment to provide their services.

j) Right to choose alternative treatment options if available : Patients have the right to consider treatment alternatives and even refuse treatment.

k) Right to choose source for obtaining medicines or tests : Any registered pharmacy and laboratory is eligible to provide patients with goods and services they require.

l) Right to proper referral and transfer, which is free from perverse commercial influences : In case of transfers or referrals, the patient has the right to an explanation that justifies the transfer, as well as confirmation from the hospital receiving the patient about their acceptance of the transfer.

m) Right to protection for patients involved in clinical trials : Clinical trials should comply with all the standards and protocols under the Directorate General of Health Services.

n) Right to protection of participants involved in biomedical and health research
Studies involving patients should follow the National Ethical Guidelines for Biomedical and Health Research Involving Human Participants.

o) Right to take discharge of patient, or receive body of deceased from hospital : Patients have the right to be discharged and may not be detained at a health service provider facility because of procedural reasons such as payment disputes.

p) Right to Patient Education : In addition to information about their condition, patients have the right to know about public health services such as insurance schemes and charitable hospitals.

q) Right to be heard and seek redressal : Patients have the right to provide feedback and comments to their health service providers and file complaints as required. They additionally have the right to redressal in cases where any of their rights are violated.

Medical negligence and doctor's liability

a) Liability under tort law : Under civil laws, at a point where the Consumer Protection Act ends, the law of torts takes over and protects the interests of patients. This applies even if medical professionals provide free services. In cases where the services offered by the doctor or hospital do not fall in the ambit of 'service' as defined in the Consumer Protection Act, patients can take recourse to the law relating to negligence under the law of torts and

successfully claim compensation. The onus is on the patient to prove that the doctor was negligent and that the injury was a consequence of the doctor's negligence.[7] Such cases of negligence may include transfusion of blood of incorrect blood groups[8], leaving a mop in the patient's abdomen after operating[9], unsuccessful sterilization resulting in the birth of a child[10], removal of organs without taking consent[11], operating on a patient without giving anesthesia[12], administering wrong medicine resulting in injury

b) Liability under criminal law : In certain cases, negligence is so blatant that it invites criminal proceedings. A doctor can be punished under Section 304A of the Indian Penal Code (IPC) for causing death by a rash or negligent act, say in a case where death of a patient is caused during operation by a doctor not qualified to operate. According to a recent Supreme Court decision[13], the standard of negligence required to be proved against a doctor in cases of criminal negligence (especially that under Section 304A of the IPC) should be so high that it can be described as 'gross negligence' or 'recklessness', not merely lack of necessary care. Criminal liability will not be attracted if the patient dies due to error in judgment or accident. Every civil negligence not criminal negligence, and for civil negligence to become criminal it should be of such a nature that it could be termed as gross negligence. Very rarely can a doctor be prosecuted for murder or attempt to murder as doctors never intend to kill their patients, and hence do not possess the required level of guilty intention. When doctors administer a treatment involving the risk of death, they do so in good faith and for the patient's benefit. A doctor can also be punished for causing hurt or grievous hurt under the IPC. However, Sections 87, 88, 89 and 92 of the IPC provide immunity from criminal prosecutions to doctors who act in good faith and for the patient's benefit. But the defence must prove that the doctor acted in good faith and for the patient's benefit. For example, a doctor who consciously or knowingly did not use sterilized equipment for an operation cannot be said to have acted in good faith.

c) Liability under the Consumer Protection Act : In 1995, the Supreme Court decision in *Indian Medical Association v. V.P. Shantha*[14] brought the medical profession within the ambit of a 'service' as defined in the Consumer Protection Act, 1986. This defined the relationship between patients and medical professionals as contractual. Patients who had sustained injuries in the course of treatment could now sue doctors in 'procedure-free' consumer protection courts for compensation.

The Court held that even though services rendered by medical practitioners are of a personal nature they cannot be treated as contracts of personal service (which are excluded from the Consumer Protection Act). They are contracts for service, under which a doctor too can be sued in Consumer Protection Courts.

A 'contract for service' implies a contract whereby one party undertakes to render services (such as professional or technical services) to another, in which the service provider is not subjected to a detailed direction and control. The provider exercises professional or technical skill and uses his or her own knowledge and discretion. A 'contract of service' implies a relationship of master and servant and involves an obligation to obey orders in the work to be performed and as to its mode and manner of performance. The 'contract of service' is beyond the ambit of the Consumer Protection Act, 1986, under Section 2(1) (o) of the Act.

The Consumer Protection Act will not come to the rescue of patients if the service is rendered free of charge, or if they have paid only a nominal registration fee. However, if patients' charges are waived because of their incapacity to pay, they are considered to be consumers and can sue under the Consumer Protection Act

Conclusion : The very nature of the medical profession makes it vulnerable to civil and criminal suits. Many suits are filed to harass doctors, or are filed to evade the payment of

bills. In the post *V. P. Shantha* era it is difficult for doctors to shun responsibility. It is also easier for people to force negligent doctors to Consumer Protection Forums. It is important to punish guilty doctors. It is also important to protect doctors who act in good faith from harassment. The courts must strike a perfect balance. The Supreme Court[15] once observed that the doctor's job is to protect life and the courts should assist in this cause as far as possible. It is also the duty of the courts to see that doctors are not harassed in the course of performance of such duty.

References:

Books:

1. Modi, Jaising P., Medical Jurisprudence and Toxicology, Lexis Nexis Publication, Haryana. Twenty Fifth Edn. 2017.
2. Kaushal, Anoop. K., Medical Negligence and Legal Remedies, Universal Law Publishing Co. Pvt. Ltd., Second Edn. 1996.
3. Bag, R. K., Law of Medical Negligence and Compensation with Supplement, Eastern Law House Pvt. Ltd., New Delhi, Second Edn. 2001.

Web Links:

1. https://en.wikipedia.org/wiki/Patients%27_rights
2. www.legalserviceindia.com
3. www.manupatra.com

References:

1. (1856)11 Ex 781; 25LJ Ex 212
2. Char worth and Percy on Negligence, 9th Ed., p. 16
3. Sec. 2 (1) (d) Consumer Protection Act, 1986
4. Sec. 2 (1) (o) Consumer Protection Act, 1986
5. AIR 1996 SC 550
6. Sec. 2 (f) Consumer Protection Act, 1986
7. Philips India Ltd. V. Kanju Pannu, AIR 1975 Bom. 306
8. Karla Satyanarayna v. Lakshmi Nursing Home 1 (2003) CPJ 262
9. Achutrao Haribhao Khodwa v. State of Maharashtra (1996)2 SCC 634
10. State of Haryana v. Smt Santara AIR 2000 SC 1888
11. Lakshmi Ranjan v. Malar Hospital (1998) CPJ 586
12. P N Rao v. g Jayaprakasu AIR 1950 AP 201
13. Suresh Gupta v. Govt. Of NCT of Delhi (2004)6 SCC 422
14. AIR 1996 SC 550
15. Parmanand Katara v. Union of India (1989)4 SCC 286

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. I
May-October, 2019
Pg. No. 6-7

Evaluation of Food and Nutrition Security Awareness and Eating Behavoiur of Low Socio - Economic Women: A study of Kishanpur Panchayat, District of Katihar, Bihar

Shruti Kumari*

Introduction : Food and nutrition security exits when all people at all times have physical, social and economic access to food, which is consumed in sufficient quantity and food preferences, and quality to meet their dietary needs and food preferences and is supported by an environment of adequate sanitation, health services and care, allowing for a healthy and active life. (FAO, 1996, 2009).

Food and nutritional security both depend on food processing. One or more of a range of operations, storing, cooling, freeing, heating, fermenting, filtering, extracting, frying, drying, centrifuging, irradiating, microwaving and packing etc described as food processing.

There are four food security dimension and nutrition linkage.

Availability :

- Domestic production
- Import capacity
- Food stocks
- Food aid

Access:

- Poverty/ purchasing power
- Transport and market infrastructure
- Food distribution.

Stability :

- Weather variability
- Price fluctuations
- Political factors
- Economic factors

Utilization :

- Food safety and quality
- Clean water
- Health and sanitation
- Care and feeling (FAO,1996)

Food security among individuals living in these condition could be altered due to social and economic status.

Poverty plays a circular role in determing the extent of food security or insecurity. Low income and food prices are essential factors of food insecurity. Food choices and diet as they influence food purchasing. Therefore, low socio-economic women rarely eat a healthy diet, they have inadequate diet and food intakes and their daily life and wellbeing are influence by their eating behaviour. Moreover, poor women have higher consumptions of

*Research scholar, UGC-NET-JRF-SRF, Univ. Dept. of Home Science- Food and Nutrition, TilkaManjhi Bhagalpur University, Bhagalpur

lower costs dense-energy food like Maize flour Roti etc. A poor nutrition like having a low consumption of fruits and vegetables. Diet is influence by individuals socio-economic status, knowledge and attitudes towards these behaviours. Education was positively linked to food insecurity and eating behaviours.

Objectives : The objectives of the study are to access the awareness of the respondents to food and nutrition security issues, to know their food intake.

Materials & Methods : A cross sectional study was conducted on randomly selected women of 40 to 50 year to evaluate Food and Nutrition Security (FNS) awareness.

A total 150 women were selected as a sample. Data were collected through a self-framed schedule.

Result : The study reveals that almost 5% respondents were aware of the expression "FNS".58% of the respondents has enough food due to Below Poverty Line Yojana and Rashan card Yojana (B.P.L). 85% of the respondents chose all food is safe to eat. 15% of the respondents consume high quality of food through hygienic cooking preparation. 85% are showing a low awareness level concerning the health importance of good eating habits.Public distribution system indicating easy accessibility and availability. The utilization of public distribution was highest by the subject from lower socio economic group providing food and nutrition security to the poorest of poor. Public distribution users were more nutritionally secure then other users indicating that the money saved from buying subsidized grains was being utilize for purchasing foods from other food group. The major problems were poor quality grains due to poor storage facility thus jeopardising food and nutrition security.

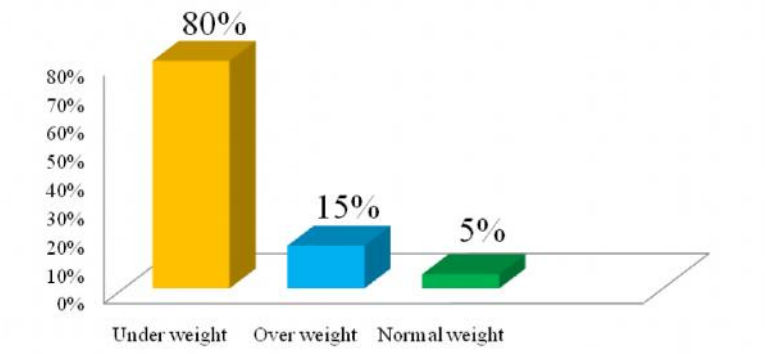

Conclusion : From the above analysis, it can be concluded that people are willing to change their diets, problem hunger is around. So, deduce food waste and target food for direct consumption.

Recommendation : Home gardening has been used as a sustainable strategy that can address multiple micronutrient deficiencies through dietary diversification (Cabaldaet al. 2011).

References :

1. Cabalda, A. B. Solon, P.R., Solon, J.A. and Solon, F.S. (2011) Home gardening is associated with Filipino Preschool children's Dietary Diversity. Journal of the Academy of Nutrition and Dietetics. 10. 1016.
2. Mello, J. A., Gans, K.M., Risica, P.M., Kirtania,V., Strolla, L.O., (2010). How is food insecurity associated with dietary behaviour? An analysis with low-income, ethnically diverse participants in a nutrition intervention study.Journal of the American Dietetic Association.110 ; 1906-1911.
3. Rana, M., Joane, M. and Yonna, S. (2016) Evaluation of food security, eating behaviour and awareness of low socio-economic lebanese women living in Akkar. Journal of Community and Public health nursing, 2 : 4. 100014.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. I
May-October, 2019
Pg. No. 8-14

Women in Communal Violence- Other Side of the Story: Indian Perspective

Chandra Vikas Maurya*

Abstract : *Communal violence has been a major concern of Indian society since very long time. As communalism is embedded with patriarchal notion, a long history is associated with the communal violence against women. In every communal violence, women suffer a lot more than man as they are viewed just as repositories of community honor. When two communities engage in a conflict, each community counts it as its best way to taking revenge by killing, raping or brutally assaulting women of opposite community. This kind ofact is the harsh reality of communal violence in India. This is the more influential narrative so far as the interface between women and communal violenceis concerned. In this narrative traditional scholarship envisages women primarily as "victims". Women's activism in support of communal agendas is grudgingly recognized and inadequately theorized. This paper tries to recounts the myriad ways in which women engage in violent communal politics and urges the need to push the boundaries of feminist researchto recognize and further unpack the complicated and ambivalent nature exhibited by these women. It has challenged the assumption that 'sisterhood is global'. In other words, it has become problematic to treat all women as being in the same category and thereby generalize their interests regardless of differences in race, class, ethnicity, nation and religion. As a result, though the institutionalization of patriarchy has been universal, the notion of women being united by common interests andexperiences has been deeplycontested.*

Keywords: Communal violence, women, patriarchy, honor.

(The author is pursuing his Ph. D.in Department of Political Science, University of Allahabad, Prayagraj.)

Introduction: Increasing levels of global conflict and political violence, and the higher profile of many ongoing simmering national-level confrontations, provide critical challenges for political scholars and practitioners alike. Numerous countries have endured decades of armed conflict and menace of political violence. Indeed, in those countries that have signed peace accords, levels of violence have often increased, particularly during the very fragile transition period to permanent peace.

Gender issues cut across all sectors of society, regardless of political, economic or social context, and their articulation in situations of political violence and armed conflict are often particularly marked. Consequently, the impact of armed conflict and political violence on gender relation and gender equality becomes a key issue.

There is extensive literature on political violence and armed conflict-both analytical and operational. However, the earlier literatures were largely gender-blind; with women's participation simply not identified.1Political violence and armed conflict were seen as male domains, executed by men, whether as armed forces, guerrilla groups, paramilitaries or peace-keeping forces. Later analysts tended to portray a simplistic division of roles; men were the perpetrators (in defense of the nation and their wives and children), while women were victims, particularly of sexual abuse forced abduction.2 Similar to this was the notion that related women to peace (passively) and men to war (aggression). Even when men were victims on the battlefield, they were portrayed as omnipotent masculine heroes. This

*Assistant Professor, Department of Political Science, S.D.J.P.G. College, Chandeshwar, Azamgarh

under-or-miss representation of the gendered causes, costs and consequences of violence has resulted in insufficient recognition of women's involvement and participation, both unavoidable and deliberate, in violent conflicts and of the de-linking of women from passive, peaceful stereotypes.

Recently, however, the analysis has expanded to include such issues as women's human rights abuse during conflict(often in their role as mother or wives), the vulnerability of internally displaced or refugee women as victims of war, and women's testimonies of their experience of conflict. Similarly, men's experiences as victims of abuse during conflict or as refugees or displaced persons are beginning to receive attentions. Nonetheless, the limited theorizing of the gendered nature of armed conflict and political violence-with such critical issues still not widely recognized except by feminist researchers and practitioners-has important implications for conflict and development assistance.

So for as, India is concerned, how religious nationalist discourses are creating the subject position of women by giving them a particular identity (religious/community) as opposed to the identity of citizen enjoying citizenship rights- has a greater implication on the women's positions and participation in the communal politics and in resulted communal violence. Scholarship on Indian women and nationalist movement has demonstrated that the question of women played a central part in the nationalist discourses before as well as at the inception of independent Indian nationhood. In the fervor of nationalist identity politics "rescue, reclaim and rehabilitation" of women became a critical means of self-representation of new India and Pakistan, as was evident by the problem of abducted Hindu and Muslim women on both sides of the border.

In ethnographic research, women are often portrayed as victims of violence as evident in the works of feminist theorist like, RituMenon and KamlaBhasin whose research is on the female subject of 1947 partition. Writing on the partition of India in "No women's Land: Women from Pakistan, India and Bangladesh write on the partition of India", They argue that the most predictable form of violence experienced by women, as women is when the women of one community are sexually assaulted by the men of other in an overt assertion of their identity and a simultaneous humiliation of the other by dishonoring their women.3 As a result of this dishonor, women either maintain a rigid silence surrounding their trauma, or fictionalize their account. On the other hand, recent scholarly work on the 1992 Hindu-Muslim riots and generally after 1980 has shown that women have often provoked, applauded and participated in violence against religious minorities.(Basu, Sarkar and Butalia).

The aim of this paper is to show that women's responsesto communal violence which are determined by their gendered upbringing, and how that upbringing affects their negotiation of identities in the private and in the public, in the context of communal violence. There are two dominant approaches regarding women's negotiation with communal violence. Firstly, communal violence brings suffering and pain for women. In every communal violence women and children become the soft target of violence, and they always find themselves on receiving end. Secondly, in India after 1980s, a new dimension emerged after Shah Bano case, and particularly in the background of Ram Janambhoomi Movement, that women's active participation in communal politics often appreciated and applauded.

While scholars like TanikaSarkar have provided a lot of insight into the increasing participation of women in Hindu Fundamentalist bodies and movements, specific attention to the nature, prevalence and severity of women's participation in violence, is something that requires more attention.4 Much of the literatures on this subject relate women's violence to the mobilization and wooing by SanghParivar organizations.5 At the height of Ram Janambhoomi Movement, and during the destruction of Babri Masjid, women participated in large numbers in destructive and violent activities, especially in Mumbai and several cities

in Gujarat.6Riots in Gujarat was the culmination of this trends of women's active participation in communal violence.

Seeing this trend of women's activism, questions emerge that, did it empower women by bringing their exposer in public and political realm after breaking the traditional boundary of family and home? Or did it only dividing women along religious line and legitimize patriarchal notion of communalism at the same time weakening genuine secular women's movement against patriarchal social structure? In this perspective, for understanding and answering the above questions, first we should go through the very gendering process of women in our society. After that we will try to understand the different pros and cons of women's active participation in communal and its implication on women's position in our society.

Gendering Process and Indian Women: A Theoretical Context : In order to understand the formation of both religious and national identities of women, it is necessary to take into account the theorization of feminist on the subject matter. Feminist like, Freitag mentions that community identity for women are shaped by "gendering process" where they fall into two strict categories, either the "mother/ goddesses" end of spectrum, or they are "restricted" as harlots.4 But she does not specify what these "gendering process" entail. However, for GayatriGopinath, the role of the women in Indian society seems to offer an answer to Freitag's gendering process. She states that patriarchal attitudes towards women in India situates the female gender as "the symbolic center for'home' and family'.5 The female gender becomes a symbol for home and family, and hence, a symbol for domesticity. In this construction of male identity, there is an attempt to confine women within domestic and private sphere (that is, 'home' and 'family'). Moreover, any kind of deviation from traditional gender roles is either condemned or ignored. This theorization that women are confined only to the domestic sphere, points to a gap in here reasoning when faced with question of their religious identities. If women in India are confined to the "private" sphere, and as some scholars (Peter Vander Veer) point out that communalism is a contestation of sacred space in "public" , then where do women fit into the context of communalism? If religious communities and national politics are delegated to the public arena, then where and how do women as familial beings negotiate their religious community identities and national identities? If riots, as some Pointe out, are violent events occurring out of religious differences in the public space, where do women stand in the event of riots and similar violent event? Gopinath's theorization fails to take these questions into account.

Gyanenra Pandey, however attempts to answer these questions when he points out that women, along with children, are usually victims when they come in contact with communal violence6 taking the instance of violence enacted on both sides of the new border during the 1947 partition of British India, he highlights the general view of the popular as violence always being "out there"7.From his interview Pandey concludes that violence is always presented as either happening on boundary that separates one's community from other or violence always occurs beyond the boundaries of one's community, religious and geographical. In this distinction of inside (the community) versus outside of (the communities),there is an echo of separation of the private and public, where one's community comprises the private, the familiar, while the outside or the other (communities), automatically falls in the public. Just like patriarchal view on female gender that portray females as "a side of pure and sacred spirituality"8 female victims of communal violence view their own community "pure" while the other communities are set outside this "pure" realm.9 Violence that is committed by one's community member is related to martyrdom or revenge for just cause, while violence committed by other religious communities is seen as communal violence. In this distinction, there is an attempt by female victims of violence to purify one's community, where the other is the aggressors and "not to be trusted".10We would argue that the

perpetrators conceptualized as the religious other is unequivocally seen as masculine, as opposed to the victimized religious community, which is in contrast, feminized. Similar to the predominantly female victims of communal violence, communities that are violated or suffer are also feminized. Thus, we can see a parallel emerging between suffering/victimized females and suffering/victimized communities.

Veena Das offers a differing perspective to this formulation of female and community victimhood. Through her investigation of women's negotiation of loss as a consequence of partition violence, Das explains the specific victimization of women (and children) during moments of communal violence. Through her analysis of accounts of abducted women during the 1947 partition, she argues that Indian nationalism "includes the appropriation of bodies of women as object on which the desire for nationalism "was inscribed through violence, like rape mutation and so on.11 The construction of female bodies as symbol of their respective religious communities and national honor allowed men to demonstrate their desire to gain superiority over the "other". Violence against women thus becomes violence against men. In other words, nation -states are built on the bodies of women, where men of different religious communities contest for power and authority over the nation by seeking to establish their control over bodies of women from the opposing religious communities. Therefore, nationalism is constructed on the bodies of women, which ironic, since the state occupies a public space, while women a private space in the Indian patriarchal imagination, according to Gopinath.

Das inverts Gopinath's view by situating female victims of communal violence in the public. According to Das, to understand the world that women inhabit post-violence and loss, it is necessary to approach this world through mourning.12 Das asserts that the experience of loss makes the voices of women "public" in the process of mourning.13This view is in contradiction to Pandey, and to some extent to Gopinath. Both point out that female identities (whatever personal, religious or communal) are confined to the private. However, according to Das it is the process of mourning in the event of loss, especially in the context of communal violence that Pandey refers to, that situate female voices in the "public" domain. Women express their loss through their body and language. Therefore, even in the silence, victimized women of communal violence objectify grief through their bodies (for example, mourning rituals as wailing), or through language, where there is a need to fictionalize their accounts of violence.14This shows that Indian female subjects in their negotiation of trauma as a result of communal violence occupy contradictory spaces, which is at once in the public, and at the same time, in the private.

Women as Active Participant in Communal Violence : In the interface between women and communal politics, traditional scholarship envisages women primarily as 'victims'. Women's activism in support of communal agendas is grudgingly recognized and inadequately theorized. Here we recounts the myriad ways in which women engage in violent communal politics and urges the need to push the boundaries of feminist research to recognize and further unpack the complicated and ambivalent nature exhibited by these women. It has challenged the assumption that 'sisterhood is global'. In other words, it has become problematic to treat all women as being in the same category and thereby generalize their interests regardless of differences in race, class, ethnicity, nation and religion. As a result, though the institutionalization of patriarchy has been universal, the notion of women being united by 'common' interests and experiences has been deeply contested.

Large numbers of women have readily responded to the calls of mobilization by various communal groups and movements. They have been complicit and self-willed participants in the process of community identity formation and have chosen to assert their distinct identity as members of a particular community. Women's support and participation

in communalism has manifested itself in the myriad ways: (1) offering tacit support to the movement, through mundane everyday activities like cooking, cleaning and preaching "communal hatred" to their children,(2) performing nurturing roles in communal movements, replicating their responsibilities in the domestic realm, for example, cooking for the rioters, offering them hideouts, hiding them from police, block arrests of leaders or even prevent fire-engines/relief workers reaching the 'other' community in riot situations. The 'Karsevaks' on their way to demolition of Babri Masjid in Ayodhya(1992) were given food packets by many women (3) participating in mass agitations Kashmiri women's support to Amarnath Shrine Board agitation(2008), and popular violence again in 2010, or women of the JamiaHafsa, the women's Islamic university located next to Lal Masjid, Islamabad demanding enforcement of sharia Laws in Pakistan. Sadhvi Uma Bharti and SadhviRitambhara delivered hate speeches and incited Hindu mobs to do violence against Muslims. (4) Feminization of violence, when women take part in looting, assaulting and violent demonstration as well as female vigilantism. Participation of women in the riots in Bombay (Mumbai) in 1992-93 and Gujrat(2002), Maya Kodnani, a gynecologist and then minister for women and child development in the BJP government declared guilty for participating in the carnage at NarodaPatiya (Ahmedabad) in February 2002 or more recently SadhviPragya Singh Takhur alleged to have been involved 2006 blasts in Malegaon in Maharashtra. (6) Founding communal organizations under the female leadership to encourage to activism and formulate their own campaigns. The RashtraSavikaSamiti (an affiliate to the RSS) was founded in 1936 to organize Hindu women for the Hindu Rashtra. There are Hindu communal women's outfit like the MahilaAghadi of the Shivsena and Durgavahini(the women's counterpart of the Bajrang Dal), the Dukhataran-e-Millat(daughters of faith) a Kashmiri all women's group often referred to as a 'soft 'terror outfit, recently founded by AshiyaAndrabi imposes puritanical and fundamentalist religious values, does moral policing and targets women travel around unveiled.

Women in communal organizations and movements see 'secularism' rather than 'patriarchy' as an opponent and seek to establish an ideal state based on religious precepts rather than a secular state. They constantly invoke 'aggressive masculinity' and advocate violence to achieve political goals. Interestingly while lives of some of the activist women and leaders are unusual, the latter endorse 'hetro-normative felinity' sanctioned by respective religious ideology though their own lives transgress many of these gender codes. The ideal women's place is the homeland reproducing and nurturing the community is their primary goal.

Women's agency was a critical factor in the shaping of a Hindu identity. Their agency worked subtly, and, at times invisibly. They drew boundaries between Hindu and Muslims in ways in which the homes of Hindus were closed to Muslims and their touch was seen as polluting. Their agency functioned in a way they could not transcend or cross their family and caste-community boundaries to identity their Muslim counterparts. Instead they often identified themselves as vulnerable Hindu women threatened by the 'sexually predatory Muslim marl. This stereotyping justified Hindus' violence against Muslims, for communal riots were often triggered by rumors of the sexual assault of Hindu women by Muslim men.

The participation of women activists in the movement in favor of Ram temple in Ayodhya, and in Hindu right wing organizations is an enduring legacy of the communalization of Hindu women in India. Indeed, the Brahmachrins of the past are turned into the sanyasins and sadhvis of today. This explains the prominent BJP women leaders' indifference to the rape and humiliation of Muslim women, and their refusal to take a gender-sensitive stand on the state government's brutal attitude and the calculated inaction of the police forces in Gujarat.

The Gujarat carnage demonstrates the most horrifying divide between the majority and minority women -the majority women emerged as the tormentors, while the minority appears as vulnerable victims. Everyday reactions of many ordinary Hindu women show how they, like their predecessors, continue to identify with majoritarianism, rather than empathize with sorrow, fear and insecurity of minority women.15 Instead of discarding their communal baggage and evaluating their historical legacies of exploitation in patriarchal structure and spooking the language of courage, sanity and personal freedom , women are living in so called 'false-consciousness' and are standing in such a way, which is widening the boundaries between Hindu and Muslim women us and them- instead blurring the line and forge a new kind of "us".

Yet participation in communal outfits accords a political visibility to women and movement outside the domestic realm. Their mobilization is achieved by invoking categories like 'community', 'religion', or 'nation'. Since each of these categories is seen as an extension of the family, the traditional domestic role of women is not seen to be eroded when they cross the boundaries of their homes and enter the public domain. Participation of women in times of 'crisis' when the community and religion is in deep danger does not take them away from their essential familial context.

Militant Hindu communalism envisions women as 'matrishakti' empowered mothers. Cultural nationalism in pre independence times considered women as symbols of cultural purity. This construction that sacrileges women's sexuality is resurrected by the Hindu communal discourses. The conception of feminist agency is guided by the ideal of Nari Shakti (women power) unlike Narimukti (emancipation of women). This power has to be used both against the perceived Muslim proliferation in the country and 'cultural corruption' from the west. Women's role is there by seemingly expansive, going beyond the family to embrace the nation.

So, while there are opportunities available to women to participate in public debates and politics that shape the lives of people and state, the aim of such politics is to ensure an 'ideal' patriarchal state and societal system, where women are domesticated, silenced and rendered invisible as they uphold the conservative norms of subdued femininity. The critical question then is about the kind of agency and empowerment these women exercise.

Findings: After analysis of different secondary sources and instances of women's active participation in communal violence, this paper finds that when Hindu women assume militant roles they do so 'without violating the norms of Hindu womanhood.' Women's active involvement does not translate their traditional subordinate position in society, because patriarchal ideology seeks to draw women out of their traditionally assigned roles in limited way to participate in riots and demonstrations. This dimension has created a big dilemma before secular women's movement that; does every woman share a common womanhood regardless of her particular religious and social background against patriarchal injustices or does there exist a layered position of women in our society?

Conclusion: In the praxis of women and communal politics, communalism is a deeply patriarchal ideology that seeks to draw women out of their homes in limited ways to participate in riots and demonstrations, and then push them back into their designated spaces and roles. Each instance of communal conflict is later used to bring home to women the danger they suffer from the 'other' community and the necessity therefore, of preserving the boundaries of their own community. Women's involvement in communal ideology and communal conflict has raised certain important questions of women activities and has challenged various assumptions, notably that women share an overarching commonality of experience that unites them as women and transcends their caste, class and religious divisions.

The whole gamut prevail an ideology of so called "false consciousness" and it lies in the way women's identities are constructed, which is forced and imposed rather than chosen by women themselves as a free citizen. There is, thus a difference between an identity which is 'forced' and an identity which one assumes through political consciousness. This distinction is useful in relation to construction of Muslim/ Hindu women's identities in India. For example, the pressure of belonging to a minority community forced Muslim women in India, like Shah Bano to temporarily suspend taking up the issues of divorce and maintenance on secular grounds since the challenge to Muslim Personal Law was perceived as a threat to the whole identity of the Muslim community. This means that we need to locate identities within power relations. The threat of Hindu domination forced these women into placing their Muslim identity in the foreground. Similarly in communal riots, for instance, an individual is identified as per his/her religion despite his/her own convictions/views.

The relationship of women to politicized religion and communalism is paradoxical and complex. The basic needs of women are not only linked to class and patriarchy as two separate but related categories, but religion and community the third aspect of this trinity also plays an important role in determining cultures, social interactions an behavioral patterns.

References:

1. Caroline O.N. Moser and Fiona C. Clark, "Victims, Perpetrators or Actors? Gender, Armed Conflict and Political Violence." Zed Books Ltd. New York. 10010, USA. Published in South Asia in 2001 by Kali for Women, New Delhi. 110016, p.3.
2. Ibid., p.4.
3. RituMenon and KamlaBhasin, "No women's Land: Women fromPakistan and Bangladesh writes on the partition of India", New Delhi: Women Unlimited. P. 23.
4. TanikaSarkar, "The Gender Predicament of the Hindu Right", In K.N. Panikkar, ed., The Concerned Indian's Guide to Communalism, Viking Penguin India, New Delhi, 1999, p. 148.
5. See articles in TanikaSarkar and UrvashiButalia eds., Women and the Hindu Right: A Collection of Essays, Kali for Women, New Delhi, 1995.
6. MadhuKishwar, "Religion and the Service of Nationalism", Oxford University Press, Delhi, 1998.
7. SandriaB. Freitag."Contesting in Public: Colonial Legacies andContemporary Communalism" Ludden pp. 221-231.
8. GayatriGopinath, "Nostalgia, Desire, Disaspora : South AsianSexualities in Motion" 2001. pp. 261-279
9. GyanendraPanday "Community and Violence : Recalling Partition" Economic and Political Weekly 3232 (1997): 2044
10. Ibid., 2037
11. Gopinath, op. cit., p. 263.
12. Pandey , op. cit., p. 2037.
13. Ibid., p. 2041.
14. Veena Das, "Language and Body :Transactions in the Construction ofPain." Daedalus 125.1, 1996. pp.67-91.
15. Ibid., p.67.
16. Ibid., p.68.
17. Ibid., p.69.
18. "The Hindu" Online edition of India's National Newspaper, Saturday, June 15, 2002. "Opinion" Leader page article. "Gujarat and MajorityWomen" by NonicaDutta.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. I
May-October, 2019
Pg. No. 15-23

Development Vis-A-Vis Environment Protection

Sachin Verma* & Swaraj Shukla**

Abstract : "Plans to protect air and water, wilderness and wildlife are in fact plans to protect man."

-Stewart Udall

Protection of environment is a global issue and it is not an isolated problem of an area or nation. Natural resources are depleting rapidly, creating scarcity problem for the next generation. Several people mainly poor segments of societies are suffering badly.

On the one hand, every country is trying to increase economic growth, focusing on material development ignoring the balance of nature just to alleviate living standard of their people and on the other hand, environmental problems are becoming complicated due to imprudent work of resources. The objective of the article is to study the relationship between the environment and development at the large scale. Another objective is to study the effects of quick economic extension on environment. What are the different factors responsible for the environment pollution? How can the environment pollution be controlled? We discuss about the different laws for environment protection, the role of judiciary and the International commitments by the world community to tackle with the increasing environmental hazards.

Though various platforms are used to spread awareness and to carve out new policies and strategies to face this growing challenge but it seems to be distorted as the real conflict is not between conservation and development but between environment and the uncontrolled exploitation of man and earth in the name of efficiency.

Key Words : Environment, Development, Laws, Protection, Sustainable Development.

Introduction : Human activities directly or indirectly affect the environment adversely. The word Environment has its origin from French word 'Environer/Environner' meaning 'neighbourhood'. As we all know that environment is our fundamental pillar of our life. It gives air to breathe, water to drink, food to eat and land where we are living. Whatever we see in our surroundings is environment. Our environment keeps on changing, it's all because of our needs, they are increasing day by day; we are therefore modifying and at times destroying our nature's gift. Environment may be defined as encompassing in which organism lives. Suffice it to say that it includes the physical environment, the chemical environment and the biological environment. The abiotic Environment includes Air (atmosphere), water (hydrosphere) and land (lithosphere) and biotic Environment contains plants, animals and other natural things.

All-natural organisms are directly dependent on environment for fulfillment of their livelihood. Man is also completely dependent on environment to secure their needs for life. These needs are basic needs of the man such as bread, food and shelter. Inspite of these needs there are other societal needs such as enjoyment, health, relationships etc. These things which play a very important role in survival of man's life and give pleasure to him are known as resources. The resources are natural things which come from environment. The careful use and distribution of these natural resources for welfare and betterment of man's life is called conservation.

*LL.B.(Hons) Faculty of Law, University of Lucknow.
**LL.B.(Hons) Faculty of Law, University of Lucknow.

The Encyclopedia Britannica (B 1998, IV: 512) defined environment as: "the complex of physical, chemical, and biotic factors that act upon an organism or an ecological community and ultimately determine its form and survival". The components of environment can be broadly classified as follows-

1)-Physical Environment
2)-Biotic Environment
3)-Social Environment

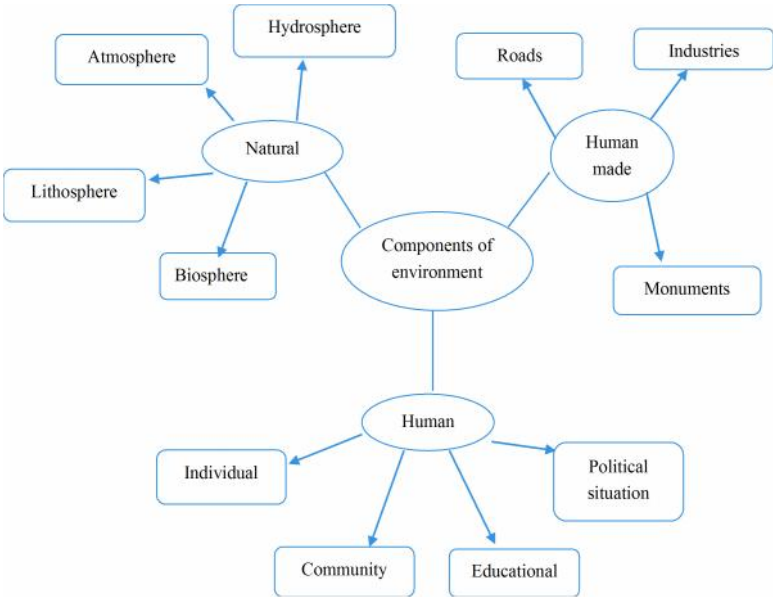

The Encyclopedia Britannica (EB 1998, IV: 354) Ecology refers to the "study of relationships between organisms and their environment".

Laws Related to Environment Protection in India : In India there are many laws related to the protection of environment, which are discussed below-

Constitutional provisions - Indian constitution commenced in the year 1950, there were no special provision relating to the protection of environment, because the constructor of our constitution not gave much importance to the protection of environment. But with the development of industry and other developments in the field of technology, environment protection became a big challenge not only before India but also before whole word.

The development took place in the field of environment protection, when the 44th Constitutional Amendment Act 1976, took place, by this amendment some aspects were added for the preservation of forest and wildlife in country. As a result of this amendment, the constitution has so many provisions for the protection of environment. Some of them were given below-

- **Part 4: Directive principal of state policy (Article 48A) :** Protection and improvement of environment and safeguarding of forests and wild life-*The state shall endeavour to protect and improve the environment and to safeguard the forests and wild life of the country.*[1]
- **Part 4th A: Fundamental duties (Article 51A) :** *It shall be the duty of every citizen of India- (g)...to protect and improve the natural environment including forests, lakes, rivers and wildlife, and to have compassion for living creatures.*[2]

Other laws for Environment Protection in India : Several Acts passed by parliament for the protection of environment and wildlife are-

- **The Environment Protection Act, 1986**[3] **:** The Environment (Protection) Act, 1986 was enacted under Article 253[4] of the Indian constitution in the wake of

Bhopal Gas Tragedy. The Preamble to the Act provides that the purpose of the Act is to implement the decisions made at the United Nations Human Environment Conference[5]. There are following rule of this act:

- The scheme on labeling of environment friendly products (ECOMARK)[6].
- Eco-sensitive zone
- Noise pollution (regulation and control) rules, 2000
- Environmental impact assessment notification amended 2002

❖ **The Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974[7] :** The problem of water pollution setting aside water scarcity assumes special significance in India**.** The act was enacted by Parliament in 1974 under Article 252 of the constitution of India. The Act was amended in 1978 and 1988. An act to furnish for the elimination and moderate water pollution.

❖ **The Indian Forest Act, 1927[8] :** The Preamble of the act provides that the act places emphasis on regulation of transit of forest produce and the duty leviable on timber and other forest produce.

❖ **The Air (Prevention and Control of Pollution) Act 1981[9] :** This act was enacted by parliament under Article 253 of the constitution in 1981. The preamble of the Act provides that the act has been enacted to implement the decisions made at the United Nations Human Environment Conference[10]. The act provides for the prevention, control and abatement of air pollution.

❖ **The Forest Policy, 1988[11] :** This policy was made by Indian government in the year 1988. This policy emphasized mainly on 2 objectives, first on the ecological stability and secondly on social justice. Basic objects of the policy are given below[12]–

i. Maintenance of environmental stability through preservation and, where necessary, restoration of the ecological balance that has been adversely disturbed by serious depletion of the forests of the country.

ii. Conserving the natural heritage of the country by preserving the remaining natural forests with the vast variety of flora and fauna, which represent the remarkable biological diversity and genetic resources of the country.

iii. Checking soil erosion and denudation in the catchment areas of rivers, lakes, reservoirs in the interest of soil and water conservation, for mitigating floods and droughts and for the retardation of siltation of reservoirs.

iv. Checking the extension of sand-dunes in the desert areas of Rajasthan and along the coastal tracts.

v. Increasing substantially the forest/tree cover in the country through massive afforestation and social forestry programs, especially on all denuded, degraded and unproductive lands.

vi. Meeting the requirements of fuel wood, fodder, minor forest produce and small timber of the rural and tribal populations.

vii. Increasing the productivity of forests to meet essential national needs.

viii. Encouraging efficient utilization of forest produce and maximizing substitution of wood.

ix. Creating a massive people's movement with the involvement of women, for achieving these objectives and to minimize pressure on existing forests.

❖ **The National Environment Tribunal Act, 1995[13] :** This act was enacted in the year of 1995. This act provides for strict liability damages out of any accident occurring while handing any hazardous substance and for the establishment of a national environment tribunal for effective and expeditious disposal of cases arising from such accident, with a view to giving relief and compensation for damages to

persons, property and the environment and for maters connected there with or incidental thereto.

- **The Wildlife (Protection) Amendment Act, 2002[14] :** The Wild Life (Protection) Amendment Act, 2002 is an Act to provide for the protection of wild animals, birds and plants and for matters connected therewith or ancillary or incidental thereto with a view to ensuring the ecological and environmental security of the country[15].
- **The Biological Diversity Act, 2002[16] :** The biological diversity act, 2002 is an act of the parliament of India for preservation of biological diversity in India, and provides mechanism for equitable sharing of benefits arising out of the use of traditional biological recourses and knowledge. The Act was enacted to meet the obligations under convention on biological diversity (CBD), to which India is a party.
- **The Schedule Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006[17] :** An act to recognize and vest the forest rights and occupation in forest land in forest dwelling schedule tribes who have been residing in such forests for generations but whose rights could not be recorded, to provides for framework for the forest rights so vested and nature of evidence required for such recognition and vesting in respect of forest land..

Provision of Indian Penal Code (IPC) relating to environment protection : The Indian Penal Code has a chapter on offences affecting Public Health, Safety, Convenience, Decency and Morals.[18]In Indian Penal Code one of the provisions is stated "a person is guilty of a public nuisance who does any act or is guilty of an illegal omission which causes any common injury, danger or annoyance to the public or to the people in general who dwell or occupy property in the vicinity, or which must necessarily cause injury, obstruction, danger, or annoyance to persons who may have occasion to use any public right."[19] The section further explains that a common nuisance is not excusable on the ground that it causes some convenience or advantage. Other concerned provisions are: a "Negligent act likely to spread infection or disease dangerous to life"[20], a "Malignant act likely to spread infection or disease dangerous to life"[21], "Making atmosphere noxious to health"[22].But the essential requirement of the provision to punish a man is the guilty intention of the accused, i.e. either the act of the accused should be negligent, malignant or voluntary, which vitiates the atmosphere. In case of public nuisance, the Penal Code provides for fines up to Rs. 200/- by way of punishment[23] and for making the atmosphere noxious to health Rs. 500/- only[24].The punishments are too meager to meet the objectives. With these penal provisions, it is not possible to check environmental pollution.

Role of Judiciary in Environment Protection : Supreme Court has made a significant contribution to the welfare of the people by using Article 21[25] for the improvement of the environment. The expansive interpretation of 'life' in Article 21 has led to the salutary development of an environmental jurisprudence in India. Although a number of statutes have been enacted with a view to protect environment against pollution, and administrative machinery has been put in place for the purpose of enforcement of these statutes, the unfortunate fact remains that the administration has done nothing concrete towards reducing environmental pollution. The word 'environment' has a broad spectrum and within its ambit fall "hygienic atmosphere and ecological balance".

The state is thus obligated to maintain hygienic atmosphere and ecological balance. Article 21[26] protects right to life as a Fundamental Right, and it encompasses within its ambit enjoyment of life and right to life with human dignity, protection and preservation of environment, ecological balance free from air and water pollution, without which life cannot be enjoyed. Environmental, ecological, air and water pollution etc. amount to violation of Article 21. Hygienic environment is thus an integral fact of the right to healthy life as it is not

possible to live with human dignity without a humane and healthy environment. There is, therefore, a constitutional imperative on the government not only to ensure and safe guard proper environment but also to take adequate measures to promote, protect and improve both the manmade and natural environment. The Supreme Court has reiterated the public trust doctrine in relation to conservation of forests, i.e. the Government held them in trusteeship for the free and unimpeded use of the general public. The Supreme Court has emphasized that environment is not the property of any state but is a national asset and that it is the obligation of all to conserve the same and its proper utilization must have regard to the principles of sustainable development and intergenerational equity.[27]

In Subhash Kumar v State of Bihar[28] the Apex Court has held that enjoyment of pollution free environment is included in the right to life under Art. 21. The Court has observed: "Right to live is a fundamental right under Article 21 of the Constitution and it includes the right of pollution free water and air for full enjoyment of life. If anything endangers or impairs that quality of life in derogation of laws, a citizen has right to have recourse to Article 32 of the Constitution for removing the pollution of air or water which may be detrimental to the quality of life".[29]

In A.P. Pollution Control Board v Prof. M.V. Nayudu.[30] "The supreme court has made very valuable suggestions for improvement of adjudicatory machinery under the various environment laws. The burden of these suggestions as that in all environmental courts, tribunals and appellate authorities, there should be a judge of the rank of a High Court or a Supreme Court judge, sitting or retired and a scientist or a group of scientist of high ranking and experience so as to help proper and fair adjudication of disputes relating to environment and pollution."

In M.C Mehta v. Union of India[31], the Supreme Court ordered for the closure of tanneries which were polluting water.

In M.C. Mehta v. Union of India[32], the Supreme Court ordered and issued several guidelines and direction for the protection of Taj Mahal, an ancient monument from environmental degradation.

In Vellore Citizens Welfare Forum v. Union of India[33], the court took cognizance of environmental problems being caused by tanneries in Tamil Nadu which are polluting all water resources rivers, canals, underground water and agriculture land. The court issued several directions to deal with the problems.

International Treaty/Agreements on Environment Protection : Many treaties were made by various countries on international level for the protection of environment. Some of them are mentioned below-

1) **Vienna convention[34]-** The Vienna convention was adopted in 1985 and entered into force on 22nd September, 1988. The objectives of the convention were for parties to promote cooperation by means of systematic observation, research and information exchange on the effects of human activities on ozone layer and to adopt legislative or administrative measures against activities likely to have adverse effects on the ozone layer.
2) **Basel convention[35]-** It was adopted on 22nd March 1989 by the conference of Plenipotentiaries in Basel, Switzerland, in response to a public outcry following the discovery, in the 1980s, in Africa and other parts of the developing world of deposits of toxic wastes imported from abroad. The basic purpose of the convention was to ensure that states have full ability to protect their own environment and to enable them to not permit actions which might have adverse effects on the environment such as a Transboundary movement of hazardous waste.
3) **Biodiversity Convention[36]-** The convention was opened for signature on 5th June 1992 at the United Nation Conference on Environment and Development (The Rio

"Earth Summit"), it remained open for signature until 4th June 1993, and by that time it had received 168 signatures. The convention entered into forced on 29th December 1993.

4) **Convention on Climate Change[37]-** It is an international environmental treaty that was produced at the United Nations Conference on Environmental and Development (UNCED). The convention sets an overall framework for intergovernmental efforts to tackle the challenge posed by climate change. It recognized that the climate system is a shared recourse whose stability can be affected by industrial and other emissions of carbon dioxide and other greenhouse gases.
5) **Paris Agreement[38]-** On 12th December 2015, the Paris agreement was adopted. 192 countries including India signed this agreement and 94 countries ratified this agreement along with India. It will come into force on 4th November 2016 after ratification by 55 UNFCCC parties, according for 55% of global greenhouse gas emissions.

India's ratification of Paris agreement : India ratified the Paris agreement on climate change on 2nd October 2016. India is the world's 4th largest carbon emitter accounting for 4.1% of total global emission, is the 62nd nation to ratify this agreement.

India's commitment in Paris agreement[39]-

- ✓ Reduction in emissions intensity per unit GDP by 33 to 35% below the 2005 level by 2030.
- ✓ The aims are to produce 40% of the total electricity from sources other than fossil fuels.
- ✓ Creation of additional carbon sink of 2.5 to 3 billion tons of carbon-dioxide through extra forest and tree cover by 2030.
- ✓ Voluntarily installing 175 GW of renewable power capacity by 2022 targets are 100 GW of electricity from solar energy, of which 40 GW would be through individual rooftop system.

Apart from these conventions and agreements there are many conventions which were concluded at international level.

Prevailing Situation : The enhanced pace of developmental activities and speedy urbanization have resulted in stress on natural resources and quality of life. In the current scenario, it can be seen by everyone that growing pollution in various environmental media is deteriorating air and water quality, higher noise levels, increasing vehicular emission etc. Environmental degradation is an issue related to every individual, state, country and the whole world. The consequences of environmental degradation are inevitable. It possesses great threat to human security. Environmental challenges include- a) Climate change, b) Pollution, c) Deforestation, d) Water scarcity, e) Soil erosion.

All these factors not only impose challenge to environment but also pave way for natural calamities. "Human security can no longer be understood in purely military terms. Rather it must encompass economic development, social justice, environmental protection, disarmament, and respect for human rights and rule of law"[40]. What it implies that the human security has not remained a narrow concept but it requires more cautious attention and some solid stands by global community at large otherwise the outcomes could be even more disastrous than what human race has faced. "Large scale displacement of civilian populations… environmental disasters present a direct threat to human security"[41]

Factors Responsible : The major source or cause of environmental pollution includes the following-

1) Industrialization : Rapid rate of industrialization resulted into rapid rate of exploitation of natural resources and increased industrial output. The industries all over the world that brought wealth and affluence, made inroads in the biosphere and disturbed the environmental balances**.** Human needs are unlimited. Discovery of new products and the production of luxuries to suit the changing life style are accomplished by the process of industrialization. It also is the key to the economic development of a nation. Industries, during the processing or manufacturing or intermediate chemicals and end-products, produce waste materials and useless by-products. Each industry is coupled with a discharge of one type or another which are dangerous or potentially dangerous pollutants directly or indirectly.

2) Population Overgrowth : One of the factors responsible for environment degradation is the population growth or unstable population density. It effects in following ways-

2.1) Waste generation : Due to his disparaging activities, man has dumped more and more waste in the environment. As the man-made waste is not transformed, it causes degradation and the capacity of environment to absorb more waste is reduced.

2.2) Deforestation : Forests have been wiped out in the name of providing housing, industrial land to the human. New colonies are being established every minute, National highway and other developmental activities are leading to the deforestation.

3) Combustion of fossil fuels : The combustion of fossil fuel pollutes the air, soil and the water with noxious gases. It contaminates the surroundings with undesirable gases, smoke, dust, fume, mist, odour or chemical particulates which are injurious to human beings, plants and animals. Major pollutants are- a) Carbon Oxides(CO & CO_2), b) Nitrogen Oxide, c) Sulphur Oxides, d) Hydrocarbons, e) Particulate Matters.

Suggestions : There cannot be any radical solution to the problem. At the beginning of the 21st century environmental issues have emerged as a major concern for the welfare of people. In India, the concept of environment protection can be seen starting from the period of Vedas. As per Rig-Veda[42]

O mother earth let thy bosom be free from sickness and decay
May we through long life
Be active and vigilant
And serve thee with
Devotion

—Rig-Veda

Moreover, father of Nation, Mahatma Gandhi also focused his work on environment along with freedom movement, equality and social justice. As per Father of the Nation[43]

"the earth provides enough
to satisfy every man's need,
but not for every man's greed".

—Mahatma Gandhi

1) Social Awareness of Environmental Pollution : The level of commitment to pollution controls and effective outcomes is very much subject to public opinion. The first step to tackle any problem, be it related to health, environment or any other issue is creating a social awareness and same is the case of environment pollution, government need to initiate a large scale awareness programs to draw the attention of people towards the biggest problem of this century. Secondly people must understand the prevailing environmental, climatic conditions of their surroundings and must try to adapt more eco friendly activities.

2) Education of Environmental Pollution Control Personnel for Industry and Local Government : Controlling environmental pollution requires not just legislation but people capable of effectively implementing the legislation. Companies, as the most common polluters, need staffs who understand pollution issues, while local governments need employees to monitor pollution in industry.

3) Sustainable development : Sustainable development is development which meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs.[44]In the extensive discussion and use of the concept since then, there has generally been recognition of three aspects of sustainable development[45].

a) Economic[46] : An economically sustainable system must be able to produce goods and services on a continuing basis, to maintain manageable levels of government and external debt, and to avoid extreme sectoral imbalances which damage agricultural or industrial production.

b) Environmental[47] : An environmentally sustainable system must maintain a stable resource base, avoiding over-exploitation of renewable resource systems or environmental sink functions, and depleting non-renewable resources only to the extent that investment is made in adequate substitutes. This includes maintenance of biodiversity, atmospheric stability, and other ecosystem functions not ordinarily classed as economic resources.

c) Social[48] : A socially sustainable system must achieve distributional equity, adequateprovision of social services including health and education, gender equity, and politicalaccountability and participation.

Conclusion : We can very well notice theabnormal behavior of the seasons, while modern societies face growing concern about global environmental issues; developing countries are experiencing multifarious, serious and fast-growing pollution problems of their own. Environmental pollution is a wider social issue and we have to come forward to resolve this issue.

The fundamental question before us today is whether we can allow the destruction of the environmentleading to the destruction of all living creatures including human beings on this planet. The answer is obviously no despite our brutal exploitation of our forests indiscriminate quarrying, pollution of rivers and other resources, it is possible to protect the deteriorating environment through proper policies and management. Sustainable Development is the need for environment protection. It would be too late tomorrow, if we fail to restore the environmental balance right now.

References :

1. Indian Constitution bare Act provision
2. Indian Constitution bare Act provision
3. Act no. 29 of 1986.
4. Art.253 of the Constitution states: 253. Legislation for giving effect to international agreements. - Notwithstanding anything in the foregoing provisions of this Chapter, Parliament has power to make any law for the whole or any part of the territory of India for implementing any treaty, agreement or convention with any other country or countries or any decision made at any international conference, association or other body.
5. United Nations Conference on the Human Environment, Stockholm, Sweden, 5-16 June 1972.
6. Ecomark is a certification mark issued by Bureau of Indian Standards.
7. Act no. 6 of 1974.
8. Act no. 16 of 1927.
9. Act no. 14 of 1981.
10. Supra note 5.
11. Resolution no. 3-1/86-FP.
12. Ibid.
13. At no. 27 of 1995.
14. Act no. 16 of 2003.
15. www.Indianenvironmentportal.org.in.
16. Act no. 18 of 2003.
17. Act no. 2 0f 2007.
18. Indian Penal Code 1860, Chapter XIV.
19. Indian Penal Code 1860, Article 268.

20. Indian Penal Code 1860, Article 269.
21. Indian Penal Code 1860, Article 270.
22. Indian Penal Code 1860, Article 278.
23. Indian Penal Code 1860, Article 290.
24. Indian Penal Code 1860, Article 78.
25. Constitution of India, Article 21.
26. Ibid.
27. T.N. GodavarmanThirumulpad v Union of India, (2006) 1 SCC 1: AIR 2005 SC 4256.
28. AIR 1991 SC 420: (1991) 1 SCC 598 For cases on the protection of environment, see, inter alia, Rural Litigation and Entitlement Kendra v State of Uttar Pradesh, AIR 1987 SC 359 : 1986 Supp SCC 517; Sri Sachidanand Pandey v State of West Bengal, AIR 1987 SC 1109; M.C. Mehta v Union of India, AIR 1987 SC 1086; S. Jagannath v Union of India, AIR 1997 SC 811; Obayya Pujari v Member Secretary, Karnataka State Pollution Control Board, Banglore, AIR 1999 Kant. 157; A.P. Pollution Control Board v Prof. M.V. Nayudu, AIR 1999 SC 812: (1999) 2 SCC 718; M.C. Mehta v Kamal Nath, (2000) 6 SCC 213; Narmada Bachao Angolan v Union of India, (2000) 10 SCC 664: AIR 2000 SC 3751.
29. Ibid.
30. AIR 1999 SC 812: (1999) 2 SCC 718.
31. AIR 1988 SC 103.
32. AIR 1997 SC 734.
33. AIR 1996 5 SCC 647.
34. Vienna Convention for the Protection of the Ozone Layer, Vienna, 22 March 1985.
35. Basel Convention on the Control of Transboundary Movements of Hazardous Wastes and Their disposal, Basel; Switzerland, 22 March 1989.
36. Convention on Biological Diversity (CBD), Rio De Janeiro, 29 December 1993.
37. United Nations Frame Work Convention on Climate Change (UNFCCC), Rio De Janeiro, 9 May 1992.
38. Paris Agreement on Climate Change, New York City, 2016.
39. Dr Gazala Habib, International environmental agreements, https://www.scribd.com/document/420584075.
40. Kofi Annan: "Towards a Culture of Peace", at: http://www.unesco.org/opi/lettres/Text/Anglais/AnnanE.html
41. Kofi Annan: Report of the Secretary General on the Work of the Organization,UNGA, 55th session, Supplement No. 1 (A/55/1), (New York: UN, 2000):4.
42. https://www.scribd.com/document/62981382/Environment-Degradatio
43. Ibid.
44. World Commission on Environment and Development (1987). Our Common Future.
45. See e.g. Holmberg ed. (1992), Making Development Sustainable, Chapter 1; Reed ed. (1997),Structural Adjustment, the Environment and Sustainable Development, Chapter 2
46. Basic Principles of Sustainable Development, Jonathan M. Harris, June 2000.
47. Ibid.
48. Ibid.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. I
May-October, 2019
Pg. No. 24-27

R.K. Narayan {The Making of the Novelist}

Dr. Rajesh Kumar Mishra*

The works of a writer, more so of a novelist, are closely related to his life. The places he has lived in, the people he has met and the events that have occurred in his life exercise a direct and decisive influence on what he writes. Narayan says that the writer in India, "hopes to express through his novels and stories the way of the life of the group with whose psychology and background he is most familiar, and he hopes that his picture will not only appeal to his own circle but also to a larger audience outside." The statement is wholly true about Narayan himself. On going through the pages of Narayan's novels and short stories one finds in the author a confidential friend who has disclosed the secrets of his own life and the life of the people he has come in contact with. The different stages of his life, right from his childhood in Madras, through the youthful days with his wife, down to his stay in Mysore are pictured in his novels. Every novel reveals a part of his social vision. Acquaintance with the main currents of his life, therefore, is a pre-requisite for a researcher who undertakes to study his

Novels. It is with this object that a briefs sketch of the life of R.K. Narayan is given here which, it is believed, will prove helpful for adequate understanding and evaluation of his novels.

R.K. Narayan was born in a Brahmin family at Madras on October 10, 1906. 'R' in his name stand for Rasipuram, a taluq in the district of Salem to which Narayan's ancestors belonged, 'K' Stand for Krishnaswami that is his father's name. narayan is the abridged from his own name, Narayanswami. 'Swami' was removed from his name by the publisher of his first novel. His parents left him with his grandmother at Madras because his father was employed as a teacher in a government school in Mysore. He called his grandmother Ammani who loved him greatly. He was called 'Kunjappa' in his childhood which means 'little one'. He was so much attached to his grandmother that a grandmother is a common character in his novels.

"He was the only child of his house, and Ammani, instead of disciplining him, gorged him with sweet-meats and, when he was especially good, with betel nuts. Kunjappa (little fellow), as she called him, grew up into a wild, idle lad."[2] Narayan describes his childhood thus:

"All day long, I sat half buried in sand piled in a corner of our garden, raising castles and mountain - ranges, unaware of the fierce Madras sun overhead. I had a peacock and monkey for my company."[3]

He was sent to Lutheran Mission School where he developed a dislike for the education system. His grandmother taught him multiplication and Tamil alphabet at home. In the school Hindu gods were abused by the teachers who were all converts. Christian missionaries moved about the city. He was glad to see the audience rain mud and stone on these preachers, he joined a procession protesting against the Rowlett Act in 1916, the nationalist procession in Madras.

*Lecturer, Department of English, Baba Prashiddha Narayan P.G. College, Bagthari, Murara, Jaunpur

He was transferred to C.R.C. High School where he was more interested in scouting than in his school in Madras. His uncle got him admitted to Christian College High School. The school was at a distance from the home. He used to return home in the evening by an electric train as a ticketless travelers.

Narayan's father was now posted as headmaster of Maharaja's Collegiate High School at Mysore. He came to know about his son's idleness and sent for him. Narayan was admitted to his father's school much against his desire. Being the Headmaster's son he had privileges in the school, but he had no interest in his lessons. He failed at the university Entrance Examination of the High School, Recollecting those days Narayan writes:

" I was opposed to the system of being prescribed a set of books by an anonymous soulless body of text-book-prescribes, and of being stamped good or bad as a result of such studies. My natural aversion to academic education was further strengthened when I came across an essay by Rabindra Nath Tagore on education. It confirmed my own precious conclusions on the subject. I liked to be free to read what I pleased and not be examined at all."[4]

After his failure at the entrances Examination he had one year's free time to read what he pleased. Palgrave's Golden Treasury, Tagore's Gitanjali and Keat's poems were some of his choice readings. He also read the novels of Scott, Dickens, Tolstoy, Thomas Hardy and others with relish. He was more interested in observing nature than in reading his text-book. The Chamundi Temple was his favorite resort. As his father was greatly interested in books and magazines, he got much of his choice readings at home. He was regular reader of Such magazines as Little Folks, Nineteenth Century and after Boy's Own Paper, Strand Magazine, Mercury, The Spectator, The Times Literary Supplement and The Manchester Gaurdian.

He also started writing at this stage. His younger brother Seenu and some of his friends gave him a patient hearing and praised him. He composed a long poem entitled 'Divine Music' which he sent to the magazines for publication and received the printed rejection slips in return.

He passed the University Entrance Examination in 1926 and was admitted to the B.A. class of the Maharaja's College. He studied English Literature, History, Economics and Politics and enjoyed the lectures on Shakespeare and Indian History. Other lectures were simply boring. After repeated failures he graduated in 1930 and left the college for good.

His father having retired, Narayan was not in search of a job. Three younger brother were at school. His elder brother was already employed. By dint of the father's efforts he was employed as a teacher at a government school at Chennapatna where he had spent some time of his early boy-hood with his father who was the Headmaster there. Narayan, however, did not prove a successful teacher. The job bored him and he resigned it.

He returned to Mysore to live with his father with the determination to live by writing alone. On an auspicious day, Vijaya Dashami, he wrote the first sentence of his first novel Swami and Friends. He engaged himself wholly in writing his novel. Purna, his neighbor and friend, appreciated his writing. He also took to journalism and his first year's total income from writing was 'about nine rupees and twelve annas.'

He married Rajam, the daughter of a headmaster in Coimbtore, in 1993. He loved his wife greatly. At this time his friend Purna, who was now in England, and on the recommendation of Graham Greene, Swami and Friends was published by Hamish Hamilton in 1935. Its sale was discouraging. His novel, The Bachelor of Arts, was published again with the efforts of Graham Greens, by Welson in 1937.

His father died in Feb. 1937. There arose before him the problem of supporting the family. He started writing for the Marry Magazine at ten rupees a week. It was then that his third novel, The Dark Room, was published by Macmillan (1938) again on the recommendation of Graham Greene. With the help of his friend Purna, he was commissioned by the government of Mysore to write a travel book on Mysore. He was provided all facilities by the government to write the book. The book was written but, to his utter despair, he received no money for it. His wife bore him a girl-child whom they called hema. His liabilities were increasing but assets showed little improvement. Therefore, in 1939, he entered into a contract with The Hindu of Madras to write a sketch of a story every week for its Sunday columns at thirty rupees per article.

His conjugal life was happy. He loved his wife deeply. When she went to her father's house, he wrote to her regularly and was very annoyed if she did not respond likewise. Her overstay caused him worry. His dear wife died of typhoid in 1939 leaving him in utter desolation. The joy of his life was gone and he stopped even writing. Once he went to Madras for a change where he came across Raghunath Rao whose psychic experiment profoundly affected his life and saved him from disintegration. He could talk to his dead wife (spirit) through Mr. Rao's automatic writing. He hyms of practical psychic contacts and attained an understanding of Life and Death. He resumed his normal life and wrote a novel based on his personal experiences which was published as The English Teacher in 1944 by Eyre and spottiswoode where Graham Greene was now a Director. Narayan writes about The English Teacher thus:

"More than any other book, The English Teacher is autobiographical in content, very little part of it being fiction."[5]

The disruption caused by the second World war had its repercussions on Narayan's career too. Neither politics nor the war interested him. On the suggestion of his friends he edited and published a quarterly named Indian Thought in which he was assisted by Mr. Sampath, the printer. This very printer became the main character of his next novel, Mr. Sampath, that was published in 1949.

During this period he had to face the housing problem. His family had been living in a rented house. His young landlord started troubling him. People advised him to go to the court but he preferred to change the house. Very soon he built his own house at Yadavagiri that was completed in 1948. He had been living in that house ever since.

His daughter was married in 1956 with all pomp and show. It was at his opportune time that the Rockfeller Foundation offered him a travel grant which enabled him to visit the U.S.A. in 1956. This was Narayan's first journey outside India. He wrote The Guide, the best known novel, during his three months stay at Berkley. Dev Anand a film producer, made in into a film later on. This novel also won him the National Prize of Sahitya Academy. Many other novels and short stories were written by him one after the other. My Dateless Diary (1960) is a beautiful sketch of the reminiscences of his stay in Newyork. The Ramayan (1972) is Kamban's story retold by Narayan in simple English prose. My Days (1974) the author's autobiography, is as enjoyable as a novel.

His latest novel The Painter of Signs was published first in 1976 in America, the Indian edition came out in 1977. It deals with Family planning as its main theme.

As a result of read in the Thoreau's Walden and similar other works, he was driven 'back to the soil.' He secured an acre of land at Bangalore and grows crops on it. He lives permanently at Mysore and visit Bangalore occasionally where he stays with his daughter.

Narayan spoke three languages fluently. Tamil was his mother-tounge, Kannada was the Language of Mysore which was his language for all practical purpose and English was the language that Narayan found most convenient to express himself in.

The Works of R.K. Narayan : R.K. Narayan is a writer who lives by writing alone soon after his graduation he took to journalism and novel writing which became his life-long occupation. His literary works can be classified under the following four categories:

(a) Novels:

(1)	Swami and Friends	1935
(2)	The Bachelor of Art	1937
(3)	The Dark Room	1938
(4)	The English Teacher	1945
(5)	Mr. Sampath	1949
(6)	The Financial Expert	1952
(7)	Waiting for the Mahatma	1955
(8)	The Guide	1958
(9)	The Man-Eater of Malgudi	1962
(10)	The Vender of Sweets	1967
(11)	The Painter of Signs	1976

b. Short Stories : He had published over 200 short stories which were collected under the following titles:

(1)	Malgudi Days	1941
(2)	Dodu and Other Stories	1943
(3)	Cyclone and Other Stories	1944
(4)	An Astrologer's Day and Other Stories	1947
(5)	Lawley Road	1956
(6)	A Horse and Two Goats	1970

c. Stories Re-told : He had retold in his own way the stories of Indian epics and mythological books which were published in two volumes:

(1)	Gods, Demons and Others	1965
(2)	The Ramayan	1972

d. Essays, Reminiscences, Travelogues and Autobiography:

(1)	Next Sunday (Essays)	1956
(2)	My Dateless Diary (Reminiscences of his travel to U.S.A.)	1960
(3)	The Reluctant Guru (Reminiscences of his travel to U.S.A.)	1960
(4)	My Days (Autobiography)	1974

In addition to the works listed above, Narayan had Published profusely in magazines and journals. He had written and it was hoped that he would enrich literature by more nature works.

References :

1. Special Atlantic Monthly Supplement on India, 1972.
2. Mehta Ved: John is easy to please, p. 140.
3. Narayan, R.K. : My Days, p. 3.
4. Ibid, p. 56.
5. Ibid, pp. 134 - 135.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. I
May-October, 2019
Pg. No. 28-33

Cinematic Adaption of Satyajit Ray's Satranj Ke Khiladi: A Critical Analysis

Triloki Nath*

Abstract : Adaptation is the process to adapt a specific form of any literary artifacts such as drama, novel, short stories into other medium of cultural representation.It covers literary and socio-political ambience of the texts.This change of medium sometimes provides us with the occasion of dealing much deeper into the source text as we can tease out new meanings into the target text.Premchand is one of the eminent writers of Hindi literature who has written his fiction during an era which was promulgated by the ideals of the progressive writers' movement.The plot of the story is set during 1856 when East India Company had established itself as the superpower and Britishers are about to annex the Indian state of Oudh.

Keywords: Adaptation, Artifacts, Ambience, Superpower

Introduction : Adaptation is the process to adapt a specific form of any literary artifacts such as drama, novel, short story into other medium of cultural representation and to cover literary and socio-political ambience of the texts. This change of medium sometimes provides us with the occasion of dealing much deeper into the source text as we can tease out new meanings into the target text. This is the premise of my present topic that will explore the issues of adaptation through the analysis of Satyajit Ray's Shatranj ke Khiladi.

Premchand is one of the eminent writers of Hindi literature who has written his fiction during an era which was promulgated by the ideals of the progressive writers' movement. He wrote in both Urdu and Hindi, which made him an inheritor of two distinct literary traditions and also gave him wider readership. He practiced a simple and candid style which had a direct emotive effect. Shatranj ke Khiladi published in Madhuri in October 1924 and later in the collection of Mansarovar 3 (1938). It was published as Shatranj ki Baazi in Zamana in December 1924 in Urdu.It has been translated into English by many eminent translators. This story has been also translated by Sara Rai, granddaughter of Munshi Premchand, in 1978. The first authentic translation of this story is known as The Chess Players which is translated by David Rubin, in 1988. In 1977, Ray adapted the Shatranj ke Khiladi(The Chess Player) based on a short story by Premchand. Satyajit Ray was an Indian filmmaker, screenwriter, music composer, graphic artist, lyricist, and author widely regarded as one of the greatest filmmakers of the 20th century. Ray received many major awards in his career, including 32 National film awards and an Academy Honorary Awardsin1992. Ray was fully aware of the strengths of fiction as one and film as another medium. He was also conscious of the limitations of director who endeavored to transform a piece of fiction into a film.

Research Questions : In this seminar paper I will put forward my argument through the following research questions:

1. Why cinematic adaptation of a literary work is significant to understand the context of the work and time?

*Ph.D. Scholar, Dept. of HSS, IIT Roorkee, Uttrakhand

2. How does mise-en-scene promote a fresh way of seeing and saying?
3. Does cinematic adaptation give the source text an'after life'?

Critical Background : As a translation technique, adaptation can be defined in a technical and objective way. According to Vinay and Darbelnet "Adaptation is a procedure which can be used wherever the context referred to in the original text does not exist in the culture of the target text, thereby necessitating some form of re-creation". In terms of mode of adaptation, the procedures used by the adapter can be classified as follows. The first one is transcription of the original in which word to word reproduction of part of the text in the original language, usually accompanied by a literal translation. The second one is omission where elimination of part of text is done by adapter. Third one is expansion adapter makes explicit information that is implicit in the source text, either in the main part of text or in footnotes. Fourth one is exoticism where the substitution of slang, dialect, nonsense words etc.in the source text by rough equivalents in the target language. Fifth one is updating in which the outdated or obscure words are replaced by modern equivalents. Sixth one is situational mode where adapter does the insertion of a more familiar context than the used in source text. The last one is creation where adapter makes more global replacement of the original text with a text that preserves only the pertinent message or idea of the source text.

There are some other issues which also impact on adaptation procedure. Firstiscross-code breakdown where there are simply no lexical equivalents in the target language. Second is the situational inadequacy where the context referred in source text does not exist. Third is genre switching where change happened from one discourse type to another. Fourth one is disruption of the communication process-- emergence of a new approach or need to address a different type of audience or readership. These conditions can lead to two major types of adaptation that is local and global adaptation.

Adaptation theory has some limitations which are following. Adapter must evaluate the knowledge and expectations of the target reader to which extent the content of the original text produces new information. The target language must find an appropriate match in the source language for the discourse. The meaning and purpose of the original and target texts should fruitful.A cinematic adaptation is the transfer of a work or literary artifacts such as novel, drama, short story, and non-fiction to a feature film. Although it is often considered a type of derivative work but recent academic developments by scholars such as Robert Stam conceptualize film adaptation as a dialogic process. Bela Balazs is a Hungarian-Jewish critic and poet who recognizes the importance of the film as "the only new art form" and the greatest instrument of the mass influence.Cinematic adaptation also interpolates scene or invent characters to give the approach to know more about the socio-political milieu of the particular time period. They also do these steps to achieve more relevance and also try to get cinematic equivalence.Cinematic equivalence is achieved through mise-en-scene and narrative technique. In the cinematic adaptation director faces a lot of challenges but cultural and linguistic challenge are most prominent one. Mise-en-scene is French term which means 'placing on stage'. It refers to everything that's part of the stage in theatre-lighting, props, background,costumes, camera etc.

Afterlife concept is given by Walter Benjamin in his seminal essay, 'The Task of the Translator'. According to Benjamin-

The idea of life and afterlife in works of should be regarded with an entirely unmetaphorical objectivity. Even in times of narrowly prejudiced thought, there was an inkling that life was not limited to organic corporeality. But it cannot be a matter of extending its dominion under the feeble scepter of the soul. The concept of life is given its due only if everything that has a history of its own, and is not merely the setting for history, is credited with life(2).

The history of the great works of art tells us about their descent from prior models, their realization in the succeeding generations.Benjamin also believed that in the hands of good translator the original work undergoes a living renewal and becomes a purposeful manifestation of its significance. In Benjamin's thought process, literary works have a life of their own, a life with "stages".

Story Line in Different Mediums : The plot of the story is set during 1856 when East India Company had established itself as the superpower and Britishers are about to annex the Indian state of Oudh.

It was the reign of Wajid Ali Shah. Lucknow was steeped in a state of indulgence. Everybody-young and old, rich and poor- was immersed in luxury. If there were soirees of music and dance in some places, there were opium parties in others. In every sphere of life, enjoyment and revelry ruled. In politics and poetry, arts and crafts, trade and industry-everywhere-indulgence were becoming pervasive (Premchand 502).

Mirza Sajjad Ali and Mir Roshan Ali are the major characters in the story. They always play chess and spent most of time to sharp their mind through this game. No one knows what is happening in the world. They don't have any idea about the new discoveries in the world of knowledge and wisdom and how the western powers are establishing their dominance. As two nobles always indulge in the game of chess, they don't bother their wives.Mirza's wife Khursid Begum felt neglected as Mirza no longer responds to her feminine charms due to his obsession with the game. On the other hand, Mir's wife Nafeesa too faces a similar fate but finds solace in an extra marital love affair with a young man. Even after discovering this affair Mir opts to ignore it rather than confronting the situation and disturb his routine of chess playing. Chess playing is metaphorically presented in the story where the British are playing a bigger game of chess. Premchand tries to delineate the people's interest and socio-political milieu of Lucknow. How the people indulge in the meaningless works such as partridge fights. Mir and Mirza never think about real war. They pretend that they are brave but don't believe inwar. When a royal harbinger comes with the news of the king, they got frighten and decided to change the place of game. At the end of the story both of them fight each-other and die. Ending of the story is satirical- "Darkness was setting in. The game of chess was still set. Both the kings, each on his throne, sat wistfully as if lamenting the death of these heroes" (Premchand 512).

Satyajit Ray was a great film maker, music composer, illustrator and gifted writer.Ray adapted the Shatranj ke Khiladi (The Chess Player), a Hindi/Urdu based on a short story by Premchand in 1977. It is also considered as a commentary on issues related to the colonial India and this was the first feature film in a language other than Bengali. Shatranj ke khiladi is a political sub plot to give the story not only historical dimension but also political potent to take a dig at the political conditions. Ray not only focuses upon two chess players but also gives attention to the historical time span of that time. How the Britishers try to annex the Oudh and also show how much they indulge in every happening. Thus a literary story becomes a political satire though the story wasn't bereft of sarcasm. Ray also gives voice to those characters in the film which are unheard in the story thus expanding the horizon of socio-political conditions.Munshi, one of the minor characters in the story, visits during the game between Mirza and Mir and tells them that India is the originator of chess. He explains the difference between the rule of Indian and Britishers' way of playing the game. Premchand delineates the feudal system in the following way: "Mirza said, 'If anybody in your family had ever played chess then you'd have been familiar with the rules. But they were just grass cutters. So how can you be expected to play? Real aristocracy is something else! Nobody can become a noble just by having a jagir"(511). But Ray presents feudal system as weak and deplorable due to the involvement of the East India Company in every decision. In this cinematic adaptation Ray

presents the liberal perspective of the General Outram who doesn't want to usurp the Oudh but due to his subordination to Lord Dalhousie he was bound to do so.

Argument : Cinematic adaptation is one of the best mediums to approach the society in the terms of ethics and moral values. The main idea of a cinematic adaptation is that it opens out the meaning of source text. This usually involves a change of genre or medium. An adaptation or performance of a piece of work needs to be interpreted by its audience. But there is a question of degree, who will be going to see or interpret? Literary texts are open to a great variety of interpretations; that is the part of what it means for them to be literary. In source text Premchand presents Lucknow in such way-

The courtiers were obsessed with drinking, poets with the descriptions of love and longing, craftsmen with making gold and silver embroidery, artisans with earning a livelihood from kohl, itr perfume, cosmetic paste and oils. In short, the entire realm seemed to be in thrall of sensual pleasures. No one knew what was happening in the world. They had no idea about the new discoveries in the world of knowledge and wisdom and how the western powers were establishing their dominance" (Premchand 502).

In the same way literary adaptations are open to a great variety of audience who analyze these adaptations. When I observed the adaptation of Shatranj ke Khiladi, I found that there is lot of modifications in the plot of adapted story. Premchand's story primarily focuses on the two chess players and their obsession for game and its consequences whereas Satyajit Ray expanded the story to provide more space through the character of Wajid Ali Shah, General Outram and other characters which are almost missing from the source story. Ray also makes radical changes in Premchand's story for the more significance of the contemporary time. We know the main indulgence of the reign of Wajid Ali Shah through history and beginning description of the story. When his reign is annexed by the British soldiers then he murmurs thumari songs to himself-

"jab chhod chale lakhnow nagri
Kaho haal aadam par kya gujari"

(As we leave our beloved city of Oudh, we could sense the pain of Adam while leaving heaven.)

Through this particular song, Ray tries to present the condition of the 1857 and the current time when this adaptation has been done.

Interpretation of an adapted film, then necessitates a mise-en-scene analysis which examines the use of cinematic techniques like settings of scene, functions of camera, props, costumes, colors, lightning effect, body language as well as positioning of people and things in relation to one another in the frame. Satyajit Ray effectively makes use of narrator's voice, animation effect, lightning effect, music and body language in his adaptation. Apart from what the original text provides the movie, he adds text of his own which provides not only a context to the main story but also the background to an alternative story. To accurately depict the time period of the film, Ray conducted extensive research that included studying artwork from the era. Firstly I would like to start with the camera. The opening of movie with the picture of chess board and moving hands of chess players are interesting which deploy to communicate a sense of intensity and urgency. And the extreme close shot of pawn of chess game which also tries to present the conditions of both chess players, Mir and Mirza. Use of vegetables on the place of pawn also depicts the urgency of the game. The design of chess pieces portrays the actual images of queen, king, elephant, horse etc. and also depicts carving at elephant's teeth. Ray's visual presentation of chess pieces provides usdeeper sense of meaning. How the British people are ready to capture the state of Oudh, and their social and political conspiracy is presented through the game of chess.The setting of scene such as chess board,old tomb, and palace of king give the historical and architectural

importance. The visual description of the king's palace and deserted tomb shows the excellent design of stone carving. Costume is a vital part of the adaptive process of the text from page to screen. It is one of primary methods of character revelation. Costumes of the Wajid Ali Shah, Mir, Mirza, Britishers and ordinary man present culture, ethnicity, and time period of the source text. The adapted version of Shatranj ke Khiladi shows Wajid Ali Shah in many different outfits. Wajid Ali Shah usuallywears velvety clothes with a most beautiful crown during court time and wears simple cloth at prayer time. The costume of Shah here supports his dancing and singing aspects. As part of cinematic adaptation, the costume works to concretize ideas thrown out by the source text but does not deal at length. The source text has a few sentences about king's life, belongings and relations but cinematic adaptation has presented all these things in exaggerated manner.The jewellry of king can indeed be seen to offer a separate strand within the narrative. The special presentation of Shah's crown shows many things.He sends his crown in London exhibition which was held in 1850 but Lord Dalhousie ridicules this act in the following lines:

The wretch of Lucknow who has sent his crown to the Exhibition would have done his people and us a great service if he had sent his head in it;and never would have missed it. That is a cherry which will drop into our mouths one day(Jindal 67).

This statement of Dalhousie reveals the intention of the Britishers towards Indian kings and their kingdoms. Ray emphatically describes this scene in the movie with the help of cartoon's portrayal. Body language of the Wajid Ali Shah depicts silent resistance against the colonial masters when he hears the news of General Outran that hereafter only Britishers will have the right to govern the state of Oudh. Shah then criticizes the policy of East India Company by saying that he has always been there with his people in their good or bad times,but Britishers did not bother much about that.

The history of the great works of art tells us about their descendent from prior models, their realization in the succeeding generations. Ray makes radical changes in his adaptation to give Premchand's story a contemporary relevance. Benjamin also believed that in the hands of good translator the original work undergoes a living renewal and becomes a purposeful manifestation of its significance. Literary works have a life of their own, a life with "stages". The relationship between translation and original is natural one, a connection of life. After translation a literary work indicates that it has reached a certain stage of life. Through these changes literary work of art survives in the form of'afterlife'. In the source text, the situation of king and his courtier is presented in this way.

First save your king and then you can mourn for Nawab Sahib. Here's check and mate!Now, play your move! The army went by taking the Nawab with them.Mirza set up the chess piece again. The sting of defeat is bitter. Mir said, 'come now,let's write an elegy for Nawab Sahib's tragic destiny.' But Mirza's loyalty and etiquette had vanished with his defeat. He was baying for vengeance (Premchand 510).

Satyajit Ray gives a new dimension of after life in his adapted movie. He characterizes the event with new aspects such as Mir and Mirza want to fight for the king. In Premchand's story both the chess players fight with each other, and die. But Ray doesn't follow the same narrative of the source text. In Ray's version both the players presented as alive.

Conclusion : Satyajit Ray's adapted version of Shatranj ke Khiladi has changed in many aspect such as historical and aesthetical. The historical representation of Lucknow glorifies its importanceand also tries to depict most of the things exactly but changes give it new approach. The use of mise-en-scene always redeems the gap between dialogue and action. The curving of chess pieces and dresses of king, courtier, common people make a social and political presentation. The decline of socio- political power of Wajid Ali Shah is presented by these artifacts. Particularly the costume of king gives the vital definition of time. Decay of

power structure is presented through chess game. Chess is a kind of replica of social and political settings in Ray's adaptation. Ray's adaptation has given many new dimensions to the source story. The characters of king, General Outram, Khurshid Begum, etc. have been presented in larger aspect which give them a new view in reader and audience. According to Amartya Sen,- "The work of Satyajit Ray presents a remarkably insightful understanding of the relations between cultures, and his ideas remain pertinent to the great cultural debates in the contemporary world, not least in India."

References :

1. Premchand, Munshi. Mansarovar. Meerut:Rajat Publication, 2014.
2. Asaduddin, Mohd., ed. Premchand the Complete Short Stories:Volume 2 . Gurgaon: Penguin Random House India, 2017.
3. Rubin,David.Deliverance and Other Short Stories. New Delhi:,Penguin,1988.
4. Baker, Mona, and Gabriela, Saldanha, ed. Routledge Encyclopedia of Translation Studies. USA:Routledge,2008.
5. Cartmell, Deborah,ed. Literature,Film,and Adaptation. USA: Blackwell Publishing Ltd,2012.
6. Nelmes,Jill,ed. Introduction to Film Studies. USA:Routledge,2012.
7. Doughty,Ruth, and Shaw,Deborah,ed. Film: The Essential Study Guide. USA: Routledge,2009.
8. Benjamin, Walter.The Task of Translator
9. Vanashree. "Hori and the Dynamics of Injustice: Mahasweta Devi's Water". Jstor. 2004.
10. Narayan, Hari. "Awakening the aesthete within the reader". The Hindu 1 August2015.
11. Jindal, Suresh. My Adventures with Satyajit Ray: The Making of Shatranj ke Khilari. New Delhi:Harper Collins India,2017.
12. Ray, Satyajit."Shatranj Ke Khalari".YouTube, uploaded by Shemaroo, 8 Nov 2015, https://www.youtube.com/watch?v=A3Fgm0yaWbA. 2 April 2019.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. V, No. I
May-October, 2019
Pg. No. 34-35

Dimensions of Online Education

Dr. Smita Singh*

Online Education can be defined as a media based, remote, or asynchronous and supported by some instructional systems, it can also be defined as it is a formalized teaching and learning system dedicated Because it can learn through electronic media and the Internet, and online education low cost and do not require specific places for education.

Thousands of people turned to online teaching them to complete their education to rise to the high level in their jobs and them to take qualifying courses or improve their level of education .It has influence in our society such as helped a lot of people who cannot come to the seat of education, and it has its pros such as gives us with an chance to develop technology skills for teachers and studentssuch as It is known that online education is not for all people, not for the uncontrolled educated or inflexible instructors , and there is a difference between online education and traditional education, and it has types.

It is noted that Online Education offers more opportunities Cases where it is difficult to traditional education of students with difficulty scheduling or distances as well as distance education can be easier and more flexible in terms of time and place.No one can deny that this type of education has merits and demerits.

One of the most important benefits of Online Education is that beneficial for gifted and slower Students for many reasons such as: one hand, provides advanced education and good for all ages, especially for students who have been deprived of the school environment. On the other hand, it provides students with individualized Online Education classes allow interactive. Stimulate and support and boost the morale of students that will enable them to progress in our time. Help develop and expand the horizons of children from gifted students through improved curricula.

On the other hand, one cannot deny that online education works to save money, and one of its advantages. No travel. You don't need to make arrangements with your partner and family to be away from home for a week. While in traditional education to provide a budget for many requirements such as housing and food, and other needs of students both in online education do not need them, with the student's ability to full education at But, we can conclude that Become rare to use and transport, and they only need a computer and a quiet place suitable for the study, and there are a lot of students dream to go to the headquarters of the study. Online learning is education that takes place over the Internet. It is often referred to as "e- learning" among other terms. However, online learning is just one type of "distance learning" - the umbrella term for any learning that takes place across distance and not in a traditional classroom.

There are some disadvantages of online learning like: does not requires self-discipline and time management skills. Not suitable for every topic.Lack of practice-based learning.Etc.. While logistically sound, taking too many online courses or having poor online instruction can be harmful to a student's future. One of the most glaring issues with online education is the lack of interpersonal communication. A big disadvantage to students is the lack of one-on-one support.

*Assistant Professor , Education , Mahila Degree College, Basti,U.P.

Online education is a flexible instructional delivery system that encompasses any kind of learning that takes place via the Internet. Online learning gives educators an opportunity to reach students who may not be able to enroll in a traditional classroom course and supports students who need to work on their own schedule and at their own pace.

The quantity of distance learning and online degrees in most disciplines is large and increasing rapidly. Schools and institutions that offer online learning are also increasing in number. Students pursuing degrees via the online approach must be selective to ensure that their coursework is done through a respected and credentialed institution.

Online education has become a viable and exciting method for instructional delivery in the global business society that runs on a 24/7 schedule (24 hours a day/7days a week) because it provides students with great flexibility.

With the increased availability of the Internet and computer technology, students are able to access information anytime and anyplace that would normally be available only through a traditional classroom. Studies have shown that students learn just as effectively in an online classroom as they do in the traditional classroom.

Positive and negative effects of online education-

1. have flexibility in taking classes and working at their own pace and time.
2. face no commuting or parking hassles
3. learn to become responsible for their own education with information available at their fingertips
4. learn the submission of assignments easy and convenient
5. are more suitable to voice their own opinions and share and debate issues with other students, as well as learn from other students during the group discussions

*some negative effects of learning online are that some students:

1. may miss the face-to-face interaction with the instructor and among students
2. may prefer to attend traditional classes with an instructor who teaches and guides them through the course
3. find access to the necessary technology challenging and the availability of technical support limited
4. In addition, some administrators and instructors who do not understand the workload may display a negative attitude toward online education.

Future of online education: Online teaching is here to stay. Many students prefer the online classroom since it offers flexibility in their busy schedules. With the proliferation of information and knowledge, students must become lifelong learners in today's world, and online education plays an important role in helping individuals access the learner cantered and self-directed instruction.

With enhanced software, hardware, and Internet access, more options for online education will become available. With student enrolments increasing faster than classrooms can be built, students becoming more proficient with technology, and students pursuing an education that meets their needs, the future of online education will continue to grow. Online degree programs will become more widely accepted as they become a more common practice.

References:

1. Center for Online Educators. http://educatoronline.org
2. Newsweek DistanceLearning.com. http://www.newsweekdistancelearning.com
3. http://www.usnews.com/usnews/edu/elearning/elhome.htm

♦♦♦

सदस्यता शुल्क :
वार्षिक सदस्यता शुल्क व्यक्तिगत : २००० रू०
वार्षिक सदस्यता शुल्क संस्थागत : ३००० रू०

सम्पादकीय सम्पर्क :
जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान
सी–23, आवास विकास कालोनी,
प्रतापगढ़–230001 (उ0प्र0) भारत
मो0– 09415627372, 08004802456
वेब साईट : unmeshjournal.com
ई–मेल : unmesh0110@gmail.com
shivendrakr.maurya@gmail.com

ISSN 2394-2207

RAJ GRAPHICS # 09415842611